श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशन की योजना।

ज्ञान-दान ! महान् पुण्य कार्य्य का सुअवसर !! यश-नाम !!!

श्री जैनसंघको अतीव आनन्द के साथ विनाति की जाती है कि महोपाध्यायजी श्री सुमतिसागरजी महाराजके सद्उपदेश से कोटा-छबड़ा आदि के संघने आगमों को हिन्दी भावार्थ सहित प्रकाशित करवाने की योजना की है। इसलिये यहां 'जैन छापाखाना' खोला है. उसमें अल्प खर्च व अल्प समयमें ही अच्छा कार्य होरहा है. दशवैकालिक सूत्र, कल्पसूत्र, पर्वकथा संग्रह, लघुदीक्षाविधि, साधु आराधना व अंतःक्रिया विधि आदि छप चुके हैं. कल्पसूत्रकी सरल व संक्षेप नई टीका, श्रीपालचरित्र श्लोकबद्ध और हिंदी भाषा में छप रहे हैं. उत्तराध्ययन, उववाई, विपाक, उपासकदशा आदि छपने वाले हैं. प्रत्येक सूत्रकी ५००-५०० प्रतियां छपेंगी. हिन्दी आगमों के लेने की इच्छा वाले अपने २ नाम ग्राहक श्रेणिमें पहिले से ही लिखवा लें. पीछे से दश-वीस गुणा अधिक मूल्य देने परभी नहीं मिल सकेंगे. जिस २ शास्त्र की छपाई में द्रव्यकी सम्पूर्ण सहायता मिलेगी वे अमूल्य भेट दिये जावेंगे और अन्य अल्प मूल्यसें दिये जावेंगे. इस छापाखाने की आमदनी ज्ञान-प्रचार, जीव-दया आदि शुभ कार्यों में खर्च की जावेगी. आप लोग छपाईका अपना २ कार्य यहांपर अवश्य भेजें. आपका काम अच्छा, सुन्दर और सस्ता होगा तथा बचतमें परोपकारका पुण्य होगा. यह कार्यालय ज्ञान-प्रचार और परोपकार की दृष्टिसे ही खोला गया है, इससे हर प्रकारसे इस काममें मदद करना आपका कर्त्तव्य है।

हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्य्यालय,
श्री जैन छापाखाना, कोटा. [राजपूताना].

॥ जरूरी सूचना ॥

जैन श्वेतांबर संघमें कल्पसूत्रकी बडी महिमा है, हरवर्ष पर्युषणा पर्वमें गांव २ में यह सूत्र बांचा व सुना जाता है. साधु-साध्वियोंके पासमें पूजा-प्रभावनादि महोत्सव सहित लोग बडे उत्साहसे सुनते हैं. जिस जगह साधु-साध्वियों के चौमासे नहीं होते हैं, वहांपर यतियों के पास सुनते हैं अथवा कोई समझदार श्रावक स्वयं गुजराती भाषांतर बांचकर सुनाताहै, परंतु इसका हिंदी भाषान्तर न होने से हिन्दी भाषा भाषियों के समझमें नहीं आ सकता. साधु-साध्वी व श्रावक आदि बहुत से लोग हिन्दी-भाषाके कल्पसूत्रकी बडी चाहना कर रहेथे, इसलिये गुरुमहाराजकी आज्ञानुसार यह हिन्दी भाषामें तैयार कियाहै इससे सबके समझने में सुगमता होगी ।

साधु साध्वी तो हरएक शास्त्रकी विनय भक्ति रखते हैं, परंतु कई यतियों में और श्रावकों में विनय विवेक का उपयोग कम रहताहै, उन्हीं महाशयों से हमारी सूचनाहै कि इस महा-आगम की किसी तरह की कभी भी आशातना न होने पावे, इसका खास ध्यान रखना चाहिये और इसको बांचते समय एकासनादि तप करके

सामायिक में बैठकर विनय पूर्वक ऊंचे स्थानपर रखकर उपयोग पूर्वक मुंहपत्तिसे मुंह की यत्ना करके बांचने से बांचने वालोंको और सुनने वालों को विशेष लाभ की प्राप्ति होगी ।

इसमें लेखक-दोष, दृष्टि-दोष, या प्रेस-दोष रहे हों अथवा कोई विषय न्यूनाधिक देखने में आवे उसकी सूचना लिखकर भेजने की सज्जन गण अवश्य कृपा करें। दूसरी आवृत्ति में उसका सुधारा किया जावेगा ।

विक्रम सम्वत् १९९०, आषाढ शुक्ल ३, चन्द्रवार.

पं० मुनि—मणिसागर. जैन उपाश्रय, कोटा.

॥ जाहिर खबर ॥

॥ ॐ श्री स्थंभनपार्श्वजिनाय नमः ॥

चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीजी विरचित

श्री कल्पसूत्र (हिंदी भावार्थ).

श्रीमान्–लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय विरचित कल्पद्रुमकलिकादि टीकाओंका हिंदी भाषान्तर

(प्रथम नवकार आदि मंगल वाक्य सर्व संघ खडे २ हाथ जोड कर सुने)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥ वंदामि भद्दबाहुं, पाइणं चरम सयल सुयनाणिं ॥ सुत्तस्स कारगमिसिं, दसाणु कप्पे य ववहारे ॥ २ ॥ अज्ञानतिमिरांधानां, ज्ञानांजनशलाकया ॥ नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अर्हंत,भगवंत, अशरण शरण, भवभय हरण, शिवसुख करण, तरणतारण प्रवहणसमान, उत्पन्न दिव्य विमल केवलज्ञान भास्कर, लोकालोक प्रकाशक, सर्वज्ञ, सर्वऐश्वर्ययुक्त, देवाधिदेव, त्रिजगत्पूज्य, पंचमगतिगामी, चरम तीर्थंकर, शासननायक श्रीवर्द्धमानस्वामीके शासनमें अतुल्य मंगलमाला प्रकाश करनेवाले पर्वाधिराज श्रीपर्युषणापर्व आनेसे गांव २ में, नगर २ में, सर्व संघमें श्रीकल्पसूत्र वांचने में आताहै; इसलिये यहां पर भी संघकी आज्ञासे मंगलके लिये वांचते हैं।

(इत्यादि मंगल वाक्य सुनकर नीचे बैठकर चैत्यवंदन करने जैसे आसनसे एकाग्र चित्तसे पूरा व्याख्यान सुने)

श्रीवर्धमानस्य जिनेश्वरस्य, जयन्तु सद्वाक्यसुधाप्रवाहाः ।
येषां श्रुतिस्पर्शनजप्रसक्ते–र्भव्या भवेयु–र्विमलात्मभासः ॥ १ ॥

शास्त्रके आदिमें टीकाकार महाराज निर्विघ्नता पूर्वक शास्त्र संपूर्ण होनेके लिये तथा वांचनेवाले और सुननेवाले सर्व संघके मंगलके लिये अपने इष्टदेवकी स्तुति करतेहैं। जैसे गंगा नदीका प्रवाह शरीरकी बाह्य मालिनताको दूरकरताहै, वैसेही भगवान्की वाणीका प्रवाह भव्यजीवोंकी अंतर आत्माको पवित्र करने वाला है, इसलिये

टीकाकार महाराज कहतेहैं कि सामान्य केवलियोंमें ईश्वरतुल्य शासननायक श्रीवर्धमान जिनेश्वर भगवान्के श्रेष्ठवचनरूपी अमृतके प्रवाहका जगत् में हमेशा जय हो। जिनवचनामृतरूपी प्रवाहोंका भव्यजीवोंके कानोंमें प्रवेशहोने मात्रसे वे भव्यजीव निर्मल आत्मावाले होते हैं, अर्थात्—भगवान्की वाणीको श्रद्धापूर्वक सुननेवाले अपने अनादि कर्ममलको दूर करके पवित्र आत्मावाले होकर मोक्षका अनंत सुख भोगते हैं। ऐसी परम उपकारिणी भगवान् की वाणी जगत् में सदा जयवंती रहो। यह भगवान् की वाणी की स्तुति होनेसे सर्व तीर्थंकर महाराजोंकी और द्वादशांगीकी अधिष्ठाता सरस्वतीकीभी स्तुति समझलेनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीगौतमो गणधरः प्रकटप्रभावः, सल्लब्धि-सिद्धि-निधिरंचितवाक् प्रबन्धः ॥
विघ्नान्धकारहरणे तरणिप्रकाशः, साहाय्यकृद् भवतु मे जिनवीरशिष्यः ॥ २ ॥

अब गौतमस्वामीकी स्तुति करतेहैं। श्री गौतमस्वामीके पासमें जिस २ ने दीक्षाली; वे सब केवलज्ञान पाकर मोक्षगये और अभीभी प्रातः कालमें स्मरण करनेवालोंको हमेशा आनंद रहताहै इत्यादि प्रसिद्ध प्रभाव वालेहैं और अच्छी २ लब्धिओंके तथा सिद्धिओंके भंडारहैं। तीनजगत्में पूजित द्वादशांगी चौदहपूर्वादि शास्त्रोंकी रचना करने

वाले और विघ्नरूप अंधकारको दूर करनेमें सूर्य समान प्रकाश करने वाले ऐसे श्रीमहावीरस्वामीके शिष्य प्रथम गणधर श्रीगौतमस्वामी महाराज मेरेको कल्पसूत्रकी टीका बनाने में सहायता करने वाले हों। प्रत्येक कार्य में पहिले गौतमस्वामीका नाम स्मरण करनेसे वह कार्य जल्दी पूर्ण सिद्ध होताहै; इसलिये ग्रंथकारने अपना इष्ट कार्य निर्विघ्नतासे जल्दी पूरा होनेके लिये गुरु गौतमस्वामीका स्मरण कियाहै, यहां पर गौतमस्वामीका स्मरण करनेके प्रसंग से सर्व पूर्वाचार्योंका और सर्व गुरुमहाराजोंका स्मरण करनेका समझ लेना चाहिये ॥ २ ॥

कल्पद्रुकल्पसूत्रस्य, सदर्थफलहेतवे ॥ ऋतुराजेव सद्योग्या, कलिकेयं प्रकाश्यते ॥ ३ ॥

अब यहांपर कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष की उपमा देते हैं। जैसे– कल्पवृक्ष सर्व लोगोंके मनोरथ पूर्णकरता है, वैसेही यह लोकोत्तर कल्पवृक्षरूपी कल्पसूत्रभी भव्यजीवोंको सर्वप्रकारके मनोवांच्छित इष्टफल देनेवालाहै, इस लिये हे भव्यजीवों ! आप लोग निंदा–ईर्षा–विकथा–प्रमाद--निद्रादि कर्मबन्धन के हेतुओंको छोडकर भक्ति पूर्वक सावधान होकर श्रीकल्पसूत्रको संपूर्ण सुनो। टीकाकार कहतेहैं कि–जिस प्रकार ऋतुराज वसन्तऋतु के आनेसे सबको आनंद दायक मनोहर वृक्षोंमें अच्छे २ फल देनेवाली सुंदर कालिकाएँ निकलती हैं। उसी प्रकार

उत्तम श्रेष्ठ मोक्षरूपी परमानंदके अखंड फलकी प्राप्तिके लिये कल्पवृक्षके सदृश इस कल्पसूत्रकी कालिकारूप "कल्पद्रुमकालिका" नामा टीका मैं श्री गुरु महाराजकी कृपा से करता हूं ॥ ३ ॥ जैसे आम्रकी मांजरके प्रभाव से चैत्र महीनेमें कोयल मधुर बोलतीहै तथा पवनके जोरसे धूल सूर्यमंडलको ढकदेती है और मणिके प्रभावसे मंडूक बडेसर्पके मुखका चुंबन करताहै, याने—सर्पके मस्तकपर जा बैठताहै। वैसेही मैं भी अल्प बुद्धिवाला होकर बहुतबडे गंभीर आशयवाले श्रीकल्पसूत्रके अर्थको प्रकट करताहूं, यह मेरेको ज्ञान देनेवाले श्रीगुरुमहाराज का ही प्रभाव समझना चाहिये। अब यहां कल्पसूत्रके तीन अधिकार बतलाते हैं:—

पुरिम चरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाण तत्थम्मि। तो परिकहिआ जिण—गणहराइ थेरावलिचरित्तं ॥ ४ ॥

भावार्थः—प्रथम श्रीऋषभदेवस्वामी तथा चौवीशवें श्रीमहावीरस्वामी इनदोनों तीर्थंकरमहाराजोंके साधुओंका आचारहै कि जहां ठहरें वहां सर्व संघके मंगल— कल्याणकी चाहना करें, वर्षा कालमें वर्षा हो या न हो तो भी पर्युषणाकरें, चारमहीने एकजगह ठहरें। और श्री अजितनाथजीसे लेकर श्रीपार्श्वनाथस्वामी तक बाईस तीर्थंकर महाराजोंके साधुओंका यह आचारहै कि वे भी सर्वसंघके मंगल—कल्याणकी चाहना करें, वर्षाकालमें यदि वर्षा

न हो तो वर्षा के अभावमें विहारकर दूसरे गांव चले जावें और पर्युषणाभी करें या न भी करें, उन्होंके कोई नियम नहीं है परन्तु आदीश्वर और महावीर प्रभुके साधु तो वर्षा चौमासेमें एकजगह ठहरकर पर्युषणापर्व अवश्य करें और मंगलके लिये तीर्थंकरोंके चरित्रवांचे, सर्व तीर्थंकरोंके मोक्ष गमनके अंतरकाल कहें, यह पहिला अधिकार; तथा गणधरोंके स्थविर-पूर्वाचार्योंके चरित्रवांचे यह दूसरा अधिकार और 'चरित्त' शब्दसे साधु सामाचारी वांचें यहतीसरा अधिकारहै। अव चौवीसतीर्थंकर महाराजोंके साधुओंके दश प्रकारके आचारका स्वरूप वतलातेहैं

आचेलुक्कु—द्देसिय, सिज्जायर—रायपिंड—कियकम्मे ॥ वय—जिट्ठ पडिक्कमणे, मासं पज्जोसवणकप्पो ॥ ५ ॥

भावार्थः—'अचेलक' श्रीआदीश्वर और महावीर स्वामीके साधु अल्पमूल्यवाले प्रमाणसाहित जीर्णप्रायः श्वेतवस्त्र धारणकरें ❀ जीर्ण असार वस्त्र नहीं होनेके ही वरावरहे, इसलिये जीर्णवस्त्र वालोंका अचेलक (वस्त्ररहित)

❀—दश प्रकार के यति धर्म का पालन करने वाले यति को ही साधु कहते हैं परन्तु जबसे श्वेतवस्त्र वाले वहुतसे यतियों के आचरण विगडनेलगे, द्वेषीलोग यतियोंकी निंदाके वहाने अनादिसिद्ध जिनराजकी मूर्त्तिकी–तीर्थोंकी पूजा-मान्यता उठानेलगे, धर्मकी हानि होने लगी. तव भगवानकी मूर्त्तिकी–तीर्थोंकी सेवा–भक्तिकी रक्षा करनेके लिये तथा लोगोंकी धर्मश्रद्धाकी वृद्धिकेलिये और विगडे हुए यतियों सेभिन्नता दिखलानेकेलिये, जो परंपरानुसार शुद्धसंयमी यतिथे उन्होंनेही संवेगीनाम रखकर पीली चद्दर करनेकी रीति चलायी है, जिसतरह

कहते हैं। और बाईस तीर्थंकरोंके साधु ममत्वरहित होनेसे बहुत मूल्यवाले प्रमाण रहित विविध रंगवाले या नयेश्वेत वस्त्र भी धारण कर सकते हैं॥ १ ॥ 'उद्देशिक' श्री आदीश्वर भगवन् और श्री महावीर स्वामी के शासनमें किसी साधुके लिये बनाये हुए आहार-वस्त्र-उपाश्रय वगैरह सर्व साधुओं को उपयोग में लेना नहीं कल्पे ❀ और बाईस तीर्थंकरोंके शासनमें जिस साधुके लिये आहारादि बनाये हों उनको लेना नहीं कल्पे परंतु दूसरे साधु निर्दोष समझें तो ले सकतेहैं ॥२॥ 'शय्यातर' उपाश्रय देनेवाले मालिकके घरका आहारादि चोवीसही तीर्थंकरोंके सर्व साधुओं को लेना नहीं कल्पे × परंतु पाहिले दिन इन्द्रका, दूसरे दिन देशके मालिकका,

शास्त्रीय बातें मान्यहैं। उसीतरह पर्युपणामें कल्पसूत्रका संघ समक्ष वांचन तथा चौथकी संवत्सरी करना इत्यादि द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावानुसार विशेष लाभकी वार्तेभी मान्यहैं, जिससे संवेगियोंकी प्रवृत्तिभी लाभकी हेतुहोनेसे सब देशों में, सब जैनों में मान्य हुई है।

❀—धार्मिक मकान बनानेमें कई श्रावक; साधुके ठहरनेके काममें आवेगा, ऐसे विचारसे बनातेहैं उसमें साधु ठहरते हैं जिससे साधु श्रावक दोनों दोषके भागीहोतेहैं, धार्मिक मकान आदि बनाते समय साधुकी भावना कभी नहीं करनी चाहिये, गृहस्थलोग अपने सामायिक, प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य करनेकेलिये बनावें उसमें साधु साध्वी ठहरें तो उनको दोष नहीं, परन्तु इस कालमें टोलेबंधी और गच्छपक्ष से खास अपने २ गुरुके लिये बनवानेवाले और उसमें ठहरनेवाले दोषके भागीहोते हैं।

× श्री जिन प्रतिमा को नहीं मानने वाले साधु साध्वी मकानमें ठहरनेकी आज्ञा देनेवाले नौकर या पडोसी आदि अन्यका घर

तीसरे दिन गांवके मालिकका घर शय्यातर करसकतेहैं, ऐसा गीतार्थ पूर्वाचार्य कहतेहैं ॥३॥ 'राजपिंड' छत्र-चामरादि राज्य ऋद्धि सहित राजाके घरका आहार आदीश्वर-महावीरप्रभुके साधुओंका लेना न कल्पे। क्योंकि राजाओंके अच्छे २ आहारसे प्रमादादि दोष बढतेहैं, स्वाध्याय—ध्यानादि में हानि पहुंचती है। साधारण घरोंमें आहारके लिये जानेमें अप्रीति होती है और राजऋद्धिके मोहसे नियाणादि दोष होनेके हेतु होते हैं इत्यादि कारणोंसे आदीश्वर—वीरप्रभुके साधुओंको राजपिंड लेना मना कियाहै और बाईस तीर्थंकरोंके साधु निर्ममत्वी अवसरके जाननेवाले होनेसे राज्यपिंड लेतेहैं ॥ ४ ॥ 'कृतिकर्म' चौबीसही तीर्थंकरोंके सर्वसाधुओंमें छोटा साधु बड़ेसाधुको बंदनाकरे*॥ ५ ॥ 'व्रत' आदीश्वर—वीरप्रभुके साधुओंके पांचमहाव्रत; छठा रात्रिभोजन विरमण यह छ व्रत होंवे और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओं के चारमहाव्रत होतेहैं, परिग्रह ममत्वसे स्त्रीका संगहोता है,

---

शय्यातर करके मकानके मालिकके घरका आहारादि लेतेहैं,बडेआदमीके अनेक नौकर होतेहैं, एक नौकरका घर शय्यातर मानकरके आहारादि लेनेसे दृष्टि रागसे सदोष आहार, प्रमाद वृद्धि और मकान मिलनेकी दुर्लभता आदि अनेक दोष आतेहैं, यह प्रवृत्ति सुधारने योग्य है।

*—जैनशासनमें धर्मका मूल विनयहै इसलिये साधु साध्वी श्रावक और श्राविकाओंको उचितहै कि व्यवहारमें शुद्ध संयमी साधुको देखकर गच्छ आदिका भेद छोडकर बंदना अवश्य करें।

इसलिये परिग्रह त्याग करनेवालोंको स्त्रीका त्याग हो ही चुका तथा रात्रिभोजन जीवहिंसाका हेतुहोनेसे पहले महाव्रतमें आजाता है ऐसे समझदार होने से उन्हों के चार महाव्रत होते हैं ॥ ६ ॥ 'ज्येष्ठ' पुरुष प्रधान धर्म होनेसे सौ वर्षकी दीक्षा ली हुई साध्वी अभी दीक्षा लिये हुए साधुको वंदना करे ❀। आदीश्वर—महावीर स्वामीके साधुओंकी दीक्षा दो प्रकारकी होतीहैं, एक छोटीदीक्षा, दूसरी बडीदीक्षा, छोटे तथा बडेकी गिनती बडी दीक्षासे होती है और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके एकही प्रकारकी दीक्षाहोतीहै, इसलिये दीक्षाके समय

❀:—कई लोग पुरुषप्रधान धर्म समझकर साध्वियों को श्रावक-श्राविकाओं की सभामें व्याख्यान वांचनेकी मनाई करते हैं, यह अनुचित है। श्री हरिभद्र सूरिजी कृत "संबोध प्रकरण" में गुरु और कुगुरु के अधिकार में छपे हुए पृष्ठ १५ वें, में "केवलथीणं पुरओ, वक्खाणं पुरिस अग्गाओ अज्जा ॥ कुव्वंति जत्थ मेरा, नड पेडक संनिहा जाण ॥ ७२ ॥" इस गाथा में अकेली स्त्रियों की सभा में साधु को और अकेले पुरुषों की सभा में साध्वी को व्याख्यान वांचने की मनाई की है. इससे जिस तरह पुरुष-स्त्री दोनों की सभा में साधु व्याख्यान वांच सकता है। उसी तरह श्रावक-श्राविकाओं की सभा में साध्वी भी व्याख्यान वांच सकती है, उसमें कोई दोष नहीं है, जिस पर भी "केवलथीणं पुरओ वक्खाणं" इत्यादि सम्पूर्ण गाथाको छोडकर "वक्खाणं पुरिस अग्गाओ अज्जा" ऐसा अधूरा वाक्य लिख कर आनंद सागरजी (सागरानंद सूरिजी) ने "सुबोधिका" की नयी आवृत्ति में टिप्पणी लगाकर साध्वी को व्याख्यान वांचने का सर्वथा निषेध किया सो उचित नहीं है और अभी साधु बहुत कम है, साध्वियों का समुदाय अधिक है बहुतसे गांवोंमें लोगों को साधुओं के दर्शन और उपदेश का लाभ नहीं मिल सकता, वहां पर साध्वी के व्याख्यान वांचने से बडा लाभ होता है। मारवाड, माल-

से ही छोटे बडेकी गिनती होती है ॥७॥ 'प्रतिक्रमण' आदीश्वर—महावीरप्रभुके साधु दोष लगे या न लगे तो भी हमेशा देवसी-राई प्रतिक्रमण करें, तथा पाक्षिकादिभी करें, और बाईस तीर्थंकरोंके साधु अप्रमादी होनेसे जब दोष लगे तब देवसी या राई प्रतिक्रमण करें नहींतो हमेशा स्वाध्याय ध्यानादि करते रहें ॥ ८ ॥ 'मासकल्प' आदीश्वर-महावीर प्रभुके साधु वर्षाचौमासे सिवाय आठ महीने ❀ मासकल्प करतेहुए विचरें, एकमहीना एक उपाश्रयमें ठहरकर दूसरी जगहजावें, मार्गसिरसे आषाढतक एकजगह न ठहरें, कभी रोगादि कारणोंसे ठहरना पडे तो स्थान बदलते रहें, एकजगह अधिक रहनेसे दृष्टिरागका प्रतिबंध, लघुता, प्रमाद, परिग्रहवृद्धि वगैरह अनेक दोष आतेहैं। और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके मास कल्पका कोई नियम नहीं, यदि विशेष

वा आदि देशों में साध्वी के व्याख्यान के प्रभाव से बहुत लोगोंने मिथ्यात्व और कुलिंग को छोड कर शुद्ध सम्यक्त्व अंगीकार किया है तथा जयतक साध्वी व्याख्यान वांचेगी तवतक हजारों श्रावक-श्राविकाएँ १७–१८ पाप स्थानकों का सेवनकरना छोडकर भगवान् की वाणी सुनने का लाभ लेवेंगे, व्रत पच्चक्खांण करेंगे, प्रतिबोध पावेंगे, इस लिये देश काल और लाभालाभ का विचार किये विना और स्थानक वासी साध्वियों के उपदेश का कैसा प्रभाव फैल रहा है उसको समझे विना साध्वियों को श्रावक-श्राविकाओं की सभामें व्याख्यान वांचने की मनाई करना यह धर्म कार्योंमें अंतराय भूत एवं समाज को हानिकारक होने से सर्वथा अनुचित है।

❀ अधिक महीना नहीं होवे तब आठ मास कल्पका नियमहै, परंतु पौष-चैत्रादि अधिक होनेसे नव मास कल्पका विहार होताहै।

लाभ देखें तो अधिक भी ठहरें नहींतो मासकल्पके अन्दरही विहार करें ॥९ ॥ 'पर्युषणा कल्प' वर्षा कालमें एकजगह ठहरना तथा संवच्छरी पर्व करना उसको पर्युषणा कहते हैं, सो श्री आदीश्वर-महावीर स्वामीके साधु वर्षा हो या न हो तो भी योग्य क्षेत्र मिलनेसे चौमासा ठहरें ×कदाचित् योग्यक्षेत्र न मिले तो भी संवच्छरी करनेपर भाद्रपदशुदी पंचमीसे सत्तर (७०) दिन ❀कार्तिक चौमासे तक एकजगह अवश्यठहरें. जि-

×वर्षा चौमासे में जीवों की उत्पत्ति बहुत होने से जीव दया के लिये साधुओं को विहार करने की मनाई है, धर्मी श्रावक भी चौमासे में निज गांव को छोड कर दूसरे गांव नहीं जाते तथा उत्तम हिन्दुओं में और जैनों में भी तीर्थ यात्रा, प्रतिष्ठा, महोत्सव आदि विशेष कार्य्य चौमासे में नहीं करते हैं, जिसपर भी बडे दयालु नाम धारण करने वाले साधु लोग अपनी मान्यता बढाने के लिये, तपस्या के पूर के नाम से अथवा वन्दना के नाम से अपने भक्तों के पास प्रत्येक गांव में पत्रिका पहुंचा कर हजारों लोगों को वर्षा कालमें बुलवाते हैं जिस से आने वाले लोग रास्ता में कीडे, मेंढक, हरीघास, कच्चा जल, लीलन फूलण आदि अनन्त जीवों की हिंसा करते हुए आते हैं। बैल घोडे आदि को वर्षा के कीचड में महान् कष्ट पहुंचता है तथा भट्टी खानेमें और जीवाकुल बाजार की भोजन सामग्री आदि में हिंसाका पार नहीं है इसमें लाखों रुपयों का व्यर्थ खर्च होता है यह रिवाज सर्वथा शास्त्र विरुद्ध होनेसे सुधारने योग्यहै।

* जैन पंचांगकी रीतिसे अधिक महिनेके अभावसे जब ५० दिने पर्युषणा करतेथे,तब कार्तिकतक ७० दिन रहतेथे, इसलिये शास्त्रोंमें ७० दिन रहनेका लेख देखा जाताहै, परन्तु अभी उसके अभाव में लौकिक पंचांग मुजब श्रावण भाद्रपद या आसोज बढनेसे ५० दिने पर्युषणा करने में आतेहैं, उससे पर्युषणाके बादमें कार्तिक तक १०० दिन होतेहैं। यह बात प्रत्यक्ष अनुभवसिद्ध, जगत व्यवहारके अनुसार

समेंभी रोग—दुष्काल—राजप्रकोपादि कारणोंसे ७० दिनमेंभी विहारकर सकते हैं और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओं के चौमासेका तथा पर्युषणापर्व करनेका कोई नियम नहीं, वर्षाहोतो ठहरें नहींतो विहारकरें ॥ १० ॥

यह दशकल्प आदीश्वर तथा वीरप्रभुके सर्व साधुओंके होते हैं और अचेलक, उद्देशिक, राजपिंड, प्रतिक्रमण, मासकल्प व पर्युषणा यह छ कल्प बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके नहीं होते इसलिये अनियत कल्प कहे जाते हैं तथा शय्यातरपिंड, चारमहाव्रत, पुरुषज्येष्ठधर्म, कृतिकर्म यह चारकल्प बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके भी होतेहैं इसलिये नियतकल्प कहलाते हैं और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके जैसा आचार होता है, वैसाही महाविदेहक्षेत्र में सर्व तीर्थंकरोंके सब साधुओंका आचार जानलेना चाहिये।

अब एकहीप्रकारके मोक्षमार्ग साधन करनेवाले सबसाधुओंके आचारमें भेदहोनेका कारण बतलातेहैं:—

पुरिमाणदुव्विसोज्झो, चरिमाण दुरणुपालओ कप्पो ॥ मज्झिमगाण जिणाणं ,सुविसोज्झो सुहणुपालो य ॥६॥

सत्य होने से उसमें कोई दोष नहींहैं, इसलिये श्रावणादि अधिक महिने होनेपरभी पर्युषणाके बाद ७० दिन ठहरनेका आग्रह करना तथा १०० दिन ठहनेमें दोष बतलाना सर्वथा अनुचित हैं। इसका विशेष खुलासा "बृहत्पर्युषणा निर्णय" नामा ग्रंथमें देख लेना।

प्रथम तीर्थंकरके शासनमें साधुओंको साधुधर्म समझना कठिनथा परन्तु समझनेसे वे उसे अच्छी तरह से पालन करते थे। महावीरस्वामीके शासनमें साधुओंको साधुधर्म समझना सहज है परंतु पालन करना कठिनहै और बाईस तीर्थंकरोंके शासनमें साधु साध्वियोंको साधुधर्म समझना व पालन करना दोनोंही सुलभथे.

उज्जुजडा पढमा खलु, नडाइनायाओ हुंति नायव्वा ॥ वक्कजडा पुण चरिमा, उज्जुपण्णा मज्झिमा भणिआ ॥ ७ ॥

प्रथम तीर्थंकरके शासनमें–साधु ऋजु–जड (सरल और मूर्ख) होते थे, उनको जितना समझाते थे उतनाही समझते थे परन्तु अधिक नहीं समझतेथे तथा महावीरस्वामीके शासनमें साधु वक्र-जड (उद्धत और मूर्ख) होतेहैं वे समझानेसे समझते नहीं परन्तु उल्टी कुतर्क करने लगते हैं और बाईस तीर्थंकरोंके शासनमें साधु ऋजु-प्राज्ञ (सरल व बुद्धिमान्) होते थे उनको थोडासा समझानेसे वे बहुत समझलेते थे। इस लिये २४ तीर्थंकरोंके साधुओंके आचारमें भिन्नता बतलाई है ॥ ७ ॥ अब उनके यहांपर दृष्टांत कहते हैंः—

एक नगरमें साधु लोग गौचरी गयेथे, बाजारमें पुरुषोंका नाटक देखने लगे, बहुत देरीसे आहार लेकर उपाश्रयमें आये। गुरुने पूछा आज तुमको इतनी देर क्यों लगी? साधुओंने कहा आज नाटक देखने लगे

थे, जब गुरुने कहा कि साधुओंको नाटक देखना योग्य नहीं, तब साधुओंने गुरुका वचन मान्यकर मिच्छामिदुक्कडं दिया। फिर भी एक रोज वे ही साधु गौचरी गयेथे रास्तेमें स्त्रियोंका नाटक देखने लगे, देरीसे गुरुके पासमें आये, तब गुरुने पूछा आज भी तुमको बहुत देरी लगी? साधुओंने कहा महाराज आजतो हम स्त्रियों का नाटक देखनेको खड़ेथे। गुरुबोले हे मुनियों! हमने तुमको पाहिले भी नाटक देखनेका मना कियाथा फिर आज क्यों देखा, तब साधुओंने कहा आपने उस रोज पुरुषोंका नाटक देखनेकी मनाई कीथी परन्तु स्त्रियों का नहीं, ऐसा जानकर आज हमने स्त्रियोंका नाटक देखा। गुरुने कहा साधुओंको नाटक मात्र देखना मना है, तब साधुओंने मिथ्यादुष्कृत दिया और कहा आगेसे ऐसा न करेंगे. ऐसे भद्र स्वभाव वाले साधु आदीश्वर भगवान् के शासन में होतेथे, जितना समझाते उतनाही समझतेथे और जो कार्य करते वह गुरुके सामने निष्कपट कहदेते थे।

अब दूसरा दृष्टांत बतलाते हैः—कोंकण देशका साधु एकसमय इरियावही करके काउसग्ग ध्यानमें अपने पुत्रोंका प्रमाद विचारने लगा कि—इस समय अनुकूल हवा चलती है परन्तु प्रमादी मेरे पुत्र क्षेत्रोंमें सूड

न करेंगे, घास वृक्षादि न जलावेंगे तो वर्षा होंनेसे कुछ भी धान्यादि न होंगे । जब मैं घरमें था तब सर्व कार्य करता था, अब मैं घरमें नहीं हूँ इसलिये वह बिचारे भूखसे मरेंगे. इत्यादि विचारने लगा. जब सर्व साधुओंने काउसग्ग पूरा किया, तब गुरुने कोंकणमुनिसे पूछा किस ध्यान में लगे थे ? कोंकणमुनि ने कहा महाराज जीव दया विचारताथा ऐसा कहकर अपने मनमे जैसा विचार कियाथा वैसाही गुरुको कहा, तब गुरुने कहा हे मुनि ! तुमने दया नहीं किन्तु हिंसाका विचार किया है, क्योंकि हिंसा बिना खेती नहींहोती और साधु हिंसाका त्यागी है जिससे ऐसी हिंसाका विचार साधुको करना योग्य नहीं है, तब कोंकणमुनिने भावसे मिच्छामि दुक्कडं दिया ।

अब महावीर स्वामीके शासनके जीवोंका दृष्टान्त बतलाते हैंः—एक सेठके वक्रजड उद्धत लडका था, वह माता पिताके सन्मुख उल्टा जवाबदेता और हितशिक्षा नहीं मानताथा, एकदिन पिताने मीठे वचनोंसे कहा कि हे पुत्र ! अपनेसे बड़े कुटुम्बीजनोंके सामने कभी न बोलना, लड़केने यह बात मानली, एकदिन लड़के के माता पिता उस लड़केको घर संभलाकर किसी कार्यके लिये दूसरी जगह चलेगये, लड़का घरका दरवाजा

बन्द कर अन्दर बैठ गया, जब सब लोग पीछे घर आये तो घरका दरवाजा बन्द देखकर लडकेको किंवाड खोलने को बहुत पुकारा, अपने पिताका शब्द सुनने परभी घरके अन्दर खूब हँसने और नाचने कूदने लगा परन्तु न तो उसने कुछ उत्तरही दिया और न दरवाजाही खोला. तब पिता पड़ोसीके घरमें होकर अपने घरमें गया, किंवाड खोले और पुत्रसे कहा कि तेरेको इतना पुकारा तो भी तू बोला नहीं। लडकेने उत्तर दिया कि इसमें मेरा क्या दोष है, आपने ही तो कहा था कि बडोंके सामने न बोलना, तब पिताने कहा; किसी के सामने ईर्षासे और जोरसे नहीं बोलना किन्तु कोई कार्य हो तो धीरेसे कहना; यह बात भी लडकेने मानली। फिर एक दिन लडकेका पिता बाहर बैठा था इधर घरमें आग लगगई तब माताने कहा हे पुत्र! जल्दी जाकर तेरे पिताको कहना कि घरमें आग लगगई है आप शीघ्रही चलिये, अच्छी २ वस्तुओं को निकालें और अग्निको बुझावें, लडका वहां जाकर बिचारने लगा कि लोगोंके सामने जोरसे बोलना उचित नहीं; चुपका खडा रहा, जब एक घडी होगई तब समीप जाकर धीरेसे पिताके कानमें कहा कि पिताजी जल्दी चलो घरमें आग लगी है, पिताने पूछा कितनी देर हुई, पुत्रने कहा एकघडी होगई, तब पिताने

क्रोधमें आकर कहा रे मूर्ख ! इतनी देरतक आकर खड़ा क्यों रहा, तब लड़का बोला आपही ने तो कहा था कि किसीके सामने जोरसे न बोलना । इसी प्रकार धर्मकार्यमें अवसरोचित तत्त्वकी बातें न समझनेवाले वक्र जड़ लोग श्री महावीर प्रभुके शासन में होते हैं*। और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंको पुरुषोंका नाटक देखना मना करनेसे स्त्रियोंका नाटक विषेश रागका हेतु होनेसे नहीं देखनेका वे स्वयं समझलेते हैं।

अब साधु जिस क्षेत्र में चौमासा ठहरे उस क्षेत्र में कितने गुण होने चाहिये सो बतलाते हैंः—

चिखिल्ल-पाण थंडिल, वसही-गोरस-जिणाउले-विज्जे ॥ ओसह-निचया-हिवई-पाखंडी-भिक्ख सज्झाए ॥७॥

जिस गांव में कीचड थोडा हो १, बे-इन्द्रियादि जीवोंकी उत्पाति कम हो २ ठल्ले जाने की भूमि निर्दोष हो ३, धर्मशाला अच्छी हो ४, दही दूध छाछ वगैरह × सुखसे मिल सकते हो ५, श्रद्धावाले श्रावक द्रव्य-

---

* यद्यपि संसार व्यवहार में बहुत लोग बड़े चतुर बुद्धिमान देखे जातेहैं परन्तु अपना आत्म कल्याण करनेके लिये वीतराग, सर्वज्ञ भगवान्‌के उपदेशानुसार धर्म कार्य करनेमें उनकीभी बुद्धि चक्कर खाजाती है. और बहुत से जीव वक्र जड़ हैं, कोई २ जीव तत्त्व दर्शीभी हैं तो भी बहुत वैसेही होनेसे ऐसी वक्र जड़ताको न रखनेके लिये उपदेश रूपमें सामान्यतया ऊपरके दृष्टान्त बतलाये हैं।

* दही, दुग्धादि वस्तुओं का साधुओं को लोभ नहीं होता, उनको तो कारण विना हमेशा इनका लेना भी नहीं कलपता, किन्तु तपस्या के पारणे तथा बाल, वृद्ध, रोगी आदि के लिये आवश्कता होने पर सुखसे मिल सके, इसलिये इन वस्तुओं का नाम ग्रहण किया है।

वान् ×हो ६, वैद्य चतुर हो ७, औषधादि शीघ्र मिल सकते हो ८, धान्यादि वस्तुओंका संग्रह बहुत * हो ९, गांवका स्वामि भद्र हो १०, पाखंडी अल्प हो ११, गोचरी सुख से मिल सकती हो १२ और स्वाध्याय, ध्यानादि सुख शान्ति पूर्वक हो सकते हो १३, यह उत्कृष्ट १३ गुण हो वहां साधु चौमासा करे। यदि सब गुण न मिलें तो भी कमसे कम चार गुण तो अवश्य देखने चाहिये।

महई विहार भूमी, विहारभूमी य सुल्लह सज्झाओ। सुलहा भिक्खा य जहिं, जहन्नं वासखित्तं तु ॥ ८ ॥

जिसमें तीर्थंकर भगवान्के मन्दिर हो १, ठल्लेकी भूमि निर्दोष हो २, स्वाध्याय सुखसे हो सके ३, और गोचरी सुखसे मिलसके ४. यह जघन्य चार गुण अवश्य देखने चाहिये। पांच से १२ तक गुणों वाला मध्यम

×श्रावक गरीब हो या द्रव्यवान् हो, दोनोंके ऊपर साधुओं का समभाव होता है, तिसपरभी जिस गांव में द्रव्यवान् श्रद्धालु श्रावक अधिक होंगे तो वहां शासन प्रभावना और दान पुन्य परोपकारादि धर्म कार्य विशेष रूपसे होसकेंगे इसलिये ऐसा गांव चौमासा करने योग्य बतलाया है।

* यदि धान्यादि वस्तुओं का संग्रह अधिक होगा तो श्रावकों को उदर पूर्ति की चिंता न होगी और चिंता न होनेसे वे साधु के पासमें आकर सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, शास्त्र श्रवणादि धर्म कार्य शांति पूर्वक कर सकेंगे, इसलिये धान्यादि संग्रह का उल्लेख कियागया है।

क्षेत्र कहा जाता है। अब सब लौकिक और लोकोत्तर पर्वों में श्रीपर्युषण्ना पर्व सबसे श्रेष्ट हैं सो बतलाते हैं:—

मंत्राणां परमेष्ठि मंत्रमहिमा, तीर्थेषु शत्रुंजयो। दाने प्राणिदया गुणेषु विनयो, ब्रह्मव्रतेषु व्रतम् ॥
संतोषे नियमः तपस्सु च शमः, तत्त्वेषु सद्दर्शनं। सर्वेषूत्तम पर्वसु प्रगदितः, श्रीपर्वराजस्तथा ॥ ८ ॥

सर्वमंत्रोंमें नवकारमंत्र, तीर्थोंमें शत्रुंजय, दानोंमें अभयदान, गुणोंमें विनयगुण, व्रतोंमें ब्रह्मचर्यव्रत, नियमों में संतोष, तपमें क्षमा, और तत्त्वोंमें सम्यग्दर्शन श्रेष्ठहै, वैसेही सर्व उत्तम पर्वोंमें श्रीपर्युषणापर्व श्रेष्ठ है।

तथा जैसे—क्षीरमें गोक्षीर, जलमें गंगानीर. पटसूत्रमें हीर, वस्त्रमें चीर. अलंकारमें चूडामणी, ज्योतिषी में निशामणी. तुरंगमें पंचवल्लभ किशोर, नृत्यकला में मोर. गजमें ऐरावण, दैत्यमें रावण. वनमें नंदनवन, काष्ठमें चंदन. तेजस्वीमें आदित्य, साहसिक में विक्रमादित्य. रूपवंतमें काम, न्यायवन्त में श्रीराम. सतियोंमें राजीमती, शास्त्रोंमें भगवती, वाजित्रोंमें भंभा, स्त्रीयोंमें रंभा. सुगन्धमें कस्तुरी, वस्तुमें तेजमतूरी, पुण्यश्लोक में नल, पुष्पोंमें सहस्त्रदल कमल, यह सब उत्तम हैं, तैसेही सर्व पर्वोंमें श्रीपर्युषणापर्व सबसे उत्तम जानना. ऐसे महा मंगलकारी पर्युषणा पर्व आने पर पूर्वाचार्यों ने मंगलके लिये सर्वसंघके सामने

श्री कल्पसूत्र वांचने की रीति चलाई है * यह सूत्र श्री भद्रबाहुस्वामी विरचित दशाश्रुतस्कंध सूत्रका आठवां अध्ययन है और इसमें तीर्थंकर परमात्माओंके चरित्रहैं। अब इसके सुननेका माहात्म्य बतलाते हैं:—

एगग्गचित्ता जिणसासणंमि, पभावणा पूअ परा नरा जे॥
तिसत्तवारं निसुणन्ति कप्पं, भवण्णवं ते लहुं संतरंति॥ १० ॥

* श्रीवीरनिर्वाणसे ९८० वर्षे आनंदपुर [बडनगर] में ध्रुवसेन राजाके बहुत प्यारा 'सेनांगद' नामा राजकुमार पर्युषणापर्व आनेसे अकस्मात मरगया, राजाको बडा शोक हुआ, उससे धर्मशालामें गुरुमहाराजके पास नहीं गया, जिससे 'यथा राजा तथा प्रजा' अन्य आगेवान् लोगभी गुरुके पासमें न गये, इससे धर्मकार्यमें हानि होती हुई देखकर गुरु महाराज राजाके पासमें गये और उपदेश देकर राजाको समझाया कि हे राजन्! आपके अतिशोक करनेसे सर्वनगरमें शोक छायाहै, शरीर अनित्यहै, द्रव्य अशाश्वतहै, आयु ओसकी बिंदु अथवा वीजलीके झबकारेकी तरह चंचलहै, और संसार असारहै, इसलिये आप जैसे तत्त्वज्ञ जैनधर्म समझने वालों को अधिक शोककरना उचित नहीं है. यदि शोक त्यागकर धर्मशालामें आवें तो श्रीभद्रबाहुस्वामीने नवम पूर्वसे उद्धार किया हुआ, तथा कर्म-क्षय करनेवाला मंगलरूप और पहिले कभी नहीं सुना ऐसा अपूर्व विशेष शास्त्र श्रीकल्पसूत्र आपको सुनावें, गुरुमहाराजकी बात मान्य कर राजा धर्मशालामें आया, तब सबलोगभी आये, गुरुमहाराजने कल्पसूत्र वांचकर सुनाया, सबसंघनेभी उत्साह पूर्वक पूजा, भक्ति, प्रभावना सहित शुद्धभावसे सुना, उसरोजसे यह कल्पसूत्र ९–११ या १३ वाचनासे सर्वत्र संघमें वांचनेमें आताहै।

जो मनुष्य जिन शासनकी प्रभावना करता हुआ, जिनराजकी पूजा—भक्ति सहित सावधान होकर एकाग्रचितसे शुद्धभाव सहित श्रीकल्पसूत्रको २१ वार अच्छी तरह से संपूर्ण सुनता है, वह भव्यजीव संसार समुद्र से शीघ्र ही पारहो जाता है; अर्थात्—जन्म मरणके दुःखोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है ❀

✻ इस कल्पसूत्रके शब्द जिसके कानोंमें जातेहैं उसके कर्मरूपी रोगोंका नाशहोताहै, उसका दृष्टांत बतलाते हैं:—

एक बुढियाके हंस नामक लड़काथा, वह गांवके गाय भैंसोंके बच्चोंको चरानेके लिये जंगलमें जाताथा, एक दिन वह जंगलमें झाड़के नीचे सोताथा, अकस्मात सर्पनेकाटा, विष चढ़गया, लड़का बेहोश होगया; घर न आया, तब बुढ़िया उसको ढूढ़ने निकली, रास्ते चलने वालों ने कहा कि तेरे लड़केको तो सर्पने काटाहै, जंगलमें झाड़के नीचे पड़ाहै यह सुनकर बुढ़िया रोती-पीटती वहां पहुंची और देखा तो लड़का बेहोश पड़ाथा, रात्रिका समयथा, चारों ओर अन्धकार छाया हुआथा, गांव बहुत दूर और साथमें कोई नहीं जिससे अकेली बुढ़ियाको बड़ा दुःख हुआ परंतु कोई उपाय न होनेसे मोहके वश लड़केको गोदमें लेकर रे हंस? रे परमहंस?? इसप्रकार बार २ लड़केका नाम पुकारती हुई रुदन करते २ रात्रि चलीगई, प्रातःकाल हुआ तब लड़केका विष उतरगया, उठकर बैठाहोगया, माताको बड़ा हर्षहुआ, बुढ़िया और पुत्र दोनोंही हर्ष सहित गांवमें आये. तब सर्पके जहर उतारनेवाले मंत्रवादियोंने बुढ़ियासे पूछा कि तेने लडकेका जहर कैसे उतारा, बुढ़ियाने कहा कि मैंने जहर उतारने का कोई उपाय नहीं किया किन्तु लडकेको

अब पर्युषणापर्व में साधु और श्रावकोंके करने योग्य कर्तव्य बतलाते हैं:—

संवत्सरप्रतिक्रांतिः लुंचनं चाष्टमस्तपः । सर्वार्हद् भक्ति पूजा च, संघस्य क्षामणा विधिः ॥ ११ ॥

सर्वसाधु—साध्वियोंको संवत्सरी प्रतिक्रमण करना १, केशोंका लुंचन करना २, अट्ठम तप करना ३, सर्व जिनमंदिरोंमें चैत्य वन्दनादि भावपूजा करनी ४ और सर्वसंघकेसाथ, सर्वजीवोंके साथ क्षमत क्षामणा करनी ५. यह पांच कार्य करनेकेलिये तीर्थंकर—गणधरोंने यह पर्युषणापर्व स्थापन कियेहैं और श्रावक-श्राविकाओं को भी यथाशक्ति जिनराजकी द्रव्य-भाव पूजाकरना १, श्रुतज्ञानकी तथा संघकी भक्तिकरना २, भावसाहित क्षमत क्षामणे करना ३, आरंभ छोड़कर साचित्त खानेका त्यागकरना ४, ब्रह्मचर्य्य पालना ५, ग्राम, नगर और

गोदमें लेकर रे हंस!, रे परमहंस!! ऐसा पुकारते २ संपूर्ण रात्रि व्यतीत होगई और जहर उतर गया. यह सुनकर मंत्रवादियोंने कहा कि 'हंस' शब्दमें जहर उतारने की शक्ति हैं इसलिये तेरे लडकेका जहर उतरगया. इसी प्रकार कल्पसूत्रके शब्दोंमेंभी कर्मरूपी विष उतारनेकी शक्तिहै। जिसके कानोंमें इस शास्त्रके शब्द प्रवेश करेगें, उनका कर्मरूपी विष अवश्य दूर होगा और जो मनुष्य भाव साहित पूरा २ बांचेगा या सुनेगा उनको निस्संदेह सुख सम्पदा और मुक्तिकी प्राप्ति होगी।

देशमें यथाशक्ति अमारी घोषणा करवाना ७, सुपात्रमें दानदेना ८, कर्मोंका क्षय करनेके लिये काउसग्ग करना ९, रथयात्रा, कल्पसूत्र, चैत्यपरिपाटी आदिके महोत्सव करके जैनशासनकी प्रभावना करना १०, कल्पसूत्र बांचनेवाले शुद्धसंयमी गुरुकी आहारादिसे भक्ति करना ११ तथा अट्ठम तप करना चाहिये १२. और 'नागकेतु' श्रावककी तरह शुद्धभावसे पर्वका आराधन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै। अब नागकेतु की कथा बतलाते हैं:—

विजयसेन राजाकी, चंद्रकांत नगरीमें श्रीकांत सेठकी श्रीसखी सेठाणीके वृद्धावस्थामें एक पुत्रहुआ उस ने जन्म समय कुटुम्बी जनोंके मुखसे पर्युषणापर्वमें अट्ठम तप करनेकी वात सुनकर जातिस्मरण ज्ञानपाया और ज्ञानसे अपना पूर्व भव देखकर अट्ठमतप किया, दूधपीना छोड़दिया, माता--पिताने बहुत उपायकिये तोभी दूध न पीया, कोमल शरीरहोनेसे बालक अचेत होगया, मोहवश माता—पिता का हृदय फटजानेसे मरगये, दोनोंका अग्निसंस्कार किया और बालककोभी मृतजानकर भूमिमें गाड़दिया। नगरके राजाने अपुत्रिय सेठका धन लेनेकेलिये सिपाही भेजे। इधर बालकके अट्ठम तपके प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन चला-

यमान हुआ अवधिज्ञानसे सबबातें देखी, ब्राह्मण बनकर वहांआया, बालकको अमृतपान कराकर सचेतन किया और सेठका धन लेतेहुए राज सेवकोंको मनाकिया । जब राजाभी वहांआया और धनलेनेसे रोकनेका कारण पूछा तब ब्राह्मणने कहा कि हे राजन्! जींते हुए बालकका धन ग्रहणकरना आपको योग्य नहींहै, ऐसा कहकर भूमिमें से जीवित बालक निकालकर राजादि को दिखलाया, जबलोगोंने पूछा आप कौनहैं बालकको जीता हुआ कैसे जानलिया. तब ब्राह्मणरूपधारी ने कहा कि मैं धरणेन्द्र हूँ इस बालकने अट्ठम तपकियाथा, शरीर कोमल होनेसे मूर्छित होगयाथा, मरानहींथा, तपके प्रभावसे इसकी सहायताके लिये मुझको यहांआना पड़ाहै. पूर्वभवमें इस बालककी छोटी उमरमें माता मरगईथी पिताने दूसरा विवाह किया, विमाता इसको बहुत कष्ट देनेलगी इसने अपने कष्टका हाल एकमित्र श्रावकको सुनाया, मित्रने कहा कि तुमने पूर्वभवमें तप नहीं किया अब आगेको सुख चाहो तो तपकरो मित्रके उपदेश से पाक्षिकका उपवास, चातुर्मासीका छट्ठ आदि तपकरने लगा पर्युषणापर्व आनेसे मैं अट्ठम तप करूंगा. ऐसा विचारकर रात्रिको घासके झोंपडे में सोगया, झोंपडे के पासमें रात्रिमें आग लगी, विमाता ने द्वेषसे इस लडके की झोंपडी में भी चुपचाप आग लगादी, लडका

जलगया, तपकरनेके शुभध्यान में मरकर यहां सेठके घरमें जन्मलिया, लोगोंके मुखसे तपकरनेकी बात सुनकर इसको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया, जिससे पूर्वभवकी इच्छा पूर्णकरने के लिये अभी अट्ठम तप कियाथा. यह बालक बडाहोने पर आपका तथा सब नगरका उपकार करने वाला होगा, ऐसा कहकर लडका राजाको देकर; लडकेके कण्ठमें रत्नजडित हार पाहिनाकर धरणेंद्र अपने देवलोकमें गये. नागिन्द्रने लडकेको जीवित किया इसलिये 'नागकेतु' नाम रक्खा, नागकेतु बडा होनेपर परम श्रावक हुआ. एक समय राजाने बिना अपराध एक मनुष्यको चौर समझकर मरवा डाला, वह मरकर व्यंतर देवहुवा ज्ञानसे अपना पूर्वभव देखकर राजाके ऊपर बडा क्रोधायमान होकर यहां आया, राजाको लातमारकर सिंहासन से नीचे पटककर सब नगरके ऊपर देवशक्तिसे आकाशमें बडीशिला बनाकर डाली तब नागकेतुने सब नगरकी रक्षा करनेके लिये मंदिरके शिखरपर चढकर देवताकी डाली हुई शिलाको अपने हाथपर अधर रखालिया ❋

❋ जिस तरह राजाओं की आज्ञासे राज कर्मचारी लोग सर्व देशोंमें प्रजाकी रक्षा करतेहैं. उसीप्रकार इन्द्रकी आज्ञासे सर्व देशोंमें धर्मकी रक्षा देवकरतेहैं जिस मनुष्यका चित्त धर्ममें दृढ होताहै उसकी देवता सेवा करतेहैं और उसके सर्व मनोरथ पूरण होतेहैं. जैसे- सीताजीके शीलकी परीक्षाके समय अग्निका शीतलजल होजाना तथा द्रौपदीके शरीरपर वस्त्रोंका बढजाना भी उनके दृढ शील व्रतका-

नागकेतुके तपतेजको सहन करनेकी देवमें शक्ति न हुई इसलिये शिलाको पीछी हटाकर नागकेतुको नमस्कार कर अपने अपराधकी क्षमामांगी, नागकेतुके कहनेसे राजाकोभी अच्छा किया और अपने स्थानपर गया. तबही से नागकेतु राजा–प्रजा सबकोही विशेष माननीय हुआ. उसकेबाद एकसमय नागकेतु जिनराजकी द्रव्य पूजा करताथा, भगवान्‌को पुष्प चढाते हुए * पुष्पके अन्दरसे तंदुल सर्पने काटखाया, जहर

प्रभाव है परन्तु उस कार्य्यमें ब्रह्मचर्य्य के अधिष्ठायक देवों की सहायता अवश्यही थी वैसे ही नागकेतुके तपतेज धर्मकी दृढता से अधिष्ठायक देवने सहायताकी थी उससे नागकेतुने हाथ पर शिला अधर रखली थी अतः यह बात शंका करने के योग्य नहीं है।

*— भगवान्‌की पुष्पादिसे द्रव्य-पूजामें हिंसा बतलाकर अनसमझ लोग पूजाका निषेध करतेहैं, परन्तु तत्त्वसे विचार किया जावेतो बडालाभ माळूम होताहै. देखो–राजा–महाराजादि अपने सब समुदायसहित बडेमहोत्सवसे भगवान्‌को वंदना करनेको जातेहैं तथा इन्द्रादिदेवभी जन्माभिषेकादिसे भगवान्‌की भक्ति करतेहैं और मुनिजनभी आहार–निहार–विहार–प्रतिलेखनादि क्रियाएँ करतेहैं. इत्यादि कार्योंमें अल्प द्रव्यहिंसा लगतीहै तोभी शुद्ध भावसहित धर्म कार्यहोनेसे विशेष लाभ मिलताहै. इसीतरहसे भगवान्‌की द्रव्य–पूजामेंभी कुछ अल्प क्रिया लगतीहै, परंतु भगवान्‌की भक्तिकरनेके निर्मल परिणाम होनेसे विशेष लाभ होताहै। तथा मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग यही कर्मबंधनेके हेतुहैं, भगवान्‌की पूजामें इन कारणोंका अभावहै किंतु सम्यग्दर्शन पूर्वक प्रमादरहित शुद्ध उपयोग सहित और शांत ज्ञान दशा से भगवान्‌के अनंतगुणोंका स्मरण, ध्यान, वैराग्यभावना, आत्मस्वरूपका विचारसे अशुभकर्मोंका निवारण, शुभ-पुण्यराशीका बंधहोना इत्यादि अनेक अपूर्व गुणोंकी प्राप्तिका प्रत्यक्ष लाभ मिलताहै और भगवान्‌की पूजाके समय आर्त्त–रौद्र ध्यानके

चढने परभी नागकेतु व्याकुल न होकर जिनराजके सामनेही ध्यानमें लवलीन होगया शुक्ल ध्यानसे घनघाति कर्मोंका नाशकरके केवलज्ञान पाया, शासनदेवताने मुनिका वेषादिया पृथ्वीपर बिचरकर बहुत भव्य जीवोंका उपकार करके नागकतु मोक्षगये. इसीतरहसे जो भव्यजीव भावसहित तप और जिनराजकी पूजा भक्ति करके पर्वका आराधन करेगा वह मोक्ष सुख पावेगा ❀

अशुभ विचार, संसारी मोहमाया भी छूट जाती है इसलिये भगवान्‌की द्रव्य-पूजा भाव पूजा की हेतु होने से इसमें तत्त्व दृष्टिसे विशेष लाभहै. इसका निषेध करना सर्वथा अनुचितहै। इस विषयमें सबतरहकी शंकाओंका समाधान "श्री जिनप्रतिमाको वंदन पूजनकरनेकी अनादि सिद्धि" नामक ग्रंथमें विस्तार से लिखादियाहै, उसके पढनेसे सबखुलासा मालूम होजावेगा।

* जैसे जैनशासनमें इसपर्वकी महिमाहै वैसेही अन्य समाजमें भी इसकी बडी महिमाहै, उसकी कथा बतलातेहैंः—पुष्पवती नगरीमें अर्जुन ब्राह्मणके गंगाधर नामक पुत्र था, कालान्तरमें गंगाधरके माता-पिता मरकर उसी घरमें पिता बैल हुआ और माता कुत्ती हुई, एकसमय गंगाधरने माता-पिताके श्राद्धकेलिये क्षीरका भोजन बनवाया, सम्बंधियों को आमंत्रणकिया, उस रोज बैलको तेली मांगकर लेगया. इधर क्षीर पकने के भाजनके ऊपर चांदनी नहीं बँधीथी उपरमें सर्प चलताथा गर्मीकी ज्वालासे सर्पके मुखमें से गरल (जहरकी लाल) क्षीरमें पडगई। यह दूरबैठी हुई कुत्तीने देखकर विचारकिया कि इस जहरसे मेरा सारा कुटुम्ब दुखीहोगा जिससे क्षीरमें मुंह डालकर झूंठी करदी, इस बातका भेद विना समझेही गंगाधरने क्रोधसे लाठी मारकर कुत्तीकी कमर तोड डाली

तथा यह पर्युषणाकल्प तीसरे वैद्यकी औषधिकी तरह सुख करने वाला है उसका दृष्टान्त बतलाते हैं:—

किसी नगर में राजाके एक पुत्र बहुतही प्रियथा, राजाने पुत्रको हमेशा निरोग, बलवान, हृष्ट, पुष्ट, और

और चिल्लाती हुई कुत्तीको बैलकी गवाणमें बांध दिया और दूसरी क्षीर बनवाकर सबको भोजन करवाया। शामको तेलीने बैलको लाकर गवाणमें बांधदिया, बैलने कुत्तीसे पूछा तुमको किसनें मारा, कुत्तीने कहा तुम्हारे पुत्रने मैंने तो सबको जहरसे बचाकर उपकार किया परन्तु आपके पुत्रने मेरी कमर तोड डाली। यह सुनकर बैलने कहा कि मुझको भी इस पापी पुत्रने तैलीको दिया, तैलीने दिनभर घानीमें चलाया और भूखा-प्यासा लाकर बांधदिया है। यह बात पासमें सोतेहुए गंगाधरने सुनी। बडा उदास हुआ उठकर बैल तथा कुत्तीको क्षीरका भोजन करवाया और उनकी गति सुधारने के लिये विदेशमें जाकर तापसोंसे उपाय पूछा। तापसोंने कहा कि तेरे माता-पिताने पर्वके दिनमें मैथुन किया था उसके दोपसे ऐसी गति पाई है। अब तू भाद्रशुदी पंचमी का व्रत कर और पारणे व उत्तर पारणे में बिना बोये हुए धानका भोजन कर उससे उनकी अच्छी गति होगी। गंगाधरने वैसाही किया जिससे दोनोंकी अच्छी गति हुई + और उसीदिन से ऋपिपंचमी पर्व की भी प्रसिद्धि हुई।

× सर्वज्ञ भगवान्के कथनके अनुसार तथा कर्म सिद्धन्तके अनुसार दूसरे प्राणीके धर्म करनेसे दूसरोंकी सुगति नहीं होसकतीहै, जो प्राणी जैसे कर्म बांधे वैसेही सुख-दुख उसको भोगने पड़तेहैं परन्तु अन्य दर्शनियोंमें यह पुराण कथा चलतीहै अतएव टीकाकारने भी यहां प्रसंगवश पंचमीकी महिमा बतलानेके लिये उल्लेख कियाहै, परन्तु इस कथामेंसे इतनी बात ज़रूर याद रखना चाहिये कि पर्वदिनमें मैथुन सेवन (काम क्रिडा) करनेसे खराब गति होतीहै, इसलिये पर्वके दिन अवश्य ही ब्रह्मचर्य्य पालन करना चाहिये।

क्रान्तिवाला बनाये रखनेके लिये वैद्योंको बुलवाये और उपाय पुछा, तब एक वैद्यने कहा कि हे राजन् ! मेरी औषधि यदि रोग हो तो निवारण करती है नहीं तो नये रोग उत्पन्न करती है, यह सुनकर राजाने कहा कि तेरी औषधि तो सोतेहुए सिंहको जगाने जैसी होनेसे अच्छी नहीं है। दूसरे वैद्यने कहा कि हे स्वामि ! मेरी औषधि रोग हो तो उसका नाश करती है, रोग न हो तो नुकसान भी न करे, तब राजाने कहा तेरी औषधि भी भस्मी में घृत डालने जैसी निष्फल है। तीसरे वैद्यने कहा महाराज ! मेरी औषधि अमृत तुल्य होनेसे रोग हो तो उसको दूर करती है, रोग न हो तो उसके शरीरमें तुष्टि, पुष्टि, सौभाग्य और भविष्य में आरोग्यता बढाती है। ऐसा सुनकर राजाने कहा तेरी औषधि राजकुमार के करने योग्य अच्छी है। तब वैद्यने राजपुत्रको औषधि दी, जिससे राजपुत्र बलवान और चिरंजीवी हुआ। इसी तरहसे यह कल्पसूत्रभी तीसरे वैद्यकी औषधिके समान हितकारी है, जिससे सूत्र पढने और सुननेवाले अपने कर्मरोगों का नाश करके अनंतबल वीर्य्य पराक्रम वाले होकर मोक्षका अक्षयसुख प्राप्त करते हैं। अब मूलसूत्रका व्याख्यान करतेहैं इसलिये सूत्रकार श्रीभद्रबाहुस्वामी मंगलके लिये पंच परमेष्ठि नवकार मंत्र कहते हैं:—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पाव प्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

इन्द्रादि तीन जगतके सर्व प्राणियोंके पूजने योग्य तथा राग द्वेषादि कर्मशत्रुओंको जीतनेवाले, बारहगुण सहित ऐसे श्रीअरिहंत परमात्माको मेरा नमस्कार हो। अष्ट कर्मरूपी सम्पूर्ण काष्ट समुहको शुक्ल ध्यानरूपी अग्निसे जलाकर मोक्षमें विराजे, ऐसे अनन्त ज्ञानादि आठगुण सहित सिद्ध भगवान्‌को मेरा नमस्कार हो। ज्ञान दर्शनादि पांच प्रकारके आचारको पालन करनेवाले ३६ गुण सहित आचार्य्य महाराजको मेरा नमस्कार हो। जिन्होंके पास में आकर साधुलोग ११ अंग, १४ पूर्व, द्वादशांगी पढें, ऐसे २५ गुणसहित उपाध्याय महाराजको मेरा नमस्कार हो। और पांच महाव्रत लेकर दर्शन ज्ञान चारित्रसे मोक्षमार्गका साधन करनेवाले २७ गुणसहित मनुष्य लोकमें रहनेवाले सर्व साधुओंको मेरा नमस्कारहो। यह पंच परमेष्ठि नमस्कार सब पाप कर्मोंका नाश करनेवाला है और सर्व मंगल कार्योंमें प्रथम मंगल है ॥१॥ इस नवकार मंत्रमें, नवपद, आठ संपदा, सात गुरु और इकसठ लघु मिलकर सब अडसठ अक्षर हैं। अब नवकार

स्मरण करनेका माहात्म्य बतलाते हैं:—

इह लोअम्मि तिदंडी सा, दिव्वं माउलिंग वणमेव । परलोए चंडपिंगल, हुंडिय जक्खो य दिट्ठंता ॥१॥

भावसहित शुद्ध नवकार गुननेसे इसी भवमें शिवकुमारको मरणान्त* कष्ट मिटा और सुवर्ण पुरुष सिद्ध

---

* कुसुमपुर नगरमें धनसेठके 'शिवकुमार' लडका जुआदिका व्यसनीथा, पिताने मना किया तोभी उसने जुआका व्यसन नहीं छोडा, जब सेठका अंत समय आया तब लडकेको हितशिक्षा दी कि मेरे परलोक जानेपर तू दुःखीहोगा इसलिये पंचपरमेष्ठि नवकार सीखले तेरेको कष्टपडे तब इसके स्मरणसे तेरा कष्ट दूर होगा, सेठके मुखसे लडकेने नवकार सीखलिया, सेठके मरेबाद जुएमें सब धन हारगया, माथे करज हुआ उसके डरसे नगर बाहिर फिरने लगा, वहां एक त्रिदंडी योगी मिला, योगीने उदास फिरनेका कारण पूछा शिव कुमारने अपना साराहाल सुनाया योगीने कहा चिंता मतकर मेराकहा करे तो तेरेको अक्षय धन मिलेगा, लडकेने पूछा किस तरह ? योगीने कहा सुवर्णसिद्धिसे, जा तू अखंड शरीर वाला मुर्दा ला बाकीकी सब सामग्री मेरेपास है जब उसने एक मुर्दा लादिया तब उस धूर्त्तयोगीने तेलका भराहुआ बडालोहका कडाह भट्ठीपर चढाया, नीचे अग्नि जलाई और शिवकुमारके पास मुर्देके सब अंगपर तेलकी मालिश शुरु करवाई तथा योगी अरेठेकी माला लेकर मंत्र जपने लगा, उस समय शिवकुमारने विचार किया कि यह योगी मेरा परिचित नहींहै, इसकी मैंने कभी सेवाभी नहीं की यह मेरेको धन देगा अथवा मेरेको मारकर अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा तो यहां मेरी रक्षा कौन करेगा ? यह तो बडी आफत आयी इतनेमें पिताका वचन याद आया, अपना कष्ट दूर होनेके लिये नवकार

हुआ. १, श्रीमती श्राविकाके सर्पकी फूल ❀ माला वनगई २, विजोरेका फल देवताने जिनदास श्रावकको दिया ३, चंडपिंगल चौरको राजाने सूलीपर चढा दियाथा, वहांपर कलावती वेश्याने नवकार सुनाया उसके

मंत्रका स्मरण करनेलगा योगीका जप पूरा होनेपर मुर्दा उठने लगा परन्तु श्री नवकार मंत्र के प्रभावसे पीछा गिरगया, तब योगीने शिवकुमारको पूछा तू कुछ जप करताहै जिससे कार्यसिद्धिमें विघ्न आया शिवकुमारने कहा कि नहीं फिर योगीने मंत्रका जप शुरुकिया तब शिवकुमार भी दृढश्रद्धासे नवकार मंत्र गुणनेलगा, जपके अंतमें दूसरीबार मुर्दा उठनेलगा परन्तु फिर पीछा गिरगया. योगीने शिवकुमारको ओलंभा दिया और तीसरी बार जप करनेलगा शिवकुमारभी अपने मनमें नवकार गुणने लगा जब योगीका जप पूराहुआ तब तीसरीबार मुर्देने उठकर उस योगी कोही तैलके कडाहमें डालदिया, जिससे सुवर्ण पुरुष होगया. शिवकुमारने फजरमें सबहाल राजाको कहे, राजाने कहा तेरे भाग्यसे हुआहै, तू रख, राजाकी आज्ञासे सुवर्णपुरुष लेकर घरमें आया, अक्षय धनसे सुखीहुआ व्यसन छोडकर धर्मकार्य करके अच्छी गतिमें गया ॥ इति ॥ नवकारमाहात्म्यके उपर शिवकुमारकथा ॥

* सोरठदेशके एक गांवमें एक श्रावकके श्रीमती नामकी एक लडकी थी उसका किसी मिथ्यात्वीके साथ विवाह होगया श्रीमती जिनेश्वर भगवान्‌की पूर्ण भक्ता थी, जिससे हमेशा नवकारका स्मरण करतीथी सुसराल वालोंने मना किया बहुत कष्ट दिया परन्तु श्रीमतीने जैन धर्म नहीं छोडा । इससे आपसमें हमेशा अनबन रहने लगी तब सबने नाराज होकर श्रीमतीको मारकर दूसरी बहु लानेका विचार किया, श्रीमतीके पतिने भी यह बात मान ली और गारुडियोंके पाससे काला सर्प मंगवाकर घडेमें डालकर घडे

प्रभावसे वही चौर मरकर उसी नगरके राजाका पुत्रहुआ ४, इसीतरहसे रूपखुर चौरभी नवकारके प्रभावसे देवहुआ. ५, ऐसे बहुतसे दृष्टान्त हैं:—

अब यहांपर जिनचरित्राधिकारमें पश्चानुपूर्वीसे नजदीक उपकारी शासननायक, श्रीमहावीर स्वामीके चरित्रको श्रीभद्रबाहु स्वामी पाहिले कहतेहैं:—

ते णं का ले णं, ते णं समए णं, समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था. तं—जहा.

का मुंह बंदकरके अंधेरे में रखदिया, दूसरे दिन अपने देवकी पूजा करते समय श्रीमतीसे कहा कि घडेमें से पुष्पमाला लाओ पूजा में चढावें यह सुनकर अपने पतिकी आज्ञा से श्रीमती घडेके पास जाकर, घडेका मुंह खोलकर 'ॐ णमो अरिहंताणं' ऐसा उच्चारण करती हुई घडेमें हाथ डाल कर दिव्य सुगंध युक्त पुष्पमाला लाकर अपने पतिको दी, देतेही तत्काल काला सर्प होगया, जो श्रीमतीके हाथमें पुष्पमाला देखनेमें आतीथी वह उसके पतिके हाथमें आतेही सर्प होगया। यह देखकर उनके घरवाले बोले कि इस स्त्रीके धर्मका प्रभाव कल्याणकारी है उसकेही प्रभावसे सर्पकी पुष्पमाला बन गई है। यह आश्चर्य देखकर श्रीमती के पास जैनधर्मका स्वरूप समझकर सब कुटुम्ब वालोंने जैनधर्म अंगीकार किया, इससे श्रीमतीकी बडी माहिमा बढी। धर्मका आराधन कर सुखी हुई ॥ इति नवकार माहात्म्य के ऊपर श्रीमती का दृष्टान्तः ॥

तिसकालमें (चौथे आरेमें) और तिस समयमें (जिस समय भगवान् माताके गर्भमें आये उस समय से लेकर केवल ज्ञान प्राप्त होने तक) श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामीके पांच * कल्याणक हस्तोत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्रमें हुए, वही बतलाते हैं।

* तीर्थंकर भगवान्के च्यवन-जन्म दीक्षादि कल्याणक अनादि सिद्ध होनेसे सबजैनोंमें प्रसिद्धहैं जिससे सूत्रकार च्यवनादिको कल्याणक न लिखकर सिर्फ च्यवनादि नाममात्र लिखदेतेहैं इसलिये 'ठाणांग' सूत्रके पांचवें ठाणेके प्रथम उद्देशकमें पद्मप्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर-भगवानोंके च्यवनादि पांच २ कल्याणकोंकी तरह वीरप्रभुकेभी प्रथम च्यवन की तरह गर्भहरणरूप दूसरा च्यवन, जन्मादि केवलज्ञान पानेतक पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें होनेका कथन कियाहै तथा छठा निर्वाण कल्याणक तो प्रसिद्धही है और इसी कल्पसूत्रमेंभी नेमिनाथजी-पार्श्वनाथजीके पांच २ कल्याणकोंकी तरहही वीरप्रभुकेभी पांच कल्याणकोंका कथनहै इसलिये अनादि सिद्ध और प्रसिद्ध च्यवनादिकोंको वस्तु-स्थान कहनेके बहानेसे कल्याणक अर्थको उडादेना सर्वथा अनुचितहै। और वीरभगवान्की दोनों माताओंने दो वार अलग २ चौदह स्वप्न देखेहैं तथा समवायांग सूत्रकी टीकामेंभी दोनों अलग २ भव गिनेहैं और "एए चउदस सुविणे, सव्वा पासेइ तित्थयर माया॥ जं रयणिं वक्कमई कुच्छिंसि महायसो अरिहा॥ १॥" कल्पसूत्रके इस मूलपाठमें खाससूत्रकारने सर्वतीर्थंकरोंके च्यवन कल्याणकोंमें भगवानोंकी माताओंके चौदह स्वप्न देखनेकी तरह वीरप्रभुकेभी त्रिशला माताके गर्भमें आनेकोही च्यवन कल्याणक मान्यकर चौदह स्वप्नोंका वर्णन कियाहै इसलिये देवानन्दाके गर्भमें आनेको कल्याणक मानने वालोंके छ कल्याणक होतेहैं और त्रिशलाके गर्भमें आनेको कल्याणक मानने वालोंके पांच कल्याणक होतेहैं इसलिये देवानन्दाके गर्भमें आनेको कल्याणक मानने परभी छ कल्याणक माननेमें शंकालाना यहतो उचित नहींहै। और जो नहीं बनने योग्य बातबने उसको अच्छेरा कहते हैं: जिसतरह आदीश्वर भगवान् १०८

हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहारिए २, हत्थुत्तराहिं जाए ३,

मुनियोंके साथ एक समयमें मोक्षगये तथा मल्लिनाथजी स्त्रीपनेमें तीर्थंकरहुए इनको अच्छेरा कहतेहैं तोभी इनके कल्याणक मानतेहैं. उसी तरहसे वीरप्रभुकेभी दोनों च्यवन अच्छेरा रूप होने परभी इनको कल्याणक माननेमें कोई दोष नहीं आसकता है। और वीरप्रभुके गर्भ हरणरूप दूसरे च्यवनमें च्यवन कल्याणकके सर्वकार्य हुएहैं यह प्रसिद्धहै परन्तु ऋषभदेवस्वामीके राज्याभिषेकमें तो किसीभी कल्याणकके कोईभी कार्य नहीं हुए जिससे राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता इसलिये वीरप्रभुके दूसरे च्यवन कल्याणक माननेकी तरह राज्याभिषेककोभी कल्याणक माननेका आग्रह करना उचित नहींहै। और कई महाशय 'पंचाशक' में पांच कल्याणकोंका पाठ देखकर छ कल्याणकोंका निषेध करते हैं परन्तु सामान्य और विशेष, विधिवाद और चरितानुवाद संबंधी शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय का विचार नहीं करतेहैं क्योंकि देखो-जिस तरह वीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्नमें सिंह देखाहै तथा आदीश्वर भगवान्की माताने प्रथम स्वप्नमें वृषभको देखाहै और बाईस तीर्थंकरोंकी माताओंने प्रथम हस्ति देखाहै तोभी सर्व तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे विधिवाद संबंधी सामान्यतासे वीर प्रभुकी माताके स्वप्नोंके वर्णन समय इसी कल्पसूत्रमें प्रथम स्वप्नमें हस्तिका वर्णन करादियाहै. परन्तु दूसरे वीर चरित्रोंमें चरितानुवाद संबंधी विशेषतासे प्रथम स्वप्नमें सिंहका वर्णन कियाहै इसमें किसी तरहका विरोध नहींहै। इसी तरहसे 'पंचाशक' में सर्व तीर्थंकरों संबंधी विधिवादकी अपेक्षासे सामान्यतासे वीरप्रभुके पांच कल्याणक बतलाये हैं और कल्पसूत्रादिमें चरितानुवादकी अपेक्षासे विशेषतासे छ कल्याणक बतलायेहैं इसलिये सामान्य और विशेषताके कारणसे 'पंचाशक' के पाठमें और 'कल्प'सूत्रके पाठमें किसी तरहका विरोध भाव नहींहै। किन्तु प्रसंगानुसार दोनों मान्यहैं. जिसपरभी 'पंचाशक' के पांच कल्याणकोंका पाठको आगे करके 'कल्पसूत्र' के छ कल्याणकोंके पाठका निषेध करनेका आग्रह करना किसी तरह उचित नहींहै. इस विषयमें सब तरहकी शंकाओंका समाधान सहित विस्तार पूर्वक हमने "बृहत् पर्युषणा निर्णय" नामक ग्रंथमें लिखादियाहै पाठकगण उसग्रंथको अवश्य देखें।

हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४, हत्थुत्तराहिं अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए, निरावरणे, कासिणे, पडिपुण्णे, केवल वर नाण दंसणे समुप्पने ५, साइणा परिनिव्वुए भयवं ॥६॥

महावीर भगवान् हस्तोत्तरा नक्षत्रमें देवलोकसे च्यव कर देवानन्दा माताकी कुक्षिमें उत्पन्नहुए १, इसी नक्षत्र में देवानन्दा माताकी कुक्षिसे त्रिशला माताकी कुक्षिमें पधारे २, इसी नक्षत्रमें जन्महुआ ३, इसी नक्षत्रमें गृहस्थावास छोडकर साधु हुए ४, और हस्तोत्तरा नक्षत्रमेंही अनंत अर्थको जानने वाले, सबसे उत्कृष्ट, भींत, पर्वत, नदी, समुद्रादिक किसीभी जगह नहीं रुकने वाले, लोकालोककी सूक्ष्म और बादर सर्व वस्तुओंको द्रव्य, गुण, पर्याय साहित जाननेवाले, पूर्णिमाके चन्द्रकी तरह सर्व अंशसे परिपूर्ण किसीकीभी सहायता राहित ऐसे अनंतगुण साहित केवल ज्ञान व केवल दर्शन उत्पन्न हुआ ५ और स्वाति नक्षत्रमें सर्व कर्मोंसे तथा शरीरादि पुद्गलिक संगसे रहितहोकर भगवान् मोक्षगये. अक्षय अनंत सुख भोगने वाले हुए ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक संक्षेपसे कहे, ११ वाचनाकी अपेक्षासे यह प्रथम व्याख्यान संपूर्ण हुआ. अब दूसरा व्याख्यानमें च्यवनादि कल्याणक विस्तारसे कहते हैं ।

तिसकाल, तिससमयमें श्रमण भगवन् श्रीमहावीरस्वामी उष्णकालका चौथा महीना, आठवाँपक्ष, आषाढ शुदी ६ के दिन दशम देवलोकके महान् विजयवाले पुष्पोत्तर प्रवर पुंडरीक नामक बडे विमानसे वीश-सागरोपमका देव संबंधी आयु–भव और स्थिति क्षयहोनेसे वहांसे च्यवे और इसी जंबूद्वीपके दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रमें इसी अवसर्पिणी कालके सुखम सुखम नामक चार कोडा कोडी सागरोपमका पहला * आरा गये

---

*—पहले आरेमें युगलीय मनुष्य व तिर्यंचोंकी तीन पल्योपमकी आयु, तीनकोस उंचा शरीर, २५६ पांशुली, तीन दिनके बाद कल्पवृक्षका तुअर प्रमाणे आहार करें, ४९ दिनतक बच्चोंकी पालना करके मरकर देवलोकमें जावें. दूसरे आरेमें दो पल्योपमकी आयु, दो कोसका शरीर, दो दिनके बाद बोर प्रमाणे आहार करें, १२८ पांसुली, ६४ दिनतक बच्चोंकी पालना करके मरकर देवलोकमें जावें. तीसरे आरेमें एक पल्योपमकी आयु, एक कोसका शरीर, एकांतरे आंवले प्रमाणे आहार करें, ६४ पांसुली, ७९ दिनतक बच्चोंकी पालना करके देवलोकमें जावें. चौथे आरेमें एक पूर्वक्रोड वर्ष प्रमाणे उत्कृष्ट आयु, ५०० धनुष्यका शरीर, हमेशा आहार करनेवाले, मरकर चारों गतियोंमें जानेवाले और कर्मक्षय करलें तो मोक्षमें भी जावें. तथा २१ हजार वर्षके दुष्म नामक पंचम आरेमें सात हाथ प्रमाणे शरीर, १२० वर्षका आयु, मरकर चारों गतियोंमें जावें परंतु मोक्षमें नहींजावें और २१ हजार वर्षका दुष्म दुष्म नामक छठे आरेमें दो हाथका शरीर (परन्तु छठे आरेके मध्यमें व अंतमें एक हाथका शरीर), २० वर्षका आयु, क्रुरकर्म करने वाले,

बाद, सुखम नामक तीन कोडा कोडी सागरोपमका दूसरा आरा गये बाद, सुखम दुःखम नामक दो कोडा कोडी सागरोपमका तीसरा आरा गये बाद और दुःखम सुखम नामक एक कोडा कोडी सागरोपमका चौथा आरा बहुत गयेबाद, ४२ हजार, ७५ वर्ष, साढे आठ महीने; इतना समय बाकीरहा तब, तथा एकवीश तीर्थंकर इक्ष्वाकु कुलमें व काश्यप गौत्रमें उत्पन्नहुए बाद और मुनिसुव्रतस्वामी व नेमिनाथजी हरिवंशकुलमें व गौतम

माता–पुत्री आदिका व्यवहार और लज्जा रहित मरकर प्रायः दुर्गतिमें जाने वाले होतेहैं । इसप्रकार छ आराओंका संक्षिप्त स्वरूप बतलाया हैं *

* लाखों वर्षोंसे दुनियांहै, पहिले मनुष्य और जानवर बहुत बडेहोते थे, डॉ० राय चैंपमैन एंड्रूसने मंगोलिया (मध्य एशिया) के भीतर ऐसे चिन्ह पाये हैं कि वहां १॥ लाख वर्ष पहिले से आदमी थे। एक जानवरके ऐसे पंजर मिलेहैं जो ६० लाख वर्ष पहिले था, इसकी लंवाई १॥ खन मकान होगी। दो मस्तक मिले हैं जिनकी उंचाई २५ से ३० फीट और वजन में १६ से २० टनहै। एक पक्षी का अंडा मिलाहै, जो १॥ लाख वर्ष पूर्व का होगा। और ६० करोड वर्ष की पुराणी वस्तुएँ–हिंदुस्तान टाइम्स देहली ताः २४–११–२८– में लिखा है कि–आस्ट्रेलियाके वैज्ञानिक प्रोफेसर एजवर्थ डेविडने खुदाई करने पर जानवरों की हड्डियां माउंट लापटीमें व दक्षिण भागमें पाईहैं जो ६० करोड वर्ष की पुरानी समझी जातीहैं। जैन पथ प्रदर्शक व जैन प्रकाश से उद्धृत.

असंख्य वर्ष पहिले मनुष्योंके व पशुओंके बडे २ शरीर होतेथे इस बातको दूसरे लोग नहीं मानतेथे परंतु अब नयी २ शोध खोलमें ऐसी २ बहुत प्राचीनकाल की वस्तुएं मिलने लगी, तबसे उन बातोंका लोगों में प्रत्यक्षतया विश्वाश होने लगाहै ।

गौत्रमें उत्पन्नहुए बाद; इसप्रकार आदीश्वर भगवान्‌से पार्श्वनाथजी तक २३ तीर्थंकरहुए बाद श्रमण भगवन् श्री महावीरस्वामी छेल्ले तीर्थंकर माहणकुंड नगरके कोडाल गौत्रके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालंधर गौत्रकी देवनंदा ब्राह्मणी की कुक्षिमें अर्ध रात्रिके समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें चंद्रका योग आनेसे भगवान् देव संबंधी आहार–भव और शरीरको छोडकर माताके गर्भमें उत्पन्न हुए. पहले आदीश्वर भगवान्‌ने भरत चक्रवर्तीके सामने कहाथा कि 'मरीचि' तेरा पुत्र २४ वां तीर्थंकर होगा; इसालिये अब भगवान्‌के २७ पूर्वभवोंका स्वरूप कहतेहैं:—

ग्रामेशस्त्रिदशो मरीचिरमरो, षोढा परिव्राट् सुरः। संसारो बहु विश्वभूतिरमरो, नारायणो नारकः॥
सिंहो नैरयिको भवेषु बहुशश्चक्री सुरो नंदनः। श्रीपुष्पोत्तरनिर्जरोऽवतु भवाद् वीरस्त्रिलोकी गुरुः ॥ १ ॥

इस जंबूद्वीपमें पाश्चिम महाविदेह क्षेत्रके प्रतिष्ठानपुर नगरमें एक 'नयसार' नामक राजाका नौकर ग्रामचिंतक कणवारियाथा वह राजाज्ञासे गाडेलेकर राज्यसेवकोंके संग वनमें लकडी लेनेके लिये गयाथा, वृक्षके नीचे बैठेहुए उसको अपने साथियोंसे भूलेहुए कितनेकसाधु देखनेमें आये, उनके सामनेगया और भक्तिपूर्वक

वंदना करके अपने स्थानपरलाया, पहलेका बनाया हुआ आहार उन साधुओंको वहोराया और धर्मोपदेश सुनकर मार्गबतादिया। यहां साधुओंको वंदन, आहार दान और धर्मोपदेश सुननेसे 'नयसार' ने सम्यक्त्व पाया. यह प्रथम भव। वहांसे आयुपूर्ण करके पहले देवलोकमें देवताहुआ, यह दूसरा भव. देवलोकसे च्यवकर श्री-ऋषभदेवप्रभुके पुत्र भरत चक्रवर्तीका मरीचि नामक पुत्रहुआ. वहां भगवान्की देशना सुनकर अपने पांचसौ भाई और ७०० भतीजोंके संग चारित्र ग्रहण किया, किन्तु कुछ समय वाद जब मरीचि दीक्षा न पाल सका तव उसने साधुवेषका त्यागकर त्रिदंडीका वेष धारण किया, उसने पैरोंमें खडाऊ पहनी, लोच करनेको असमर्थ होकर शिरमुंडन कराया, जलकेलिये कमंडल लिया, गेरुये वस्त्र पहिने और समोवसरणके बाहिर इस वेषमें ठहरने लगा, जो कोई मनुष्य उसके पास धर्म सुननेको आता, उसको उपदेश देकर भगवान्के पास दीक्षा ग्रहण करवाता था। एक समय भरत चक्रवर्तीने ऋषभदेव स्वामीको वंदना करके प्रश्न किया कि हे भगवन्! इस अवसर्पिणीमें कितने तीर्थंकरहोंगे और यहां इस समोवसरणमें कोई तीर्थंकरका जीवभी है या नहीं। भगवान्ने उत्तर दिया कि चौवीस तीर्थंकर होंगे और इस समोवसरणके बाहिर तेरापुत्र मरीचि जो

त्रिदंडीके वेषमें रहताहै वह महावीर नामक चौवीसवां तीर्थंकर होगा तथा इसी भरतक्षेत्रमें 'त्रिपिष्ठ 'नामक प्रथम वासुदेव होगा और महाविदेह क्षेत्रकी मुंका नगरीमें 'प्रियमित्र' नामक चक्रवर्तीभी होगा. भरत यह सुनकर भगवान्की आज्ञा लेकर बडेहर्षसे मरीचिको वंदना करनेके लिये गये, भविष्यमें होनेवाली सब बाते कहदी और वंदना करके बोले कि आप २४ वें तीर्थंकर होने वाले हो इसलिये वंदना करताहूं न कि चक्रवर्ती आदि पदवियोंकों, क्योंकि वर्तमान तीर्थंकरकी तरह भावी तीर्थंकरभी वंदनीयहैं. ऐसा कहकर भरतके गये बाद मरीचि अभिमानसे बोलनेलगा कि मेरा पिता चक्रवर्ती, मेरा दादा तीर्थंकर और मैं चक्रवर्ती तथा वासुदेव व तीर्थंकर होऊँगा, मेरेको वासुदेव पदवी अधिक मिलेगी, इसलिये मेरा कुल उत्तमहै. ऐसा कहता हुआ अपनी भुजा ठोकताहुआ नाचने लगा, इसप्रकार कुलमद व गौत्रमद करके नीच गौत्र कर्मका बंधन किया, इसके बाद एक समय 'मरीचि' बिमार पडा किसीने उसकी सेवा नहीं की तब मरीचिने विचार किया कि अच्छा होनेपर एक शिष्य करूँगा वह रोगादिमें मेरी सेवा करेगा, कुछ समय बाद मरीचि अच्छा होगया, तब कपिल नामक राज पुत्र मरीचिके पास आया उसको धर्मोपदेश देकर दीक्षा लेनेके लिये भग-

वान्‌के पासभेजा किन्तु कापिल ऋषभदेवभगवान्‌की समोवसरण महिमा देखकर वापिस लौटआया और कहने लगा कि ऋषभदेवके पासतो धर्म नहीं है वहतो राज्य लीलाका सुख भोगतेहैं। तुम्हारे पास कुछ धर्महै या नहीं, तब मरीचिने उसको अपने योग्य समझकर अपने स्वार्थवश कहा कि मेरे पासभी धर्महै, ऐसा उत्सूत्र प्ररूपणारूप वचन बोलकर उसको दीक्षा देदी. इसप्रकार उत्सूत्र प्ररूपणाके लेश मात्रसेही एक कोडा कोडी सागरोपम तक संसार भ्रमण का कर्म उपार्जन किया. यह तीसरा भवहुआ। फिर चौरासी लाख पूर्वका आयुष्य पूर्णकरके समाधिसे मृत्यु प्राप्तकरके पांचवें देवलोकमें देवहुआ. यह चौथाभव हुआ। पांचवे भवमें फिर ब्राह्मणहुआ, तापसी दीक्षालेकर अज्ञान तपकर छट्ठे भवमें देवहुआ। सातवें भवमें फिर ब्राह्मणहोकर तापसी दीक्षा लेकर आठवें भवमें देवहुआ. फिर नवमें भवमें ब्राह्मण, इस प्रकारसे यह क्रम सोलहवें भवतक रहा. उसके बाद कितनेही छोटे २ भव किये. सत्तरहवें भवमें राजगृही नगरीमें चित्रनंदी राजाके प्रियंगु राणीके विशाखनंदी पुत्रथा और राजाके छोटेभाई युवराज विशाखभूतिके धारिणी राणीके मरीचिका जीव विश्वभूति नामक पुत्र हुआ, विश्वभूतिका योवनावस्थामें विवाह हुआ, वह अपनी स्त्रियोंके संग राजबाडीमें क्रीडा करनेलगा, एक

समय उसके भाई राजपुत्र विशाखनंदीने उसे क्रीडाकरतेहुए देखकर विचार किया कि युवराजका पुत्रहोकर
राजबाडीमें क्रीडा करताहे किंतु मैं राजपुत्र होनेपरभी यहां क्रीडा नहीं करसकता, अब मैं इसको यहांसे हटाकर
अपनी स्त्रियोंके संग यहां क्रीडाकरूं, ऐसा विचारकर पिताके पास राजबाडी मांगी, तब राजाने विश्वभूतिको
बाडीसे निकालनेके लिये प्रयाण भेरी बजवाई और उद्घोषणा करवाई कि सिंहनामक राजापर चढाई करने
के लिये राजा जाताहे, यह सुनकर विश्वभूति राजाके पास आया और छोटासा तुच्छराजापर आपको जाना योग्य
नहीं, मैं जाकर उसको बांधकर आपकेपास लाऊंगा, ऐसा कहकर सेनालेकर चलपडा, पीछेसे राजाने विश्वभूतिके
अंतःपुरको बाडीसे निकालकर बाडी अपने पुत्रको सौंपदी, वहां अपनी स्त्रियोंके साहित राजकुमार क्रीडाकरने
लगा। विश्वभूति भी सिंह राजाको जीवित पकडकर राजाके पासलाया, तब उसकी बडी प्रशंसा होनेलगी.
वह अपनी स्त्रियोंके संग बाडीमें क्रीडाके लिये जानेलगा तो उसको राजकुमारके सेवकोंने रोका और
कि बाडी तो विशाखनंदीको राजाने देदीहे। तब विश्वभूतिको राजाका कपट भाव ज्ञात हुआ और
वैराग्य उत्पन्न होगया, विचारने लगा कि संसार असार, मनुष्य मोह महस्थहे, इस अपकारी मोहको

धिक्कारहो, इस प्रकार विरक्त होकर अपना बल दिखलानेके लिये बाडीके द्वार पर 'कवीठ' के वृक्षके एक मुष्टिका प्रहार कर सबफल गिरादिये, और बोला कि जितना समय मुझे फलोंके गिरानेमें लगाहै उतनेमें मैं वैरीका नाशकर सकताहूं, परन्तु लोकापवादसे डरताहूं ऐसा कहकर साधुओंके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करली, बहुत बडा तप करने लगा, एक समय विहार करते हुए मथुरा नगरीमें मासक्षमणके पारणे आहार लेनेको जातेथे, मार्गमें एक नवीन प्रसूति गायने इनको गिरादिया, उससमय अपनी ससुरालमें आये हुए विशाखनंदीने इनको गोखडेमेंसे देखा और इनके पहलेके बलका उपहास किया, यह सुनकर विश्वभूतिने विशाखनंदीको पहचान करके अंहकारसे अपना बल दिखलानेके लिये गायको सींगसे पकडकर अपने सिरपर घुमाकर फिर पृथ्वीपर रखदी और कहनेलगे कि मेरा बल कहींभी नहीं गयाहै। यदि मेरे तपका फल हो तो मैं भवांतरमें तुझे मारनेवाला होऊँ। इसप्रकार नियाणा (प्रतिज्ञा) करके एक क्रोड वर्षतक चारित्र धर्मका पालन करके अंतसमयमें अनशन करके अट्ठारहवें भवमें देवहुए. इस अवसरमें पोतनपुर नगरमें प्रजापति राजाकी धारिणी राणीके चार स्वप्न सूचित 'अचल' नामक पुत्रहुआ और मृगावती नामकी कन्याथी। जबपुत्री

विवाहके योग्य हुई तब राणीने उसको सोलह शृंगार कराकर राजाके पास राज सभामें भेजी, राजाउसको देखकर चंचल होगया और लोकापवाद निवारणके लिये सभाके लोगोंसे पूछा कि संसारमें उत्तम रत्न हो उसका मालिक कौन होताहै, तब सबने कहा कि उत्तम रत्न तो राजाके ही योग्यहै, ऐसी युक्तिकरके उसने मृगावतीसे पाणी ग्रहण करलिया और सुख भोगने लगा, अब विश्वभूतिका जीव देव लोकसे आकरके मृगावतीके गर्भमें उत्पन्नहुआ, उस समय मृगावतीने सात स्वप्न देखे, पुत्रका जन्महुआ, त्रिपृष्ठ नाम रक्खा. अनुक्रमसे बडाहुआ. इस अवसरमें शंखपुर नगर के समीप तुंगिया पर्वतकी गुफामें विशाखनंदीका जीव सिंहपने उत्पन्न हुआ, उस पर्वतके निकट अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवका शालीक्षेत्रथा। उसकी रक्षाकोलिये मनुष्य वहांपर रहते उनको सिंह मारडालताथा इसलिये प्रतिवासुदेवने प्रजापति राजाको रक्षाकी आज्ञादी तब त्रिपृष्ठ अपने बडेभाई अचलके संग पिताकी आज्ञालेकर शस्त्रोंको धारण करके रथमें बैठकर उसकी रक्षाके लिये सिंहकी गुफाके पास पहुँचा, सिंहभी रथका शब्द सुनकर बाहर आया, त्रिपृष्ठने निःशस्त्रवाले सिंहके सामने शस्त्रोंसे युद्धकरना उचित नहीं समझकर आपनेभी सब शस्त्र छोडादिये, रथसे नीचे उतरगये, सिंहभी त्रिपृष्ठके

उपर झपटकर आया तब उसने सिंहके दोनों होठोंको हाथसे पकडकर जीर्ण वस्त्रके सदृश चीर दिया और उसको पृथ्वी पर फेंकादिया परन्तु सिंहका जीव नहीं निकला; तब पासमें खडेहुए सारथीने कहा कि हे सिंह! जैसे तू मृगराजहै वैसेही यह तेरेको मारनेवालाभी नरराजहै, सामान्य पुरुषने तेरेको नहीं माराहै, यह सुनकर सिंह मरकर नर्कमें गया। फिर त्रिपृष्ठने अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवको मारा और वासुदेव पद्वी प्राप्त की. एकसमय त्रिपृष्ठ वासुदेव सोताथा उस समय विदेशसे आये हुए गवैये गायन कररहेथे, त्रिपृष्ठने शय्यापालकको आज्ञा दी कि मुझे निंद्रा आजाय तब गाना बन्द करदेना परंतु शय्यापालकने गायन सुननेके लोभसे गवैयोंका गान बंध नहीं किया जब वासुदेवकी निंद्रा भंग हुई तब गीतोंको सुनकर शय्यापालकसे पूछा कि तेने इनका गाना क्यों नहीं बन्द किया, उसने उत्तरदिया कि इनका गाना कानोंको सुखदाई होनेसे मैंने बन्द नहीं किया; इससे वासुदेवको बडा क्रोधआया जिससे शय्यापालकके कानोंमें पिघलाहुआ कथीर डलवाया वह मरकर नरकमें गया। इसके बाद वासुदेवभी ८४ लाख वर्षका आयुष्य पूर्णकरके मरकर वीसवें भवमें सातवीं नरकमें गया। वहांसे इक्कीसवें भवमें सिंह हुआ. बाईसवें भवमें चौथी नरकमें गया। नरकसे निकलकर कितनेही छोटे २

भवकिये। तेईसवें भवमें महाविदेह क्षेत्रकी मुंका नगरीके धनंजय राजाके धारिणी राणीकी कुक्षीसे मरीचि के जीवने चौदहस्वप्नसे सूचित्त जन्म लिया, 'प्रियामित्र' नाम रक्खा, योवनास्थाको प्राप्त हुआ, तब चक्रवर्ती के भवमें त्रुटितांग ❀ संज्ञा विशेष आयुष्य पालकर अन्त अवस्थामें दीक्षाली और एक करोड वर्षतक चारित्र धर्मका पालन करके समाधि मरणसे सातवें देवलोकमें सत्तरह सागरोपमकी आयु वाले चौवीसवें भवमें देवहुए. पच्चीसवें भवमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें छत्रागा नगरीमें 'नंदन' नामक राजाहुए, चौवीसलाख वर्ष तक गृहस्थाश्रममें रहकर पोटिलाचार्य गुरुके पास दीक्षा ग्रहणकी, एक लाख वर्षतक निरंतर मास क्षमण की तपश्चर्याकरके वीस स्थानककी आराधनाकी, तीर्थंकर नाम कर्म बांधा, चारित्र पालकरके आयुष्य पूर्ण होने

❀ पांचवर्षका एकयुग, चौरासी लाखवर्षोंका एकपूर्वांग, चौरासीलाख पूर्वांगका एकपूर्व, चौरासी लाख पूर्वोंका एक त्रुटितांग कहा है. उसके ५९ लक्ष कोटाकोटी, २७ हजार कोटाकोटी और ४० कोटाकोटी वर्ष होते हैं (५९२७४००००००००००००००००). और असंख्य वर्षोंका एक पल्योपम होताहै, दश कोटाकोटी पल्योपम जानेसे एक सागरोपम होताहै, जिसतरह समुद्रके जलके बिंदुओंकी गिनती नहीं होसकती, उसीतरह सागरोपमके वर्षोंकीभी गिनती नहीं होसकती और वीस कोटाकोटी सागरोपमका एक कालचक्र होताहै, ऐसे अनंत कालचक्र इस संसारमें होगयेहैं।

पर छब्बीसवें भवमें दशम देवलोकके पुष्पोत्तर प्रधान पुडंरीक नामक विमानमें वीस सागरोपमकी आयुवाले देवहुए । और सत्ताईसवें भवमें महावीरस्वामी भगवान् हुए,

भगवान् मति-श्रुति-अवधि यह तीन ज्ञान सहितथे देवविमान से मेरा च्यवन होगा ऐसा जानतेथे परंतु च्यवन समय बहुत सूक्ष्म होनेसे उस समय नहीं जानसके किन्तु माताके गर्भमें आये बाद जानलिया कि मेरा यहां आना हुआहै. जिस रात्रिको श्रमण भगवन् महावीरस्वामीने जालंधर गौत्रकी देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षिमें अवतार लिया, उस रात्रिमें देवानंदाने कुछ निद्रालेते और कुछ जागृत, ऐसी अर्ध जागृत दशा में हाथी १, वृषभ २, सिंह ३, लक्ष्मी ४, पुष्पोंकी दो माला ५, चन्द्रमा ६, सूर्य ७, ध्वजा ८, पूर्णकलश ९, पद्मसरोवर १०, क्षीरसमुद्र ११, देव विमान १२, रत्नोंकी राशी १३ और निर्धूम अग्नि शिखा १४. यह उदार, प्रधान, कल्याणके करनेवाले, उपद्रवके हरनेवाले, धनकी वृद्धिकरनेवाले, मंगलजनक, शोभायुक्त चौदह महास्वप्न देखकर जागृतहुई, अत्यंत हुल्लास और संतोषहुआ, उनका चित्त वर्षाकीधारासे प्रफुल्लित कदंबके पुष्प के सदृश्य अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ, साढेतीन करोड रोम राई पुलकायमान होगये । स्वप्नोंको अनुक्रमसे याद

करके, शय्यासे उठकर राज हँसिनीकी गतिसे मंद २ चलतीहुई तीव्रता या चपलता रहित अविलंबपने अपने पति ऋषभदत्त ब्राह्मणके पासमें आकर जय विजयके मांगलिक शब्दोंसे जाग्रत करके भद्रासनपर बैठकर शांति और स्वस्थताके साथ दोनों हाथ जोडकर मस्तकसे आवृत करके विनय सहित इस प्रकार बोलनेलगी कि हे स्वामिन् ! आजरात्रिको अर्ध जाग्रत दशामें मैंने गजसे लेकर निर्धूम अग्नि शिखा तक उदार, प्रधान, यावत् शोभायुक्त यह १४ महास्वप्न देखेहैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! इन चौदह महास्वप्नोंका मेरेको कल्याणका करने वाला क्या फल मिलेगा? देवानंदाके ऐसे उत्तम वचन सुनकर ऋषभदत्त ब्राह्मणभी बडाहर्षित—आनंदितहुआ, वर्षाकी धारसे प्रफुल्लित कदंबक पुष्प जैसा इनका हृदय प्रफुल्लित हुआ, रोम राई हर्षसे खडे होगये, स्वप्नोंको अनुक्रमसे मनमें याद करके उनके अर्थका विचार कर अपनी अच्छी मतिसे, स्वप्न शास्त्रानुसार बुद्धिपूर्वक स्वप्नोंके अर्थका निर्णय करके देवानंदाको इस प्रकारसे कहने लगा कि हे देवानुप्रिय ! उदार, प्रधान, उपद्रव हरनेवाले, धन्य—मंगल—कल्याण करनेवाले, शोभायुक्त, लक्ष्मी—आरोग्य—तुष्टि—दीर्घ आयुष्य कारक महान् उत्तम स्वप्न तुमने देखेहैं, उसका फल सुनो, इन स्वप्नोंके देखनेसे धनका लाभ होगा, भोगका लाभ होगा,

पुत्रका लाभ होगा, सुखका लाभहोगा, और निश्चय करके नवमहिनोंके ऊपर साढे सात दिन जानेपर सुकुमाल हाथ पैर वाला, संपूर्ण पंचेंद्रिय शरीरवाला, परिपूर्ण सर्वांग सुन्दर, चन्द्रकी तरह सौम्य आकार वाला, प्रिय, दर्शनीय, सुन्दर रूपवाला, देवकुमारके समान उत्तम लक्षण सहित तुम्हारे श्रेष्ट पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी।

उसके नख १ हाथ २ पैर ३ जीभ ४ होठ ५ तालु ६ और नेत्रका अंतिम भाग ७ यह सात लाल होंगे, कांख १ ठोडी २ नाक ३ नख ४ मुख ५ हृदय ६ यह छः उन्नत होगें, दांत १ केश २ अंगुली पर्व (अंगुलियोंकी रेखायें,) ३ चर्म ४ नख ५ यह पांच पतले होंगे, नेत्र १ वक्षस्थल २ नाक ३ डाढी ४ भुजा ५ यह पांच दीर्घ और लम्बे होंगे, ललाट १ स्वर २ मुख ३ यह तीन विस्तीरण होंगे, जांघ १ लिंग २ जिव्हा ३ यह तीन लघु होंगे और स्वर १ नाभि २ धैर्य ३ यह तीन गंभीर होंगे। इस प्रकार ३२ लक्षण होंगे तथा मान, उन्मान, प्रमाणसे पूर्णहोगा (जलके भरेहुए कुण्डमें पुरुषको बैठानेसे २५६ पल जल निकले उसको मानोपेत कहतेहैं, तथा तोल करनेपर अर्धभार प्रमाणे हो उसको उन्मानोपेत कहतेहैं और १०८ अंगुल प्रमाणे ऊंचा शरीरवाला हो वह प्रमाणोपेत कहाजाताहै) और ललाट, नासिका, दाढी, गर्दन, हृदय, नाभि, गुह्य, मस्तक, गोडा, जांघ,

हाथ, पैर आदिमें शुभ लक्षण वाले मशे तिल होंगे तथा औदार्य, धैर्य, गांभीर्यादि गुणों सहित होगा। फिर हे देवानुप्रिय ! जब वह आठवर्षका होगा तब विज्ञान देखतेही जानलेगा, जब यौवनावस्था आयेगी तब ४ वेद, ४ उपवेद, १८ पुराण, १८ स्मृति ❋, इतिहास, निघण्टु नाममाला आदि ग्रन्थोंका समुदाय अंग; उपांगका भावार्थ परमार्थ सहित जानने वाला होगा। ६० प्रकारके तांत्रिक कापालिक योगियोंका शास्त्र, संख्या शास्त्र, लीलावती आदि शिक्षा शास्त्रोंमें विशारद होगा। आचार ग्रंथ, आठों व्याकरण, छदं शास्त्र, निरूक्त पद भंजन, ज्योतिष् शास्त्र—उत्तरायण, दक्षिणायन तथा औरभी ब्राह्मणोंके, परिव्राजकोंके शास्त्रोंमें प्रवीण होगा, इसलिये तैंने जो स्वप्न देखे हैं वह बहुत श्रेष्ट, आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु करनेवाले मंगलकारक हैं। इस प्रकारसे

❋ ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, यह चार वेद. तथा धनुर्वेद आयुर्वेद, गांधर्ववेद, अध्यात्मवेद यह चार उपवेद. और ब्रह्मपुराण, अंभोरूह, विष्णु, वायु, भागवत्, नारद, मार्कंडेय, अग्निदैवत, भाविष्यत्, ब्रह्म-वैर्वत, लिंग, बाराह, स्कंद, वामन, मत्स्य, कुर्म, गरुड, और ब्रह्मांड पुराण, यह १८ पुराण. तथा मानवी स्मृति, आत्रेयी, वैष्णवी, हारीति, याज्ञवल्की, औशनसी, आंगिरसी, प्रयामी, आपस्तंबी, सांवर्ती, कात्यायनी, बार्हस्पती, पाराशरी, सांखी, दाक्षी, गौतमी, शांतातपी, और वासिष्टी यह १८ स्मृति.

स्वप्नोंकी बारम्बार प्रशंसा करने लगा। देवानन्दा ब्राह्मणीभी उन स्वप्नोंके फलोंको चित्तसे श्रवण करके, मनमें याद रखके, दोनों हाथ जोड़कर अपने पतिसे कहने लगी कि हे देवानुप्रिय ! आपने जो अर्थ बतलाया है वह बिल्कुल सत्यहै इसमें किसी प्रकार संदेह नहीं है, मै भी ऐसाही चाहती हूं इसप्रकार कहकर फिर अनुक्रमसे ऋषभदत्त ब्राह्मणके साथ मनुष्य संबंधी काम-भोग, विषय सुख भोगतीहुयी सुखसे रहनेलगी।

यहां पर ११ वाचनाकी अपेक्षासे दूसरा व्याख्यान संपूर्ण होता है और नव वाचनाकी अपेक्षासे प्रथम व्याख्यान संपूर्ण होता है।

अब दूसरा व्याख्यान कहते हैः—तिसकाल और तिस समयमें शक्रनामक सिंहासनपर बैठनेवाले शक्र, देवों में इन्द्र अर्थात्–देवोंका राजा, हाथमें वज्र धारण करने से वज्रपाणि कहते हैं, शत्रुके नगरका विदारण करनेसे पुरंदर भी कहते हैं, यहांपर 'शतक्रतु' नाम कहलानेका सम्बन्ध बतलातेहैं।

हस्तिशीर्ष नगरमें जितशत्रु राजा राज्य करताथा, उसमें एक प्रसिद्ध और धनवान् कार्त्तिक सेठ सम्यक्त्व धारी परम श्रावक था, उस नगरमें गैरीक नामक तपस्वी मास खमणका तप करनेवाला आया नगरके सब

मनुष्य उसकी सेवाके लिये आये किन्तु कार्त्तिक सेठ नहीं आया, तपस्वीको यह बात माल्रूम होनेसे सेठपर बहुत क्रोधित हुआ, एकदिन राजाने तपस्वीको भोजनका निमंत्रण दिया तब तपस्वीने कहा कि जो कार्तिक सेठ तुम्हारे घर अपने हाथसे क्षीरका भोजन करावे तो मैं आऊँ, अन्यथा नहीं, राजाने सेठसे तपस्वीको उपरोक्त विधिसे भोजन करानेकी आज्ञादी, सेठने विचार किया कि यदि आज्ञा नहीं मानता हूँ तो राजा अप्रसन्न होगा इसलिये राजाकी आज्ञासे तपस्वीको अपने हाथसे भोजन करवाया, तब तपस्वी नाकपर अंगुली फेरता हुआ सेठसे कहने लगा कि जैसे तू धृष्टहुआ, वैसेही यह पराभव सहन कर, सेठने उस समय विचार किया कि जो मैं प्रथमही दीक्षा ग्रहण करलेता तो किसलिये मिथ्यात्वीका पराभव सहन करना पड़ता, इसप्रकार वैराग्यसे घर आकर एकसहस्र पुरुषोंके संग वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामी के पास दीक्षा अंगीकार करली। बारह वर्षतक चारित्र पालनकर सौ बार अभिग्रह विषेश तप करके, अन्तमें समाधि मृत्यु प्राप्त करके, पहले देवलोकमें इन्द्र हुआ। गैरीक तपस्वीभी मृत्यु प्राप्त करके इन्द्रका ऐरावण नामक हाथीहुआ। हाथी अवधि ज्ञानसे अपने व इन्द्रके पूर्वभवको ज्ञात करके भगा, इन्द्रभी अवधिज्ञानसे अपना पूर्वभव ज्ञात

करके उस हाथीपर सवार हुआ, हाथीने क्रोधसे दो, तीन, चार आदि शरीर किये, इन्द्रनेभी उतनेही शरीर बनाये और हाथीसे कहने लगा कि हे अज्ञानी! अपने किये कर्मसे कोईभी नहीं छूटता, किसलिये खेद करताहे, अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग। तेने पूर्वभवमें मेरा अपमान कियाथा, यह उसका फलहै, यह सुनकर हाथीका क्रोध जाता रहा और वह इन्द्रका वाहन होगया। इन्द्रने कार्त्तिक सेठके भवमें सौ वार तप विशेष अभिग्रह धारण कियेथे उससे उसका नाम 'शतक्रतु' भी प्रसिद्धहै, इन्द्रके पांचसौ मंत्रीहैं. उनके सहस्र नेत्रहुए इस कारणसे इन्द्रको सहस्र नेत्रवाला कहते हैं *, इन्द्रके मघवा नामक देव सेवक होनेसे इन्द्रभी मघवा कहा

* लौकिकमें इन्द्रके सहस्र नेत्र होने सम्बन्धी ऐसी बात प्रसिद्ध है कि गौतम ऋषिकी पत्नी आहिल्या के संग इन्द्रका प्रेम हो- गया था, गौतम ऋषि जब कुकडा बोलता तब स्नान करनेको चला जाताथा, एक समय बहुत रात्रि होनेपर भी चन्द्र कुकडा बनकर बोलने लगा, ऋषि स्नान करनेको चलेगये, तब इन्द्रने आकर आहिल्या के संग काम क्रीडा की. गंगाने पूछा ऋषि आज जल्दी क्यों आगये, ऋषिने जबाव दिया कि कुकडा बोलनेपर आयाहूं तब फिर गंगाने कहा कि आज रात्रि बहुत है आपको छल (कपट) से भ्रम में डालाहै जल्दी चलेजाओ, ऋषिजी स्नान करके शीघ्रतासे पीछे लौटे कुकडेको देखकर क्रोध आया उसपर गीली धोतीके छींटे डाले उससे चन्द्रमें कलंक होगया और इन्द्रको भी श्राप दिया कि तेरेको भग प्यारा है तो हजार भग वाला हो, जिससे इन्द्रके सब शरीरमें हजार

जाताहै, पाक नामक दैत्यका साधन करनेसे पाकशासन कहलाताहै, इन्द्र दक्षिणार्द्ध लोकका स्वामी, बत्तीश लाख विमानोंका अधिकारी, ऐरावण हाथीका बाहन रखनेवाला, देवोंमें हर्ष करनेवाला, निर्मलवस्त्रका धारण करने वाला, पुष्पमालायुक्त सिरपर मुकुट धारण करनेवाला, कानोंमें नवीनस्वर्णके चंचल कुंडल गलेतक आयेहुये पहननेवाला, महान् ऋद्धि वाला, महत्द्युति वाला, बहुत बल शाली, महान् यशस्वी, अत्यन्त आनन्द सुखवाला, दिव्य कान्तिवाला, लम्बी पांच वर्णोंके पुष्पोंकी मालासे शोभित, सौधर्मा नामक देवलोकमें, सुधर्मानामक सभामें शक्र नामक सिंहासनपर बैठने वालाहै, उसकी चौरासी हजार देवता सेवा करतेहैं, वह देवभी इन्द्रके सामानिकहैं, वह इन्द्रके समान ऋद्धिवालेहैं. तेतीस देवता इन्द्रके पुरोहितहैं, सोम, यम, वरुण, कुबेर यहचार लोकपालहैं, पद्मा, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी नामकी आठ इन्द्राणियाँ हैं, एक २ इन्द्राणीके सोलह सोलह हजार देव सेवकहैं, इस प्रकार कुल आठ इन्द्राणियोंके

भग होगये, शर्मसे सभामें नहीं आसका, जब मंत्रियोंने विनती करके ऋषिको प्रसन्न किया तब संतुष्ट होकर सहस्र लोचन करदिये तबसे इन्द्र सहस्र लोचन वाला कहलाता है।

एकलाख अट्ठाईस हजार देव सेवक होतेहैं, बाह्य, मध्य, और अभ्यन्तर यह तीन पर्षदाहैं. हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, वृषभ, नाटक और गंधर्व, यह सात सैनाऐं हैं, इनके सात स्वामीहैं। चौरासी सहस्र देव एक २ दिशा में, शस्त्रसहित सावधान इन्द्रकी सेवा करतेहैं, इसप्रकार चारों दिशाओंके तीनलाख छत्तीस हजार देव होते हैं, यह इन्द्रके आत्म रक्षक कहलातेहैं, हमेशा इन्द्रकी सेवा करतेहैं, सौधर्मा देवलोकमें औरभी देव और देवांगनायें रहतीहैं, उनकी इन्द्र रक्षा करताहै, उनका अग्रगामी, स्वामी, पोषक, गुरुके समान आज्ञा देनेवाला और ऐश्वर्यपद पालकहै तथा तंत्री, वीणा, ताल, कंशाल, तूर्य, शंख, मृदंग आदि वाजिंत्र मेघके गर्जारव के सदृश गंभीर शब्दसे बजतेहुये उसके कानोंको सुख देतेहैं, नाना प्रकारके नाटक उसका मनोरंजन कहतेहैं और देव सम्बन्धी भोगोंको भोगता हुआ रहताहै. वह विस्तीरण अवधि ज्ञानसे जबूंद्वीपके दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रमें माहणकुंड नगरमें कोडाल गौत्रके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालंधर गौत्रकी देवानन्दा ब्राह्मणकी कुक्षिमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको अवतारित हुए देखकर बहुत हर्षितहुआ, उसका चित्त आनन्दसे परिपूर्ण होगया, हृदयमें प्रेम और भक्ति जाग्रत हुई, वर्षाकी धारासे कदंब पुष्पकी तरह रोम २ हर्षायमान हुये, कमलके

समान नेत्र विकसित हुए, अकस्मात् सिंहासन परसे उठकर खडा होगया, उस समय कडे-बाजुबंध-मुकुट-कुंडल और मोतियोंके गुच्छोंवाले लम्बे २ हार आदि आभूषण चलायमान हुये और पाद पीठ पर पैर रखकर सिंहासनसे नीचे उतरा, वैडुर्य अरिष्ट व अंजनादि रत्नोंकी अच्छे कारीगरकी बनाई हुई पावडी उतारकर एक अखंड उत्तम श्वेतवस्त्रका उत्तरासन किया और दोनों हाथ जोडकर तीर्थंकर भगवान्के सन्मुख सात आठ कदम गया, बायें गोडेको कुछ झुकाकर दाहिना गोडा पृथ्वीपर लगाकर अपना मस्तक नमाकर सर्व आभरणोंसे स्तंभित दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार सत्य अर्थ वाली स्तुति करने लगा।

णमुत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं ॥ १ ॥ आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं ॥ २ ॥ पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं ॥ ३ ॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपइवाणं लोगपज्जोअगराणं ॥ ४ ॥ अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ॥५ ॥ धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं ॥ ६ ॥ दीवोताणं सरण गइ पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं ॥ ७ ॥ जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं

बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं ॥ ८ ॥ सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वा-बाह मपुणराविति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जियभयाणं ॥ ९ ॥ इस शक्रस्तवमें ९ संपदा, ३३ पद, ३३ गुरु अक्षर, २६४ लघु अक्षर सर्व मिलकर २९७ अक्षर हैं।

अर्हंतों को नमस्कार हो, जो इन्द्रादिककी पूजाके योग्य हो, वह 'अरहंत' तथा आठ कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेसे 'अरिहंत' और मुक्ति गये बाद संसारमें नहीं उत्पन्न हो उसे 'अरूहंत' कहते हैं, ऐसे अर्हंतोंको मेरा नमस्कार हो, वह अर्हंत भगवंत् हैं, ज्ञान, महात्म्य, यश, वैराग्य, मुक्ति, रूप, इच्छा, धर्म, श्री, और ऐश्वर्य आदि अनेक अर्थ युक्त भगवंत्को मेरा नमस्कार हो, वह अरिहंत—भगवंत् अपने २ शासनकी आदि करनेवाले हैं, चतुर्विध संघरूप तीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, किसीके उपदेश विनाही बोध पायेहुए हैं, पुरुषोंमें उत्तम हैं, अष्ट कर्मरूपी हाथियोंका नाशकरने में सिंह समान हैं, पुरुषोंमें प्रधान पुंडरीक कमलके समान हैं, जैसे कमल कीचडमें उत्पन्न होता है, जलसे बढता है किन्तु दोनोंको छोडकर अलग रहता है,उसी प्रकार तीर्थंकर भी संसाररूप कीचडमें उत्पन्न होते हैं, भोगरूप जलसे बढते हैं, किन्तु दोनोंसे अलग रहते हैं,

अरिहंत पुरुषोंमें प्रधान गंध हस्तीके समानहैं, जैसे गंध हस्तीकी गंधसे अन्य हाथी भयसे भागजातेहैं, उसी प्रकार तीर्थंकर जहां विचरते हैं, वहां अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहोंका–पतंगियोंका–पक्षियोंका तथा स्वचक्र–परचक्र का उपद्रव आदि सब नष्ट होजाते हैं, भगवान् लोकमें उत्तम हैं, लोकके स्वामी हैं, लोगोंके हितकारी हैं, पंचास्तिकायकी सत्य प्ररूपणा करनेसे हितकारी कहेजाते हैं, अरिहंत लोकमें दीपकके समानहैं और केवल ज्ञान व केवल दर्शनसे चौदह राज लोकमें उद्योत करनेवाले हैं, सब जीवोंको अभय देनेवाले हैं, इहलोक–परलोक–आदान–अकस्मात्–आजीविका–मरण–अपकीर्ति यह सात भय के निवारक हैं, तत्त्वरूप लोचन के देनेवाले हैं, मोक्षमार्ग के बतलाने वालेहैं, सब जीवोंको अपने शरणमें रखनेवाले हैं, जीवों पर दया करने वाले हैं अथवा सम्यक्त्व रूप जीवितव्यके देनेवालेहैं, सम्यक्त्वरूप बोधि बीजके देनेवालेहैं, धर्मके दायक हैं, धर्मकी देशना देनेवाले हैं, धर्मके स्वामी हैं, धर्मके सारथी हैं, जैसे सारथी मार्गभ्रष्ट घोडोंको प्रेरणा करके मार्ग में ले आता है, वैसेही भगवान् भी धर्म मार्गसे भ्रष्ट जीवोंको धर्म वचनोंसे प्रेरणा करके धर्म मार्गमें लाते हैं, मेघकुमार की तरह। अब उसका दृष्टान्त बतलाते हैं:—

राजगृही नगरीमें श्रेणिक राजाके धारिणी राणीको गर्भके प्रभावसे अकाल समय में वर्षाकाल का दोहला (मनोर्थ) उत्पन्न हुआ, मैं हाथीपर बैठकर नगरमें फिरकर पर्वत–बगीचा–नदी–सरोवरमें क्रीडा करूं, उस समय बडी २ छांटोंसे वर्षा वर्षे, मेघ गर्जना करे, बिजली चमके, मेंढक–म्यूर बोलें, पर्वतसे नदीमें पानीका प्रवाह चले. इस प्रकारका मनोर्थ पूर्ण न होने से धारिणी दुबली होने लगी, श्रेणिक राजाने कारण पूछा तब उसने अपना मनोर्थ प्रकट किया, राजाने उसको पूर्ण करने के लिये अभय कुमारको कहा, अभयकुमारने पूर्व संगतिदेवका आराधन करके धारिणीका दोहद पूर्ण कराया, नव महीने पुत्रका जन्म हुआ उसका नाम 'मेघकुमार' रक्खा गया, यौवनावस्था प्राप्तहोनेपर आठ राजकुमारियोंसे पाणिग्रहण करवाया, उन राजकुमारियोंके माता–पिताने उनको आठ करोड सोनेये आदि आठ २ तरहकी बहुत ऋद्धि दी, वह यौवनावस्थाके सुख भोगने लगा. एक समय महावीर स्वामी राजगृही नगरीके उद्यानमें समोसरे, श्रेणिकराजा, मेघकुमार आदि सब भगवान्को बन्दना करनेके निमित्त गये, वहां भगवान्का उपदेश सुनकर मेघकुमारने सर्व परिग्रहका त्यागकर, माता-पिताके निषेध करने परभी दीक्षा अंगीकार की, ओघा व पात्रोंको लेकर महावीर प्रभुका

शिष्य हुआ, रात्रिमें छोटा साधु होनेके कारण सब साधुओंके अन्तमें संथारा किया तब रात्रिमें साधुओंके कायचिंतादिके लिये जाने आनेसे पैरोंका संघट्टा होनेसे मेघकुमार मुनिको बहुत कष्टहुआ, शरीर धूलिमें भरगया क्षण भरभी निंद्रा नहीं आयी, उस समय मेघकुमारने बिचार किया कि मेरे दिन दीक्षामें कैसे कटेंगे, आजही साधुओंने मेरा आदर नहीं किया तो आगे कैसे करेंगे, विवाहके समयमें ही यदि स्त्री-भरतारके लड़ाई हुयी तो आगे सुखकी क्या आशाहै, इसलिये प्रातःकालमें महावीर स्वामीसे पूछकर मेरे घर चला जाऊँगा, अभी मेरा कुछभी नहीं बिगड़ा है, माता, पिता, स्त्री आदि सब यहां ही हैं यह विचारकर प्रभातमें मेघकुमार महावीर स्वामी के पासआया, तब महावीरस्वामीने कहा कि हे मेघकुमार! तुमने रात्रिको क्या विचार किया, साधुओंने तुमको क्या दुःखदिया जिससे इतना अधीर होगया, तुम इसभवसे तीसरे पूर्वभवमें वैताढ्य पर्वतके निकट सहस्र हथनियोंके परिवारका स्वामी 'सुमेरुप्रभ' नामक छः दांतवाला श्वेतवर्णका हाथी था, एक समय तुम दावानल के भयसे भागा किन्तु कीचड़में फंस गया उस समय तेरे वैरी हाथीने तेरेको दांतोंसे प्रहार किया, उसकी महा वेदनाको सात दिवसतक भोगकर, सौवर्ष का आयुः पूर्णकर विंध्याचल पर्वतमें चारदांत वाला 'मेरुप्रभ' नामक

लालरंग वाला हाथी सातसौ हथनियोंका स्वामीहुआ, वहां फिर दावानल देखकर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्नहुआ तब अपनी रक्षाकेलिये चारकोस प्रमाणे मंडल बनाया उसमें घासादि उत्पन्न होतेथे उनको उखाडकर फेंकदेता था जब उष्णकालमें फिर दावानल लगा तो भयसे भागकर उस मंडलमें आया। वह मंडल पहलेसे ही भय भीत जीवोंसे भरगयाथा तुमको बैठनेका स्थान नहीं मिला, तब एक जगह खडा रहा, उतने ही में वहां एक भय भीत शशक (खरगोश) आया और तुमने उसी समय खाज खुजाने को पैर उठाया, वह उस स्थान पर आकर बैठगया, उसको देखकर तुम्हारे मनमें दया आयी और तुमने अपना पांव अधर ही रक्खा लिया। इस प्रकार तीन दिनतक कष्ट सहन किया, जब दावानल शांत हुआ तो सब जीव अपने २ स्थान पर चलेगये तुमने भी अपना पांव नीचा रक्खा, परन्तु तत्काल पर्वतके शिखरके समान तुम्हारा पैर टूटकर गिरपडा, तुमको बहुत वेदना हुई। तीन दिन बाद कालकरके जीव–दयाके प्रभावसे तू मेघकुमार हुआ है। इस लिये हे मेघकुमार! तिर्यंच के भवमें तुमने इतनी भारी वेदना सहन करके जीव दया पाली, इस समय तुमको साधुओंके पैर स्पर्श होनेसे क्या वेदना होती है, तू अपने मनके परिणामों को चारित्रसे कैसे

चलाता है, चारित्र दुर्लभ है, तिर्यंचके भवमें तो महाकष्ट पाकरके भी दयासे नहीं चुका परन्तु मनुष्य भव पाकर, हमारे बचनसे प्रतिबोध पाकर राज्य ऋद्धिको त्याग कर दीक्षा लेके अब चारित्रमें शिथिल क्यों होता है यह तुम्हारे योग्य नहीं है । मेघकुमार इस प्रकार महावीर स्वामीकी वाणी सुनकर जाति स्मरण ज्ञानसे अपना पूर्व-भव देखकर धर्ममें स्थिर हुआ और उसी समय अभिग्रह धारण किया कि आंखों की संभाल छोडकर शरीरके अन्य भागकी संभाल नहीं करूंगा, ऐसा नियम करके महातप करना आरंभ किया निरतिचार बारह वर्ष तक चारित्र पालनकर, अंतमें पंचानुत्तर विमान में देवहुआ । महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य भवमें दीक्षा लेकर, केवल ज्ञान पाकर मोक्ष जावेगा । इस प्रकार भगवान् धर्मरथके सारथी के समान हैं, तथा धर्मचक्रसे चारों गतियोंका अंत करके मोक्षको प्राप्त हुए हैं, द्वीपके समान रक्षा करनेवाले आधारभूत हैं, संसार सागरमें प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, भगवान्के शरणमें जो आता है वह भय रहित होजाता है और शोभा प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है, भगवान् अप्रतिपाति ज्ञान-दर्शनके धारण करनेवाले हैं, छद्मस्थ दशा रहित हैं, आपने राग-द्वेषको जीतलिया है, औरोंको भी राग-द्वेष जीतानेवाले हैं, आप संसार सागरसे तिरें हैं, दूसरों

को भी तारने वाले हैं आप बोध पायें हुए हैं औरोंको बोध देनेवाले हैं, आप कर्म बन्धनसे छूटे हैं, दूसरों को भी छुडानेवाले हैं, आप सर्व पदार्थोंके ज्ञाता सर्वज्ञ और सर्व पदार्थोंके देखनेवाले सर्व दर्शी हैं, शिव (उपद्रव रहित), अचल (स्थिर), अरूज (रोग रहित), अनंत, अक्षय, अव्याबाध (पीडा रहित), वहां जाकर पीछे नहीं लौटे ऐसे सिद्धिगति नामक स्थान पर पहुंच गये हैं, ऐसे सर्व तीर्थंकरोंको मेरा नमस्कार हो, जिन्होंने कर्मरूपी भयको जीतलिया है वे जिन हैं। इस प्रकार इन्द्रने सर्व तीर्थंकरोंकी स्तुति करी.

अब इन्द्र श्री महावीर स्वामीकी स्तुति करताहै। अपने तीर्थकी आदि करने वाले चरम अर्थात्–अंतिम चौवीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीको मेरा नमस्कार हो, पहलेके तीर्थंकरोंसे कथन किया हुआ यावत् मुक्ति जानेकी इच्छा वाले ऐसे हे भगवन्! आप ब्राह्मण–कुंड–नगरमें देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षिमें रहे हुये हैं, मैं आपका सेवक सौधर्म देवलोकमें रहाहुआ आपको वारम्वार नमस्कार करता हूँ, आप मेरेको देखो. इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र पूर्व दिशाकी तरफ मुंहकरके सिंहासन पर बैठ गया। उसके बाद इन्द्रने बाहिर किसीसे कहा नहीं, ऐसा मनमें विचार किया यह कभीभी हुआ नहीं, होवेगा नहीं और

होता भी नहीं है कि जिस कारणसे अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अंतकुल (शूद्रोंके कुल) में अधम कुलमें, दरिद्री कुलमें, धनहोने परभी खावेंनहीं ऐसे कृपणोंके कुलमें, भिक्षाचरोंके कुलमें और ब्राह्मणोंके कुलमें कभी आये नहीं, आवेंगे नहीं और आतेभी नहीं हैं, किंतु श्री ऋषभदेव भगवान् ने कोतवालपने स्थापन किये ऐसे उग्र कुलमें, आदीश्वर भगवान् ने गुरु (पुरोहित) पने स्थापन किये ऐसे भोग कुलमें, भगवान् ने अपने मित्रपने स्थापन कियेऐसे राज्य कुलमें और खास भगवान्के इक्ष्वाकु कुलमें तथा ऋषभदेव स्वामीके वंशमें जो कुल हुए हैं उनमें, नाग वंशमें अर्थात्—नाग वंशमें राजा बलवान् होते हैं, मल्लकी राजाओंके कुलमें, कुरु वंशके कुलमें और जिस कुलके माता—पिता शुद्ध हों ऐसे कुलोंमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव उत्पन्न होतेहैं, हुयेहैं और होवेंगे भी। परन्तु अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अंत, प्रान्त, तुच्छ, दरिद्र, भिक्षाचर, ब्राह्मणादिके कुलोंमें उत्पन्न हों वें तो भवितव्यता के वशसे यह बात लोकमें आश्चर्यकारी है कि इन कुलोंमें तीर्थंकर आदि महापुरुष माताकी कुक्षिमें आये हैं, आवेंगे, और आतेभी हैं, किंतु योनि द्वारा पहले जन्म हुवा नहीं, वर्तमानमें होता भी नहीं और भविष्यत में होवेगाभी नहीं, तो भी यह श्रमण

भगवान् श्री महावीर स्वामी चौवीसवें तीर्थंकर ब्राह्मण-कुण्ड-ग्राम-नगरमें ऋषभदत्त ब्राह्मणकी स्त्री देवानंदा जालंधर गोत्र वालीकी कुक्षिमें गर्भपने आकर उत्पन्न हुये हैं, इसलिये इन्द्र विचारता है अतित-अनागत और वर्तमानिक सव इन्द्रोंका यह कर्तव्यहै कि अरिहंतादिको अंत-प्रांतादि कुलोंसे लेकर उग्र-भोगादि कुलोंमें संक्रमण करावें इसलिये मेराभी कर्तव्यहै, मेरे करने योग्य है इसलिये मैं भी महावीर स्वामीको ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नगरमेंसे ऋषभदत्त ब्राह्मणकी कोडाल गौत्रकी देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिसे लेकर क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगरमें सिद्धार्थ राजाकी वासिष्ठ गौत्रकी त्रिशला क्षत्रियाणीकी कुक्षिमें संक्रमण कराऊं, इसीसे मेरा कल्याण होगा. और त्रिशलाराणीकी पुत्रीरूपी गर्भको देवानंदाकी कुक्षिमें प्राप्त कराऊं. इसप्रकार विचार कर इन्द्रने 'हरिनैगमेषि' नामक देवको बुलाया और कहने लगा कि हे देवानुप्रिय ! यह वात न हुई, न होवेगी और न होती है कि जो अरिहंत, चक्रवर्ती आदि अंत-प्रांतादि कुलोंमें नहीं आवें, नहीं आये और नहीं आवेंगे, परन्तु उग्र-भोग-क्षात्रियादि कुलोंमें आये, आतेहैं और आवेगें, तोभी अनंत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी व्यतीत होनेसे आश्चर्यकारी ऐसा बनाव वनताहै। यहांपर वर्तमान कालमें दस अच्छेरे हुये हैं उन्हें बतलाते हैं।

प्रथम अच्छेरा:—तीर्थंकरोंको केवल ज्ञान हुए बाद कोई भी उपसर्ग नहीं होसकता परन्तु भगवन् महावीर स्वामीको केवल ज्ञान होनेके पश्चात् समवशरण में उपसर्ग हुआ, कुशिष्य गौशालाने तेजो तोश्या * फेंकी,

* एकसमय वीरभगवन्—श्रावस्ती नगरीमें समोसरे गौशालाभी मैं तीर्थंकर हूं ऐसा कहता हुआ वहां आया, शहरमें दो तीर्थंकरोंके आनेकी प्रसिद्धिहुई गौतमस्वामी गौचरी गयेथे यह बात सुनकर भगवान्के पास आकर पूछने लगे कि यहां दूसरा तीर्थंकर कौनहै? तब भगवान्ने कहा यह तीर्थंकर नहीं किन्तु सरवण ग्राममें मंखली—सुभद्राका पुत्र गौशालामें जन्म होनेसे गौशाला नामकहै पहले मेरा शिष्य होकर कुछ सीखकर अब व्यर्थही तीर्थंकर बनताहै। जब गौशालाकी यह सत्यबात शहरमें प्रसिद्ध होनेपर गौशालाने सुनी तो बडा क्रोधायमान हुआ, उस समय भगवान्का शिष्य आनंद साधु गौचरी गयाथा गौशाला मिल गया बोलने लगा कि हे आनंद! मेरा एक दृष्टांत सुन ले. कई वणिक् द्रव्य उपार्जन के लिये विविधप्रकारके क्रियाणोंके गाडे भरकर विदेश जातेथे, जंगलमें जलकी जरूरत पडी खोज करने लगे वहां उदेयों के बडे २ चार गीले शिखर देखे, एकको तोडा उसमेंसे अच्छा ठंडा जल निकला सबने पिया और वर्तनभी भरलिये, दूसरा शिखर तोडने लगे तब एक वृद्धने कहा अपना जलका कार्य होगया अब दूसरा क्यों तोडतेहो तोभी न मानकर लोगोंने दूसराभी तोडडाला उसमेंसे बहुत स्वर्ण निकला, वृद्धके मनादि करनेपर भी लोभसे तीसराभी तोडडाला तो उसमेंसे रत्न निकले, फिरभी लोभसे चौथा तोडने लगे वृद्धने बहुत मना किया कि अपना द्रव्य उपार्जनका कार्यभी होगया अब अधिक लोभ मतकरो तोभी वृद्धका कहना न मानकर चौथाभी तोडडाला उसमेंसे दृष्टिविष सर्प निकला उसने अपनी दृष्टिके

भगवान्के सन्मुख सुनक्षत्र, और सर्वानुभूति नामक दो शिष्योंको जलाया, भगवान्के शरीरमें भी रक्त अतिसार हुआ, वह रक्त अतिसार वेदनीय कर्मोदयसे था, किन्तु लोकमें यह प्रसिद्ध हुआ कि तेजो लेश्याकी ज्वाला

जहरसे सबको मारडाला, परंतु हितोपदेश देनेवाले न्यायवान् वृद्ध वणिक्को वन देवताने उठाकर अपने स्थान पहुंचा दिया। इसीप्रकार हे आनंद! तुह्मारे धर्माचार्य बहुत संपदा प्राप्त होनेपरभी अधिक लोभसे मेरेलिये जैसे तैसे बोलकर मेरेको नाराज करताहै, इसलिये मैं अपने तपतेजसे भस्म करदूंगा तू शीघ्र जाकर कहदेना, वृद्ध वणिक्की तरह तेरेको नहीं मारुंगा. यह सुनकर आनंदमुनि घबराकर भगवान् के पास जाकर सब कहदिया तब भगवान्ने आनंद मुनिको कहाकि तू जाकर गौतमादि सबको सूचना करदे, गौशाला आवे तब उसके साथ भाषण नहीं करना, इधर उधर चले जाना, इतना होनेपर गौशाला आकर भगवान्से कहने लगा कि—यह मंखलीपुत्र गौशालाहै ऐसीबात क्यों कहतेहो वह तुह्मारा शिष्यतो मरगयाहै, मैं तो दूसरा हूं उसका शरीर परिषह—उपसर्ग सहन करनेमें समर्थ जानकर अधिष्टायक होकर रहाहूं ऐसा भगवान्का अपमान सहन न होसकनेसे सुनक्षत्र—सर्वानुभूत्ति दोनों मुनि गौशालाको जवाब देने लगे, उसने क्रोधसे तेजोलेश्या डालकर दोनोंको जलादिया वे आयुः पूर्णकरके देवलोकमें गये। उसके बाद भगवान् बोले गौशाला, वही तू है दूसरानहीं, जिसतरह कोतवालके सामने अंगुलियोंसे या तृणसे चौर अपनेको नहीं छुपा सकता, उसी तरह तूभी अपनेको नहीं छुपा सकता. ऐसा सत्य सुनकर गौशालाको बडा क्रोध आया भगवान्के ऊपर भी तेजोलेश्या डाली वह भगवान्को तीन प्रदक्षिणा देकर गौशालाके ही शरीरमें पीछी घुसगई शरीरको जलाया और वह सातदिन तक बहुत प्रकारकी वेदना भोग कर मरगया।

से दाहज्वर (रक्त आतिसार) भगवान्‌को हुआहे, यह अधिकार 'भगवती' सूत्रके १५ वें शतकमें है।

दूसरा अच्छेराः—गर्भापहार–किसी तीर्थंकरका गर्भापहार नहीं हुआ परन्तु महावीर स्वामीका हुआ इसका विशेष अधिकार आगे आवेगा।

तीसरा अच्छेराः—स्त्री तीर्थंकर–इसी जंबूद्वीपके पूर्व महाविदेह क्षेत्रके 'सलिलावती' विजयमें, 'वीतशोका' नगरी में 'महाबल' राजा राज्य करता था, एक समय महाबल राजाने अपने छः बाल मित्रोंके संग दीक्षा ग्रहणकी, इन सातों साधुओंने समान तप करने का नियम किया और सुखसे तप करने लगे, किन्तु महाबल मुनिने विचार किया कि मैं इनसे अधिक तप करूं, इससे जन्मांतरमें भी इनसे बडा होऊं, यह विचार करके पारणाके दिन महाबल मुनि मस्तक आदि दुःखनेका बहाना करके पारणा नहीं करते, इस प्रकार मायासे उन छः को पारणा करादेते और आप कपटसे विशेष तप करके वीस स्थानककी आराधना करतेथे इससे तीर्थंकर नाम कर्मका बंधन किया उसके बाद सातों साधु कालकरके वैजयंत विमानमें देव हुये, वहां से च्यवकर महाबलका जीव मिथिला नगरी में कुंभ राजाकी प्रभावती राणीकी कुक्षिमें पूर्व–भवकी मायाके

प्रभावसे स्थापनम अवतरण हुआ उस समय प्रभावतीने चौदह स्वप्न देखे, पूर्ण समय पुत्री हुई, 'मल्ली' कुंवरी नाम रक्खा गया, अनुक्रमसे मल्ली कुंवरी यौवनावस्थाको प्राप्त हुई. अब पूर्व-भवके छः ही मित्र अनुक्रमसे अलग २ राज्यमें उत्पन्न हुये थे, अपने पूर्व स्नेहसे मल्ली कुंवरीका पाणीग्रहण करनेके लिये एक साथ आये ❀. 'कुंभ' राजा बडा चिंतातुर हुआ, तब मल्ली कुंवरीने पिताकी चिंताका कारण पूछा ? राजाने सब

❀ अयोध्या नगरीमें सुप्रतिबुद्ध राजाकी पद्मावती रानीने पूजाके लिये बहुत सुन्दर हार बनायाथा, उसको देखकर राजा बहुत खुश होकर दूतोंसे कहने लगा ऐसा सुन्दर हार तुमने कहीं देखा है ! तब दूतोंने कहा इससेभी अधिक सुन्दर हार मल्लीकुंवरी बनाती है उसका रूपभी बहुत सुन्दरहै, यह सुनकर राजाने पूर्व-भवके स्नेहसे मल्लीकुंवरीकी याचना करने के लिये कुंभ राजाके पास दूत भेजा ॥ १ ॥ इसी समय चंपानगरीसे अरहन्नकादि व्यापारी नावोंमें बैठकर द्वीपान्तर में जारहे थे, उस समय इंद्रने देवोंकी सभामें अरहन्नक के धर्म-श्रद्धा की दृढताकी प्रशंसा की, उसको सुनकर किसी मिथ्यात्वी देवने उसकी परीक्षाके लिये समुद्रमें आकर नावोंके पास बडा उत्पात मचाया, सब लोग मृत्युके भयसे अपने २ इष्ट देवका स्मरण करने लगे, अरहन्नक ने भी सागारिक अनशन करदिया शांतिसे वीतराग का स्मरण करने लगा, तब देव उसके पास आकर कहने लगा-तू वीतरागका स्मरण छोडकर हरि-हरादिका स्मरण करे तो सब विघ्नोंका निवारण करदूं अन्यथा सबके मरनेका पाप तुझको लगेगा. यह सुनकर नावोंमें बैठने वाले सब लोगोंने भी अरहन्नक को वैसा करनेका बहुत आग्रह किया तोभी अरहन्नक अपने धर्मसे चलायमान नहीं हुआ, खूब दृढ रहा. उसको देख-

हाल कहा तब मल्ली कुंवरीने छःओं राजाओंको अलग २ दरवाजोंसे अशोकबाडीमें बुलानेके लिये व्यवस्था

कर देव प्रसन्न हो गया और हाथ जोड़कर स्तुति करके कहने लगा कि आपको धन्यहै, आपका जीवन सफलहै, आप पुण्यवान् हैं आपकी इंद्रने प्रशंसा की थी उसकी मैंने परीक्षा की, आपको कष्ट दिया, क्षमा करें, आप जो चाहें सो मुझसे मांग लें देवताका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता, तब अरहन्नक बोला इस-भव और पर-भवमें सुख देनेवाला जैन-धर्म मुझको प्राप्त होगयाहै, अब किसी वस्तुकी चाह मुझको नहींहै तिसपरभी देव दो कुंडलोंकी जोड़ी देकर अपने स्थान चलागया. समुद्रका सब उत्पात दूर होगया, सब-लोग कुशल-पूर्वक गंभीर-पतन पहुंचकर मिथिला नगरी गये, अरहन्नक ने कुंभ राजाको एक जोड़ी कुंडल भेंट किये, राजाने वे कुंडल मल्ली कुंवरीको दे दिये. अरहन्नकने वहांसे चंपा-नगरी जाकर अपने चन्द्रच्छाय राजाको दो कुंडल भेटकरदिये। तब राजाने अरहन्नक से पूछा कि तुमने विदेश में कोई आश्चर्य देखा हो तो उसका वर्णन करो, तब अरहन्नकने मल्लीकुंवरीके रूप का विशेष वर्णन किया उसको सुनकर इस राजाने भी कुंभ राजाके पास मल्ली की याचनाके लिये दूत भेजा ॥ २ ॥ एक समय मल्लीकुंवरीके कुंडल टूट जानेसे राजाने स्वर्णकारको बुलाकर कुंडल जोड़देनेकी आज्ञादी, स्वर्णकारने कहा यह देव-सम्बंधी कुंडल होनेसे मैं नहीं जोड़ सकता इससे राजाने नाराज होकर उसे देश निकाला दे दिया, वह स्वर्णकार बनारसी-नगरीमें रहनेके लिये संख-राजाके पास गया, राजाने देश छोडनेका कारण पूछा. उसने कुंडलका सम्बंध बतलाते हुये मल्लीकुंवरीके अद्भुत रूपका वर्णन किया, उसे सुनकर संख राजाने भी कुंभ राजाके पास मल्लीकी याचनाके लिये दूत भेजदिया ॥ ३ ॥ इसी अवसर पर रुक्मी राजाने अपनी पुत्रीको चार महीनों

की वहांपर पहलेसेही एक मंडप बनवा रक्खाथा, जिसमें एक अपने जैसी सोनेकी मूर्ति खडीकर रखीथी, उस मूर्तिके सिरमें एक छेद्था, जहांसे मल्लीकुंवरी प्रति दिन एक ग्रास उसमें डालती रहतीथी, उस छेद्के

तक हमैशा मंजन तथा खुब शृंगार करवाकर दूतोंमे पूछा–मेरी कन्याके समान क्या कोई रूपवान्‌है ! तब दूतोंने मल्लीकुंवरीके रूपका इससे अधिक वर्णन किया, जिससे रुक्मी राजाने भी मल्लीकी याचनाके लिये कुंभ राजाके पास दूत भेज दिया ।।४।। एकसमय मल्लीकुंवरीके छोटेभाई मल्लदिन्न महाराजकुंवरने एक चित्रशाला बनाई उसमें चित्रकारने लब्धिके प्रभावसे पर्देके अन्दर मल्लीकुंवरीका पैरका अंगूठा देखकरही मल्लीकुंवरीका सम्पूर्ण रूप चित्रित करलिया, मल्लदिन्न अपनी स्त्रियोंके संग क्रीड़ा करताहुआ अपनी बडी बहिनका रूप देख कर लज्जित हुआ, क्रोधसे चित्रकारका हाथ काटकर देशसे निकाल दिया, वह चित्रकार हस्तिनापुर जाकर अदीन–शत्रु राजासे मिला और उससे मल्लीकुंवरीके रूपका वर्णन किया, जिसे सुनकर अदीन–शत्रु राजाने भी कुंभ राजाके पास मल्लीकी याचनाके लिये दूत भेजा ॥ ५ ॥ एक समय कुंभ राजा की राज–सभामें धर्म–चर्चा करते हुये एक परिव्राजिका को मल्लीकुंवरीने जीत लिया उसका अपमान होनेसे उसने नाराज होकर कांपिलपुर नगरमें जाकर जितशत्रु राजाको मल्लीकुंवरीका चित्र लिखकर बताया उसे देखकर रूपमें मोहित होकर मल्लीकी याचनाके लिये कुंभ राजाके पास दूत भेज दिया ॥ ६ ॥ इसप्रकार छःओं राजाओंके दूत एकही समयमें कुंभ राजाके पास पहुँचे और सबने अपने २ राजाके लिये मल्लीकी याचनाकी. यह देखकर कुंभ राजा विचारमें पडगया और किसीको भी देना मंजूर न कर सबको निकाल दिया, उससे छःओं राजा अपनी २ सेना लेकर एकही समय कुंभ राजासे लडने आये।

ऊपर सोनेके पुष्पका ढक्कनथा, बडे मंडपके बाहिर छोटे २ छः मंडपथे, उन छओं मंडपोंमें अलग २ छःओं राजाओंको बुलाया, वे एक दूसरेको देख नहीं सकतेथे किन्तु अन्दर जालीथी, इस कारण सब राजा उस सोनेकी पुतलीको देख सकते थे, देखकर बहुत प्रसन्न हुए तब मल्लीकुंवरीने आकर उसका ढक्कन खोलदिया, उसमेंसे महादुर्गंध निकली छःओंही राजाओंने नाक ढककर मुंह फेरालिया, उस समय मल्लीकुंवरी प्रकट होकर कहनेलगी कि हे राजाओ ! यह सोनेकी पुतली * प्रतिदिन अन्नका एक कवल पडनेसे ऐसी दुर्गंध देतीहै कि तुम मुंह फेर लेतेहो तब नित्य अन्न खानेवाली, मलमूत्रसे युक्त, सात धातुमयी, अपवित्र स्त्रीके शरीरपर तुम कैसे प्रेम करतेहो, अपना पूर्वभव याद करो, अपन सातोंने एक साथ पूर्वभवमें दीक्षालीथी वहांसे देवलोकमें हो-

*—तीर्थंकर पदवी भोगकर इसी भवमें मुक्ति प्राप्त करने वाले भगवान्‌ने पुतली (मूर्ति) द्वारा उपदेश देनेका ऐसा प्रबंध किया, इसमें द्रव्य क्रिया लगी तोभी छःओं राजाओंको प्रतिबोध होनेका बडा लाभ मिला, इस तरहसे भगवान्‌की मूर्त्ति द्वारा द्रव्य पूजा करनेमें भी श्रावकोंको कुछ द्रव्य क्रिया लगतीहै तोभी परमात्माके ज्ञानादि गुणोंका स्मरण-ध्यान आदि अनंत लाभ मिलताहै, इसबात का भावार्थ समझने वाले भगवान्‌की द्रव्य पूजाका निषेध कभी नहीं कर सकतेहैं ।

कर यहां आये हैं, यह सुनकर छःओं राजाओंको जाति–स्मरण ज्ञान हुआ, अपना २ पूर्वभव सबने देखलिया और बोले कि आपने हमारे ऊपर बहुत उपकार कियाहै; अब हम क्या करें? तब मल्लीकुंवरीने कहा कि अपने २ नगरमें जाकर अपने २ पुत्रको राज्य देकर मेरे पास आवो, वे राजा चलेगये, तब मल्लीकुंवरीने वर्षी दान दिया और मार्गशिर सुदी एकादशीको दीक्षा ग्रहणकी, मौन व्रत लिया और उसी दिन केवल ज्ञान प्राप्त किया. तब छःओ राजाओंने भी आकर दीक्षा ग्रहणकी, इन उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लीनाथ स्वामीके समवसरणमें स्त्रियों की पर्षदा आगे और पुरुषोंकी पीछे, ऐसा मतांतर है, यह तीसरा अच्छेरा हुआ.

चौथा अच्छेराः—जिस जगह तीर्थंकरोंको केवल ज्ञान प्राप्त होवे, उसी जगह समवसरणकी रचना होने-पर भगवान्‌की देशना होती है वहीं पर पहली देशनामें व्रत पच्चक्खाण होते हैं, चतुर्विध संघकी स्थापना होती है यह अनादि नियमहै परंतु श्री महावीर स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ तब देवोंने समोवसरणकी रचनाकी पर्षदा मिली, सबने देशना सुनी किन्तु किसीने व्रत पच्चक्खाण नहीं लिया इसलिये यह चौथा अच्छेरा हुआ.

अब पांचवां अच्छेरा कहते हैं— एक द्वीपका वासुदेव दूसरे द्वीपमें नहीं जाय, ऐसी मर्यादा है परन्तु

श्रीकृष्ण वासुदेवको धातकी खंडमें जाना पडा, उसका सम्बन्ध संक्षेपसे ❀ यहां बतलाते हैं—धातकी खंडके भरत—क्षेत्रकी अमरकंका नामक नगरीका राजा पद्मनाभ नारदजीके मुखसे द्रौपदीके रूपकी प्रशंसा सुनकर

❀ इस टिप्पणीमें विस्तारसे बताया जाताहै– 'कांपील्यपुर' नगरके द्रुपद राजाकी चुलनीरानीके द्रौपदी नामकी कन्या हुयी। जब वह यौवनावस्थामें आयी तो उसका स्वयंवर मंडप तैयार हुआ, दूर २ से राजा आये, हस्तिनापुरसे युधिष्ठरादि पांचपुत्र सहित पांडु राजाभी आये। अर्जुनने राधावेध साधा। उस समय द्रौपदीने अर्जुनके कंठमें वरमाला डाली परन्तु द्रौपदीके जीवने बहुत भव पहले नागश्री ब्राह्मणीने साधुको कड़वे तुंबेका शाक देकर मार डाला-था, जिससे बहुत बार नरकमें जाकर अनेक तिर्यंच योनियोंमे फिरकर, पीछे एक गृहस्थके कुलमें 'सुकुमालिका' कन्या हुई, जब वह युवावस्थामें आयी तो उसके पिताने एक धनवान्‌के पुत्रके संग उसका विवाह किया कुसुमालिकाके शरीर के संयोगसे उसके पतिके शरीरमें महादाह उत्पन्न हुआ, उससे वह उसको छोड़कर भग गया, पीछे एक निर्धन मनुष्यको सुकुमालिकाका पति बनाया, वह भी उसको छोड़कर भग गया, इस दुःखसे सुकुमालिकाने वैराग्य पाकर साध्वियोंके पास दीक्षा ग्रहणकी और वनमें आतापना करने लगी. उस समय उसने एक वेश्याको पांच मनुष्यों के संग क्रीड़ा करते देखा, तो वह अपने दुर्भाग्यकी निंदा करने लगी और तपके फलसे दूसरे भवमें पांच पतिपानेका नियाणा किया. इस पूर्व भवके सम्बन्धसे वरमालाके अवसर पर उसे पांचोंही पांडवोंके गलेमें वरमाला देखनेमें

मोहितहोगया और उसने अपनेमित्र देवता द्वारा हस्तिनापुरसे उसे अपने पास मंगवालिया, जिसको वापिसलाने केलिये श्रीकृष्ण वासुदेवने पांडवोंके साथ लवण–समुद्रके अधिष्ठायक, सुस्थितनामक देव की सहायतासे समुद्र

आयी और आकाशमें देव–वाणी हुयी कि द्रौपदी पांच पतिवाली होने परभी सतीहै और चारण श्रमण मुनिने भी उसका पूर्वभव कहा. उसके बाद पांडव उसका पाणिग्रहण करके हस्तिनापुर आये और सुखसे रहने लगे। एक समय वहाँ नारद ऋषि आये, तब पांडवोंने आसनादिसे उनका सत्कार किया, थोडी देर ठहर कर वे अन्तःपुरमें द्रौपदीको देखनेके लिये गये, द्रौपदीने नारद ऋषिको आते देखा परन्तु अविरति, अपच्चक्खाणी, मिथ्यात्वी जान कर उनका आदर नहीं किया, नमस्कार भी नहीं किया, उनसे बोली तक नहीं, पहले जैसे बैठीथी वैसेही बैठीरही, तब नारद ऋषि क्रोधित हुए और मनमें विचार किया कि जो यह पाँच पतियोंका गर्व करती है तो मेराभी नाम नारद तभीहै जब मैं इसे महा संकटमें गिराऊँ। ऐसा विचार करके धातकी खंड द्वीपके पूर्व–भरत क्षेत्रमें अमरकंका राजधानीमें कापिल वासुदेवके सेवक पद्मनाभ राजाके पास गये, उस समय वह अपनी स्त्रियों सहित बागमें क्रीडा कर रहाथा, उसने नारदजी को आदर सहित नमस्कार करके आसन दिया और पूछने लगा कि हे ऋषि! आप सर्वत्र भ्रमण करते रहतेहैं क्या आपने मेरी स्त्रियोंके समान रूपवती स्त्रियाँ कहीं देखीहैं? नारदजी ने द्रौपदीको संकटमें गिरानेका समय देखकर कहा कि राजा! तुमतो कूप मंडूकके समान हो उसको अपना कुआही समुद्रसे बडा ज्ञात

पार कर अमरकंका जाकर पद्मनाभ राजाको हराकर और द्रौपदीको साथ लेकर वापिस आते समय विजय होनेकी खुशीमें अपना शंख बजाया, शंखकी आवाज सुनकर कपिलवासुदेव जो उस समय मुनिसुव्रत-

---

होताहै। तुमने अभी और सुन्दर स्त्रियोंको नहीं देखा, केवल इन्हींको देखाहै इसलिये इनकी ही इतनी प्रंशसा करता है. मैंने तो त्रिभुवनमें पांडवोंकी स्त्री द्रौपदीसे अधिक किसीको सुन्दर नहीं पाया, उसके बांये पैरके अंगूठे से भी तेरी सब स्त्रियां समानता नहीं कर सकती हैं। इतना कहकर नारद प्रस्थान कर गये। पद्मनाभ विचारने लगा कि मेरा जन्म तबही सफलहै जब मुझे वैसी स्त्री मिले, उसको यहां लानेका प्रयत्न करना चाहिये यह विचार करके पौषध शालामें आकर तीन उपवास करके पूर्व संगति मित्र देवकी आराधनाकी, तीसरे दिन देवने प्रगट होकर आराधना करनेका कारण पूछा पद्मनाभने उससे अपना इरादा कहा, देवने उत्तर दिया कि-द्रौपदी सतीहै अपना शील खंडन नहीं करेगी, परन्तु कामान्ध राजाने फिरभी देवसे द्रौपदीको लादेनेके लियेही कहा, देव आज्ञानुसार अपने भुवनमें सोती हुयी द्रौपदीको देव मायासे उठा लाया और पद्मनाभको सौंपदिया। उसने उसको अशोक वाडीमें रक्खा। देव जाते वक्त पद्मनाभसे कहने लगा कि तुमने मुझसे सती स्त्रीका हरण करवायाहै इसलिये मैं भविष्यमें आराधना करनेसे नहीं आऊंगा, मुझे स्मरण मत करना। यह कहकर देव अपने स्थान पर चलागया। प्रभातमें जब द्रौपदी जागी तब अपने आपको एक अपरिचित स्थानमें पाकर अत्यन्त विस्मित हुयी-इधर उधर मृगीके समान

स्वामी भगवान्‌की देशना सुनरहाथा, भगवान्‌से पूछने लगा—यह मेरा शंख किसने बजाया वा कोई नया वासुदेव पैदा हुआ ? तब भगवान्‌ने कहा—हे वासुदेव ! अमरकंका नगरीके राजाको जीतकर भरत—खंडके श्रीकृष्ण

चकित दृष्टिसे देखने लगी उसके मनमें नाना प्रकारके विचार उठने लगे-यह कौनसी वाडीहै, किसका गृहहै, कहां मैं आईहूँ, क्या मैं स्वप्न देखती हूँ ? मेरा घर और मेरे पति कहां रहगये, जब यह इस प्रकार विचारकर रहीथी तब पद्मनाभ राजा आकर कहने लगा हे द्रौपदी ! तू चिंता मतकर, मैंने देव शक्तिसे तेरा हरण करवायाहै मेरे साथ सुख भोग, क्रीडाकर, मैं सदा तेरी आज्ञाका पालन करूंगा। परन्तु द्रौपदी अपने शीलकी रक्षाके निमित्त बोलीकि हे देवानुप्रिय ! तुम छः महीने तक मेरा नामभी मत लेना, छः महीनेमें मेरे पीछे पांडव और उनके भाई श्री कृष्ण मेरे को छुडानेके लिये अवश्य आवेंगे, यदि वे इस अवधिमें न आवें तो मैं जो तू कहेगा उसे करूंगी। द्रौपदीके इस वचन को सुन कर पद्मनाभ सोचने लगा कि यहां कौन आसकता है, दो लाख योजन का लवण समुद्र बीचमें पडता है इसलिये उसने द्रौपदीको छः महीनेकी अवधि देदी। वह आयंबिलकी तपस्या करती हुयी रहने लगी। इधर जब पांडवोंने द्रौपदी को घरमें नहीं देखा तो सब स्थानों पर खोज करवाई। परन्तु कहीं भी पता नहीं मिला तो कुन्ती श्रीकृष्णजीके पास द्वारिका पहुँची और कहा कि हे पुत्र ! रात्रिको अपने गृहमें सोती हुयी द्रौपदीको किसी देव, दानव, राक्षस अथवा विद्याधरने हर लिया। चारों ओर ढूंढा परन्तु कहीं पता ही नहीं मिलता। अब तुम उसकी तलाश करो।

वासुदेव द्रौपदी को लेकर वापिस जारहे हैं और यह उनके शंखकी आवाजहै. भगवान्से यह सुनकर और अपने समान दूसरे वासुदेवको अपने खंडमें आया हुआ जानकर मिलनेकी इच्छासे भगवान्को वंदना करके

यह सुनकर श्रीकृष्णजी हँसीमें बोले कि पांच पांडवोंसे एक स्त्रीकी भी रक्षा नहीं हुई, जहां मैं अकेला ३२ हजार स्त्रियोंकी रक्षा करताहूँ. इसपर कुन्ती कहने लगी कि हे कृष्ण! यह समय हंसीका नहींहै शीघ्रही द्रौपदीकी तलाश करो. यह सुनकर श्रीकृष्णजी कुछ उपाय विचारने लगे। इतनेमें नारद ऋषि वहां आये और श्रीकृष्णको चिंतातुर देखकर बोले कि यादवराज! आप चिंतातुर कैसे हैं और कुन्ती क्यों आईहै? श्रीकृष्णजीने नारदजीसे द्रौपदीके विषय में पूछा। नारदजी कहने लगे कि द्रौपदी जैसी दुष्ट थी वैसाही फल उसको मिला, वह किसी तपस्वी, श्रमण, योगीको नहीं मानती थी, इसलिये दुष्टोंपर जितना दुःख पडे उतना ही थोड़ाहै. मैं तो उसे भली प्रकार जानता भी नहीं हूँ परन्तु द्रौपदीके समान एक स्त्री मैंने धातकी खंडमें अमरकंका राजधानीके स्वामी पद्मनाभकी अशोक बाड़ीमें देखी थी, यह कहकर नारदजी चल दिये। अब श्रीकृष्णजी भी यह सब नारदजीका ही प्रपंच जानकर पाडवों सहित अमरकंकाकी ओर चलकर, समुद्र के किनारे पहुँचे. वहां श्रीकृष्णजीने लवण सागरके अधिष्ठायक देवताकी आराधन की। देवने प्रकट होकर पूछा कि मेरे को आपने क्यों स्मरण किया, आपका जो प्रयोजन हो उसे कहिये, श्रीकृष्णजीने कहा कि हमको धातकी खंडमें अमरकंका राजधानी जानाहै अतः हमारी सेनाके लिये मार्ग दो, हमें द्रौपदीको लानाहै।

समुद्र तटपर आया परन्तु श्रीकृष्णवासुदेव बहुत दूर निकलगये थे तोभी मिलनेके लिये वापिस बुलानेके वास्ते कापिल वासुदेवने शंखकी आवाज की. श्रीकृष्ण वासुदेवने भी शंखकी आवाजमेंही कहा कि हम बहुत दूर निकल

देव कहने लगा कि बिना इन्द्रकी आज्ञाके मैं मार्ग नहीं दे सकता यदि आपकी आज्ञा हो तो द्रौपदीको यहां लाकर दूँ और पद्मनाभ राजाको राजधानी सहित समुद्रमें गिरा दूँ. तब श्रीकृष्णजी कहने लगे कि हे देव ! तुममें ऐसीही शक्तिहै परन्तु हमको छः रथका मार्ग दो मैं स्वयं जाऊँगा और उस पद्मनाभको जीतूँगा । तब देवने समुद्रमें छःरथ का मार्ग दिया, कृष्णजीने पांडवोंके साथ समुद्र का उल्लंघन करके अमरकंकाके उद्यानमें उतर कर पद्मनाभके पास एक दूत भेजा । दूतने पद्मनाभसे जाकर कहा कि हे राजा ! श्रीकृष्णजी आयेहैं, द्रौपदीको मेरे साथ भेज, तूने यह काम अच्छा नहीं किया जो पांडवोंकी स्त्रीका अपहरण किया , परन्तु अवभी तेरा कुछ नहीं बिगड़ाहै तू द्रौपदी को देदे । इसप्रकार दूतके वचन सुनकर पद्मनाभ कहने लगा कि हे दूत ! मैंने द्रौपदीको देनेके वास्ते नहीं बुलाया है तू जाकर अपने स्वामीसे कहदे कि मैं द्रौपदीको अपने बलसे लायाहूँ अब उसको बिना युद्ध किये नहीं देसकता क्योंकि मैंभी क्षत्रीहूँ । इस प्रकार दूतका अपमान कर निकाल दिया । दूतने सम्पूर्ण विवरण कृष्णजीसे कहा । कृष्णजीने यह विचार करके कि असाध्य रोग बिना औषधिके दूर नहीं होसकता, संग्रामकी तैयारी की. उस समय पांचों पांडव कहने लगे कि हे स्वामी ! यह तो हमारा कार्यहै इसलिये पहले हम युद्ध करेंगे जो हम भागें तो आप

गये हैं अब पीछे नहीं लौट सकते. आप स्नेह–भाव रखना। इसप्रकार एक क्षेत्रमें दो वासुदेवों का मिलना व शंखकी ध्वनिसे आपसमें वार्तालाप करना आजतक कभी नहीं हुआ इसलिये यहभी पांचवा–अच्छेरा हुआ।

हमारी सहायता करना। यह सुनकर श्रीकृष्णजी कहने लगे कि तुम बड़े भारी योद्धा हो किन्तु तुम्हारी वाणीके प्रभावसे तुम्हारा भंग होगा। यह सुनकर भी पांडव श्रीकृष्णजीसे आज्ञा लेकर शस्त्रोंसे सुसज्जितहो युद्ध करने के लिये चले। पद्मनाभने भी बड़ी भारी सेना लेकर पांडवोंके साथ युद्ध किया। भवितव्यताके वश पांडव पद्मनाभ के आगे भागे और भागते हुये उन्होंने सिंहनाद किया। श्रीकृष्णजी नाद सुनकर पांडवोंको भगा जानकर रथमें बैठकर, हाथमें धनुष लेकर पद्मनाभकी सेनाको एकही रथसे मथने लगे। धनुषकी टंकार और शंखके शब्दसे पद्मनाभके सब योद्धा भाग गये। पद्मनाभभी भागकर नगरीमें प्रवेश करके नगरीका दरवाज़ा बन्ध करके रहा। तब श्रीकृष्ण क्रोधित हुये और विचारने लगे कि यह नीच मुझे अपने गढ़का बल दिखाताहै इसलिये तब ही मैं हरिहूँ जब सिंहके समान पद्मनाभ रूपी हाथीको मारूं। यह सोचकर नृसिंहका रूप धारण करके हत्थल दे करके सर्व गढ़ गिरा दिया। उस समय सब नगर निवासी बड़े कम्पित होने लगे। उनके घर गिरने लगे. कृष्णजीका ऐसा पराक्रम देखकर पद्मनाभ डरगया और द्रौपदीकी शरणमें जाकर कहने लगा कि हे महासती! अब तू मेरी रक्षाकर! द्रौपदी कहने लगी कि हे नीच! मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि मेरे पीछे कृष्णजी आवेंगे, कृष्णजी बलवान् हैं,

अब छठा अच्छेरा कहते हैं:—तीर्थंकर भगवानोंको वंदना करनेके लिये इन्द्रादि देव, देवलोकसे जब यहां आते हैं, तब अपने २ मूल विमानोंको वहींपर छोडकर, बैक्रियसे नये विमान बनाकर उसमें बैठकर आते हैं

सत्य पुरुषहै जो तू जीवनकी आशा करता है तो मेरे कहे अनुसार काम कर–स्त्रीका भेष धारण करके मुखमें तिनका लेकर और मुझे आगे करके श्रीकृष्णके पास चल मैं तुझको श्रीकृष्णके पैरोंमें गिरवाऊँ। श्रीकृष्ण तो नम्रों पर क्रोध नहीं करते हैं। इस प्रकार करने से ही तेरा जीवन रह सकेगा। इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं है। पद्मनाभने वैसाही किया। वह जब कृष्णके चरणोंमें गिरा, तब कृष्णने कहा कि हे पद्मनाभ! तू यह नहीं जानता था कि द्रौपदी कृष्णकी भौजाई है, इसके पीछे आवेगा, परन्तु अन्धा पुरुष मस्तक फुटने सेही जानता है, जा तुझे जीवन दान दिया, तेरे किये हुये कर्मोंका फल तुझेही मिलेगा। इस द्रौपदीने तुझे जीवन दान दिलाया है। तब पद्मनाभने मनस्कार किया और श्रीकृष्णजी द्रौपदीको लेकर पांडवोंके साथ चले। हर्षित होकर श्रीकृष्णजीने शंख बजाया। उस शंखकी ध्वनिको श्री मुनिसुव्रतस्वामी तीर्थंकरके पास बैठे हुये वहाँके कपिल नामक वासुदेवने सुना. उसने तीर्थंकर से पूछा कि हे स्वामी! मेरा शंख किसने बजाया, क्या कोई नया वासुदेव हुआ है? तब श्री मुनि सुव्रत स्वामीने कृष्णके आनेका कारण कहा। कपिल वासुदेव तीर्थंकरका वचन सुनकर और उनको वंदना करके कृष्णजीसे मिलनेके लिये समुद्रके किनारे आया और छः रथ समुद्रमें, जाते हुये देखे। देखकर शंखमें कपिल वासदेव इस प्रकार बोलने

यह अनादि नियमहै परन्तु 'कौसंबी' नगरीमें जब श्री महावीर स्वामी समोवसरे तब वहां सूर्य और चन्द्र अपने २ मूल विमानमें बैठकर भगवान्को वंदना करनेके लिये आए. यह छठा अच्छेरा हुआ ॥ ६ ॥

लगा, हे! मित्र ठहरो २ एक बार पीछे लोटकर आवो, मैं पहाँ पर आपके दर्शनके लिये आया हूँ. तब कृष्णजीने शंखमें ही इस प्रकार उत्तर दिया कि हे भाई ! हम बहुत दूर आगये हैं इसलिये अब पीछे नहीं आसकते, तुम कृपा रखना, स्नेहकी वृद्धि करना । यह कहकर श्रीकृष्णजी आगे चले । कापिल वासुदेव भी पद्मनाभका अपमान करके अपनी राजधानीमें गया । इधर श्रीकृष्णजी सर्व समुद्रको उल्लंघन कर गंगा नदीके किनारे आये. वहां वे लवणाधिपसे वार्तालाप करने लगे और पांडवोंसे कहा कि तुम गंगा नदी पार करके नाव लौटा देना, तब तक मैं लवण समुद्रके अधिष्ठायकसे बातें करता हूँ. पांडव द्रौपदीके साथ नावमें बैठकर गंगापार आये और नावको एक स्थान पर छिपाकर कहने लगे कि देखें ! श्रीकृष्णजी अपनी भुजाओंके बलसे गंगा उत्तर कर आते हैं या नहीं । श्रीकृष्णजी बहुत समय तक राह देखते रहे परन्तु जब नावको लौटता नहीं देखा तो सोचने लगे कि क्या पांडव डूब गये ? या नाव टूट गई? ऐसा विचार करके चार भुजा बनाई. एकसे सारथी सहित रथ उठाया, दूसरीसे शस्त्र लिये, तीसरीसे घोडे पकडे और चौथीसे गंगा नदी तैरना शुरू किया । गंगा नदीका ६२॥ योजनका विस्तार है । श्रीकृष्णजी भुजासे इस प्रकार गंगामें तैरते हुये बहुत थक गये, तब गंगा देवीने प्रकट होकर उनकी सहायताकी, बीचमें स्थल बनाया

अब सातवां अच्छेरा कहते हैं—कौसंबी नगरीमें वीरा नामक एक कोली रहताथा, उसके बनमाला नामकी स्त्री बहुत रूपवान थी. वनमालाके रूपको देखकर वहांका राजा मोहित होगयाथा, वनमालाभी राजाको देखकर

वहां पर वे विश्राम लेकर स्वस्थ हुये और बाकी नदीको पार करके किनारे आये। वहां जब उन्होंने पांडवोंको हास्य सहित खडा देखा और नावभी देखी तब अत्यंत क्रोधातुर हुये और पांडवोंसे पूछने लगे—हे पांडवों! तुमने नाव क्यों नहीं भेजी? तब पांडव कहने लगे कि हे स्वामिन्! हमने आपका बल देखनेके लिये नाव नहीं भेजी। यह सुनकर श्रीकृष्णजी कहने गले कि हे पांडवों! जब पद्मनाभके आगे तुम पांचोंही भगेथे तब मैंने अकेले नेही जीतकर द्रौपदी तुमको लाकर दीथी, उस समय तुमने मेरा बल नहीं देखा जो इस समय गंगा तैरने में मेरा बल देखनेके लिये खडे हो? अरे पापियों मेरी दृष्टिसे दूर हो जाओ, मेरे देशमें रहना नहीं। यह कहकर, गदासे पांचों रथोंको चूर्ण करके द्वारिका आगये। जब कुन्तीने यह सुना कि श्रीकृष्णदेवने नाराज होकर पांडवोंको देश निकाल दिया, तब कुन्ती कृष्णके पास आकर विनति करके और उनकी आज्ञासे पांडवोंको बुलाकर उनके पैरों पर डाला और श्रीकृष्णकी आज्ञासे रथ मर्दनकी जगह 'रथ मर्दन' नवीन नगर बसाकर पांडव रहने लगे। कितने ही उसे 'पांडु मथुरा' भी कहते हैं। श्रीकृष्ण वासुदेवकी सेवा करने लगे, कृष्ण वासुदेव धातकी खंडमें गये, कपिल वासुदेवके साथ शंख ध्वनिसे वार्तालाप किया. यह पांचवा अच्छेरा हुआ ॥ ५ ॥

मोहित हुई, मंत्रीने दूतीको भेजकर वनमालाको राजाके अन्तःपुरमें पहुंचा दिया. राजा वनमालाके साथ सुख भोगता हुआ रहनेलगा, तब वीरा कोली वनमालाके प्रेमसे पागल होकर, हा वनमाला! हा वनमाला! चिल्लाता हुआ नगरी में इधर उधर घूमने लगा. एक समय वर्षा ऋतुमें राजा वनमाला सहित राजप्रासादके गोखमें बैठा हुआ वीरा कोलीका ऐसा बेहाल देखकर विचार करने लगा कि मुझ पापीने परस्त्रीका हरण किया, उस समय वनमालाभी विचार करने लगी कि मुझ पापीणीने ऐसे प्रेमी पतिका त्याग किया जो मेरे वियोगसे पागल होगया, दोनों सोचनेलगे कि अब हमारी क्या गति होगी. वे इसप्रकार विचारकर रहे थे, तब दैवयोगसे उनपर विजली गिरी, दोनों शुभ ध्यानसे मरकर हरिवर्ष क्षेत्रमें युगलियापने उत्पन्नहुये. उधर वीरा कोली भी उनको मरे जानकर अच्छा होगया और तापसी दीक्षा लेली, मरके किल्विषिक देवहुआ. तब अवधिज्ञानसे दोनोंको जुगलियेहुए जानकर सोचने लगा कि ये जुगलियेके भवसे च्यवकर देव होवेंगे, परन्तु मेरे वैरी देव नहीं होने चाहिये, ऐसा विचारकरके वहांसे दोनोंको उठाकर जहां इक्ष्वाकु वंशके राजा चंद्रकीर्ति अपुत्रिया मरा था और वहांके नगरके लोग उसकी जगह राजा बनानेके लिये बडे चिंतातुरथे, उनको राजा बनानेके लिये सौंप-

दिया, तव उसने विचार किया कि अव ये यहांसे राज्य करके, मांस खाकर मरके नरकमें जावेंगे, देव नहीं होसकेंगे. उसने लोगोंकोभी शिक्षा दी कि जव इनको भूखलगे तव कल्पवृक्षके फलोंके साथ मांस खानेको देना और मृगचर्या करवाना. इसके वाद देव उनका हरि हारिणी नाम रखकर अपने स्थानपर यह विचारता हुआ चलागया कि मांस खानेसे इनकी नरकगति होगी तव मेरी शत्रुता चुकेगी. नगर के लोगोंने उसकी आज्ञाका पालन किया, उन युगलियोंसे हरिवंश कुलकी उत्पत्ति हुई और वे दोनों मरकर नरकमें गये, यह सातवां अच्छेरा हुआ।

अव आठवां अच्छेरा कहते हैंः—इसी भरत-क्षेत्रमें 'विभेलसान्निवेश' में पूरण नामक सेठ रहताथा. उसने तापसी दीक्षा ली, दो उपवाससे पारणा करता, परन्तु पारणेके दिन चौकुणा पात्र लेकर भिक्षाके लिये जाता. पाहिले कोणमें पडीहुई भिक्षा जलचरोंको देता, दूसरे कोणमें पडीहुई काक वगैरह पक्षियोंको देता, तीसरेमें पडी हुई भिक्षा अभ्यागत तापसोंको देता और चौथेमें प्राप्तहुई भिक्षाको २१ वार जलसे धोकर आप भोजन करता। ऐसे १२ वर्ष तक तप किया और मरके चमरचंचा राजधानीमें चमरेन्द्र हुआ, वहां ज्ञानका उपयोग देनेपर सौधर्मेन्द्रके पैर अपने सिरपर देखे तव अत्यन्त क्रोधित हुआ और मंत्री देवोंको वुलाकर कहने लगा कि हे देवो !

यह दुष्ट अप्रार्थक वस्तुकी प्रार्थना करने वाला मेरे सिरपर पैररखकर कौन बैठाहै? तब मंत्रीदेवोंने कहा कि हे स्वामी! अनादि कालकी यही स्थिति है. इसमें क्रोध करना ठीक नहीं, आपके जैसे इन्द्र पाहिले बहुत हुए हैं, उनके ऊपर इसी प्रकार ऊपर रहे हुए इन्द्रके चरण रहे हैं इसलिये ईर्षा मत करो। ऐसा कहने परभी क्रोधसे कंपित चमरेन्द्र बोला कि तुमको ऊपर वाले इंद्रने कुछ दिया होगा, इसलिये इसप्रकार बोलते हो, मैं अभी जाकर उसे सिंहासनसे नीचे गिरा दूंगा, यह कहकर वह अपनी आयुधशालामें आया और फरसी शस्त्र हाथमें लेकर सौधर्म देवलोकमें जानेका इरादा किया, तब असुर कुमारदेवोंने बहुत मनाकिया तोभी चला, मार्गमें सुसुमार नगरके उद्यानमें श्री महावीर स्वामीको काउस्सगमें खडे देखकर वंदना करके भगवान्‌की शरण लेकर लाख योजनका रूप बनाया और जहां सौधर्म देवलोक है वहां सौधर्म वतंसक विमानमें जाकर एक पैर सौधर्म विमानकी पद्मवरवेदी पर रक्खा और दूसरा पैर सुधर्मा सभामें रखकर सब देवोंको क्षोभित करता हुआ ऊंचे स्वरसे कहनेलगा कि अरे देवों! तुम्हारा इन्द्र कहां है? वह दुष्ट मेरे ऊपर पैर रखकर बैठताहै, वह नीच अप्रार्थक वस्तुका प्रार्थकहै, अर्थात्–जिस वस्तु (मरने) की कोई भी इच्छा नहीं करता, उसकी इच्छा करताहै, अमावस्याका

जन्मा हुआ वह कहां हे ? उस दुष्टको मैं इस फरसीसे मारूंगा, इसप्रकार देवोंको डराने लगा । उस समय उसके रूपको देखकर सब देव, और देवांगनाएँ भयभीत हुए. उसके मुँहसे आगकी ज्वाला निकल रहीथी, होठ लंबे थे, गला कूपके समानथा, बिलके समान नाक, अग्निके समान नेत्र, सूपडेके समान कान, और कुशके समान दांत थे, गलेमें सर्प पडे हुए, हाथोंमें विच्छुओंको लटकाये हुए, काला शरीरवाला वह, कहीं ऊन्दरोंकी मालाऐं, कहीं नोलिये और कहीं चंदन गो लंबायमान लगाये हुए था. जब सौधर्मेन्द्रने कोलाहल सुना और देखा कि चमरेन्द्र मुझको सिंहासनसे नीचे गिरानेको आयाहै तब क्रोधित होकर हाथमें वज्र लेकर चमरेन्द्रपर फेंका. चमरेन्द्रने जब धग २ शब्द करते हुए और अग्नि ज्वाला निकालते हुए वज्रको आता हुआ देखा तो विचारने लगा कि मेरे तो ऐसा शस्त्र है नहीं, यह तो बडा अपूर्व शस्त्रहै। वज्र जब इसकी ओर आगे बढता हुआ दिखाई देने लगा तो यह डरकर भगा—उस समय सिरतो नीचे होगया और पैर ऊपर. जगह २ पर आभूषण मार्गमें गिरते जाते हैं, परंतु चमरेन्द्रकी नीचे जानेमें शक्ति अधिकहै और वज्रकी ऊपर जानेमें, इसालिये चमरेन्द्रको वज्र नहीं लगसका, और वह दुःखसे अपने शरीरका संकोच करता हुआ डरसे जहां महावीर स्वामी काउस्सगमें थे वहां

महावीर स्वामीकी शरणमें आगया। पीछेसे सौधर्मेन्द्रने विचार किया—यह चमरेन्द्र, अरिहंत अथवा अरिहंतकी प्रतिमा या भावित—आत्मा अनगार, इन तीनोंमेंसे किसीकी भी शरण लेकर आया होगा और मेरा वज्र उसके पीछे जावेगा इसलिये किसीकी आशातना न हो, यह विचारकर अवधिज्ञानका उपयोग दिया जब उसने जाना कि महावीर स्वामीकी शरण लेकर आयाहै, तो बडा पश्चाताप किया और शीघ्रही वज्रके पीछे चला, भगवान् श्री महावीर स्वामीके नजदीकसे वज्रको पकडा, उस समय इन्द्रकी अंगुलियोंकी वायुसे भगवान्के रोमोंको हवा लगी, ऐसा 'भगवती' सूत्रमें कहाहै. वज्रको लेकर कहने लगा कि हे चमरेन्द्र ! अब महावीर स्वामीके प्रभावसे तुझको मेरा भय नहीं होना चाहिये, मैंने तुझे छोडादिया। तब चमरेन्द्रनेभी क्षामणाकी और सौधर्मेन्द्रभी महावीर स्वामीको वंदना—नमस्कार करके, स्तुति करके, वज्रको लेकर, चमरेन्द्रसे मैत्री करके अपने स्थानपर देवलोकमें गया. चमरेन्द्रभी अपने ठिकाने गया, यह चमरेन्द्रका उत्पात नामा आठवां अच्छेरा हुआ।

अब नवमा अच्छेरा कहते हैं—ऋषभदेव स्वामी भरतके बिना ९९ पुत्र और भरतके ८ पुत्र, पांच सौ धनुष्य प्रमाणे उत्कृष्टि अवगाहना वाले ये १०८ पुरुष एक समयमें मोक्ष गये. यह नवमा अच्छेरा हुआ । इसका

कारण यह है कि–उत्कृष्टि अवगाहना वाले एक समयमें दो मोक्षमें जावें किन्तु १०८ नहीं जावें परन्तु ये गये इसलिये अच्छेरा कहा है ॥ ९ ॥

अब दसवां अच्छेरा कहते हैं–श्रीसुविधिनाथ नवम तीर्थंकरके मोक्षमेंगये बाद कालांतरमें साधुओंका विच्छेद तब लोगोंमें यति–साधुओंकी जगह असंयतियोंकी पूजा मान्यता हुई. यह दसवां अच्छेरा हुआ ॥१०॥

किस २ तीर्थंकरके बारेमें कौन २ से अच्छेरे हुए यह बतलाते हैं:—श्री ऋषभदेव स्वामी १०८ मुनियोंके मोक्षमें गये १, शीतलनाथ स्वामीके शासनमें हरिवंशकुलकी उत्पत्ति हुई २, नेमिनाथ स्वामीके समयमें श्री अमरकंका गये ३, मल्लीनाथ स्वामी स्त्री तीर्थंकर हुए ४, नवम तीर्थंकरसे लेकर सोलहवें शांतिनाथ स्वामी तक आठ तीर्थंकरोंके सात अंतरोंमें असंयातियोंकी पूजा हुई ५ और गर्भहरण १, देशना निष्फल २, समोवसरणमें तीर्थंकरको उपसर्ग ३, चन्द्र–सूर्यका मूल विमानसे आना ४ और चमरेन्द्रका उत्पात ५ ये पांच अच्छेरे श्री महावीर स्वामीके समयमें हुए।

अब देवेंद्र 'हरिनेगमेषि' देवता से कहताहै– हे देवानुप्रिय ! नाम–गौत्र–कर्मके क्षय नहीं होनेपर, जीर्ण

व पूर्ण नहीं होनेपर अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव अंत–प्रांतादि कुलोंमें आकर उत्पन्न हुये हैं, होते हैं और होवेंगे, परन्तु उनका जन्म योनि द्वारा न हुआहै, न होताहै और न होवेगा, तो भी श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी इस जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें माहण–कुंड–ग्राम–नगरमें कोडाल गौत्रवाले ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालंधर गौत्रकी देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न हुएहैं। इसलिये पहिले भी जो इन्द्र हुए, आगे होवेंगे तथा जो अभी हैं, उन सब इन्द्रोंका यह कर्तव्यहै कि वे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव,वासुदेवको अंतादि कुलोंसे लेकर उग्रादि कुलोंमें लाते हैं. इसलिये तू जा और श्री महावीर स्वामीको देवानंदाकी कुक्षिसे लेकर क्षत्रीय–कुंड–ग्राम–नगरमें काश्यप गौत्रीय सिद्धार्थ राजाकी वासिष्ठ गौत्रकी त्रिशला रानीकी कुक्षिमें संक्रमण कर और त्रिशलाकी पुत्रीरूपी गर्भको देवानंदाकी कुक्षिमें संक्रमण कर, यह मेरा कार्य कर. तब हरिनेगमेषि देवेंद्रकी इस आज्ञाको सुनकर हर्षित हुआ, संतोष पाया और हाथ जोडकर इन्द्रकी आज्ञा को स्वीकार करके वहांसे निकल कर उत्तर-पूर्व दिशाकी ओर ईशान कोनमें गया, वहां वैक्रीय समुद्घात करके जीव प्रदेशोंको बाहर निकाल कर संख्यात योजनका डंड ऊंचा करके कर्केतन, वज्र, वैडुर्य, लोहिताख्य,

मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगंधिक, ज्योतिरस, अंजन–पुलक, जातरूप, अंक, स्फटिक, अरिष्ट इत्यादि रत्नोंके असार पुद्गलोंको छोडकर, सार २ पुद्गलोंको ग्रहणकर दूसरी बार वैक्रीय समुद्घात करके उत्तर वैक्रीय शरीर बनाया. मूलरूप भवधारणीय शरीर वहींपर छोडकर, नवीन रूप करके शीघ्र गति से मनुष्य लोकमें आवे, उसका स्वरूप बतलाते हैं:– दो लाख, ८३ हजार, ५८० योजन, ६ कला एक डगलामें छोडने वाली चंडागति, चार लाख, ७२ हजार, ६३३ योजन, एक डगमें भरने वाली चपलागति, छः लाख, ६१ हजार, ६८६ योजन, ५४ कलाको एक पगके अंतरमें छोडनेवाली यत्नागति और आठ लाख, ५० हजार, ७४० योजन, १८ कलाको एक डगमें भरनेवाली वेगवती गति, ऐसी शीघ्र गतियोंसे चले तोभी छः महीनोंमें मनुष्य लोकमें नहीं आसके इसलिये दिव्य गतिसे असंख्य द्वीप–समुद्रोंका उल्लंघन करता हुआ वह हमिनेगमेषि देव इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें माहण कुंड-ग्राम-नगरमें जहांपर ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरमें देवानंदा ब्राह्मणी सोतीथी वहां आया, भगवन्को देखकर नमस्कार किया, परिवार सहित देवानंदा ब्राह्मणीको अपस्वापिनी निद्रा दी, भगवान्की माताके शरीरमेंसे अशुभ पुद्गलोंको दूर करके शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप किया और कहा–हे भगवन् ! मुझे

आज्ञा दो, ऐसा कहकर भगवान्‌को तथा भगवान्‌की माताको किसी प्रकारकी बाधा-पीडा न हो इस प्रकार देवशक्तिसे भगवान् श्री महावीर स्वामीको हाथ संपुटमें ग्रहण किया और क्षत्रीय—कुंड-ग्राम-नगरमें सिद्धार्थ राजाके महलोंमें सोती हुई त्रिशला रानीके पास आया, वहां आकर परिवार सहित त्रिशला क्षत्रियानीको अपस्वापिनी निद्रा दी, अशुभ पुद्गलोंको दूरकर, शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको त्रिशला रानीकी कुक्षिमें संचार किया * और त्रिशला रानीके पुत्रीरूपी गर्भको देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें संचार करके, जिसदिशासे आयाथा उसीदिशामें चलागया, अर्थात्—तिरछे लोकके असंख्य द्वीप-समुद्रोंका उल्लंघन करके, ऊर्ध्व देवलोकमें जहां सौधर्म देवलोकहै, जहां सौधर्मावतंसक विमानमें शक्रनामक सिंहासनपर इन्द्र

* कई महाशय गर्भ परिवर्त्तन को असंभव मानते हैं परन्तु वर्त्तमान कालमें प्रत्यक्ष रूपसे यह देखने में आता है कि डाक्टर स्त्रियोंके बीमारी आदि कारणों के उपस्थित होने पर, वैज्ञानिक विधिसे गर्भका परिवर्त्तन करते हैं। तत्त्व दृष्टिसे यही प्रकट है कि माताके गर्भमें जितने ही समय तक कर्म योग होताहै, उतने ही समय तक वह रहता है और उसके पश्चात् डाक्टर द्वारा परिवर्त्तन कर दिया जाताहै। इसी तरह देवानन्दाकी कुक्षिमें भगवान्‌का भी इतने ही समय तक ठहरने का कर्म योग था और उसके पूर्ण होने पर देवता द्वारा उनका स्थानान्तर किया गया। इसका विशेष निर्णय 'श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्वाद' नामक ग्रन्थसे जान लेना चाहिये.

बैठाहै, वहांपर वह हरिनेगमेषि देव आया और आपकी आज्ञानुसार मैंने सर्वकार्य कियाहै ऐसा कहनेपर इन्द्र ने उसका सत्कार किया ॥ तिसकाल और तिससमयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी जब देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें थे, तब अवधि ज्ञानसे वह जानतेथे कि अभी इन्द्रकी आज्ञासे हरिनेगमेषि देव आकर मुझको त्रिशला रानीकी कुक्षिमें संचारण करेगा, परन्तु जब संचारण किया गया, तब देवके अतीव शीघ्रता-पूर्वक कार्य करनेके कारण भगवान् नहीं जानसके और त्रिशला रानीकी कुक्षिमें आनेके बाद जान लिया कि हरिनेगमेषि देवने देवानंदाकी कुक्षिसे त्रिशलाकी कुक्षिमें मेरा संक्रमण करायाहै। उत्तराफल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेसे देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिसे भगवान्को ग्रहण करके त्रिशला रानी की कुक्षिमें, इन्द्रकी आज्ञा व भगवान्की भक्तिसे, हरिनेगमेषि देवने, वर्षाकालके तीसरे महीने के पंचमपक्षमें आश्विन कृष्ण १३ के दिन ८२ दिन गये बाद ८३ वें दिनकी रात्रिमें जब भगवान्का संक्रमण किया, तब आधी रात्रिके वक्त कुछ सोती कुछ जागती हुई देवानंदा ब्राह्मणी मेरे १४ महास्वप्नोंको, सिद्धार्थ राजाकी रानी त्रिशलाने हरण कर लिया, ऐसा स्वप्न देखकर जागृत हुई। यहांपर दूसरा व्याख्यान सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अब तीसरा व्याख्यान कहते हैं—दूसरे व्याख्यानमें श्री महावीर स्वामीका गर्भहरणरूप दूसरा च्यवन कल्याणक कहागया अब तीसरे व्याख्यानमें त्रिशला रानीने १४ स्वप्न देखे उसका वर्णन करते हैं:— जिस राजमहलमें त्रिशला रानीने १४ महास्वप्न देखे उस राजमहलका इसप्रकार वर्णन करते हैं:— उस भवनके अन्दर सर्व दिवारोंमें नाना प्रकारके चित्र अंकितहैं, सफेद कलीसे युक्त तथा कोमल २ पाषणोंसे घोटाहुआ चन्द्रमंडल जैसा देदीप्यमान बाहरका प्रदेशहै, अन्दरकी छतमें रमणीक, विचित्र चंदवे बंधेहुये हैं, उस भवनके अन्दर चन्द्रकान्तादि मणिरत्नों तथा वैडुर्य्य माणिक वगैरहके कारण अंधकार दूर होगयाहै, न बहुत ऊंचा और न बहुत नीचा उसका आंगन सोनेके थालके जैसा शोभित होरहाहै, वह भवन कृष्णागर, शिल्हारस, चंदन, लोबान आदि दशांग धूपसे वासित मघ मघायमान है तथा कर्पूर, कस्तूरी वगैरह सुगन्धी द्रव्योंकी गोलीके जैसा सुगन्धितहै. अब जिस शय्यापर सोती हुई त्रिशला रानी इन स्वप्नोंको देखती है, उस शय्या का वर्णन करते हैं:— वह शय्या अत्यन्त अवर्णनीय, देखनेसे मालूमकी जाने योग्य और पुण्यवानों के योग्यहै. सोनेकी उस सेजकी ईसें हैं, सोनेकेही ऊपले हैं, और प्रवाल रत्नों (मूंगों) के पाये हैं, रेशमकी डोरीसे

विचित्र भांतिसे गुंथीहुई वह सेज है, हंसकी पांखोंसे तथा आककी रुईसे भराहुआ उस सेजके ऊपरका गदेलाहै, उस सेजके दोनों ओर शरीरके बराबर लम्बे तकिये हैं, पैरोंकी जगहभी तकिये हैं इसलिये दोनों तरफसे सेज ऊंची है, बीचमें नीची है, गंगानदीके किनारे की वालूरेतके समान सुकुमार तथा नर्म वह शय्या है, जब उसपर सोना-बैठना न हो तब वह सेज धूली वगैरहसे बचाई जानेके लिये उज्वल वस्त्रसे ढकी हुई रहती है परन्तु सोनेके वक्त वह वस्त्र हटादिया जाताहै, शय्याकी शोभाके लिये ऊपर लालवस्त्र बिछाहुआहै, बुगले के चर्म, रुई, बूर नामकी बनस्पतिके फूल, मक्खन और आकडेकी रुई जैसी अत्यन्त धवल, रमणीक तथा कोमल स्पर्शवाली है और सुगन्धित पुष्प व चूर्ण उस शय्यापर रक्खे हुये हैं, जिन पुष्पों व चूर्णसे वह शय्या अत्यन्त सुगन्धितहै, उस शय्यापर मध्य रात्रिमें कुछ निद्रालेती कुछ जागती हुई त्रिशला रानीने जिन १४ स्वप्नोंको देखा, उन स्वप्नों का वर्णन करते हैं:—श्री आदीश्वर भगवान्की माताने पहिले स्वप्नमें वृषभ देखा तथा श्री महावीर स्वामीकी माताने पहिले सिंह देखा और बाईस तीर्थंकरोंकी माताओंने पहिले हाथी देखा था इसलिये बहुत तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे सामान्य पाठकी रक्षाके लिये यहांपर सूत्रकारने पहिले हाथीका वर्णन किया है.

चौदह स्वप्नों की आदिमें, प्रथम स्वप्नमें त्रिशलाराणी ने हाथी देखा—वह हाथी बडा तेजस्वी, शांत, चार दांतवाला, मोतीके हार, क्षीर समुद्र, चंद्रमाकी किरण, जलके कण, चांदीके वैताढ्य पर्वत समान और वर्षा वर्षने के बाद जैसे बादल सफेद होते हैं वैसे सफेद वर्ण वाला है। उस हाथीके कुम्भस्थल के मदकी सुगंधि से आकर्षित हुए भँवर गुंजार कर रहे हैं। वह हाथी इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभा पारहाहै। और वह हाथी इस तरहसे गरजताहै मानों वर्षाऋतुमें बादल गरज रहे हों; एक हजार आठ लक्षण सहित विशाल अंग वाला वह हाथी है ॥ १ ॥ दूसरे स्वप्नमें बैल देखा—वह वृषभ धवल कमलके पत्तोंके समूहसे भी अधिक श्वेत वर्ण वालाहै, बडा कांतिवान्, प्रभाशाली और सर्व दिशाओंको प्रकाशित करने वालाहै, उसकी शोभाकी बाहुल्यतासे स्फुरती हुई चंचल स्कंद प्रदेशमें स्थूंभी शोभायमान होरही है। उसके रोम निर्मल तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं और बडी शोभाको प्राप्त होरहे हैं, मानों तैलादिसे मालिश किये गये हों, उस वृषभका शरीर स्थिर तथा अत्यन्त सुन्दर है और उसके अंग उपांगमें कृषपना, पुष्टपना जैसा चाहिये, वैसाही शोभायमान हो रहाहै। उसके सींग अत्यन्त दृढ, गोल, महा शोभायुक्त, मैलादि रहित, श्याम, तीक्ष्ण और तैलादिसे ओपे

हुये हैं। वह वृषभ बडा शांत-दयालुहै और उसके मुंहमें उज्वल मोतियोंकी मालाके समान दांत शोभायमान हैं ॥ २ ॥ तीसरे स्वप्नमें सिंह देखा-वह सिंह मोतियोंके हारके समूह, क्षीर समुद्र, चंद्र किरण जलके बिंदु तथा चांदीके पर्वतके तुल्य धवल वर्णवाला है। वह अत्यन्त सुन्दर तथा दर्शनीयहै। उसकी प्रकोष्टिका दृढ तथा उसका मुंह गोल, उज्वल और तीक्ष्ण दाढाओं वालाहै। उसके होंठ, किसी चित्रकारने बडी सावधानीसे कमल-पत्र चित्रित किये हों, वैसे सुन्दर दिखते हैं तथा लाल कमलके पत्तेके समान उसके मुंहसे निकली हुई लपलपायमान जिव्हा शोभित है। उसके दोनों पीले नेत्र विजली तथा मुसेमें गाले हुए सोनेके समान आवृत्त वाले और चंचलहैं, उसकी जंघायें विस्तीर्ण और कंधा मजबूतहै। वह सिंह सुकुमार, स्वच्छ, लम्बे-चौडे आकारमय शुभ लक्षणों वाली केसरोंकी छटासे विराजमान है, उस सिंहने पृथ्वी पर पूँछको फटकार करके, फिर उठाकर अच्छी तरहसे दोनों कानोंके बीचमें कुंडलाकार करलिया है। वह सिंह क्रूर तथा दुष्ट नहीं है किन्तु शांत और सौम्याकार वाला है। तीक्ष्ण नखवाले ऐसे सिंहको अनेक प्रकारकी लीला करते हुए आकाशसे उतरते और अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए त्रिशला राणीने देखा ॥ ३ ॥ चौथे स्वप्नमें लक्ष्मी देवीको देखा-उस

लक्ष्मी देवीका प्रशस्त रूप वर्णन करते हैं–प्रायः देवोंका जब वर्णन करते हैं, तब चरणोंसे ही करते हैं और जब मनुष्योंका वर्णन किया जाताहै तब मस्तिष्कसे आरंभ करते हैं। इसलिये लक्ष्मी देवीका वर्णन प्रथम चरणोंसे करते हैः–अच्छी तरहसे रक्खे हुए सोनेके कछुवेके समान मध्यमें ऊँचे और आसपासमें नीचे चरणहैं, नख अत्यन्त उन्नत, सुकुमार, सचीक्कण तथा लालहैं, हाथ–पैरोंकी अंगुलियाँ कमलके पत्रके समान कोमलहैं, और पिंडियां कुरुविंद भूषण विशेषके जैसी हैं, अथवा केलके स्तंभ जैसी हैं, वे पिंडियां गोल अनुक्रमसे नीचे पतली ऊपर २ स्थूल होती हुई शोभायमान हैं, गोडा गुप्त और ऐरावत हाथीकी सूंडके समान जंघा हैं कमरमें सोनेका कंदोरा है, नाभीसे लेकर स्तनों तक रोम राजी शोभायमान है। प्रायः स्त्रियोंके शरीरके इस विभागमें रोम–राजी नहीं होती है और विशेष कर देवियोंके तो होतीही नहीं, तथापि कवियोंका श्रृंगार स्वभाव होनेसे रोम–राजीका वर्णन किया है. वह रोम–राजी कज्जलके तुल्य श्याम वर्णवाली है और भँवरोंकी श्रेणिके समान तथा सजल मेघ–घटा जैसी काली है. कटि–प्रदेश मुष्टि–ग्राह्य, मध्य कटि–प्रदेश तीन वलय सहित है. उसके अंगोपांग चन्द्रकांतादिमणि और माणिक्यादि रत्नोंसे जटित स्वर्णमय सर्व आभूषणों

से भूषित हैं। स्वर्ण कलशके समान हृदयमें दोनों स्तन हारों तथा मुकुंदक पुष्पोंकी मालासे शोभित हैं उसके शरीरमें चतुर स्त्रियोंने मोतियोंकी जाली सहित वस्त्र-आभूषण पहिराये हैं. हृदयमें सौनेयोंकी माला, कंठ में मणिसूत्र और कानोंमें दो कुंडल हैं. इस प्रकार आभूषणोंकी शोभासे लक्ष्मी देवीका मुंह विराजमान है। और जैसे—एक राजा कुटुम्बसे शोभित होता है, वैसेही उसका मुँह आभूषणोंसे शोभा पारहा हैं। उसके दोनों नैत्र निर्मल कमल—पत्र सदृश दीर्घ, तीक्ष्ण तथा विशाल हैं। वह हाथमें कमलका पंखा लिये है जिससे जब वह लीलाके लिये चलाती है तब मकरंद गिरता है। उसका केश पाश स्वच्छ, सघन, काला तथा कमर तक लंबायमान है. इस प्रकार लक्ष्मीदेवीके रूपका वर्णन चरण—नखोंसे लेकर वेणी तक किया गया है*, हेमवंत पर्वतकी चोटी + पर बैठी हुई उसको चारों ओरसे आकर हाथी सूंडमें जल भर २ कर स्नान कराते हैं।

* ब्रह्मचारी साधुओंको प्रसंगवश शृंगारके विषयकी व्याख्यामें ऐसे विशेषण सिर्फ प्रसंगका विषय अपूर्ण न रहने के लिये लिखने पड़ते हैं.

+ अब लक्ष्मी देवीके निवास—स्थानका वर्णन करते हैंः—इस भरत—क्षेत्रके उत्तरमें एक हजार ५२ योजन; १२ कला चौड़ा और सौ योजन ऊँचा स्वर्णमय और शाश्वत हेमवंत नामक पर्वत है, उस पर दश योजन गहरा पांचसौ योजन

पांचवें स्वप्नमें पुष्पोंकी दो मालायें देखी–उनमें कल्प वृक्षके पुष्प, चंपे के पुष्प, अशोक, नाग, पुन्नाग, पर्यंगु, सिरीष, मोगरा, मालती, जाई, जुई, कोल, कोज, कोरंटक, दमणो, नवमाल्लिका, बकुल, वासंतिका, कमल, उत्पल, पुंडरीक, कुंद, अतिमुक्तक इत्यादि के पुष्प लगे हुए हैं तथा जिनके बीचमें आमकी मंजरियाँ गुंथी हुई हैं.

चौडा, हजार योजन लंबा, वज्रमय तला वाला तथा हीरेकी भींतवाला, निर्मल जलसे भरा हुआ, पद्महृद है। उसमें लक्ष्मी देवीके रहने योग्य कमल है। वह कमल एक योजन लम्बा–चौडा, दश योजन पानीमें और दो कोस पानीके ऊपर तथा तीन योजनसे कुछ अधिक परिधिवाला है। हीरेका उसका मूल है, नीलमका कंद है, इन्द्र नीलमकी नाल है, लाल सोनेके बाहरके पत्र और हलके लाल सोनेके अन्दरके पत्र हैं, जिसके अन्दर बीज कोशरूप सोनेकी कर्णिका है, लाल सोनेकी जिसकी केशरा है जो दो कोस लम्बी–चौडी एक कोस ऊँची तथा तीन कोससे कुछ अधिक परिधिवाली है, कर्णिकाके मध्य भागमें श्रीदेवी के योग्य भवन है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौडा और कुछ कम एक कोस ऊँचा है. उस भवनके पूर्व, दक्षिण व उत्तरमें ५०० धनुष्य ऊँचे तथा २५० धनुष्य चौडे तीन दरवाजे हैं और उसी भवनमें २५० धनुष्य प्रमाण वाली मणिमय वेदी है, जिस पर श्री देवीके योग्य शय्या है. उपरोक्त मूल–कमल १०८ कमलोंसे गोल वींटा हुआहै। ये सब कमल मूल–कमलसे आधे २ हैं, जिनमें श्री देवीके आभूषणहैं, उनके बाहर कमलोंका दूसरा गोलाकार वलयहै, जिसमें श्री देवीके ४ हजार सामानिक देवियोंके रहनेके लिये ४

ऐसी दोनों मालाओं के पुष्पोंकी मनोहर गंधसे आकर्षित भ्रमर गुंजारव कर रहे हैं। सर्व ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले, सरस, सुगंधी व पंचवर्ण वाले पुष्पों से गुंथी ये दोनों मालायें हैं, जिनमें श्वेतवर्ण वाले पुष्प अधिक हैं, हरे, श्याम, लाल पुष्प भी जहां २ शोभादेते हैं वहां २ गुंथे हुये हैं ॥ ५ ॥

छट्ठे स्वप्नमें पूर्णिमाका चन्द्र देखा—जो गायके दूधके फेण, जलके कण, चाँदीके कलश जैसा धवल तथा

हजार कमल वायव्य, उत्तर, ईशान, इन तीन दिशाओं में हैं। श्री देवीके मन्त्री स्थानीय ४ महात्तरा देवियोंके ४ कमल पूर्व दिशामें, श्री देवी के अभ्यंतर-पर्षदाके ८ हजार गुरु स्थानीय देवोंके ८ हजार कमल अग्नि कोनमें मध्यम-पर्षदाके १० हजार मित्र स्थानीय देवोंके १० हजार कमल दक्षिण दिशामें, बाह्य-पर्षदाके नौकर स्थानीय देवोंके १२ हजार कमल नैऋत कोनेमें और श्री देवीके हाथी, घोडे, रथ, पैदल, महिष, नाटक, गन्धर्व इन सात सेनाओंके सेनापतियोंके सात कमल पश्चिम दिशामें हैं। श्री देवी के १६ हजार अंग-रक्षक देवोंके १६ हजार कमल तीसरे वलयमें हैं और चौथे वलयमें श्रीदेवीके ३२ लाख अभ्यंतराभियोगिक देवों के ३२ लाख कमल हैं, तथा पांचवें वलयमें मध्यमाभियोगिक देवोंके ४० लाख कमल और छट्ठे वलयमें बाह्याभियोगिक देवोंके ४८ लाख कमल हैं. इस प्रकार ये सब १ करोड, २० लाख, ५० हजार, १२० कमल होते हैं. ये सब कमल अनुक्रमसे अर्ध २ प्रमाण वाले तथा शाश्वत हैं और इन कमलों में रहने वाले देव-देवी श्री देवीके आज्ञा-कारी हैं।

हृदय और नेत्रोंको आनन्द-दायक, सर्व कलायुक्त, तमनाशक, शुक्लपक्षमें वृद्धिको प्राप्त होने वाला, कुमुदवनों का
बोधक, रात्रिकी शोभा बढ़ाने वाला, उज्वल दर्पणके तुल्य श्वेत, आकाश रूपी तालावमें हंस जैसा, दोनों पक्षोंसे
पूर्ण, सर्व तारा नक्षत्रों को सुशोभित करने वाला, कामके बाणोंको पूरणे वाला तथा समुद्रके जलकी वृद्धि
करने वाला है। वह अपने उदयसे विरही पुरुष तथा विरहिनी स्त्रीको अत्याधिकदुःखित करने वाला, सौम्यता
के कारण सर्व—प्रिय, आकाश-मंडलमें तिलक जैसा तथा रोहिणी के हृदयका बल्लभ* है ॥ ६ ॥ सातवें स्वप्न
में सूर्य देखा— वह सूर्य्य अन्धकार हरने वाला, जाज्वल्यमान् तेजवाला, फूले हुये अशोक वृक्ष, केसूके पुष्प,
शुककी चोंच, तथा चणोठीके अर्ध भागके सदृश रक्तवर्ण वाला और कमलोंको विकसित करके कमल
वनोंकी शोभा बढ़ाने वाला है। ज्योतिष—शास्त्रको बतलाने वाला, ज्योतिष—चक्र ग्रहोंका राजा वह आकाश
में साक्षात् प्रदीपके तुल्य विराजमान है। वह हिम-पटलका मिटाने वाला, रात्रिका विनाशक, उदय और अस्त
समय दो २ घडी सुखसे और बाकीके समयमें दुःखसे देखने योग्य, उदय और अस्त दोनोंही समयमें एकसा

* चन्द्र की रोहिणी नक्षत्र स्त्री है, ऐसी लोकिक कहावत है।

लाल तथा जगत्का चक्षुभूतहै. जिस प्रकार राजाके अन्तःपुरमें जानेसे मनुष्योंको भय होताहै, उसी प्रकार रात्रिमें चलने वाले पुरुषों को भय होताहै परंतु सूर्योदयमें पाथिक हर्षित होकर चलते हैं क्योंकि उस समय उन्हें किसी तरहका भय नहीं रहताहै। वह अपने उदयसे शीतके वेगका हरण करने वाला, मेरुपर्वतके चारों ओर प्रदक्षिणा देने वाला, विस्तीर्ण भूमंडलको रक्त करने वाला तथा अपनी हजार * किरणोंके बलसे चंद्रादि ग्रह, नक्षत्र, तथा तारागणों की प्रभाको दूर करने वाला है ॥ ७ ॥

आठवें स्वप्नमें सोने के डंडे वाला तथा १००८ चक्री वाला ध्वज देखा—उसमें नीली, पीली, लाल, श्याम और श्वेत इन पांच प्रकारके वर्णों वाले वस्त्रोंकी ध्वजायें लगी हुई हैं और उसके सिरपर अत्यन्त सुन्दर तथा विचित्र रंगों वाले मयूर पंख विराजमानहैं। वह ध्वज अधिक शोभायमान है, उस ध्वजके ऊपर एक बडी ध्वजा लगी

* चैत्र मासमें सूर्य्य के १२००, किरणें होतीं हैं, वैशाखमें १३००, ज्येष्ठमें १४००, आषाढमें १५००, श्रावण–भाद्रपदमें १४००, आश्विन में १६००, कार्त्तिक में ११००, मार्गशीर्ष में १०५०, पौष में १०००, माघ में ११००, और फाल्गुण में १०५०, ऐसा ग्रंथों में कहा है।

हुई है जिसमें स्फटिक, शंख, कुन्दके पुष्प, जलके कण, चाँदीके कलशके तुल्य श्वेत सिंहका रूप लिखा हुआहै जो सिंह, हवासे ध्वजाके हिलनेपर, आकाश मंडलको भेदन करता हुआ मालूम होताहै और मंद २ तथा निरुपद्रव वायुसे थोडी कंपायमान वह ध्वजा अत्यन्त शोभित होरही है ॥ ८ ॥ नवम स्वप्नमें त्रिशला राणीने उत्तम सोनेका अत्यन्त सुन्दर सूर्य्य–मंडलके जैसा प्रकाशवान् तथा सुगन्धी जलसे भरा हुवा एक पूर्ण कलश देखा– वह कुम्भ कमलोंसे घिरा हुआ, सर्व मंगलकारी, रत्नोंके कमलपर रक्खा हुआ, नेत्रोंके लिये आनन्द्दायक, प्रभा-युक्त, सर्व दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ, साक्षात् लक्ष्मीका घर जैसा, पाप रहित, शुभ तथा भास्वरहै और कंठमें सर्व ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले सरस, सुगन्धी पुष्पोंकी माला पहिने हुये है ॥ ९ ॥ दशवें स्वप्नमें पद्मसरोवर देखा– जिसमें सूर्यके उदयसे सहस्त्रदल कमल खिल रहे हैं, जिसका जल विकस्वरमान् कमलों के मकरंदसे सुगन्धमय है तथा कमलों के पुष्प, पत्रोंसे पीले वर्ण वाला दिखाई देरहा है और जिसमें अनेकों जलचर सुख पूर्वक रहते हैं। कमलनी के पत्रोंपर जल–बिन्दु पडे हुये ऐसे मालूम होते हैं मानों नीलमणि-जाटित आंगनमें मोती जडे हों। उस विशाल पद्मसरोवरमें उत्पन्न हुए सूर्य विकासी कमल,

चंद्रविकासी कुवलय, पद्म, उत्पल (नीलकमल), तामरस (महाकमल), पुंडरीक (श्वेत कमल), रक्त कमल, और पीत कमल इत्यादि कमलों में प्रसन्न भ्रमरगण, सुगंधीसे आकर्षित हुए, गुंजारव कर रहे हैं और उस सरोवरमें कदंबक, कलहंस, चक्रवाक, बालहंस, सारस इत्यादि पक्षी गर्व-पूर्वक निवास कर रहेहैं ॥१०॥ ग्यारहवें स्वप्नमें चन्द्रमाकी किरणों जेसी शोभावाले क्षीर-समुद्रको देखा- जिस समुद्रका जल चारों दिशाओंमें बढरहा है तथा चपलसे भी चपल और अत्यन्त ऊँची उठनेवाली कल्लोलें तट-प्रदेशसे टकरा २ कर उसे क्षोभित करती हुई जोरका शब्द कररही हैं. वे लहरें पहिले छोटी, पीछे बडी इस प्रकार निर्मल, उत्कट क्रमके साथ दौडती हुई अत्यन्त शोभित होरही हैं। उस समुद्रमें महामगरमच्छ, तिमिमच्छ, तिमितिमिगलमच्छ (महाकाय होनेसे दूसरे मच्छोंको निगलें तथा उनको रोकें ऐसे मच्छ), तिलतिलकलघु मच्छ, ये सब जलचर क्रीडा करते हुये पानी पर जब २ अपनी पूँछ पछाडते हैं तो उस (पानी) पर झाग उत्पन्न होते हैं जो फेण किनारे पर आकर कर्पूरके ढेरके तुल्य दिखाई देते हैं और उसी समुद्रमें गंगा, सिन्धु, सीता, सीतोदादि महानादियां बडे वेगसे आकर गिरती हैं. यद्यपि ये नादियां क्षीर समुद्रमें नहीं गिरती,

तथापिं समुद्रकी शोभारूपमें इनका वर्णन किया गया है ॥ ११ ॥ बारहवें स्वप्नमें पुंडरीक नामक विमान देखा– जिस प्रकार कमलोंमें पुंडरीक (श्वेत कमल) श्रेष्ठहे, उसी प्रकार देव–विमानोंमें पुंडरीक विमान श्रेष्ठ कहा गयाहे. वह विमान रत्न जटित स्वर्णके १००८ स्थंभों वाला, आकाशमें दीपक तथा उदय होते हुये सूर्य्य जैसा देदीप्यमान्हे. उस विमानकी दिवारों में नागफणके आकारवाली सोनेकी खूँटियां हैं जिनमें जगह २ दिव्य, देव–सम्बन्धी पुष्पों व मोतियोंकी मालायें लगी हुई हैं और उन दिवारों में मृग, वृक, वृषभ, अश्व, गज, मगर, मच्छ, भारंड, गरुड, मयूर, सर्प, किन्नर, कस्तुरिया मृग, अष्टापद, शार्दुलसिंह, वनलता, पद्मलता, इत्यादिके चित्र अंकित हैं । उस विमान में होनेवाले नाटकोंके नाना प्रकारके वाजिंत्रोंका तथा महामेघके शब्दके तुल्य गंभीर देव–दुन्दुभी का मनोहर और सब लोककोपूर्ण करनेवाला शब्द होरहा है. देवोंके योग्य तथा सुखदायक वह विमान कृष्णागर, कुंदरूक, सिलारस वगैरह दशांग धूपसे सुगन्धमय तथा उद्योतवाला है ॥ १२ ॥ तेरहवें स्वप्न में सोनेके विशाल थालमें पुलक, वज्र, नीलम, सासक, करकेतन, लोहिताख्य, (माणिक), मरकत (पन्ना), प्रवाल, सौगन्धिक, हंसगर्भ, अंजन, चन्द्रप्रभ इत्यादि रत्नोका पुंज मेरुके समान ऊंचा और आकाश

मंडलमें देदीप्यमान् प्रकाश करता हुआ देखा ॥ १३ ॥ चौदहवें स्वप्नमें विस्तीर्ण, उज्वल, निर्मल, पीत-रक्तवर्ण वाली तथा मधु, घृतसे सींची हुई, धग् २ शब्द करती हुई जाज्वल्यमान् निर्धूम अग्नि शिखा देखी—वह अग्नि शिखा अनेक छोटी, बड़ी ज्वालाओं से व्याप्त है और धूम्र रहित प्रकाशमान् अनेक ज्वालायें आपसमें प्रवेश करती हुई कहीं २ तो आकाश प्रदेशको पचाती हुई मालूम होती हैं॥ १४ ॥ इस प्रकार इन चौदह महा स्वप्नोंको त्रिशला रानीने आकाशसे उतरते हुए और अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखा. यदि तीर्थंकरका जीव देव–लोकसे च्यवकर माताके गर्भमें उत्पन्न होवे तो माता बारहवें स्वप्नमें देव विमान देखे, परन्तु यदि तीर्थंकरका जीव नर्कसे निकल करके माताके गर्भमें उत्पन्न हो तो १२ वें स्वप्नमें उनकी माता भुवन देखे, इतना विशेष है । इन चौदह स्वप्नोंको शुभग-सौम्य-प्रियदर्शनवाले देखकर त्रिशला रानी शय्या पर जागी, कमल जैसे नयन विकसित हुये, हर्षके कारण उसका सर्व अंग उल्लसित हुआ और सर्व रोम राजी विकाश-मान् हुई ।

इन चौदह स्वप्नोंको, सर्व तीर्थंकरोंकी मातायें, जब तीर्थंकरोंका जीव गर्भमें उत्पन्न होताहै तब अवश्य

देखती हैं। इस कारणसें त्रिशला रानीभी श्रीमहावीर स्वामीके गर्भमें * आनेसे इन चौदह महास्वप्नों को देखकर शय्या पर जागृत हुई। तब हर्ष–सन्तोष युक्त हृदयवाली, मेघकी धाराओंसे सींच हुये कदम्बके पुष्प सदृश उठे हुए रोमवाली त्रिशला रानी उन स्वप्नोंको क्रमशः याद करने लगी। उसके बाद शय्यासे उठकर, पादपीठसे उतर करके, मन–काया संबंधी चापल्य–स्खलनादि रहित, दिवार वगैरहका आधार न लेती हुई, राजहंसीके तुल्य गतिसे चलती हुई सेज पर सोते हुये सिद्धार्थ राजाके पास आई और सिद्धार्थ राजाको वल्लभ, सदा वांच्छनीय, द्वेष रहित, मनोज्ञ, मनोरम, उदार, वर्णस्वरके उच्चारणसे प्रकट, कल्याण करने वाली, समृद्धि करने वाली, धनके लाभको कराने वाली, मंगलकारी, अलंकारादि शोभा युक्त, हृदयको प्रसन्न करने वाली, भरतारके हृदयको आह्लाद-दायक, कोमल मधुर रसवाली, सम्पूर्ण उच्चार वाली, मित-पद-वर्णादि वाली तथा कमशब्द परन्तु बहुत अर्थवाली वाणीसे राजाको जगाया. तदनन्तर राजाकी आज्ञासे त्रिशला रानी

* इस विषय पर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने पर यही बात अच्छी तरहसें सिद्ध होती है कि सूत्रकारने तथा टीकाकारोंने सर्व तीर्थंकरोंके च्यवन कल्याणक की तरह त्रिशला माताके चौदह महा स्वप्न देखनेको ही श्री महावीर स्वामीका च्यवन कल्याणक मानाहै।

रत्न जटित सोनेके भद्रासन पर बैठकर मार्गमें आनेका श्रम दूर करके, सिद्धार्थ राजासे पूर्वोक्त उत्तम वाणी द्वारा आनन्द पूर्वक इस प्रकार बोली—हे स्वामिन् ! आज पूर्वोक्त शय्या पर कुछ निद्रालेती कुछ जागती हुई मैंने हाथीसे लेकर निर्धूम अग्नि शिखा पर्यन्त चौदह महास्वप्न देखे हैं और अब मैं आपसे पूछती हूं कि इन चौदह महास्वप्नोंका कल्याणकारी क्या फल होगा ? तदनन्तर वह सिद्धार्थ राजा यह बात सुन करके अत्यन्त प्रसन्न, प्रीति सहित भव्य मन वाला, हर्षके कारण विस्तृत हृदयवाला हुआ और मेघकी धारओं से सींचे हुए कदम्ब वृक्षके पुष्प जैसी रोमराजी विकसित हुई. उन स्वप्नों को सुन करके तथा उनपर विचार करके सिद्धार्थ राजा त्रिशला रानीसे कहने लगा— हे देवानुप्रिय ! उदार, कल्याणकारक, उपद्रव हरने वाले, धन्य, मंगलकारक, शोभा साहित तथा निरोगता, तुष्टि, दीर्घआयुः करने वाले जो तूने स्वप्न देखे हैं उन स्वप्नोंसे अर्थका लाभ होगा, भोगका लाभ होगा, पुत्रका लाभ होगा, सुख व राज्य इत्यादिका लाभ होगा, नव महीने साढेसात दिवस के पश्चात् हमारे कुलमें ध्वज समान, दीपक जैसा देदीप्यमान् , पर्वतके समान स्थिर, तिलकके समान कुलकी शोभा बढाने वाला, सूर्य जैसा तेजस्वी तथा द्वीपके समान आधार भूत, कुलकी समृद्धि—निर्वाह—कीर्त्ति तथा

वृत्ति करनेवाला, कल्प-वृक्षके समान बहुत से लोगोंको आश्रय देकर कुलकी प्रतिष्ठाकी वृद्धि करने वाला, परिपूर्ण इन्द्रियों व लक्षण, व्यंजन, गुण युक्त शरीर वाला, सुकुमार हाथ पैर वाला, चन्द्रमाके जैसा सौम्याकार, सुन्दर, सदा वांछनीय, प्रिय—दर्शनीय पुत्र होगा। जब वह बालक बडा होगा तब सर्व-विज्ञान-ज्ञाता, शूर, महादानी, अपनी प्रतिज्ञाका पालन करने वाला, संग्राममें अभंग वह समस्त भूमंडलको विजय करके बडे २ राजाओंका राजा होगा। इस प्रकार दो तीन वार कह करके सिद्धार्थ राजाने त्रिशला रानीके देखे हुये स्वप्नोंकी अत्यन्त प्रशंसा की। त्रिशला रानी राजाके मुखसे ऐसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और हाथ जोडकर अंजली बांधे हुये राजासे इस प्रकार बोली—हे स्वामिन्! जो आपने कहा वह बिल्कुल सत्य है, मैंने भी यही सोचा था। इस प्रकार कहकर सिद्धार्थ राजाकी आज्ञासे मणिजटित सोनेके भद्रासनसे उठकर चंचलता रहित होकर, राजहँसी सदृश गतिसे शीघ्रही अपनी शय्या पर आगई। वहां आकर मेरे देखे हुये सर्वोत्कृष्ट प्रधान मंगलकारी १४ महा स्वप्न किसी खराब स्वप्नके देखनेसे निष्फल न हों इसलिये अब मुझे निद्रा लेना उचित नहीं किन्तु देव—गुरु संबंधी प्रशस्त, मांगलिक धर्म्म—कथाओंसे स्वप्न—जागरिका करनी चाहिये, ऐसा विचारकर

स्वयं जागती हुई, सेवक सखीजनोंको जगाती हुई और धर्म कथा करती हुई त्रिशला रानीने रात्रि व्यतीतकी।

॥ इति तीसरा व्याख्यान सम्पूर्ण ॥

अब चौथा व्याख्यान कहते हैं:—तीसरे व्याख्यानमें त्रिशला रानीके १४ स्वप्न देखनेका अधिकार कहागया और चौथे व्याख्यानमें स्वप्न पाठकोंका तथा भगवान्के जन्मका अधिकार कहते हैं:— सिद्धार्थ राजा प्रभात में कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाकर इसप्रकार कहने लगा–हे देवानुप्रिय ! आज सभा–मंडपमें सुगन्धित जल छिडक कर, गोबरसे लीपकर, पांच वर्णवाले सरस पुष्पोंसे तथा सुगन्धि चूर्णसे और दशांग धूपसे सुगन्धित करके सिंहासन स्थापित करो, इस प्रकार तुम करो दूसरोंसे कराओ और मेरी आज्ञानुसार सर्व कार्य होजाने बाद मुझे सूचना दो. तब वे आज्ञाकारी पुरुष, राजाकी आज्ञा स्वीकार कर, दोनों हाथ जोडकर राजाको नमस्कार करके वहांसे चले और राजाकी आज्ञानुसार सर्व कार्य करके राजाके पास वापिस आकर निवेदन कर दिया। तदनन्तर सूर्योदय समय सरोवरमें कमल विकसित होने लगे, रात्रिमें कृष्णमृगोंके निद्रासे मिले हुए नैत्र प्रभातमें खुलने लगे, रक्त अशोक–वृक्षके प्रकाश, फूलेहुए किंशुले, तोतेके मुख, चीरमीके

अर्धभाग, कबूतरके पर और नैत्र, कोयलके नैत्र, जासुके पुष्प तथा जातिवाले हींगलुके पुंजके तुल्य रक्त-वर्णवाला प्रभात हुआ, सर्व जगत्में कुंकुम समान लालिमा छाई और जाज्वल्यमान् दिनकरकी हजार किरणों से जब अंधकार दूर हुआ तब सिद्धार्थराजा शैजसे उठकर पादपीठपर पैर रखकर नीचे उतरकरके मल्लयुद्ध-शालामें आया। वहां पर डंड–बैठकका करना, मुद्गर वगैरहका उठाना, ऊँचा नीचा कूदना, भुजाओंका मोडना, मल्लयुद्धादि का करना इत्यादि क्रियाओंसे राजा विशेषरूपसे थकगया। उसके बाद राजा सौ औषधियोंसे बनाये हुये अथवा सौ द्रव्यसे निष्पन्न हुये सतपक्क तेलसे तथा हजार औषधियोंसे बनेहुये सहस्रपक्क तेलसे स्वशरीरमें मर्दन करवाने लगा, जो मर्दन अत्यन्त गुणकारी, रस–रुधिर धातुओंकी वृद्धि करनेवाला, क्षुधा अग्निको दीप्त करनेवाला, बल, मांस, उन्मादको बढानेवाला, कामोद्दीपक, पुष्टिकारक, तथा सर्व इन्द्रियोंको सुखदायक था। और मर्दन करनेवाले संपूर्ण अंगुलियों साहित सुकुमार हाथ-पैरवाले, मर्दन करनेमें प्रवीण और अन्य मर्दन करनेवालोंसे विशेषज्ञ, बुद्धिमान् तथा परिश्रमको जीतनेवाले थे. उन पुरुषोंने अस्थि, मांस, त्वग्, रोम, इन चारोंको सुखदायक राजाके मर्दन किया। तदनंतर सिद्धार्थ राजा मोतियोंकी जाली सहित नाना

प्रकारके चन्द्रकान्तादिमणि, तथा वैडुर्यादि रत्नोंसे जटित आंगनवाले मज्जनघरमें प्रवेश करके, नाना प्रकार की मणियोंसे जटित स्नान पीठपर बैठा और पुष्पोंके रस सहित, चन्दन, कर्पूर, कस्तूरी सहित, पवित्र निर्मल गंगाजलसे कल्याणकारक स्नान किया। उसके बाद उसने पक्ष्मयुक्त अर्थात्–सुकुमार केसर, चन्दन, कस्तूरी, वगैरह सुगन्धि द्रव्योंसे वासित वस्त्रसे शरीरको पूँछा, प्रधान वस्त्र धारण किये, गोशीर्ष चंदन का विलेपन किया, पवित्र पुष्पमाला पहिनी, केसर वगैरहका तिलक लगाया, मणि, रत्न और सुवर्णके-बनेहुए आभरण पहिने, अठारह, नौ, तीन और एक लडीके हार हृदयमें धारण किये, बहुतसे हीरों और मणियोंसे जटित मोतियोंके लंबे २ फूंदों सहित कटि–भूषण कमरमें पहिना, हीरे माणिकादिके कंठे आदि आभूषण गलेमें धारण किये, अंगुलियोंमें अंगूठी वगैरह पहिनी, और नाना प्रकारकी मणियोंसे निर्मित बहुमूल्य कडे हाथमें तथा भुजाका आभरण भुजामें पहिना। इस प्रकार कुंडलोंसे राजाका मुख शोभता है, मुकुटसे मस्तिष्क दीपता है, मुंदरियोंसे अंगुलियां पीली होगई हैं, बहुमूल्य पत्तनका बनाहुआ अत्यन्त उत्तम वस्त्रका उत्तरासन किया है, नाना प्रकारके रत्न, मणि और स्वर्णसे जटित, चतुर कारीगरसे बनाया हुआ

वीरवलय बाहुमें धारण किया है जिनको धारण करनसे वह वीरपुरुष, सिद्धार्थ किसीसे जीता नहीं जासकता था, बहुत वर्ण करनेसे क्या ? जैसे कल्पवृक्ष पुष्प–पत्तोंसे विराजमान होता है, उसी प्रकार सिद्धार्थ राजा भूषण वस्त्रोंसे शोभितथा, कोरंट वृक्षकेश्वेत पुष्पोंकी मालासे शोभित छत्र मस्तिष्क पर धारण किये हुए था, अति उज्वल, चँवर ढुल रहे थे और चारों ओर लोग राजाकी जय जयकार कररहे थे। इस प्रकार पुरुष-सम्बन्धी सोलह श्रृंगार धारण करके अनेक दंड नायक, गणनायक, राजेश्वर, सामंत, महासामंत, मंडलिक, मंत्री, महामंत्री, सेठ, सार्थवाह, अंग–रक्षक, पुरोहित, दंडधर, धनुषधर, खड्गधर, छत्रधर, चँवरधर, तांबूलधर, शय्यापालक, गजपालक, अश्वपालक अंगमर्दक, आरक्षक और संधिपाल इत्यादिके साथ मज्जनघरसे निकलता हुआ धवल महामेघसे निकलते हुये ग्रह-नक्षत्र तारागणोंमें चन्द्र समान, लोक-प्रिय, नरवृषभ, नरसिंह वह राजा राज्य लक्ष्मीसे शोभित होकर सभा मंडपमें आकर, पूर्व दिशाके सन्मुख सिंहासन पर बैठ गया, ईशान कोनमें वस्त्रसे ढके हुए सर्षोंसे मंगलकारी किये हुए आठ भद्रासन रखवाये और रत्नजटित, दर्शनीय, बहुमूल्य, प्रधान पत्तनमें उत्पन्न, अतीव स्निग्ध उत्तम वस्त्रका पर्दा अपनेसे न अधिक दूर न अधिक पास ऐसे

स्थान पर बंधवाया. वह पर्दा मृग, वृक, रोज, वृषभ, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर (देव-विशेष), कस्तूरिया मृग, अष्टापद, सिंह, चमरी गौ, हाथी, वनलता, पद्मलता, कमलकी वेल इत्यादिके चित्रोंसे शोभित था. उसके मध्यमें त्रिशला रानीके बैठनेके लिये मणिरत्नजडित, कोमल, अंगको सुखकारी स्पर्शवाले मखमलके बनेहुए और ऊपर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित भद्रासनको रखवाया. तत्पश्चात् उस राजाने कौटंबिक पुरुषोंको बुलाकर दिव्य, उत्पात, अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, लक्षण, व्यंजन इन अष्टांग निमित्तके पारगामी, शास्त्रोंमें कुशल स्वप्न-लक्षण-पाठकोंको बुलानेकी आज्ञादी, जिसे सुनकर वे कौटंबिक पुरुष हर्षित हुए, सन्तोष पाये और विनय सहित राजाकी आज्ञा स्वीकारके वहांसे निकलकर क्षत्रीयकुंड नगरके मध्यमें होकर स्वप्न लक्षण पाठकोंके घर आये. आकर उन्होंने स्वप्न-लक्षण-पाठकोंसे कहा—हे स्वप्नलक्षणपाठको ! आपको सिद्धार्थ राजा बुला रहाहै. स्वप्नलक्षणपाठक भी कौटंबिक पुरुषोंके मुखसे ऐसा सुनकर अत्यन्त हर्षित हुये, सन्तोष पाये, स्नान किया, देवपूजाकी, निर्मल वस्त्र पहिने, तिलक, सर्षप, दूब, अक्षतादि मांगलिक वस्तुयें मस्तिष्क पर धारणकी, दुःस्वप्नादिका निवारण करने लिये अपने मंगल किये, राज-सभामें प्रवेश योग्य स्वर्णादि बहुमूल्य

तथा कम कीमतके (दृष्टि दोष निवारण के लिये लोह मुद्रिकादि) आभूषण धारण किये और क्षत्रीय-कुंड-नगर के मध्यमें होकर राज–सभाके दरवाजे पर सब इकट्ठे हुए और अपनेमें से एकको मुखिया * बनाकर सभामंडप में सिद्धार्थ राजाके पास आये. वहाँ आकर हाथ जोडकर हाथ ऊंचे करके, हे राजन्! स्वदेशमें आपकी जय हो, विदेशमें आपकी विजय हो इस प्रकार जय-विजयसे राजाको बधाया और आशीर्वाद दिया—

"दीर्घायुर्भव वृत्तिमान् भव, सदा श्रीमान् यशस्वी भव।
प्रज्ञावान् भव भूरिसत्त्वकरुणादानैकशोण्डो भव।
भोगाढ्यो भव भाग्यवान् भव, महासौभाग्यशाली भव।

* एक समय विदेशसे पांच सौ सिपाही नौकरीके वास्ते राज–सभामें आये। वे ५०० ही स्वतन्त्र थे मगर हथियारादि से देखने में बड़े खूबसूरत थे। ऐसा देखकर राजाने उनकी परीक्षा करने के हेतु सबके लिये रात्रिमें सोनेको सिर्फ एक शय्या भेजी परन्तु उनमें तो सब अपने आपको बडे समझने वाले थे, इसलिये बीचमें शय्या रखकर पलंगके सामने अपना २ पांव रखकर सब सो गये. राजाने गुप्तचरों द्वारा यह वार्ता सुनकर और मनमें यह विचार करके कि यदि ये लोग लडाईमें जावें तो अफसरके आधीन कदापि नहीं रह सकते, उन सबको निकाल दिया। कुसंपसे कोई कार्य सफल नहीं होता, संपसे ही कार्य–सिद्धि होती है।

'प्रौढश्रीर्भव कीर्त्तिमान् भव, सदा विश्वोपजीवी भव ॥ १ ॥"

हे महाराज ! आप दीर्घायुः होवें, वृत्तिमान् होवें, सदा लक्ष्मीवान् होवें, यशस्वी, बुद्धिमान् होवें, प्राणी रक्षक होवें, महादानी–भोग्यसंपदावाले होवें, भाग्यवान् होवें, सौभाग्य शाली होवें, श्रेष्ठ लक्ष्मीवाले, कीर्त्तिवान् और हमेशा समस्त प्राणियोंका भरण पोषण करने वाले होवें। सिद्धार्थ राजाको श्री पार्श्वनाथ स्वामीका श्रावक जानकर श्री पार्श्वनाथजीकी स्तुति–पूर्वक आशीर्वाद दिया—

दशावतारो वः पायात्, कमनीयाञ्जनद्युतिः । किं प्रदीपो नहि श्रीपः, किन्तु वामांगजो जिनः ॥ १ ॥

दश हैं अवतार जिनके वे दशावतार और मनोज्ञ कज्जल जैसी द्युतिवाले ऐसे जो कोई हैं वे आपके रक्षक होवें, ऐसा दीपक है ? किन्तु दीपक भी नहीं, लक्ष्मीकी रक्षा करने वाला कृष्णभी दशावतार है तब कहते हैं कि श्रीकृष्ण भी नहीं। किन्तु वामारानीके पुत्र, कज्जल जैसी हरि और मनोहर शरीरकी कान्तिवाले श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकर, जिनके अमरभूति वगैरह दश-भव हुये हैं, आपकी रक्षा करने वाले होवें।

इस प्रकार आशीर्वाद सुनकर सिद्धार्थ राजाने उन सब स्वप्न-लक्षण-पाठकोंको नमस्कार किया, वस्त्र,

अलंकारादि दे करके सत्कार किया, स्तुतिकी और अभ्युत्थानादिसे सन्मानित करके तथा भद्रासन पर बैठा कर सन्तोष प्रदान किया। सिद्धार्थ राजाने त्रिशला रानीको भी बुलाकर पर्देके भीतर भद्रासन पर बैठाया और राजा-रानी दोनोंके मांगालिक फल-फूलादिसे परिपूर्ण हाथ वाले होनेपर, राजा विनय सहित स्वप्न-लक्षण-पाठकों से इस प्रकार बोला—हे स्वप्न-लक्षण-पाठकों ! राज-भवनमें शय्या पर कुछ निद्रा लेती कुछ जागती हुई त्रिशला रानीने आज हाथी, वृषभ, सिंहादि चौदह महास्वप्न देखे हैं, अब मैं आपसे पूछताहूँ- इन स्वप्नोंका कल्याणकारक क्या फल होगा ? राजाके मुखसे स्वप्नोंका वृत्तान्त सुनकर, प्रसन्न होते हुये उन सर्व स्वप्न-लक्षण-पाठकोंने अपने २ मनमें उनके फल पर विचार किया और फिर परस्पर फलोंके सम्बन्धमें वार्तालाप कर, एक मत होकर और फलका पूर्ण रूपसे निश्चय करके वे इस प्रकार बोले— हे महाराज ! हमारे स्वप्न-शास्त्र में ४२ स्वप्न मध्यम फलके देनेवाले और ३० स्वप्न महा फलके देने वाले कहे हैं, जो कुल मिलाकर ७२ स्वप्न होते हैं। हे राजन् ! तीर्थंकरकी माता, चक्रवर्तीकी माता, तीर्थंकरका जीव तथा चक्रवर्तीका जीव गर्भमें उत्पन्न होनेसे ३० स्वप्नोंमें से हाथीसे लेकर निर्धूम अग्निशिखा पर्यन्त १४ महास्वप्न देख करके जागृत होती हैं।

वासुदेवका जीव गर्भमें उत्पन्न होने से वासुदेवकी माता सात महा स्वप्न देखकर जागती है, बलदेवका जीव गर्भमें उत्पन्न होनेसे बलदेवकी माता चार महा स्वप्न देखती है, मंडलीक राजाका जीव गर्भमें उत्पन्न होनेसे उनकी माता चौदह स्वप्नोंमें से एक स्वप्न देखकरके जागती है। इसलिये हे नरेन्द्र! त्रिशला रानीने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुः करनेवाले ये प्रधान स्वप्न देखे हैं, ऐसे उत्तम स्वप्न रोगी, अल्पायुः, दरिद्री और भाग्यहीन नहीं देखसकता. इन स्वप्नों के प्रभावसे आपके धनका लाभ होगा, पंचेंद्रिय सुखका लाभ होगा, पुत्रका और राज्यका लाभ होगा और नौ महीने साढे सात दिनके पश्चात् त्रिशला रानीके गर्भसे आपके कुलमें अद्भुत होनेसे ध्वजा सरीखा, प्रकाशक होनेसे आपके कुलमें दीपक जैसा, अजय होनेसे कुलमें पर्वतके समान, मांगलिक होनेसे कुलमें मुकुटसदृश, सबके वन्दनीय होनेसे कुलमें तिलक सरीखा, कुटुम्बकी शोभा बढाने वाला होनेसे कीर्त्तिकारक, कुलमें कुल-सन्ततिकी तथा समृद्धिकी वृद्धि करने वाला होनेसे कल्पवृक्ष सरीखा, सर्व कुटुम्बका आश्रय—दायक होनेसे कुलका आधार स्वरूप पुत्ररत्न उत्पन्नहोगा, जो कोमलांग, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय सहित, लक्षण, व्यंजन, गुणयुक्त, मान, उन्मान, प्रमाण पूर्ण सुन्दर शरीर वाला, शशिवत् सौम्याकार, मनोज्ञ और प्रिय दर्शनीय होगा। सयाना होने पर

वह बालक सर्व विज्ञानका ज्ञाता होगा और युवावस्थाको प्राप्त करने पर वह महादानी, संग्राममें अजय, वीर, पराक्रमी समस्त पृथ्वीको अपने वशमें करके बडे २ राजा महाराजाओं का स्वामी चक्रवर्ती महाराजा और अन्तमें राग–द्वेषादि कर्म–शत्रुओंको जीतकर तीन लोकका स्वामी तीर्थंकर होगा।

अब उन चतुर्दश महास्वप्नोंका पृथक् २ फल कहते हैं— हे राजन् ! त्रिशला रानीके चार दांतवाला हाथी देखनेसे, आपका पुत्र दान–शील–तप और भाव, इन चार प्रकारके धर्मका उपदेशक होगा १, वृषभके देखनेसे भरतक्षेत्रमें सम्यक्त्वरूप बीज बोवेगा २, सिंह देखनेसे आठ–कर्मरूपी हाथियोंका विदारण करेगा ३, लक्ष्मी देखनेसे संवत्सरी दान देकर पृथ्वीको हर्षित करनेवाला अथवा तीर्थंकररूपी लक्ष्मीको भोगनेवाला होगा ४, पुष्पमालाओं के देखनेसे समस्त प्राणी इसकी आज्ञा मस्तिष्क पर धारण करेंगे ५, चन्द्र देखनेसे सर्व भव्यलोगोंके नैत्र व हृदयको आह्लादित करने वाला होगा ६, सूर्य देखनेसे उसके पीछे भामंडल दीप्तियुक्त होगा ७, ध्वज देखनेसे आगे धर्म्म–ध्वज चलेगा, ८, पूर्णकलश देखनेसे ज्ञान धर्म्मादिसे सम्पूर्ण वह भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा ९, पद्मसरोवर देखनेसे देवता इसके विहारमें चरणों के नीचे सोनेके कम-

ल स्थापित करेंगे १०, क्षीर-समुद्र देखनेसे ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुणरत्नोंका आधारभूत वह धर्म्म मर्यादाका धारण करनेवाला होगा ११, देवविमान देखनेसे चार प्रकारके स्वर्गवासी देवोंको मान्य और आराध्य होगा १२, रत्न–राशि देखनेसे समवसरणके तीनगढोंमें विराजमान् होकर धर्मोपदेश करनेवाला होगा, १३ और निर्धूम अग्निशिखा देखनेसे भव्यजीवों के लिये कल्याणकारी तथा मिथ्यात्वशीतका हरनेवाला होगा १४.

अब सर्व स्वप्नोंका एक साथ फल कहते हैं— हे राजन् ! त्रिशलारानीके इन चौदह स्वप्नोंको देखनेके कारण आपका पुत्र चौदह राज-लोकके मस्तकपर रहनेवाला होगा। चक्रवर्तीकी माता इन्हीं चौदह स्वप्नोंको कुछ धुंधले देखती है परन्तु तीर्थंकर की माता अत्यन्त निर्मल देखती है, इतना ही अन्तर है।

अब वे स्वप्न–लक्षण–पाठक सिद्धार्थ राजासे स्वप्न देखनेका कारण कहते हैं— यदि मनुष्य अति हास्य करके, शोक करके, अत्यन्त कोप करके, तथा अधिक उत्साह, घृणा व भयके कारण अथवा भूख, प्यास तथा मूत्र–पुरीष की बाधासे सोता होतो उससे देखे हुये स्वप्न निष्फल होते हैं। रात्रिके पहिले प्रहरमें देखा हुआ स्वप्न एक वर्षमें फल देताहै, दूसरी प्रहरमें देखाहुआ छः महीने में, तीसरी प्रहरमें देखाहुआ तीन

महीनेमें, चौथी प्रहरमें देखा हुआ एक महीनेमें, दो घड़ी रात्रि बाकी रहते जो स्वप्न देखाहो वह दश दिन में फल देनेवाला है, सूर्योदयके वक्त देखा हुआ स्वप्न तत्काल फल–दायक होताहै. मनुष्य नौ प्रकारसे स्वप्न देखते हैं— अनुभव किये हुए कार्यका स्वप्न देखे १, सुनी हुई बात देखे २, देखी हुई वस्तु देखे ३, प्रकृति के विकारसे स्वप्न देखे ४, सहज स्वभावसे स्वप्न देखे ५, चिन्ताके कारण स्वप्न देखे ६, इन छः कारणोंसे देखेहुए शुभ अशुभ स्वप्न निष्फल होते हैं परन्तु देवकी सहायतासे ७, धर्म्मके प्रभावसे ८, अथवा पापके उदयसे ९, देखे हुए ये तीन प्रकारके शुभाशुभ स्वप्न फल–दायक होते हैं। इस प्रकार उन स्वप्न–लक्षण–पाठकोंने सिद्धार्थ राजासे स्वप्नोंका फल कहा। स्वप्नोंका ऐसा फल सुनकर सिद्धार्थ राजा संतुष्ट होकर स्वप्न–लक्षण–पाठकोंसे प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार बोला– हे देवानुप्रिय ! जो आपने कहा वह सब सत्य है उसमें कुछभी संशय नहीं है, मैंनेभी ऐसाही सोचाथा। यह कहकर राजाने उन स्वप्न–लक्षण–पाठकों को अन्न, वस्त्र, पुष्प, फल, गंध माला, अलंकार इत्यादि वस्तुयें देकर और जिन्दगी पर्यन्त चले उतने क्षेत्रग्रामादि वृत्तिदानमें देकर संतुष्ट करके जानेकी आज्ञा दी। स्वप्न-लक्षण-पाठकों के चले जानेके बाद राजा खडा होकर, पर्देके अन्दर त्रिश-

ला देवी के पास आकर इस प्रकार बोला—हे दवानुप्रिय ! जो कुछ स्वप्न–लक्षण–पाठकोंने कहा, वह सव तूनेभी सुना होगा कि इन प्रधान स्वप्नोंके प्रभावसे तेरे चक्रवर्ती अथवा तीर्थंकर पुत्र रत्न होगा। त्रिशला रानी उन स्वप्नोंके उत्तम फलको सुनकर, प्रसन्न चित्त होकर, हृदयमें धारणकर, सिद्धार्थ राजाकी आज्ञा से,मणि, स्वर्ण रत्नोंसे बनेहुये भद्रासनसे उठकर अत्वरित् , अचपल, असंभ्रान्त, अविलंब, राजहंसीकी चालसे चलकर अपने राजमहलमें गई और सांसारिक सुख भोगती हुई आनन्दसे दिन व्यतीत करने लगी।

हरिनेगमेषि देव द्वारा भगवान् श्री महावीर स्वामी, जिस दिनसे त्रिशला देवीकी कुक्षिमें आये उसी दिनसे इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने निम्न लिखित प्रकारका धन सिद्धार्थ राजाके घरमें स्थापित किया, स्वामी रहित धन के ढेर, जो पहिले किसीने किसी स्थानपर स्थापन किये हो वह धन, जिसका स्वामी मर गया हो अथवा जिसका स्थापित करनेवाला मरगया हो उसके हक़दार गौत्री भी मर गये हों, स्वामीका कोई भी रिश्तेदार वगैरह न रहाहो, जिस धनको प्रातिवर्ष स्थापित करने वाला भी कोई न रहा हो तथा संभाल करनेवाले गौत्रीके कुनबों में भी कोई न रहाहो ऐसा धन गांव (कांटोंकी वाडयुक्त स्थान), नगर (प्रकोटा वाला स्थान),

आकर (लोह-ताम्रादि धातुओंकी उत्पत्तिका स्थान), खेड़ (धूलिका प्रकोटा वाला स्थान), कर्बट (बुरा नगर), मंडप (जिसके चारों ओर अर्ध २ योजनकी दूरीपर ग्राम होते हैं), द्रोणमुख (जल स्थल मार्ग), पत्तन (उत्कृष्ट वस्तुओंकी उत्पत्ति का स्थान), आश्रम (तापसोंका निवास स्थान), संवाह (समभूमि), सन्निवेश (पथिकों के विश्रान्तिका स्थान) वगैरह जगह परसे अथवा तीन रास्ते या चार रास्ते जहां मिलें वहाँ से ,बहुत से रास्ते मिलें वहाँसे, राज–मार्गसे, नगरके पानी जानेके रास्तेसे, दुकानोंसे, मंदिरोंसे, राजसभा से, जल पानेकी जगहसे, आरामसे, उद्यानसे, वनसे, वनखंडसे, श्मशानसे, टूट फूटे घरोंसे, गिरि, गुफा वगैरह अनेक स्थानोंसे, (जहां पर प्रायः कृपणजन निर्भय स्थान जानकर धन गाड देते हैं,) इन्द्रके भंडारी वैश्रमण कुंडधारी धनदके आज्ञाकारी तिर्यग् जृंभक देवोंने धन लालाकर सिद्धार्थ राजाके भंडारों में रक्खा.

जिस रात्रिमें हरिनेगमेषि देवने श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीका सिद्धार्थ राजाके घरमें संक्रमण किया, उसी समयसे चाँदी, सौना, धन (सौनेये रुपये आदि), धान्य *, राज्य, राष्ट्र (देश), बल (हाथी, घोडे, रथ,

* यव, गेहूँ, साली, शाठी, व्रीहि, कोद्रव, अणुआ, कंगु, राल, तिल, मूंग, उडद, अलसी, चना, तिउडा, निप्पाव, सिलिंद, राजमास उच्छू, मसूर, तुअर, कुलथी, धनियाँ, कलायरो इत्यादि २४ प्रकारका धान्य.

पैदल इनचारप्रकारकी सेनाओंका बल), वाहन, कोश (धनका भंडार), कोठार (धान्यका भंडार), नगर, अन्तःपुर, जनपद, और विस्तीर्ण धन, स्वर्ण, रत्न, मोती, दक्षिणावर्त्त शंख, विषापहारिणी शिला, प्रवाल (मूंगे), रक्त रत्न (माणिक) वगैरह उत्तमोत्तम वस्तुओंकी वृद्धिके साथ २ तथा यशोवादसे निरन्तर सिद्धार्थ राजा बढने लगा जिसे देखकर महावीर स्वामीके माता पिताने यह विचार किया कि ऐसी उत्तमोत्तम वस्तुओंकी वृद्धिका मूल कारण यह गर्भ ही है इसलिये ऐसे गुणोंसे युक्त पुत्रका जन्म होनेपर हम उसका वर्द्धमान नाम रक्खेंगे.

औरोंकी मातायें जब गर्भवती होती हैं, तब कुक्षिमें गर्भके फिरनेसे उन माताओंके उदरमें पीडा होती है परन्तु महावीर स्वामीने माताकी भक्तिसे, माताको कोई दुःख नहीं हो ऐसा विचार कर, निश्चल, निष्कंप तथा स्थिर होकर ध्यानारूढ मुनीश्वरकी तरह अंगोपांगका हिलाना बंद किया. अपने गर्भको हिलते न देखकर, त्रिशला माता चिन्तासे शोकाकुल हुई, हाथकी हथेली पर मुंहको रखकर, पृथ्वी पर देखती हुई सोचने लगी– मेरा गर्भ पहिले तो चलता था, अब नहीं चलता है इसका क्या कारण है ? शायद मेरे गर्भको किसी दुष्ट देवने हर लिया, अथवा वह मेरा गर्भ मर गया, गर्भ स्थानसे भ्रष्ट होगया, अथवा गल गया और अब मेरे गर्भको

कुशल नहीं है। निश्चय ही मैं अभागिनी हूँ, मैं ही पृथ्वी पर एक पापिनी हूँ। पंडितोंके कथनानुसार मेरे घरमें पुत्ररूपी निधान उसी तरह नहीं रह सकता, जैसे कि दुर्भागी, दरिद्रीके हाथमें चिन्तामणि रत्न नहीं रह सकता, मरुस्थलमें कल्पवृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता और पुण्यहीन मनुष्योंकी अमृत पीनेकी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती। हे दैव ! मेरे मनरूपी भूमिमें अनेक मनोरथरूपी कल्पवृक्ष उत्पन्न हुए, उनको जड सहित काटकर यह तूनें क्या किया ! पहिले नेत्र देकर फिर उसे वापिस लेलिया, निधान देकर, वापिस छीन लिया। हे दैव ! तूनें मुझे मेरुपर्वत पर चढाकर पीछी नीचे गिरादिया, अरे दैव ! मैंने तेरा क्या बिगाडा था जो तूने मेरे साथ ऐसा बर्ताव किया। अब क्या करूँ–कहाँ जाऊँ–किसके आगे जाकर पुकार करूँ, इस पापी दैवने जैसा किया वैसा तो कोई शत्रुभी नहीं करेगा। इस गर्भ के विना अब मेरा जीना व्यर्थ है। पूर्वोक्त चौदह महास्वप्नोंसे सूचित, तीन लोकके पूजनीय, अनन्तगुण सहित पुत्ररत्न बिना अब मेरे लिये सर्व शून्य है। अथवा हे दैव ! इसमें तेरा भी क्या दोष है। मैंने ही पूर्व-भवमें घोर पाप किये होंगे, गाय, भैंस, हरिणी वगैरहके छोटे २ बच्चोंका उनकी माताओंसे वियोग कराया होगा, तोते, तीतर और मैना वगैरह पक्षी

पिंजरेमें डाले होंगे, छोटे २ बच्चोंको दूधके लोभसे अन्तराय किया होगा, चूहोंके विलोंमें गर्म पानी डाला होगा, धूम्र दिया होगा, उनके बिल पत्थरोंसे बन्द किये होंगे, चूनादिसे लीप दिये होंगे, कीडियों व मकोडोंके विल जलसे बहादिये गये होंगे, अन्य स्त्रियोंके अथवा सोक (सौत) के बच्चोंको क्रोधसे कटुक वचन बोले होंगे, धर्मके प्रतिकूल होकर अंडे वगैरह फोडे होंगे, साधुओंको सताये होंगे, स्त्रियोंका गर्भपात किया अथवा करवाया होगा, शील-खंडन किया होगा अथवा करवाया होगा. अत्यन्त शोकाकुल हुई त्रिशला रानी दैवको इस प्रकार वार २ उपालम्भ देने लगी-अरे निर्दय, पापी, दुष्ट, धीठ, कठोर, नीच कर्म्म करनेवाला, निरपराधी को मारने वाला, विश्वासघातक, अकार्य्य करनेमें तत्पर, निर्लज्ज दैव! तू निष्कारण मेरा वैरी क्यों होता है? मैंने तेरा क्या अपराध किया और अगर किया भी हो तो तू उसे प्रकटरूपसे कह। इस प्रकार विलाप करती हुई त्रिशला रानीसे सखियाँ पूछने लगी–हे महारानी! तुम आज इतनी दुःखित क्यों हो! तब त्रिशला निःश्वास–पूर्वक कहने लगी–क्या कहूँ! कहने योग्य कोई बात नहीं है। मैं मन्दभागिनी हूँ जो मेरा जीवित गया, ऐसा कहकर, मूर्च्छा खाकरके पृथ्वी पर गिर पडी। जब सखियोंने शीतल उपचारसे त्रिशलाको सचेत

किया तब त्रिशला और भी अधिक विलाप करने लगी सखियों से बार २ पूछने पर गर्भ के सब हाल सुनाती २ ही मूर्च्छित हो जाती थी। ऐसा सुनकर सर्व लोग चिन्तातुर होगये, तब कोई सखी कहती– हे कुलदेवियों! आप कहां गई, हमतो निरन्तर आपकी पूजा में लगी रहती हैं। कुल में वृद्ध स्त्रियाँ मंत्र, यंत्र, तंत्र इत्यादि शान्तिक–पौष्टिक कर्म करतीं। कोई स्त्री निमित्तिए से पूछती. नाटक, गीत, गान, वादित्रादि राज–महलमें बन्द हुए, सिद्धार्थ राजाभी शोकाकुल हुए, सब लोग कर्तव्यतामें मूढ हुए, सर्व नगरी शोककी राजधानी जैसी हुई, स्नान, खाना, पीना, दान, जल्पन, सोना वगैरह सब भूल गये। किसीके कुछ पूछने पर निःश्वास डालकर उत्तर देते, ऐसा सर्व क्षात्रिय-कुण्ड-ग्राम-नगर होगया।

तदनन्तर श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने माताके मनके दुःखको अवधि-ज्ञानसे जानकर और अवधि-दर्शनसे देखकर, मनमें इस प्रकार विचार किया—— अहो ! क्या किया जाय, किसके आगे कहें, मोहकी गति कैसी विषम है। मैंने तो यह सब माताके सुखके लिये कियाथा परन्तु दुःख रूपहुआ, जैसे–नारियलके जलमें शीतलताके लिये मिलायाहुआ कपूर ज़हर होताहे, उसीप्रकार यह मेरा किया हुआ हित माताके अहित

के वास्ते हुआ। नहीं देखनेसे भी मुझपर माता पिताका इतना स्नेह है तो जब ये मुझे देखेंगे, तब कितना मोह करेंगे। यदि इनके जीते हुए मैं दीक्षा ले लूँ, तो कदाचित् ये मर जावें, ऐसा विचार कर माता पिताके जीतेजी मैं दीक्षा नहीं लूँगा ❀, ऐसा अभिग्रह माताके गर्भमें साढे छः महीने रहने बाद महावीर स्वामीने किया।

तत्पश्चात् शरीरका एक देश चलाया, त्रिशला रानी गर्भको चलता, फिरता जानकर, हर्षित हुई और संतोष–पूर्वक बोली–हे सखियों ! मेरा गर्भ किसीने नहीं हराहै, वह न गला है, न मरा है पहिले नहीं चलता था और अब चलता है। मैं भाग्यवती, पुण्यवती तथा तीनों लोकमें मान्य हुई। मेरा जीवित प्रशंसनीय है। श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर भी मुझपर प्रसन्न हैं, मुझपर श्रीसद्गुरु भी निरन्तर प्रसन्न है। मैंने जैनधर्म्म की आराधना की और वह मेरी आराधना सफल हुई। मुझपर सम्यक्-दृष्टि-देवता और गौत्र देवियाँ प्रसन्न

❀ जब भगवान् ने माता पिता को दुःख न होने के लिये ऐसा नियम ग्रहण किया तो भगवान् की आज्ञा में रहने वाले जैनी नाम धारण करने वालों को, जब वे कुछ पढाई करने पर, कमाई होने पर या स्त्री मिल जाने पर माता पिता से अलग होवें अथवा किसी अन्य प्रकार से उन्हें दुःखित करें, भगवान् के दृष्टान्त पर विचार करके अपनी भूल सुधारना चाहिये।

हैं। इस प्रकार त्रिशला देवीकी रोम राजी व नेत्र विकसित हुये, मुँह हर्षित हुआ और उसके हर्ष स्वरूप को देखकर वृद्ध स्त्रियाँ उसे आशीर्वाद देने लगी, सधवा स्त्रियाँ गीत–गान करने लगीं, वैश्याओंका नाटक शुरू हुआ, सर्व नगरमें अष्ट मांगलिक स्थापित किये गये, जगह २ पर कुंकुम-केसरके थापे दिये गये, नगरमें स्थान २ पर ध्वजायें बांधी गईं, मोतियोंका स्वस्तिक किया गया, पांचवर्ण–पुष्पों के ढेर किये, सर्व नगरमें तोरण बांधे, सर्व स्त्री पुरुषोंने नवीन वस्त्र तथा नवीन आभूषण धारण किये, सधवा स्त्रियां श्रीफलसहित अक्षतों के थाल लेकर गीत-गान करती हुईं बधाई के लिये त्रिशला रानीके पास आईं, भट्टलोग राजाकी विरुदावली कहने लगे। यद्यपि राजद्वार विशाल था, तथापि स्त्री-पुरुषोंकी भीड़के कारण वह दरवाजा सकडा प्रतीत हुआ, राज-मार्गभी मनुष्यों के समूहसे रुक गया, अनेक रथ, हाथी, घोड़े शृंगारे गये, जगह २ पर गीत, वादित्र, मृदंगों तथा दुंदुभियोंका शब्द मेघके जैसा गंभीर सुनाई देने लगा, तीर्थंकरों के मन्दिरों में स्नात्र पूजा प्रारम्भ हुई। बन्दीखानों से कैदी मुक्त कर दिये गये। साधुओंको आहारादि दान दिया और साधर्मियोंकी भक्ति पक्वान्न वगैरह से की जाने लगी। सर्वत्र नगरमें आनन्द ही आनन्द छा गया।

उसके बाद त्रिशला रानीने स्नान किया, बलिकर्म यानी देवपूजा की, तिलकादि लगाये तथा विघ्न दूर करने के लिये मंगल किया, वस्त्राभूषणों से सुशोभित हुई और गर्भकी रक्षाके लिये अति शीत, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण, अति कटुक आहार नहीं करती, नींबादि तिक्तरस, सुपारी वगैरह अति कषायरस, इमली, नींबू, दही, वगैरह अति खट्टारस, गुड़, खांड वगैरह अति मीठा रस इत्यादि रसोंवाला आहार नहीं करती, सूखीहुई पुड़ी, चना वगैरह का अति शुष्क तथा अति आर्द्र, हरे पुष्प, फल, कन्दमूल वगैरहका आहार नहीं करती, बहुत घृतादिवाला खानपान तथा अति रूक्ष घृतादि रहित आहार नहीं करती। वायु-जनक चना, उर्द वगैरह खानेसे गर्भ कुब्ज, अन्ध, जड और वामन होताहै, पित्त–जनक वस्तु खानेसे गर्भ स्वलित (मार्ग में चलने से स्वलित गतिवाला), कफ-कारक दही वगैरह खाने से चित्री (चर्मरोग–युक्त) होताहै। गर्भवती स्त्री के अति लवण-युक्त आहार करने से बालक के नेत्रों में हानि होती है, अति शीतल आहार करने से उसके शरीरमें वायुप्रकोप होता है, अति उष्ण करनेसे बालक निर्बल होताहै और मैथुन सेवन करने से गर्भ गिर जाताहै। अधिक पानी पीने से, उकड़ासन बैठनेसे, दिनमें सोने से, रात्रिमें जागने से, मल–मूत्र की बाधा रोकने से बालक के रोग उत्पन्न

होते हैं और श्रावण—भाद्रमासमें लवण, आश्विन—कार्त्तिकमें जल, मार्गशीर्ष—पौषमासमें गायका दूध, माघ—फाल्गुनमें दही, छाछ आदि खट्टारस, चैत्र—वैशाखमें घृत और ज्येष्ठ—आषाढमें गुड़ अमृतके समान है।

नीचे लिखी हुई बातें गर्भवती स्त्रियाँ न करें—विषय सेवन, गाड़ी, ऊंट वगैरह सवारियों पर बैठना, मार्गमें चलना और ऊँचे—नीचे स्थानोंसे कूदना, भार उठाना, लड़ाई करना, दास-दासी-पशुओंका ताड़न करना, शिथिल शय्यापर सोना, छोटी शय्या तथा शरीर प्रमाणसे अधिक लंबी शय्यापर सोना, छोटे आसन पर बैठना, उपवासादि तप करना, अतिरूखा, कटुक, तीखा, कषायला, मीठा, सच्चीकन, खट्टे आहारका करना, अति राग करना, अति शोक करना, अधिक आहारका करना, और अति खारा आहारका सेवन, अतिसार, वमन इत्यादि कार्य गर्भवती स्त्री न करे, यदि करे तो गर्भको हानि पहुंचे, इसलिये त्रिशला रानी उपरोक्त बातें नहीं करती हुई गर्भकी प्रतिपालना करने लगी. गर्भके भारसे अलसाती हुई त्रिशला रानीको सखियाँ इस प्रकार शिक्षा देती रहीं—हे सखि ! धीरे २ चलो, धीरे २ बोलो, किसीपर क्रोध न करो, पथ्य भोजन करो, साड़ीकी गांठ दृढ़ मत बांधो, बहुत हँसो मत, अछायावाली जगहमें अथवा शय्या विना पृथ्वी पर सोवो मत, भूमिघर

वगैरहमें उतरो मत। त्रिशला रानीभी सर्व ऋतुओंमें पथ्य तथा सुखदायक आहारको ही करती, सुखदायक वस्त्रोंको, पुष्प, अवीर, कर्पूर आदि सुगंधद्रव्योंको धारण करती, रोग-भय-शोक-मोह-परित्रासका त्याग करती, देश तथा समयानुसार गर्भके लिये हितकारक, परिमित, पथ्य और पोषक भोजन करती, अपनी मनोज्ञ सखियोंके साथ बैठती, रोष-रहित होकर कोमल वस्त्रादिको शरीर पर धारण करती, दिनको नहीं सोती, क्योंकि दिनमें सोनेसे गर्भस्थ बालक सोनेके स्वभाववाला होता है, बहुत काजल डालनेसे बालक अन्धा, स्नान व विलेपन अधिक करनेसे दुःशील, तेल मर्दन करानेसे कोढ़ी, नख कटवानेसे खराब नखों वाला, दौड़नेसे चंचल, हँसनेसे काले दांत, ओष्ठ, जिह्वा और तालूवाला, बहुत बोलनेसे वाचाल, अतिगान–वादित्र सुननेसे बधिर, अति खेल-कूद करनेसे स्खलित गतिवाला, और बहुत हवा खानेसे उन्मत्त होता है *।

* माता–पिताके आचरण व स्वभावका उनके संतानों पर पूरा २ प्रभाव पड़ता है, गर्भवती स्त्री शुभाशुभ जैसे २ कार्य्य करती है, वैसे २ ही शुभाशुभ लक्षण उनके बच्चोंमें होते हैं, कल्प–सूत्रको प्रति वर्ष करीब २ सर्व जैनी सुनते हैं इसलिये अब उनके लिये यह आवश्यक है कि वे भगवान्की माताके गर्भ-रक्षाकी बातोंपर ध्यान देकरके गर्भकी प्रतिपालना करें, जितनी ही उत्तम रीतिसे गर्भ की रक्षा की जावेगी, उतनाही अधिक गुणवाला संतान उत्पन्न होगा और स्त्री-पुरुषके बीचमें विनय–विवेक पूर्वक जितनाही उत्तम व्यवहार

त्रिशला रानीको जो २ उत्तम दोहले उत्पन्न हुए,वे सब पूर्ण किये गये और वे भी शीघ्रता-पूर्वक और इच्छानुसार—जैसे कि शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्रा करना, साधुओंको (सुपात्रोंको) दान देना, देव-दर्शन करना, देवताओंकी पूजा करना, धर्म्मशालाओं व दानशालाओंका बनाना, अभयदान देना, याचकोंको इच्छित दान देना, जैलखानों से कैदियोंको निकालकर, उन्हें स्नान कराकर भोजन कराकर और वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट करके अपने २ घर भेजना, सम्पूर्ण पृथ्वीको ऋणरहित करना, नगरके लोगोंके हृदयमें उत्कृष्ट हर्षका उत्पन्न करना, हथनीपर बैठ करके हर्षसे नगरमें दान करना, क्षीर-समुद्रका पान करना, चन्द्रसे अमृतका पान करना, सधर्मियोंको भोजन करवाना, शरीरमें सुगन्धित वस्तुओंका धारण करना, उत्तम २ आभूषण पहिनना, और बहुतसे अन्य २ पुण्यकार्योंका करना इत्यादि २ इनमेंसे जिन मनोरथोंको पूर्ण करनेमें सिद्धार्थ राजा असमर्थ हुआ,

---

होगा, गृहस्थाश्रममें उतनेही शांति व आनन्दके साथ उनके दिन व्यतीत होंगे और उसी क्रमसे उनके सुख व संपदाकी भी वृद्धि होगी, जिससे सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करके वे सद्गतिको प्राप्त होसकेंगे। सिद्धार्थ राजा व त्रिशला रानीके विनय-विवेक व स्नेह-भावके उत्तम व्यवहार की ओर ध्यान देकरके जैनी मात्रको अपना जीवन सुखमय बनाना उचित है।

उन मनोरथोंको, इन्द्रने आकर, ❀ पूर्ण किया. इस प्रकार त्रिशला रानीके सम्पूर्ण दोहलोंके पूर्ण होनेसे प्रसन्न चित्तसे गर्भकी रक्षा करती हुई सुख-पूर्वक दिन व्यतीत करने लगी। अव भगवान्के जन्म–समयका वर्णन करते हैं–तिसकाल और तिस समयमें नो महीने साढे सात दिन जाने के वाद, ग्रहोंके + उच्च स्थान में आने पर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेपर, दिशाओंमें सौम्यता आनेपर, धूल वगैरह के तूफानसे रहित ऋतुके आनेपर, पक्षिगणसे जयजयकारका शव्द निकलने पर, वृष्टि हवाकी अनुकूलताके कारण

❀ एक समयमें त्रिशलाको जवरदस्ती से इन्द्राणीके कुंडलोंको लेकर पहिनने की इच्छा उत्पन्न हुई, जिसे सिद्धार्थ राजा पूर्ण नहीं करसका और त्रिशला रानी दुर्वल होनेलगी, भगवान् की माताके पुण्य प्रभावसे इन्द्रका आसन चलायमान हुआ, इन्द्र अवधिज्ञानसे भगवान्की माताका मनोरथ जानकर उसे पूर्ण करनेकी इच्छासे इन्द्राणी सहित मनुष्य-लोकमें आकर क्षत्रीय कुंड ग्राम नगरके पास इन्द्रपुर नगर वसाकर राज्य करने लगे। सिद्धार्थ राजाको मालूम होने पर दूत भेजकर इन्द्र से इन्द्राणी के कुंडल मांगे। इन्द्रने देनेसे इन्कार करदिया, तव सिद्धार्थ राजा फौज लेकर इन्द्रसे लड़ाई लड़ने गये। दोनों के वीच में युद्ध हुआ, इन्द्र महाराज हारकर भाग गये, इन्द्राणी भी भागने लगी तव सिद्धार्थ राजाने कुंडल वलात् छीनकर मंगवा लिये और त्रिशला रानी को देकर उसका दोहला पूर्ण किया।

+ तीन ग्रह उच्च हों तो वालक राजा होताहै, पांच ग्रहों से वासुदेव, छः ग्रहोंसे चक्रवर्ती और सात ग्रह उच्च होंतो तीर्थंकर होताहै।

अनाजके क्षेत्रोंमें अधिक उत्पन्न होनेपर, सर्व लोग सुखी दिखाई देतेथे, ऐसे आनन्दके समयमें चैत्रसुदी त्रयोदशी को मध्य रात्रिमें भगवान्‌की जन्म-कुन्डलीमें सूर्य—चंद्र—मंगल—बुध—गुरु—शुक्र और शनि ये ७ ग्रह उच्च स्थानमें आगये थे, उस समय मकर लग्नमें माता त्रिशलादेवी ने श्रीमहावीर स्वामीको सुख-पूर्वक जन्म दिया.

अब प्रसंग—वश संघके मंगलके लिये चौवीस तीर्थंकर भगवानों के जन्मका अधिकार बतलाते हैं:—



१. ऋषभ देवजी का	२. आजित नाथजीका	३ संभव नाथजीका	४. अभिनन्दनजीका	५. सुमति नाथजीका	६पद्मप्रभु जीका	७. सुपार्श्व नाथजीका	८.चंद्रप्रभुजीका	९. सुविधि नाथजीका	१०. शीतल नाथजीका	११ श्रेयांस नाथजीका	१२ वासु पुज्यजी का
९ महीने ४ दिन में जन्म हुआ	८ महीने २५ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिनमें जन्म हुआ	८ महीने २८ दिनमें जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	९महीने ६दिनमें जन्म हुआ	९ महीने १९ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ७दिन में जन्म हुआ	९ महीने २६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ६ दिनमें जन्म हुआ	९ महीने ६ दिनमें जन्म हुआ	८ महीने २० दिनमें जन्म हुआ

१३. विमल नाथजीका	१४ अनंत-नाथजीका	१५ धर्म नाथजी का	१६. शांति नाथजीका	१७ कुंथु-नाथजीका	१८ अर ना थजी का	१९. मल्ली नाथजीका	२०. मुनि-सुव्रत नाथजीका	२१. नमि नाथजीका	२२. नेमि-नाथजीका	२३. पा-र्श्व नाथ जी का	२४. श्री महावीर स्वामी का
८ महीने २१ दिनमें जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	८ महीने २६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ५ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ७ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ७॥ दिन में जन्म हुआ

॥ इति चौथा व्याख्यान समाप्त ॥

अब पंचम व्याख्यान कहते हैं:— अर्हन्त भगवन्त इत्यादि प्रत्येक व्याख्यानकी आदिमें कहना चाहिये. चौथी वाचनामें महावीर स्वामीका जन्माधिकार कहा. अब पांचवीं वाचनामें श्रीमहावीर स्वामी के जन्म-महोत्सवादिका वर्णन करते हैं:—जिस समय श्रीमहावीर स्वामीका जन्म हुआ, उस समय तीनों लोकमें प्रकाश हुआ, आकाशमें देव-दुन्दुभि बजी, नरकवासी जीवभी क्षणमात्र सुखी हुए, सर्व जगत्में आनन्दही आनन्द छा गया. उसी समय जब छप्पन दिक्कुमारियों के आसन कंपायमान हुए, तब गजदन्तों के नीचे अधोलोक

में रहने वाली भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधरा, विचित्रा, पुष्पमाला, आनन्दिता इन आठ दिक्कुमारियोंने अवधिज्ञानसे श्रीमहावीर स्वामीका जन्म जानकर वहां आकरके प्रभुको और प्रभुकी माताको नमस्कार करके ईशान कोनमें एक सूतिकागृह किया, संवर्त्तक वायुसे एक योजनभूमिको शुद्ध करके सुगन्धित जल छिटका. मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्सामित्रा, वारिषेणा, बलाहिका इन आठोंने ऊर्ध्वलोकसे आकर, जिन और जिनकी माताको नमस्कार करके वहां पुष्पवृष्टि की. नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता ये आठ दिक्कुमारियाँ पूर्वदिशाके रुचकपर्वतसे आकर मुँह देखनेके लिये भगवान्के आगे दर्पन लेकर खड़ीरहीं. समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता, वसुन्धरा ये आठों दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशाके रुचक पर्वतसे आकर कलश हाथमें लेकर भगवान् और भगवान्की मातको स्नान करानेके वास्ते खड़ी रहीं. इलादेवी सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा, सीता, ये आठों दिक् कुमारियाँ पश्चिम दिशाके रुचक पर्वतसे आकर भगवान्की माताके आगे पंखा उड़ाने लगीं. अलंबुसा, मितकेशी, पुंडरिका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्रीः, ह्रीः ये आठों दिक्कुमारियाँ

उत्तर दिशाके रुचक पर्वतसे आकर चँवर ढोलने लगीं. विचित्रा, चित्रकनका, तारा, सौदामिनी ये चारों विदिशाके रुचक पर्वतसे आकर, हाथमें दीपक लेकर भगवान्‌के आगे खड़ी रहीं. रूपा, रूपासिका, सुरूपा, रूपकावती, इन चारों देवियोंने आकर चार अंगुल छोडकर, वाकी की नाल छेद्‌कर, पासही में एक गड्ढा खोद् कर उसमें उसे डालकर, वैडुर्य्य रत्नका एक चबूतरा बनाकर ऊपर दूर्वा बोई और सूतिका घरसे पूर्व, दक्षिण, और उत्तर तीन दिशाओं में केलके तीन गृह बनाकर उनमें सिंहासन रक्खे. उनमेंसे दक्षिण दिशाके कद्‌ली-गृहके सिंहासन पर भगवान् और उनकी माता दोनोंको बैठाकर, दानों के शरीरमें सुगन्धित तेलका मर्दन किया, पूर्वके कद्‌लीगृहके सिंहासन पर बैठाकर दोनोंको स्नान कराकर, शरीरमें चन्दनका विलेपन करके दोनोंको रमणीक वस्त्र धारण कराये । उसके बाद् उत्तरके कद्‌लीगृहके सिंहासन पर उन दोनोंको बैठाकर, अरणी के काष्टसे अग्नि जलाकर चन्दनादि का शांति के लिये होम करके रक्षा-पोटली बाँधकर, 'पर्वत सम आयुः वालेहो' ऐसा आशीर्वाद देकर, मणिरत्नके दो गोलोंको आस्फालन कर, वजाकर, भगवान्‌के क्रीडाके वास्ते पालनेपर बांधकर भगवान् और उनकी माता दोनोंको जन्म—स्थानमें लाकर गीतगान करती हुई दिक्कुमा-

रियाँ अपनी २ दिशाओंमें चली गईं। छप्पन दिक्कुमारियोंके महोत्सव करनेके बाद् भगवान् के पुण्य प्रभाव से चौसठ इन्द्रोंके सिंहासन काँपने लगे, तब अवधिज्ञानसे श्रीमहावीरस्वामीका जन्म जानकर सौधर्मेन्द्रने हरिनेगमेषि देवको बुलाया जिसने आकर ५०० देवोंके साथ बारह योजन विस्तीर्ण, आठ योजन ऊंची और एक योजन लम्बी नाल वाला सुघोषा घंटा बजाया। उस घंटे के शब्दसे बत्तीस लाख विमानों के सब घंटे बजने लगे, जिन्हें सुनकर सब देव सावधान हुए। इसी प्रकार ईशानेन्द्रने लघुपराक्रम देवको बुलाकर महाघोषा घंटा बजवाया, और अन्य देवेन्द्रों ने भी इसी प्रकार किया. जब भगवान्के जन्म महोत्सव करनेको जानेकी सर्वत्र उद्घोषणा की गई, तब सर्व देव इन्द्रके पास आये. हरिनेगमेषि देव द्वारा लाख योजनका पालक नामक विमान बनाया गया, जिसके मध्यमें पूर्व दिशाके सन्मुख इन्द्र बैठा। शक्रेन्द्रके आगे आठ इन्द्रानियाँ नाटक करने लगीं। इन्द्रके बाईं ओर सामानिक देव बैठे, दाहिनी ओर तीनों परिषदा के देव बैठे, पीछे सात अनिकों के स्वामी विराजमान हुए, इसी तरह सर्व इन्द्र अपने २ विमानों में बैठकर परिवार सहित नन्दीश्वर द्वीपमें आये। उनमें से कितनेही देव इन्द्रकी आज्ञासे, कितनेही अपने मित्रके बचन

से, कितनेही अपनी देवांगनाओं के आग्रह से, कितनेही अपने २ भावसे, कितनेही कौतुकसे, कितनेही अपूर्व आश्चर्य देखेंगे ऐसा विचार करके अपनी २ अलग २ सवारियों पर बैठकर आपसमें वार्त्तालाप करते हुए रवाना हुए. सिंहपर बैठा हुआ देव हाथीपर बैठे हुए देवसे कहने लगा— तेरे हाथीको मार्गसे दूर कर, नहीं तो मेरा सिंह उसे मार डालेगा. इसी तरह गरुडस्थ देव सर्पस्थ देवसे कहे और चीतेपर बैठा देव बकरे पर बैठे देवसे कहे. इस प्रकार असंख्य देव अलग २ वाहनोंपर बैठेहुये चले, उस समय विस्तीर्ण आकाशभी सकड़ा दिखाई देनेलगा. मार्गमें कितनेही देव मित्रके आगे जाने लगे, तब पीछेका मित्र बोला— हे मित्र ! क्षणमात्र ठहरो, मैं भी साथ चलूंगा, तब आगेका देव बोला– जो कोई पहिले जाकर भगवान् को नमस्कार करेगा वह भाग्यवान् होगा, ऐसा कहकर आगे ही चला। जिन देवोंके वाहन बलवान् थे और आपभी बलवान् थे वे सबसे आगे २ चले। जब निर्बल देव कहे कि अहो ! क्या किया जाय, आजतो आकाश भी सकड़ा हो गया, तब दूसरा देव बोले–मौन धारण करो, पर्वके दिन संकीर्ण ही होते हैं। आकाशमें चलते हुए देवोंके मस्तक पर तारोंकी किरणें लगीं, तब मस्तकमें श्वेत केश जैसे दिखाई देनेके कारण वे देव निर्जर

होते हुए भी जरासहित दिखाई देने लगे, जब देवोंके शरीर तारागणका स्पर्श करें, तब उनके शरीरमें पसीने के कण जैसे मालूम होने लगे, और मस्तिष्कमें तारे मुकुट जैसे मालूम पडे, इस प्रकार चलते हुए देवोंने नन्दीश्वर द्वीपमें विमानोंका संक्षेप किया, विश्राम लिया और सीधे मेरु–पर्वत पर गये। सौधर्मेन्द्र महावीर स्वामी के पास आकर, भगवान् और उनकी माता दोनों को तीन प्रदक्षिणा देकर, नमस्कार करके भगवान्की मातासे कहने लगा— हे रत्नकुक्षि! आपको नमस्कार हो, मैं सौधर्मेंद्र हूँ, आपने चौवीसवें तीर्थंकरको जन्म दिया है मैं उनका जन्म-महोत्सव करने आया हूं–आप डरना नहीं. ऐसा कहकर माताको अपस्वपिनी निद्रा दी, उसके पास प्रभुके बदले प्रभुका प्रतिबिम्ब मंगलके लिये और स्थान–शून्यका दोष निवारणके लिये रक्खा और अपने पांच रूप बनाकर, एक रूपसे चन्दन–लिप्त हाथोंमें भगवान्को लिये, दो रूपोंसे दोनों बाजू चँवर ढुलाने लगा, चौथे रूपसे भगवान्के मस्तकपर छत्र लगाया, पांचवें रूपसे वज्र लेकर छडीदार जैसा आगे २ चलने लगा. वह सौधर्मेन्द्र भगवान्को इस प्रकार लेकर मेरुपर्वतके ऊपर दक्षिण दिशामें पांडुकवनमें पांडुकम्बला शिलापरके सिंहासनपर, भगवानको गोदमें लेकर बैठगया। वहांपर सर्व देवेन्द्र अपने २ सेवकोंको

इस प्रकार आज्ञा देनेलगे— हे देवों ! एक हजार आठ सोनेके कलश, उतनेही चांदीके कलश, उतनेही रत्नोंके कलश, उतनेही सोने-चांदीके कलश, उतनेही सोने और रत्नोंके कलश, उतनेही चांदी और रत्नोंके कलश, उतनेही सोने, चांदी और रत्नोंके कलश, उतनेही (१००८) मिट्टीके कलश, इस प्रकार आठ प्रकारके सब मिलकर आठ हजार चौसठ कशल लाओ। वे सब देव, पच्चीस योजन ऊँचे, बारह योजन चौड़े, एक योजनकी नालवाले, क्षीर-समुद्र, गंगा, सिन्धु, पद्मद्रहादि तीर्थोंके तथा पुष्प-चूर्ण-केशर-कस्तूरी-मिश्रित जलसे भरे हुये कलशों को लेकर पूजाकी सर्व सामग्री सहित शीघ्रही आगये और भगवान्को अभिषेक कराने के वास्ते इन्द्रकी आज्ञाकी राह देखने लगे। उस समय इन्द्रके मनमें संशय उत्पन्न हुआ— भगवान्का शरीर छोटासा है और जब इतने कलशों की धारा पड़ेगी तब भगवान्का शरीर मेरी गोदसे कहांका कहां बह जायगा। इसप्रकार विचार करके जब इन्द्र भगवान्को अभिषेक करानेके लिये देवोंको आज्ञा नहीं देने लगा, तब भगवान्ने अवधि-ज्ञानसे इन्द्रके मनका संशय जानकर उसे दूर करनेके लिये अपने बायें पैरके अगूंठे से सिंहासन दबाया, सिंहासनके दबनेसे शिला कांपी, शिलाके कांपनेसे मेरुकी चूलिका कांपने लगी और लाख योजनका मेरु पर्वत थर २ कांपने लगा। मेरुके कांपनेसे सर्व

...दिका बहुतसा चूर्ण, और हींगलु-हरिताल वगैरह बहुतसे अच्छे २ वर्णवाले साथ २ स्वर्ण धाराकी वृष्टि की ❀।

प्रातः कालमें प्रभुके जन्मके शुभ समाचार लेकर प्रियभाषिणी दासी सिद्धार्थ राजाके पास बधाई देनेको गई, सिद्धार्थ राजाने प्रमोदसे सन्तुष्ट होकर, छत्रके नीचे बैठाकर मुकुटके सिवाय सर्व आभूषण उसे इनाममें और दासीपन दूर किया। भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों प्रकारके देवोंके रात्रिमें जन्म महोत्सव करनेके बाद, प्रातःकाल सिद्धार्थ राजाने कोतवालको बुलाकर इस प्रकार कहाः—

...ानुप्रिय ! शहरमें जितने कैदी हैं, उन सबको कैदसे मुक्त करो, तमाम दुकानदारोंसे कह दो– अनाज, घी भोजन सामग्री तथा वस्त्र सस्ते बेचें, उनका जो नुकसान होगा वह राज–कोषसे दिया जावेगा. ॥१४७॥

❀ ग्रन्थांतरके अनुसार जन्म दिनसे लेकर पन्द्रह महीनों तक निरन्तर साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा धनद देव करता रहा।

संपुट ८, ये अष्टमंगल स्थापित किये. तत्पश्चात् उन्होंने आरती की, गीत-गान किये, वादित्र बजाये, नाटक किया, भावना भाई और भगवान्को माताके पास रखकर, भगवान्की माताकी अपस्वापिनी निद्रा दूर कर, भगवान्के प्रतिबिम्बको उठाकर, रत्नोंसे जड़े हुये दो कुंडल और देव-दुष्य वस्त्रोंका जोड़ा माताको देकर, रत्नोंसे जड़े हुये सोनेके दड़ेको क्रीड़ाके वास्ते भगवान्के पास रखकर और अंगूठेमें अमृत स्थापित करके, ३२ करोड़ स्वर्णमुद्राकी वृष्टि करके, इन्द्र महाराजने समस्त देवोंमें यह उद्घोषणा की—जो कोई भगवान् अथवा उनकी माताका अशुभ विचार करेगा, उसके मस्तकके एरंड वृक्षकी भाँति इस वज्रसे टुकड़े २ कर दूंगा. इसप्रकार वे चौसठ इन्द्र श्रीमहावीरस्वामीका जन्मोत्सव करके नन्दीश्वरद्वीपमें आठ दिन तक अठाई महोत्सव करके जिनेश्वर भगवान्की पूजन व भक्ति करके अपने २ स्थान गये ॥ इति जन्माभिषेक अधिकार ॥

जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी जन्मे, उस रात्रिमें बहुतसे देव-देवियोंके आनेसे समस्त लोकमें महान् उद्योत हुआ और बड़े जोरका कलकलका शब्द हुआ। जिस रात्रिमें भगवान्का जन्म हुआ, उस रात्रिको इन्द्रकी आज्ञासे तिर्यग् जृंभक देवोंने सिद्धार्थ राजाके भंडारमें बत्तीस करोड़ रुपया, बत्तीस

करोड़ अशर्फियाँ, बत्तीस करोड रत्न, बहुतसे उत्तम २ रेशमी वस्त्र, मुद्रिका वगैरह आभरण, बहुतसे पुष्प व मालाएँ, आम वगैरहके बहुतसे फल, नागर बेलके पत्र, बहुतसे चांवल-गेहूँ-जौ इत्यादि धान्य, कर्पूर, चन्दनादि बहुतसे गन्ध द्रव्य, अबीर इत्यादिका बहुतसा चूर्ण, और हींगलु-हरिताल वगैरह बहुतसे अच्छे २ वर्णवाले पदार्थोंके साथ २ स्वर्ण धाराकी वृष्टि की ❀।

प्रातः कालमें प्रभुके जन्मके शुभ समाचार लेकर प्रियभाषिणी दासी सिद्धार्थ राजाके पास बधाई देनेको गई, तब सिद्धार्थ राजाने प्रमोदसे सन्तुष्ट होकर, छत्रके नीचे बैठाकर मुकुटके सिवाय सर्व आभूषण उसे इनाममें दिये और दासीपन दूर किया। भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों प्रकारके देवोंके रात्रिमें प्रभुके जन्म महोत्सव करनेके बाद, प्रातःकाल सिद्धार्थ राजाने कोतवालको बुलाकर इस प्रकार कहाः— हे देवानुप्रिय ! शहरमें जितने कैदी हैं, उन सबको कैदसे मुक्त करो, तमाम दुकानदारोंसे कह दो– अनाज, घी आदि भोजन सामग्री तथा वस्त्र सस्ते बेचें, उनका जो नुकसान होगा वह राज–कोषसे दिया जावेगा.

❀ ग्रन्थांतरके अनुसार जन्म दिनसे लेकर पन्द्रह महीनों तक निरन्तर साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा धनद देव करता रहा।

नगरमें संघाटक, त्रिक, चौक, चच्चर, महापथ इत्यादि रास्तोंमें तथा सब गलियोंमें, शहरके अन्दर और बाहर सर्वत्र सफाई कराओ, सुगन्धी जलका छिड़काव कराओ, गोबरसे लिपाओ, खड़ी-चूनेकी पोताई कराओ, गली व बाजारोंको शृंगारों, नाटक देखनेके लिये मंचादि बांधो, सिंहध्वज, गरुडध्वज वगैरह ध्वजा-पताकायें बांधो, जगह २ पर चन्दवे बांधो, पुष्पों के ढेर लगाओ, गोशीर्ष चन्दन, रक्त चन्दन, दर्दर चन्दनसे भींतोंपर थापे लगाओ, मांगलिक कलश घरों के चौकमें रखाओ, तोरण बांधकर, घरके दरवाजे शोभायमान करो, लम्बी२ फूलोंकी मालायें लटकाकर नगरको शोभायमान करो, फूलोंके गृह बनाओ, स्थान २ पर पांचवर्णके पुष्प बिखेरो, कृष्णागुरु शिलारस वगैरह दशांग धूप करो और कर्पूर–कस्तूरी की गोलियोंकी तरह सर्व नगर को सुगन्धित करो, स्वयं नाटक करने वाले–नट, दूसरोंसे नाटक करवाने वाले–नर्तक, बांसपर खेलने वाले, मल्युद्ध–मुष्टियुद्ध करने वाले, विदूषक (मश्करे), भांड, रसिक कथाओंको कहने वाले, रासलीलाओंको करने वाले, ऊँट,हाथी व खाडको कूदने वाले, तैरने वाले, राजाकी वंशावली कहने वाले, कवि, शुभाशुभ-निमित्तके कहने वाले, मंख–चित्रपट हाथमें लेकर भिक्षा मांगने वाले, बीण बाजा बजाने वाले, तुम्बेकी वीणा बजाने

वाले, ताली बजा २ कर नाटक करने वाले, इन सबको बुलाकर स्थान २ पर गीत–गान–वादित्र–नाटक शुरू कराओ और मांगलिकके लिये हजारों मुसलोंको खड़े कराओ. राजाकी ऐसी आज्ञा सुनकर कौटुंबिक पुरुष हर्षित हुए और हाथ जोड़कर सन्तोष-पूर्वक उस आज्ञाको अंगीकार करके शीघ्रही बन्दीखानों से कैदियोंको छोड़े, और पूर्वोक्त सब कार्य करके राजाके पास आकर उसकी सूचना दी। उसके बाद राजा अट्टनशालामें जाकर मल्लकुश्ती वगैरह कर, तैलकी मालिश करवाकर, स्नान कर, विलेपन करके अच्छे २ वस्त्र पहिन कर सर्व प्रकारके श्रृंगार धारण कर, अपने परिवार सहित पुष्प, वस्त्र, गंधमाला, अलंकारोंसे शोभित हुआ और बड़ी ऋद्धिसे, बड़ी ध्वनिसे, बड़ी सेनासे, बहुत वाहनसे, बहुत समुदायसे शंख, पणव, भेरी, झालर, खरमुखी, हुडक्क, ढोल, मृदंग, दुन्दुभि (देवोंके वादित्र) और लोलिक–घन्टा वगैरह, ताल–कांसादि, तांत्रिक–वीणा वगैरह, स्वासिक–सहनाई वगैरह, पुटक–ढोल वगैरह, इन पांच प्रकारके वादित्रोंके शब्दसे सिद्धार्थ राजा जन्म-महोत्सव करने लगा. दशदिन तक जकात तथा कर (टैक्स) वगैरह बन्द किये, क्षेत्रोंके लगान छोड़ दिये और लोगोंको सूचना कि दशदिन तक जो २ चीजें चाहें, प्रशन्न चित्त होकर राजाकी दुकानसे ले लें, राजा उनके दाम देगा.

राजाके सिपाही किसीके घरमें जाकर किसीको तकलीफ नहीं देने पाते. राजाने दंड—अपराधके अनुसार द्रव्य लेना, अदंड—बहुत अपराधमें थोड़ा द्रव्य लेना, कुदंड—थोड़े अपराधमें बहुतसा द्रव्य लेना, इन सबका त्याग किया. आपसमें कोई धरना नहीं देता और ऋण नहीं मांगता. सर्व नगरमें रूपवती वैश्याओंका नाटक शुरू हुआ. अनेक तालचर वगैरहके नाटक प्रारम्भ हुए. अनेक प्रकारके वादित्र बजने लगे. पांचवर्णे पुष्पोंकी मालाओंका समूह बांधा गया. नगरमें और देशमें बहुत हर्ष फैला. इस प्रकार अपनी कुल मर्यादाके अनुसार राजा दशादिन तक पुत्रका जन्मोत्सव मनाने लगा. सैकड़ों, हजारों और लाखों रुपये देव-पूजनके लिये तथा अष्टमी-चतुर्दशी का पौषध करने वालोंके लिये और अन्य दान—धर्मादिके लिये स्वयं खर्च किये और दूसरोंसे करवाये। सैकडों, हजारों और लाखों रुपयोंकी वस्तुएँ सिद्धार्थ राजाने स्वयं भेट स्वरूपमें ग्रहणकी और अन्यसे ग्रहण करवाई.

तीसरे दिन श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीके माता—पिताने चन्द्र-सूर्य्यके दर्शन कराये। इस वक्तमें माता पुत्रको दर्पन दिखाती है परन्तु मूलविधि तो यह है कि कुलगुरु आकर पुत्र-सहित माताको स्नान करवा कर अच्छे २ वस्त्र पहिना कर, चाँदी अथवा स्फटिककी चन्द्रमाकी मूर्त्ति बनवाकर उसकी पूजा कर चन्द्रोदयके

समय चन्द्रमाके सन्मुख पुत्र सहित माताको बैठाकर यह मंत्र पढे—

"ॐ अर्हं चन्द्रोऽसि, निशाकरोऽसि, नक्षत्रपतिरसि, सुधाकरोसि, औषधीगर्भोऽसि, अस्य कुलस्य ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा"

चन्द्रमाको नमस्कार करनेके बाद माता कुलगुरुको नमस्कार करे. कुलगुरु आशीर्वाद देवे, और मूर्त्ति का विसर्जन करे. कृष्णचतुर्दशी, अमावस्या हो अथवा चन्द्रमा बादलोंसे ढका हुआ हो तो चन्द्र-मूर्त्तिके आगे पूर्वोक्त विधि की जाती है. उसी दिन प्रातःकाल सूर्योदयके समय सोनेकी या तांबेकी सूर्य्यकी मूर्त्ति बनवाकर, पूर्वोक्त प्रकारसे सूर्यके सामने माता-पुत्रको बैठाकर, इस मंत्रका उच्चारण करे—

"ॐ अर्हं सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, तमोऽपहोऽसि, सहस्रकिरणोऽसि, जगच्चक्षुरसि, प्रसीद अस्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु कुरु स्वाहा"

माता पुत्रको सूर्यके दर्शन करावे. बादलादिके कारण सूर्य नहीं दीखे तो सूर्यकी मूर्त्तिके सामने उपरोक्त किये बाद माता कुलगुरुको नमस्कार करे, गुरु आशीर्वाद देवे. छठे दिन माता—पिता धर्म्म जागरण

करें, ग्यारहवें दिन अशुचि निवृत्त कर, मिट्टीके बर्तन बदलकर स्नानादि करके नवीन वस्त्र धारण करें। बारहवें दिन अशन, पान, खादिम, स्वादिम यह चार प्रकार का आहार तैयार करावें, रसोई बनवाकर सिद्धार्थ राजाने अपने मित्रोंको, जातिवालों को, पुत्र–पौत्रादिको, स्वजनों को, पिताके भाई आदिको, श्वसुरादि सम्बंधियोंको, दास-दासियोंको, अपने गौत्रवालों को, अन्य क्षत्रियोंको तथा सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि नगर निवासियोंको और भी बहुतसे आसपासके गावोंके लोगोंको निमंत्रण दिया। पीछे भगवान् और भगवान्‌की माता दोनोंको स्नान कराकर, नये पवित्र वस्त्र पहिरा कर, घरमें देरासरकी पूजाकर, विघ्ननिवारणके लिये प्रायश्चित्त करके कौतुक कज्जल तिलकादि लगाये, मांगलिक किये, सर्षप दूर्वा वगैरह मस्तक पर धारण किये तथा दृष्टिदोष निवारणके लिये लोह मुद्रिकादि कम कीमतके व शरीरकी शोभारूप बहुमूल्य आभूषण पहिने. भोजनके समय पूर्वोक्त सर्व लोग भोजन–मंडपमें सुखसे बैठे, जिनको अशन, पान, खादिम, स्वादिम यह पूर्वोक्त चार प्रकार का आहार पुरुसा. उनमें से ईक्षु खंडादि कितने ही आहार कम तो खाये जावें और बहुतसे छोड़े जावें ऐसे आस्वादक थे, खजूर वगैरह कितने ही आहार बहुत तो खाये जावें और कम छोड़े जावें, ऐसे विस्वादक थे,

लड्डू वगैरह कितने ही आहार परिभुज्यमान थे जो सर्व खाये जावें, बिल्कुल भी न छोडे जावें। ऐसे आहार करके गुरु-साधर्मियोंको व पूर्वोक्त सर्व लोगोंको सिद्धार्थ राजाने भक्तिपूर्वक भोजन कराया ❀।

* अब वाग्विलास् ग्रन्थसे उस भोजन-युक्तिको कहते हैं जिसको सिद्धार्थ राजाने भक्ति-पूर्वक किया-ऊपर की माल, मध्याह्नकाल. केल पत्रसे छाये, ऐसे मंडप बनाये. कुंकुम का छड़ा, मोतियोंका पासमें कड़ा. नीचे रखे पाट, ऊपर बिछाये रेशमी घाठ. चाचर चाकले, ऊपर बैठे कुमर पातले. चौरस चौकीवट, टाली मनकी खटपट. ऊंची आडनी, भूखकी भियाडनी. निर्मल पानीसे पखाली, आगे रखी सौनेकी थाली. करे रंगरोला, बहुत रक्खा सौने रूपेका कचोला. कुछ रहा नहीं कुरूष, वहां बैठे बत्तीस लक्षणे पुरुष. फान्दवाले, फुंदवाले, टूंदाले, झाग झमाले, गुवियाले, सुद्दाले, आंखे अणियाले. केशपाश काला, कितने जमाई कितने शाला. कितने योद्धाला, चलति हलति अग्नि ज्वाला, ऐसे पांत बैठा राजवी ढींचाला. सुजान सहेली, लाड गहेली. हंसगति चालति, गजगति मालति. काम कामिनी पालति, आंखके मटकारे मदनकी वागुरा डालति. कस्तूरी अलंकृत भालपट्ट, तरुणोंका मांगे मरट्ट. पूर्ण चन्द्र समान वदन, हेलामात्र जीतो मदन. कानोंमें कुण्डल, साक्षात् सूर्य मंडल. लहकाति बैनी, ओढ़नी ओढ़ी झीनी. दिखाति रूडी, खलकाति हाथोंमें सौनेकी चूडी. कौन करे मूल, रत्नजड़े शीशफूल. जैसी देव नारी, ऐसी मनोहर राजकुमारी. ढलतें हाथ, सौनेकी झारी साथ. पहले दिये हाथ धोवन, मानों स्वर्गसे आये इन्द्र जोवन. विनयसे लुलिलुलि, प्रथम पुरसे फल फुलि. वह कौन-कौन फोड़ा हुआ अखरोट, किया ऊंचा कोट. मिश्रीकी पातसे लग थोली, ऐसी पुरसी चारोली. केलेकी कतलि छुलि, रखी रायनकी कुलि. पुरसे नीले नालेर, पासमें रखे सूखे मीठे योरोंके ढेर. और नीली दाख, पके आमकी लाये शाख. खातां प्यारा, पुरसा अच्छा छुहारा. करता मगजा, पुरसा निवजा. हाथ वहै सुस्ता, पुरसा पिस्ता. रस रेडली, छोलि शेडली. सर्व हजूर, मंगाइ पिंड खजूर. मिश्रीसे मिली, अनारकी कली. करना और सदाफल, मिटावे जीभकी झल. नारंगी

उसके बाद मुख-शुद्धि करके आसन पर बैठे हुए मित्र, ज्ञाति और निज संबन्धियों का विस्तीर्ण पुष्प, फल, वस्त्र, गंध और अलंकारोंसे सिद्धार्थ राजाने सत्कार किया. सत्कार करके त्रिशला रानी और सिद्धार्थ राजा

और विजौरी, ऐसी फलेरी पुरसे नारी गौरी. अब देहरों का छाजा, ऐसा पुरसा खाजा. वह कैसे-मालवे की भूम, वहां के नीपजे गोधूम. हाथसे मले, धोयके दले. छानिये सूधी, नीपजे परसूधी. धीरे हाथ चाले, मांहसे थूली टाले. सुजान स्त्री जोइये, तब घोइये. इकलग पाटो, अन्दर दीजे शाटो. जो बैठतीथीं मेड़ी, वे नगरकी वहुआं तेड़ी. तैयार होवे पकवान, सब होवे सावधान. चित्रामकी जाति, छत्तीस फूल की भांति. धीरेसे मेलिये, वेलन से वेलिये. घृतसे मिला, लोहके कड़ाये तला. शब्द कलकले, निर्धूम अग्नि वले. ऐसा प्रधान खाजा, चारों कोने साजा इनोंकी पुरसन हार, सांवली सुकुमार. झलहलति राखडि, पगे चाकडि. रंभाके वेश, मगधदेश. ऐसी नारी पुरसे, देखता मन हींसे. पीछे आये मोदक, रावणोंका मनमोदक. वह कौन कौनसा लाडु, जैसा वहेडा उपर गाडु. पाटनके कन्दोई, घृतसे मैदा मोई. वनी सेव पातली, सुगंध घृतमें तली. घने पाकसे मिली, मिश्रीके खेरोंसे अधमिली. अन्दर लवंगका चमत्कार, अत्यन्त सुकुमार. कपूर परिमल वासा फूल, अन्दर प्रतिवास्या अतिवर्तूल. महा उज्वल ऐसे लाडु, वह कौन कौनसे-सैविया, कांसेलिया, दालिया, वलि खाजना, लाजना भाजना, झगरिया, मगरिया, केसरिया, सिंहकेसरिया. तदनन्तर, मुर मुराते मुरकी, खानेको जीभ फुरकी. लाये सेव झीनी. फगफगती फीनी. इन्द्ररसा आकरा, दूध वर्णा दहीथरा. घृतकी धारी, स्वादसे आहारी. मिश्रीसे रली, ऐसी तिल सांकली. सुकुमाल सुहाली, जो कीजे दिवाली. शक्करपारा साडी, कैसेही नशाके छांडी. ऐसे पुरसे पकवान, जीमनेको सब हुये सावधान. पुरस्यो सीरो, जींमतां मनहुयो धीरो. मोकले हाथसे पुरसी लापसी, जिससें छोटा वडा सब धापसी. उसके बाद लाए शाल, कौन कौनसी शाल-सुगंधशाल, कमोदशाल, जीराशाल, कुंकुनशाल, देवजीराशाल इत्यादि उनको सरहरो, अनियालो, सुहालो, उज्जलो. अंगुल जेवडा प्रमाण वाला पुरसा कूर, भूख

दोनों इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! जिसदिनसे यह बालक कुक्षिमें उत्पन्न हुआ, तभीसे हमारे सोना, चांदी, रत्न, धन, धान्यसे युक्त प्रीति-सत्कारकी वृद्धि होने लगी और चंडप्रद्योतनादि सामन्त राजा वशी हुए, इसलिये हमने विचार किया था कि—जब यह पुत्र जन्मेगा तब इसका नाम गुण निष्पन्न 'वर्धमान' रक्खेंगे, वह हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ, अतः इस कुमारका नाम आपके समक्ष 'वर्धमान' रखते हैं. श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी

करी चकचूर. नीपजी सुकाल, मंडोवर मूंगकी दाल. हलवे हाथे खांडी, तुषगया छांडी. सोनारे वाने, जीमता मन माने. यहां काम नहीं छोकरी, पुरसे डोकरी. वाखरी गायका घृत, तत्काल तपाके मृदपात्र धृत. सरहराति धार, संतोपीयें जीवनहार. पीछे वहु प्रकारका शाक—मुंगिया, केरडोडी, लीलावोर, वालोल, केला, चोलोंकी फली, गुंवार फली, नीला चना, मिर्च इत्यादि शाक, अच्छा कियां पाक. और सूंठ की पलेव, मिरचकी पलेव, हडेकी पलेव. हींग वघारी कढी. पतलापापड तला, मिर्च हींगमांहीं मिला. नागर वेलके पान, जीमतां दुगुणो भावे धान. विचविच चमचमता शाक, ऊतरे जीभका थाक. खाते कलाकंद, उपजे आनन्द, दूध साकरभरा माट, पीतां उतरे जीभ दांतों को काट. स्वभावे मिलाया शुद्ध, मिश्रीसे अधोअद्ध. ऐसा वाखरी गायका दूध, कटोराभर गटगट पीध. तदनन्तर छोड़ा विलंब, लाये कपूरवासित करंब. जीरा लोचन मिलाया घोल, ऊपर राइका झोल. अव चलु कीजे, अर्वीरसे हाथ धोइजे. उत्तम वस्त्र हाथ लोहीजे, पंच-सुगंध पानबीड़ा अरोगीजे, चोबाचन्दन अगरजाका छांटना दीजे, केसर चन्दन कपूर कस्तूरीसे पूजीजे. अच्छे सुगंध पुष्पोंकी माला कंठे ठवीजे, ऊपर यथा-योग्य आभरण वस्त्र तंबोल दीजे. मनकी भ्रांति भांजीजे, ऐसी सिद्धार्थराजा और त्रिशलाराणीकी भक्ति-युक्तिसे सर्वकुटुंब रीजे. सर्वकुटुंवीपोषी, सगासंतोषी, नाठा दुश्मन दोषी. इस प्रकारसे माता-पिता प्रवृते.

काश्यप गोत्रीयके तीन नाम हुए—माता पितासे दिया हुआ वर्धमान १, राग–द्वेषरहित होकर तपमें परिश्रम करनेसे श्रमण २, जो अकस्मात् उत्पन्न होनेवाले भय, सिंहादिसे उत्पन्न होने वाले भैरव, इन सब भय–भैरवों से अचल, निर्भय, क्षुधा, तृषादि परिषह–उपसर्गोंको सहन करने वाले, तीन ज्ञानसे विराजमान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, धैर्य्यवान्, अरति–रतिको सहन करने वाले, सुख दुःखमें समभाव वाले, द्रव्यवीर्य सम्पन्न, मुक्ति प्राप्त करनेका निश्चय वाले होकरभी चारित्र पालने वाले इत्यादि गुणोंसे सम्पन्न होनेसे 'महावीर' नाम हुआ ३. दशम देवलोकके पुष्पोत्तर प्रवर पुंडरीकविमान से च्यवकर आनेसे अनुपम शोभायुक्त, दास दासी सेवकोंसे सेव्यमान भगवान् बढने लगे. श्याम बाल वाले, सुनयन, धोले दांतोंकी पंक्तिवाले, कमलके गर्भ जैसे गौरवर्ण वाले, विकसित कमलके सदृश सुगन्धित निःश्वास वाले भगवान्के रूपमें सब देवभी उनके बायें पैरके अंगूठेकी भी बराबरी नहीं कर सकते। सबसे अधिक रूपवान् भगवान् हैं। उनसे कुछ न्यूनरूप गणधरोंका है, कुछ न्यून आहारक शरीर करने वाले चौदह पूर्व धारियों का है, उनसे कुछ कम पंचानुत्तर विमानवासी देवोंका है, उनसे कुछ कम नवग्रैवेक देवोंका है, उनसे कम क्रमशः बाहर देवलोकोंके देवोंका है, उनसे कम भवनपति,

ज्योतिषि और व्यन्तर देवोंका है, उनसे कम क्रमशः चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और अन्य सामान्य राजाओंका है, इसी प्रकार उनसे अनुक्रमसे उतरता हुआ छः संस्थान, छः संघयणवाले मनुष्योंका है, परन्तु देहकी कान्तिमें श्रीमहावीर इन सर्वमें उत्कृष्ट हैं। जातिस्मरण ज्ञानवान्, अप्रतिपाति मति, श्रुति, अवधि, इन तीनों ज्ञानोंसे विराजमान् श्री महावीर स्वामी जब कुछ कम आठ वर्षके हुए, तब अपने समान राजकुमारोंके साथ आमलिकी क्रीड़ा करने लगे. नगरके बाहर पीपलका वृक्ष था, वहाँ सर्व बालक इकट्ठे होकर दौड़ते, क्रीड़ा करते. उस क्रीड़ामें यह नियम था कि नियत स्थानसे दो बालक दौड़े, जिनमें जो पीपलपर पहिले चढें वह तो जीता, दूसरा हारा और जीता हुआ बालक हारे हुए के कंधेपर बैठकर, जहाँसे दौड़े वहीं पर आवे। उस समय इन्द्रने देवोंके आगे भगवान्का बल वर्णन किया, और कहा कि सर्व देव और दानव मिलकर भी भगवान्को नहीं डरा सकते। यह सुनकर इस बातपर विश्वास नहीं करता हुआ एक मिथ्यात्वी देव बालक का रूप धारण करके भगवान्के समीप आया और उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। भगवान् और देव दोनों दौड़े। भगवान्, अतीव शीघ्र–गामी होनेसे, देवके आगे होगये, तब देवने भगवान्को डरानेके लिये पीपलके

पासमें, स्कन्धमें, शाखाओंमें फुत्कार करते हुए सर्प रचे. श्री वर्धमान कुमार, सर्पोंको देखकर निर्भय होकर उन्हें हाथसे फैंककर, पीपलपर चढ़गये. जब वह देव हारा और श्रीवर्धमान जीते, तब उस देवने भगवान् को कंधेपर चढ़ाये. अब भगवान्को छलनेके लिये उस देवने एक ताड़से लेकर सात ताड़ तक अपना रूप ऊँचा किया. सर्व बालकोंने भय-भ्रान्त होकर भागकर त्रिशला रानी व सिद्धार्थ राजाके पास जाकर समाचार कहे: श्रीवर्धमान कुमार तो नहीं डरे, परन्तु माता पिताकी चिन्ता दूर करने के लिये भगवान्ने उस देवके मस्तकपर वज्र जैसे मुष्टि-प्रहार किये, जिससे वह देव आक्रन्द शब्द करता हुआ कमर तक पृथ्वीमें घुसगया, बहुत लज्जित हुआ, अपना स्वरूप प्रकट किया और बोला—इन्द्रने सभामें आपकी जैसी प्रशंसा की थी, वैसेही आप महा वीर हैं. ऐसा कहकर, नमस्कार कर, 'महावीर' नाम रखकर अपना मिथ्यात्व गमाकर और सम्यक्त्व प्राप्त करके वह देव देव-लोकमें गया। इस प्रकार आमलिकी क्रीडामें भगवान्का नाम महावीर हुआ।

अब भगवान्के लेखक-शाला जानेका स्वरूप कहते हैं:—जब भगवान् आठ वर्षके हुए, तब माता—पिताने मोहके वशीभूत होकर ऐसा विचार किया—

लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रं मित्रं समाचरेत् ॥ १ ॥

जब तक बालक पांच वर्षका हो तब तक माता-पिता पुत्रका लाड़ करें, और जब दश वर्षका होवे, तब पढाने के लिये ताड़ना करें, इसी तरह जब सौलह वर्षका होजाय तब उसके साथ मित्रवद् बर्ताव करना चाहिये।

माता वैरी पिता शत्रुर्बालो येन न पाठितः। सभामध्ये न शोभते हंसमध्ये बको यथा ॥ २ ॥

जिस बालकको माता पिताने नहीं पढ़ायाहै, वह माता वैरी है, पिता शत्रु है, जैसे हँसों की सभामें बक नहीं शोभता, वैसेही पंडितों की सभामें वह शोभा नहीं पाता ॥ २ ॥ ऐसे विचार करके शुभ मुहूर्त्तमें अपना कुटुम्ब, क्षत्रियवर्ग, स्वजन सर्वको भोजन कराकर, यथा-योग्य वस्त्र आभूषणादि देकर, हाथी-घोड़े-रथ वगैरह शृंगार कर, वर्धमान कुंवरको स्नान कराकर, वस्त्राभूषणसे अलंकृतकर, तिलक कर, हाथमें श्रीफलादि देकर, शिरपर छत्र धारण करके चंवर विजाते हुए हाथीपर बैठाया और पंडित तथा विद्यार्थियोंको देनेके लिये मेवा, मिष्टान्न, वस्त्राभूषण वगैरह लेकर वादित्रों के और सधवा स्त्रियोंके गीत—गानके साथ वर्धमान कुंवरको विद्यालय की तरफ़ बड़ी धूम धामके साथ पढ़ानेके लिये लेजाने लगे, तब पंडित भी अच्छे २ वस्त्र पहिन कर, बड़ी

आशासे श्रीवर्धमान कुमारका आगमन देखने लगा । उस समय इन्द्रासन कांपा, इन्द्र अवधिज्ञानसे इस बातको जानकर सर्व देवों के आगे कहने लगा– हे देवों ! देखो, मोहके वशीभूत होकर भगवान् के माता-पिता पागल होगये हैं जो वे तीन ज्ञात सहित, सर्व शास्त्रतत्त्वज्ञ भगवान् श्री महावीर स्वामीको अल्प-बुद्धि वाले अध्यापकके पास पढाने को लेजाते हैं । तीर्थंकर भगवान् तो बिना अध्ययनके ही पंडितहैं, द्रव्य बिनाही परमेश्वर हैं, और अलंकार बिनाही शोभाके धारण करने वाले हैं। लोकोक्ति भी यह है कि शरद् ऋतुमें (आशोज–कार्त्तिकमें) बादल बहुत गर्जें परन्तु वरसें नहीं, वर्षाकालमें (श्रावण–भाद्रमें) थोड़े गर्जें परन्तु बहुत वरसें, मूर्ख–अल्पबुद्धि वाला बहुत बोले परन्तु अपने बोले हुएका निर्वाह न करे, तत्त्वज्ञ पंडित बोले थोड़ा परन्तु अपने बोले हुएका निर्वाह करे, असार पदार्थका आडम्बर बहुत होताहै; जैसे–कांसीके पात्रको थोडासा ठोकने परभी बहुत शब्द होताहै और सौनेके पात्रका बहुत ठोकने परभी वैसा शब्द नहीं होता, उसी प्रकार त्रिकालज्ञ भगवान् गम्भीर हैं और बिना पूछे कुछभी नहीं कहते. ऐसा कहकर इन्द्र उसी वक्त स्वयं ब्राह्मणका रूप धारणकर, उपाध्यायके सामने भगवान्को नमस्कार करके, भगवान्से शब्दोंका सन्देह पूछने

लगा, तब भगवान् श्रीमहावीर स्वामी आठों व्याकरणों का*तत्त्व-शब्द-साधन इन्द्रसे कहने लगे। उस समय सर्व लोग भगवान्की वाणी सुनकर विचार करने लगे— अहो ! यह वर्धमान कुमार, जिसने वर्ण-मात्रभी नहीं पढा, इस परदेशी सर्व विद्यापारगामी ब्राह्मणके कठिन प्रश्नोंकाभी उत्तर देताहै, आश्चर्य है ! जब वहांके अध्यापकने भगवान्से जो २ प्रश्न पूछे उनकाभी समाधान भगवान्ने किया, तब इन्द्र अपना स्वरूप प्रकट कर के सर्व लोक और माता-पिताके समक्ष बोला— अहो ! यह वर्धमान कुमार सामान्य मनुष्य नहीं है किन्तु तीनों लोकका स्वामी सर्वज्ञ है. जो अन्तर मूर्ख और विचक्षणमें, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें, राजा और रंकमें, सर और सागरमें, सूर्य्य और दीपकमें है, वही अन्तर तीर्थंकर और सामान्य लोगोंमें है. तीन जगत्के स्वामी तीर्थंकर का इस संसारमें कोईभी सादृष्य नहीं कर सकता। ऐसा कहकर इन्द्र तीनों ज्ञानोंसे सम्पूर्ण श्रीवर्धमान स्वामी

---

* उस समय जिनेन्द्र व्याकरण बना, जिसके भगवान्ने सूत्र कहे, इन्द्रने वृत्ति व उदाहरण दिखलाये और जिसके निम्नलिखित दस अंग अबभी व्याकरणोंमें देखने में आते हैं—संज्ञा १, परिभाषा २, विधि ३, नियम ४, अतिदेश ५, अनुवाद ६, प्रतिषेध ७, अधिकार ८, विभाषा ९, निपात १०।

की स्तुति करके, स्वर्गमें गया, और वर्धमान कुमारभी अध्यापकको व विद्यार्थियों को मनो वांच्छित दान देकर हाथीपर बैठकर माता-पिता आदि परिवार सहित वापिस घर आये ॥ इति लेखक-शालागमन-महोत्सव ॥

जब भगवान् बाल–भावको छोड़कर यौवनावस्था को प्राप्त हुए, तब माता-पिताने भोग समर्थ जानकर, अच्छे मुहूर्त्तमें, समरवीर सामन्त राजाकी 'यशोदा' नामकी पुत्रीके साथ वर्धमान कुमारका पाणी–ग्रहण कराया. उसके साथ विषय सुख भोगते हुए वर्धमान कुमारके एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम प्रियदर्शना रक्खा गया और जिसका विवाह भगवान्‌की बाहिनके पुत्र जमालीके साथ किया गया. भगवान्‌के इस प्रकार गृहस्थावास में रहते हुए अट्ठाईस वर्ष होगये । उस समय भगवान्‌के माता–पिता चौथे देव–लोकमें गये (कहीं २ बारहवें देव लोकमें गये, ऐसाभी कहा है). जब सर्व प्रजाने भगवान्‌के बड़े भाई नन्दीवर्धनको राज्याभिषेक किया, तब श्री वर्धमानने दीक्षा लेनेके वास्ते नन्दीवर्धनसे आज्ञा मांगी । नन्दीवर्धन बोला—हे भाई ! इसी समय तो माता-पिता का वियोग है और तूभी दीक्षा लेनेको तय्यार हुआ है. यह तो बले हुए के ऊपर क्षार डालने जैसा है, अभी मैं दीक्षा की आज्ञा नहीं दूंगा– तब भाईके आग्रहके कारण भगवान् दो वर्ष तक

प्रासुक अन्न-पानी लेते हुए साधु-वृत्तिसे पुनः घरमें रहे।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां। गृहेऽपि पंचेन्द्रिय निग्रहस्तपः॥
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते। निवृत्तरागस्य गृहे तपोवनम्॥ १॥

जो पुरुष रागसहित होते हैं, उनके वनमें रहते हुए भी दोष उत्पन्न होते हैं और जिस पुरुषकी पांचों इन्द्रियाँ वशमें होती हैं और जो निरन्तर धर्मकार्य में प्रवर्त्त होता है, राग-द्वेष रहित हुए उस पुरुषके लिये गृह भी तपोवन ही है।

राग-द्वेषौ यदि स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम्। तावेव यदि न स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम्॥ २॥

राग-द्वेष होवे तो तप पूर्णतया फलदायक नहीं होता और राग द्वेष न होवे तो तप पूर्णतया फलदायक होता है. इस प्रकार राग-द्वेष रहित होकर श्रीमहावीरस्वामी प्रासुक अन्न-पानी लेते हुए दो वर्ष तक घरमें रहे। पहले जब त्रिशला रानीने चौदह स्वप्न देखे थे, तब सबको मालूम होगया था कि चक्रवर्ती पुत्र होगा. उसके बाद जब सिद्धार्थ राजाके वर्धमान कुमार हुए, तब उनकी सेवाके वास्ते श्रेणिक-चंड प्रद्योतन इत्यादि राज-

कुमार आये, परन्तु वर्धमान स्वामी को दीक्षा लेनेके वास्ते तय्यार हुए जानकर अपने २ घर चले गये।

अब भगवान्का सर्व कुटम्ब कहते हैं:— श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पिताके तीन नाम हुए— सिद्धार्थ १, श्रेयांस २, यशस्वी ३. भगवान्की माताकेभी तीन नाम हुए— त्रिशला १, विदेहदिन्ना २, प्रीतिकारिणी ३. भगवान् के काका का नाम सुपार्श्व, बड़े भाईका नन्दीवर्धन, बहिनका 'सुदर्शना और भार्य्याका नाम यशोदा था. भगवान्की पुत्रीके दो नाम हुए— अनोद्या १, प्रियदर्शना २. भगवान् की पुत्री की पुत्री के भी दो नाम हुए—शेषवती १, यशस्वती २. श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी प्रवीण, प्रतिज्ञाका निर्वाह करनेवाले हैं, प्रातिरूप (जैसे— दर्पनके सामने रक्खी हुई वस्तु स्पष्टरूपसे दिखाई देती है, उसी प्रकार भगवान्में सर्व गुण स्पष्टरूपसे दिखाई देते हैं), सर्व गुणयुक्त, गुप्तेन्द्रिय, सरल स्वभाव, विनयवान्, ज्ञात लोगों में प्रसिद्ध, सिद्धार्थराजाके पुत्र, सिद्धार्थराजाके कुलमें चन्द्र, विशिष्ट देहकी कान्ति वाले, वज्र–ऋषभ–नाराच–संघयण वाले, समचतुरस्र संस्थानवाले, विदेहदिन्ना (त्रिशलारानी के पुत्र), घरमें निस्पृही, दीक्षा के इच्छुक भगवान्ने दीक्षा लेनेके एक वर्ष पहलेसेही सम्वत्सरी दान देना शुरू किया, और सूर्योदयसे ११

बजे तक एक करोड़ आठ लाख सौनेयों का प्रतिदिन दान किया*. इस प्रकार एक वर्षमें तीन सौ अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख सौनेयोंका दान दिया गया। रत्न, वस्त्र, घोड़ा, हाथी वगैरह वस्तुयें इतनी दी गई कि उनकी तो कोई संख्याही नहीं है। जिसको जो वस्तु चाहिये सो मांग ले, ऐसी उद्घोषणा नित्य नगरमें होती. इसप्रकार प्रभु तीस वर्षतक घरमें रहे। माता-पिताके स्वर्गवास बाद बड़े भाईकी आज्ञानुसार और गर्भमें की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी होनेके पश्चात् श्रीवधर्मान स्वामी दीक्षा लेनेको तय्यार हुए. पांचवें देवलोकके तीसरे प्रतरमें

---

* अनादि कालका यह नियम है– कि तीर्थंकर भगवान् के वार्षिक दानके समय इन्द्रकी आज्ञासे उनका भण्डारी धनद देव एक करोड़ आठ लाख सौनेये नित्य बना २ तीर्थंकर के भण्डारमें रखताहै, जिनपर तीर्थंकरके माता–पिता और तीर्थंकरका नाम खुदा रहता है। यद्यपि तीर्थंकरमें अनन्त बल होताहै, तथापि दानके समय सौधर्मेन्द्र भगवान्के हाथोंमें ऐसी शक्ति डालता है कि भगवान् को दान देते २ श्रम नहीं मालूम होता १, ईशानेन्द्र रत्न जटित छड़ीको लेकर, आकाशमें खड़ा होकर ६४ इन्द्रों को छोड़ कर बाकीके देवों को दान लेने से रोके तथा मनुष्य के भाग्यमें जितना लिखा होवे, इन्द्र देवानुभावसे उसके मुखसे उतनेकी ही याचना करावे २, चमरेन्द्र व बलीन्द्र दान देते समय भगवान् की मुष्टिमें अधिक द्रव्य हो तो निकाल लें और कम होवे तो रख दें ३, भुवनपति देव भरत क्षेत्रके सब देशों के मनुष्यों को दान लेने के लिये बुला लावें ४, व्यन्तरदेव दान लिये हुए मनुष्यों को अपने २ स्थान पहुचा देवें ५,

कृष्णराजी के अन्तमें आठ दिशाओंमें आठ विमान हैं और नवां विमान उनके मध्यमें है. उनमेंसे आठ विमानोंमें अल्प भवोंमेंही मुक्ति जानेवाले देव रहते हैं और मध्यस्थ विमानमें एक भव करके मुक्ति जाने वाले देव रहते हैं. देवलोकके अन्तमें रहने वाले अथवा संसारका भी अन्त करने वाले होनेसे ये लोकांतिक देव कहे जाते हैं. उसी समय सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाद, आग्नेय, अरिष्ट, इन नौ प्रकार के लोकान्तिक देवोंने श्रीवर्धमान स्वामी से दीक्षा लेनेकी विनति की. यद्यपि तीर्थंकर स्वयं बुद्ध होते हैं, तथापि लोकान्तिक देवोंका यह कर्तव्य है कि दीक्षावसरमें आकर तीर्थंकरको दीक्षाका अवसर जय २ शब्द–

ज्योतिषि देव विद्याधरों को दान लेनेकी सूचना देवे ६. इस प्रकार तीर्थंकरों के दानमें ६ अतिशय होती हैं और उस समय तीर्थंकर के पिता अथवा बड़े भाई वगैरह घरके तीन दानशालायें बनाते हैं, एकमें मनोवांच्छित भोजन, दूसरीमें मन चाहे वस्त्र और तीसरी में आभूषण मिलते हैं. देवानुभावसे तीनों शालायें सर्व प्रकारकी वस्तुओं से परिपूर्ण रहती हैं और तीर्थंकरके दानके प्रभावसे ६४ इन्द्रों के आपसमें विरोध नहीं होता। राजा, चक्रवर्ती आदि भगवान्के दानको लेकर भंडारमें रक्खें तो बारह वर्ष तक भंडार भरे रहें, सर्वत्र यश–कीर्त्ति की वृद्धि होवे, रोगियों के रोग जावें और अन्तमें परम्परासे मुक्ति प्राप्त करें. इस प्रकार भगवान्से दान लेने वालोंको अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। इसलिये इन्द्रादि देव व राजा महाराजा सभी भगवान्के हाथसे दान लेते हैं।

पूर्वक इस प्रकार कहकर बतलावें—हे स्वामिन् ! हे क्षत्रियवरवृषभ ! आप जयवन्त होवें, जगत्के जीवोंका हित करें और सर्व जीवोंका कल्याण करने वाले होवें। हे लोकनाथ ! आप प्रतिबोध पावें और दीक्षा लेकर तथा केवल ज्ञान पाकर सकल जन्तुहितकारक धर्मतीर्थको प्रगट करें। पहिले भी गृहस्थावस्थामें स्त्री सेवनादिसे भगवान्का मन विरक्त था और अब अवधि ज्ञानसे भी दीक्षाका अवसर जानकर, स्वर्णादिका परिग्रह त्याग कर, पृथ्वीमें गाड़े हुए सौनेये आदि धनको प्रगट किया और अपने गौत्रियोंको देकर दीक्षा ग्रहण करनेको तय्यार हुए.

अब भगवान्का दीक्षावसर कहते हैं—तिसकाल और तिस समयमें शीतकालके पहिले महीने, पहिले पक्षमें, मार्गशीर्ष कृष्ण दसमीके दिन, पूर्व दिशामें छाया जाते समय, एक प्रहर दिन रहने पर सुव्रत नामक दिनमें, विजय नामक मुहूर्त्त में नन्दीवर्धन राजाने भगवान्का दीक्षा महोत्सव करना प्रारम्भ किया। उसी समय सर्व इन्द्रोंके आसन कांपनेसे, अवधि ज्ञानसे भगवान्का दीक्षा लेनेका समय जानकर, देवेन्द्र आये. स्नान, विलेपनादिसे जन्म—महोत्सवके जैसा पहिले नन्दीवर्धनने भगवान्का दीक्षा महोत्सव किया, फिर इन्द्रोंने किया. पचास धनुष लम्बी, पच्चीस धनुष चौड़ी, छत्तीस धनुष ऊँची चन्द्रप्रभा नामकी एक पालकी राजाने बनवाई.

और दूसरी इन्द्रने बनवाई. उनमें भगवान्के बैठनेके वास्ते रत्न जडित सौनेका सिंहासन रक्खा गया. जब भगवान् नन्दीवर्धन राजाकी बनाई हुई पालकीमें बैठें तो इन्द्र मनमें उदास होवे और यदि इन्द्र की बनाई हुई पालकीमें बैठें, तो राजा उदास होवे, इसलिये देव-प्रभावसे दोनों पालकियाँ एक होगई. उसमें भगवान् पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके विराजमान् हुए. सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र चँवर ढालने लगे. कुल महत्तरिका हंसलक्षण पटशाटक लेकर भगवान्के बाईं ओर बैठी. दाहिनी ओर प्रभुकी धायमाता दीक्षाके उपकरण लेकर बैठीं. भगवान्के पीछे सुन्दर शृंगार वाली एक तरुण स्त्री श्वेत छत्रको प्रभुके सिरपर लगाये हुए बैठी. गंगा जलका कलश लेकर एक स्त्री ईशान कोनमें बैठी. एक स्त्री रत्न जटित दंडे वाले पंखेको वींजती हुई आग्नेय कोनमें भद्रासन पर बैठी. नगरके दरवाजे तक मनुष्योंने पालकी उठाई. उसके बाद देवोंने उठाई. शक्रेन्द्रने पालकी के दक्षिणकी ऊपरकी बाह उठाई. ईशानेन्द्रने उत्तरकी ऊपरकी बाह उठाई. चमरेन्द्रने दक्षिणकी नीचेकी बाह उठाई. बलीन्द्रने उत्तरकी नीचेकी और भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक इन्द्रोंने जहाँ जगह मिली वहींपर पालकी उठाई। पालकीके आगे कितने ही देव मार्गमें पांचवर्ण पुष्पोंकी वर्षा करते चले, कितने ही देव

देवदुन्दुभि बजाते चले, कितने ही देव नाटक करते चले. स्त्री-पुरुष और देवोंका महान् समुदाय भगवान्की दीक्षा का महोत्सव देखनेके लिये साथ हुआ, जिससे क्षत्रीय–कुन्ड–ग्राम–नगरका मार्ग भी अत्यन्त संकीर्ण दिखाई देने लगा। आठ मनुष्य पालकीके आगे सौने के थालमें आठ मंगल लिये हुए चले. उनके आगे सिर पर गंगा जलसे भरे हुए कुम्भको उठाये हुए सधवा स्त्री चली. उसके बाद क्रमशः भृंगार, चँवर, बहुतसी ऊँची २ ध्वजायें, श्वेत छत्र, रत्न जटित स्वर्णका सिंहासन, १०८ कोतल घोड़े, इन सबके बाद अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, घन्टानाद सहित और वीर पुरुषोंसे आश्रित १०८ रथ चले। पीछे सन्नद्धबद्ध, सर्वांग सुन्दर १०८ वीर पुरुष चले. पीछे सिन्दूर तैलसे पूजित मस्तक वाले तथा सौनेके घन्टोंसे विराजित १०८ हाथी चले. पीछे हजार योजन ऊँचा रत्न जटित इन्द्र-ध्वज चला. पीछे चक्रधर, हलधर, शंखधर, मुखमांगलिका, वर्धमान (छोटे २ कुमारोंको श्रृंगारकर कांधेपर उठाकर चलने वाले) पुरुष चले. पीछे राजाकी वंशावली कहने वाले, घंटा बजाने वाले आदि पुरुष जय २ शब्द-पूर्वक भगवान्की स्तुति करते हुए चले. पालकीपर बैठेहुए मनुष्य और देवोंसे परिवृत श्री वर्धमान स्वामी क्षत्रीय–कुंड–नगरके मध्यमें होकर पग २ में दान देते हुए चले.

उनके पीछे नन्दीवर्धन राजा हाथीपर बैठे हुए चले. उस समय सर्व जन इस प्रकार कहने लगे– हे क्षत्रीयवर वृषभ, आप जयवन्त होवें, वृद्धि पावें, आपका कल्याण होवे और अभंग ज्ञान-दर्शन-चारित्रसे अजय इन्द्रियों और मनको जीतो. हे स्वामिन् ! जितविघ्न होकर आप साधु धर्मका पालन करो, उत्कृष्ट तपके बलसे राग-द्वेषादि शत्रुओंके साथ युद्ध कर, सन्तोष धैर्यसे कक्षा बांधकर आठ कर्मरूपी शत्रुओंका मर्दन करो, उत्कृष्ट शुक्लध्यानसे तीन लोकरूप रंग मंडपमें विजय प्राप्त करो और अप्रमादी होकर, आवरण रहित केवल ज्ञान को प्राप्त करके मोक्षमें जाओ. ऋषभादि तीर्थंकरोंके कथनानुसार हे स्वामिन् ! आप ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी आराधना करके बाईस परिषहरूपी शत्रुसेनाको जीतकर, बहुत दिन, बहुत पक्ष, बहुत मास, बहुत ऋतु, बहुत अयन *, तथा बहुत वर्षों तक परिषह उपसर्गोंसे निर्भय होकर क्षमासे सर्व भय-भैरवादिको सहन करते हुए साधु धर्मका पालन करो, और सदा निर्विघ्न बनो। तदनन्तर जगह २ पर बैठे हुए मनुष्य समुदायके हजारों नेत्रोंसे देखे जाते हुए, हजारों मुखोंसे स्तुति किये जाते हुए, हजारों हृदयोंसे चिंत्यमान भगवान्की

* दो महीनोंकी एक ऋतु, छः महीनोंका एक अयन और दक्षिणायन–उत्तरायनका एक बर्ष होता है।

आज्ञाको सर्वदा मस्तक पर धारण करें ऐसे हजारों मनुष्योंसे प्रशंसमान् , हजारों अंगुलियोंकी श्रेणिसे आदर सहित दिखाये जाते हुए, ऐसे भगवान् सबका नमस्कार ग्रहण करें. वेणु-वीणादि वादित्रोंके शब्दोंके साथ गीत-गान सहित, जय २ नन्दा इत्यादि वचनमिश्रित, ऐसे अव्यक्त कोलाहलमें भी सावधान श्रीवर्धमानस्वामी छत्र-चँवरादिकी समृद्धि, आभरणादिकी सर्वकान्ति, सर्व हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्यादिकी सर्व विभूति, सर्व शोभा, सर्व हर्षोत्कर्ष, सर्व सज्जनोंका मिलाप, सर्व नगरमें रहने वाले अठारह श्रेणि प्रश्रेणि सहित, सर्व नाटक इन सबके साथ, १९ कोटितालभेद सहित, सर्व पुष्प, फल, गन्धमाला, अलंकारादि सहित, शंख, भेरि, पटह, मृदंग, झल्लरी, खरमुखी इत्यादि वादित्रोंके प्रतिशब्द सहित क्षत्रीय-कुन्ड-ग्राम-नगरके मध्यमें होकर ज्ञातवनखन्ड उद्यानमें, जहाँपर अशोक वृक्षहै, वहां आये. वहाँ आकर अशोक वृक्षके नीचे पालकी रक्खी गई. पालकीसे उतरकर स्वयंही अंगोपांगसे आभरण उतारकर नन्दीवर्धनको देने लगे। तत्पश्चात् स्वयं भगवान्ने पंचमुष्टि केशोंका लोच किया. भगवान्के केस लेकर इन्द्रने क्षीर समुद्रमें बहाये और सौनेकी छड़ी घुमाकर, वादित्रादिका कोलाहल बन्द करके उच्च स्वरसे कहने लगा—सर्वलोक सावधान रहे और छींके नहीं। लोच

करनेके पश्चात् "नमः सिद्धेभ्यः" ऐसा कहकर "करेमि सामाइयं" इत्यादि पाठका उच्चारण करके भगवान्ने चारित्र लिया, परन्तु 'भन्ते' ऐसा पद नहीं कहा. इसका कारण यह है कि भगवान् स्वयं संबुद्ध जगत् गुरु हैं, उनका कोई गुरु नहीं है। भगवान्ने दो चौविहार उपवास किये, एक उपवास पहिले दिन, दूसरा उपवास दीक्षाके दिन। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेसे तथा दुःषम कालविशेषके कारण भगवान्के साथ किसीने भी दीक्षा नहीं ली. अकेलेही भगवान् दीक्षा लेकर, द्रव्यमुंड होकर, क्रोधादि कषायोंसे रहित होकर भावमुंड हुए, गृहस्थावासका त्यागकर अनागार हुए. जब इन्द्रने सवालाख सौनेयोंकी कीमतका देव-दुष्य (रेशमी) वस्त्र बायें कन्धेपर रक्खा, तब भगवान्को चौथा मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ. सर्व तीर्थंकर जब तक घरमें रहते हैं, तब तक तीन ज्ञानसहित ही होते हैं, परन्तु चौथा ज्ञानतो तभी उत्पन्न होताहै, जब चारित्र ले लिया जाय और केवल ज्ञानकी उत्पत्ति भी तभी होती है जब घाति कर्मों का क्षय होजाय।

भगवान् महावीर स्वामीके दीक्षा लेने के पश्चात्, इन्द्रादि देव भगवान्को वन्दना कर, नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर अट्ठाई महोत्सव करके अपने २ स्थानों को चले गये. श्री महावीर स्वामी भी नन्दीवर्धन राजासे आज्ञा लेकर

विहार करने लगे, क्योंकि साधु राजाकी आज्ञा के बिना विहार नहीं करता. नन्दीवर्धन राजाभी भगवान् को वन्दना करके, उदास होता हुआ घर आया. नगरके और लोग भी अपने २ घर आये। जब दो घड़ी दिन रहा, तब भगवान् विहारकर कुमार ग्रामके पास आकर काउसग्गमें खड़े रहे। उसी समय गोवाल प्रभुको अपने बैल संभलाकर घरको गया. बैल चरते २ दूर निकल गये, गोवालने वापिस आकर बैलोंको न देखकर प्रभुसे पूछा, परन्तु प्रभुके उत्तर न देने पर रातभर बैलोंको ढूंढा तोभी बैल नहीं मिले. अन्तमें थककर जब गोवाल वापिस आया, तब प्रभुके पास बैलोंको बैठा देखकर बड़ा क्रोधित होकर बैलकी रस्सी को दुगुनी, तीगुनी करके मारने को तय्यार हुआ. अवधिज्ञानसे इन्द्रने वह बात जानकर, एकदम आकर और गोवालको शिक्षा देकर रवाना किया। उसके बाद इन्द्र वर्धमान स्वामीसे इस प्रकार विनति करने लगा—हे स्वामिन् ! आपको बारह वर्षतक छद्मस्थावस्थामें जो २ उपसर्ग होंगे, उन सबका मैं निवारण करूंगा और आपकी सेवामें रहूंगा—मुझे आज्ञा दो. तब भगवान् बोले—हे इन्द्र ! ऐसा न हुआ है, न होताहै और न होवेगा जो अरिहन्त, देवेन्द्र या असुरेन्द्रकी सहायतासे केवल ज्ञान उत्पन्न करें अथवा मोक्ष प्राप्त करें, किन्तु अपने उत्थान—बल, वीर्य,

पुरुषार्थ और पराक्रमसे केवल ज्ञान उत्पन्न करते हैं अथवा मोक्षमें जाते हैं। भगवान्के ऐसा कहने परभी इन्द्र, मरणांत उपसर्ग दूर करने के लिये गृहस्थावस्थाके भगवान् के काका सुपार्श्व को, जो अभी सिद्धार्थ नामक व्यन्तर देव हुआ था, भगवान् के पास रखकर अपने स्थान चला गया. भगवान् भी प्रातःकाल विहारकर 'कोल्लास' सन्निवेश गये. वहां बहुलनामा ब्राह्मणके घरमें परमान्न (क्षीर) से पारणा किया. तब देवोंने पांच दिव्य प्रगट किये—आकाश में ध्वजाका फैलाना १, सुगन्ध पानी की वृष्टिकरना २, पुष्पोंकी वृष्टि करना ३, देवदुन्दुभिका बजाना ४, अहो! यह सम्यक् दान है, यह सम्यक् दानहै, ऐसी उद्घोषणा का करना ५. इन पांच दिव्यों को प्रकट करके, साढ़े बारह करोड़ सौनेयोंकी वर्षा की. तदनन्तर भगवान् ने वहां से विहार किया। दीक्षाके समय इन्द्रों ने भगवान् के शरीरमें बावन-चन्दनका विलेपन किया था. उसकी सुगन्ध से आकर्षित भ्रमरगण भगवान्को डसने लगे, कामी दुष्ट पुरुष भगवान्के शरीर को घिसने लगे, स्त्रियां स्वामीके शरीरसे आलिंगन करके भगवान् से सुगन्ध मांगने लगीं, परन्तु भगवान् मेरु जैसे अकम्प रहे।

अब भगवान् विहार करते हुए मोराक सन्निवेश गये, जहाँ सिद्धार्थ राजाके मित्र 'दूइज्जन्त' नामक तप-

स्वीका आश्रम था. वह भगवान्को आते देखकर सामने आया. भगवान् भी पूर्व परिचयसे मिले। 'वर्षाकालमें आप यहां पधारना' इस प्रकारके तपस्वीके आग्रहसे शेषकालमें अन्यत्र विहारकर वर्षा ऋतुमें भगवान् वहां आये। और तपस्वी की दी हुई झोंपड़ी में काउसग्ग ध्यानमें रहे. वहां दैवयोग से वर्षा न हुई. तब वहां के गाय-भैंस वगैरह पशु आते जाते उस झोंपड़े के तृण खाते, भगवान् मना करते नहीं। तब तापस भगवान् को उपालम्भ देने लगा—हे देवानुप्रिय! आप बड़े आलसी हैं, जो इन पशुओं को नहीं भगाते. इस प्रकार अप्रीति जानकर भगवान् ने वहाँ से विहार किया और पांच अभिग्रह धारण किये—अप्रीतिकर स्थानमें रहना नहीं १, छद्मस्थावस्था में प्रायः मौनसे कायोत्सर्ग में ही रहना, २, गृहस्थों का विनय नहीं करना ३, सदा खड़े रहना ४, हाथमें ही आहार करना ५. चौमासे के पन्द्रह दिन जाने पर भगवान् ने विहार किया और अस्थिग्राम के बाहर शूलपाणि यक्षके मन्दिर में काउसग्ग में रहे. वह यक्ष महा दुष्ट था और पूर्व-भव में धनदेव सेठ का धवलधोरी वृषभ था। एकदा धनदेव पांच सौ गाड़े भरकरके चला. मार्ग में वर्धमान ग्रामके पास वैगवती नदी में गाड़े उतारने में सर्व वृषभ असमर्थ हुए, तब धनदेवने सब गाड़े धवल वृषभसे उतारे, जिससे

उसकी नसें टूटगईं, चलने में असमर्थ हुआ, तब धनदेवने ग्रामके मुख्य २ लोगों को बुलाकर, बैलको संभलाकर और गुड़, घी, घास, जल आदिसे उसकी संभालके लिये बहुतसा द्रव्य देकर आगे चलागया. उसके बाद वे लोग उस द्रव्य को खागये, परन्तु वृषभ को किसीने नहीं संभाला. वह वृषभ मरकरके शूलपाणि नामक व्यंतर देव हुआ, अवधिज्ञानसे पूर्वभव देखकर क्रोधित होकर गांवमें बीमारी फैलाकर लोगोंको मारनेलगा. बहुत से लोगों के मरनेसे हाडोंका समूह ग्रामके पास होगया, जिससे उस ग्रामका नाम 'अस्थिग्राम' हुआ. बहुत से लोगों का मरना देखकर, लोगोंने जब उस यक्षकी आराधना की, तब आकाश में वह देव इस प्रकार बोला—अरे पापियों! मेरा द्रव्य तो तुम सब खागये और किसीने मेरी ख़बर भी नहीं ली. मैं धनदेव सेठका बैल हूं, मरकर शूलपाणि यक्ष हुआ हूं. मेरी मायासे ही लोग मरते हैं, यदि शूलपाणिधारी मेरी मूर्त्ति को, मन्दिर बनाकर, नित्य पूजोगे, तो नहीं मारूंगा, अन्यथा सबको मारूंगा. ऐसा सुनकर डरे हुए लोगोंने उसी तरह किया. उस देव-मन्दिर में इन्द्रशर्म्मा ब्राह्मण पुजारी था. वहाँ भगवान् संध्या समय आकर काउसग्गमें रहे. पूजारीने कहा—हे आर्य्य! यहाँ नहीं रहना, यह यक्ष क्रुर है, परन्तु भगवान् ने

कुछभी उत्तर नहीं दिया. रात्रिमें यक्ष ने प्रगट होकर अट्टहास किया, हाथी का रूप धारण करके भगवान्को आकाशमें उछाला, राक्षसका रूप कर छुरी हाथ में लेकर डराने लगा, सर्प बनकर डसा, तोभी भगवान् ध्यानसे नहीं चले. तब मस्तक, कान, नासिका, दांत, नख, नेत्र और पीठ, इन सात स्थानों में बहुत वेदना उत्पन्न की, तबभी भगवान् ध्यानसे नहीं चले. तब यक्ष थक कर आपही शांत हुआ, ज्ञानसे भगवान्को जानकर, अपने अपराध की क्षमा मांगकर, सम्यक्त्व पाकर, गीत-गान नाटकादि से पूजाकरके भक्ति दिखाता हुआ चला गया । पिछली रात्रि में दो घडी तक भगवान्को निद्रा आई. उसमें भगवान् ने दश स्वप्न देखे. प्रातःकाल अष्टांग निमित्त का जानने वाला 'उत्पल' नैमित्तिया वहाँ आकर भगवान् के पास, लोगों के समक्ष निमित्तके बलसे, उन स्वप्नों का फल इस प्रकार कहने लगा– हे स्वामिन् ! आपने प्रथम स्वप्नमें ताड प्रमाणे पिशाचको मारा, उससे आप मोहका क्षय करोगे १, श्वेत कोकिला देखने से शुक्लध्यान ध्याओगे २, विचित्र पांच वर्ण की कोकिलाओं का समूह देखा, उससे अनेक अर्थ वाली द्वादशांगीका प्रकाश करोगे ३, पुष्पों की दो मालायें देखने से साधुधर्म और श्रावकधर्म का प्रकाश करोगे ४, गायों का समुदाय देखने से चार प्रकार

का संघ स्थापित करोगे ५, मानसरोवर देखने से आपकी देव सेवा करेंगे ६, समुद्र देखनेसे आप संसार समुद्रसे तिरोगे ७, सूर्य देखने से केवल ज्ञान प्राप्त करोगे ८, आंतों की जालसे मनुष्यक्षेत्रको लपेटा हुआ देखने से प्रतापवान् होवोगे ९, मेरु-पर्वतके शिखर पर चढनेका स्वप्न देखने से आप सिंहासन पर बैठकर धर्मोपदेश दोगे १०. उत्पल नैमित्तिये के ऐसे वचन सुनकर, लोग प्रभुको वन्दना करके अपने २ घर गये। भगवान् ने वहाँ पन्द्रह दिन कम चौमासा निर्विघ्नता से व्यतीत किया। वहाँ पारणा कर विहार करके स्वामी मौराक सन्निवेश गये और उद्यान में काउसग्ग ध्यानमें रहे. वहाँ पर भगवान् का माहात्म्य बढ़ाने के लिये सिद्धार्थ व्यंतर भूत, भविष्यत् और वर्तमान निमित्त कहने लगा, जिससे लोग स्वामी की सेवा करने लगे। उस समय अच्छन्दक नामक नैमित्तियेने द्वेषसे स्वामीके पास आकर एक तृण हाथ में लेकर पूछा—भो आर्य ! यह तृण टूटेगा या नहीं ? सिद्धार्थ बोला—नहीं टूटेगा। तब वह उस तृणको तोडने लगा, इतनेही में इन्द्र ने आकर उसकी अंगुलियां स्थंभित कर दीं. सिद्धार्थ ने उसपर नाराज होकर लोगों से कहा कि यह अच्छन्दक चोर है, वीरघोषका कांसीका पात्र चुराकर सरघु वृक्षके नीचे गाड़ आया है, और इन्द्रशर्म्मा ब्राह्मणका बकरा मारकर,

उसका मांस खाकर उसके हाड़ घरके पीछे बोरडीके वृक्षके नीचे गाड़े हैं। तीसरा दोष इसकी स्त्री ही जानती है– मैं क्या कहूँ. स्त्री बोली–बाहिनका पति है। ऐसा सुनकर अछन्दक बड़ा लज्जित हुआ और एकान्तमें आकर भगवान्‌से बोला–हे स्वामिन् ! आपके लिये तो बहुत स्थान हैं, परन्तु मैं कहाँ जाऊँगा. भगवान्‌ने अप्रीति जानकर वहांसे विहार किया। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तेरह महीनों तक देवदुष्य-वस्त्र धारी रहे, उसके बाद वस्त्ररहित हुए, परन्तु भगवान्‌का यह आतिशय है कि नग्न कभी नहीं दिखाई देते।

अब भगवान्‌के वस्त्र रहित होनेका सम्बन्ध कहते हैं:– सोमभट्ट नामक एक ब्राह्मण सिद्धार्थ राजाका मित्र था, स्वामींके सम्वत्सरी दान देते समय वह भिक्षाके वास्ते देशान्तरमें गया था। भगवान्‌के दीक्षा लेनेके बाद वह ब्राह्मण जैसा गया था वैसाही दरिद्री पीछा आया. तब उसकी स्त्री ने उसका बहुत तिरस्कार किया और कहा कि अरे निर्भाग्य ! भैंसा जहाँ जावे वहाँ पानी ही भरता है, कपास जहाँ जावे वहाँ विलोडा जाता है, वैसेही तेरे पीछे दरिद्र पडा है और तेरा पीछा नहीं छोडता. कहाभी है कि एक दरिद्री द्रव्यके लिये विदेश जाते समय दरिद्र को कहने लगा—

रे दारिद्द विअक्खण, वत्ता इक्क सुणिज्ज । हम देसन्तरि चलियां, तु घरि भल्ला हुज्ज ॥ १ ॥

दरिद्रने पीछा उत्तर दिया—

पडिवन्नउ गुरुआं तणउ, पालिज्जइ सुविहाण । तुम्ह देसन्तरि चलियां, हमहीं आगेवाण ॥ २ ॥

इसका तात्पर्य्य यही है कि दरिद्र निर्भाग्य के साथही रहता है. भाग्य हीन जो खेती करे, तो वलद मरे या वर्षा न होवे, भाग्यहीन को भोजनके लिये बुलावे तो नाराज होवे अथवा भोजनमें मक्खी पड़ने से वमन होवे. तू भी वैसाही है । वर्धमान कुमारने जब यहां सोनेकी वृष्टिकी, तब तू परदेश चला गया. अरे, अब भी जा, वर्धमानस्वामी दयालु-दाता हैं, त्यागी हैं तो क्या, तुझे तो कुछ न कुछ देवेंगे ही. जैसे सुखी हुई नदी को खोदने से पानी निकलता है, परन्तु मारवाड़ की नीली भूमि में जल कदापि नहीं मिलता. अन्य कृपणों से मांगने से क्या प्रयोजन है ? भगवान्‌के पास कुछ मिलेगाही. स्त्रीकी ऐसी प्रेरणासे ब्राह्मण भगवान् के पास आया और अपनी दीनता दिखाकर धन मांगने लगा । स्वामीने कृपाकरके कंधे पर पड़े हुए देवदुष्य वस्त्र में से आधा फाड़कर ब्राह्मणको देकर दान धर्म दिखाया. उस वस्त्र को लेकर ब्राह्मणने अपने नगर में आकर

तूणकारको दिखाया, तब उस तुणारने कहा–यह वस्त्र पूरा होवे तो तूण देवें– इसके १ लाख सोनैये आवेंगे– उनमें से आधे हम लेंगे और आधे तुझे देंगे, इससे आधा वस्त्र और ले आ। यह सुनकर ब्राह्मण विचारने लगा–अभी तो स्वामी से याचना करके आधा वस्त्र लाया हूँ अब फिर माँगूगा तो बड़ा लोभी दिखाई दूंगा, इस प्रकार लज्जासे स्वामीके पीछे २ फिरने लगा और विचार लिया कि जब यह वस्त्र भगवान् के कंधेपरसे उड़कर नीचे पड़ेगा तभी इसे लेकर घर जाऊंगा. एकदा वह आधा देवदूष्यवस्त्र स्वामीके कन्धेपर से वायुसे उड़कर उत्तर–चावाल ग्रामके पास स्वर्णवालू नदी के तटपर बदरी वृक्ष के कांटों में गिर गया, ब्राह्मण जिसे लेकर शीघ्र ही घरको चला। भगवान् ने वस्त्र को कांटों पर पड़ा हुवा देखकर समझ लिया कि मेरे पीछे जो साधु होवेंगे, उनमें बहुतसे तो कलह व उपद्रव करने वाले मुंड होंगे और थोडे श्रमण होवेंगे। उधर ब्राह्मण ने वह वस्त्र तूणार के पास तुणाकर बेचकर उसका आधा मूल्य पचास हज़ार सोनैये पाये और अर्धलक्ष सोनैये तुणारने लिये इस प्रकार भगवान् की कृपासे दोनों का दरिद्र गया। उसके बाद स्वामी वस्त्र रहित हुए परंतु शेष सर्व तीर्थंकर जीवन पर्य्यंत देव दुष्य वस्त्र सहित रहे. श्रीमहावीर स्वामी का प्रथम

पारणा कांशी के पात्र से हुआ, उससे स्वामीने सपात्र धर्म्म दिखलाया ❀।

श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी ने वारह वर्ष साढे छः महीनों तक निरन्तर शरीर की शुश्रुषा का त्याग किया, और देवांगनाओं का नाटक देखना, तथा आलिंगनादि अनुकूल और अट्टहासादि भयकारी प्रतिकूल देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी, तिर्यंच-सम्बन्धी सर्व प्रकारके उपसर्गों को निर्भय, क्रोध रहित होकर,

---

❀ एक समय प्रभु विहार करते हुए गंगाके किनारे २ जा रहे थे. वहां सूक्ष्म, कोमल रेतमें प्रभुके चरणोंकी छापमें छत्र, ध्वज, अंकुश वगैरह उत्तम २ लक्षण देखकर पुष्पनामक सामुद्रिक शास्त्री विचार करने लगा—यह अकेला कोई चक्रवर्त्ती जाता है- मैं उसकी सेवा करूँ, जिससे मेरे लाभ हो. ऐसा विचार कर वह भगवान् के पीछे २ गया और ऐसे उत्तम लक्षण वाले पुरुषको भिक्षुक अवस्थामें देख कर बोला- अहो! मैंने सामुद्रिक शास्त्रको वृथा ही पढ़ा. ऐसा कहकर शास्त्रको जलमें डालने लगा. उसी समय इन्द्रने आकर, भगवान् को वन्दना करके पुष्प से कहा- यह तेरा शास्त्र सत्य है. भगवान् इन्हीं लक्षणोंसे तीन जगत्के पूजनीय, सुरासुरोंके स्वामी तीर्थंकर हैं- उनका शरीर पसीना, मल और रोगसे मुक्त है, श्वासोश्वास सुगन्धित है और रुधिर-मांस गोदुग्ध जैसा सफेद है इत्यादि गुण कहकर, सामुद्रिक को वहुत सा धन देकर इन्द्र अपने स्थानको गया और सामुद्रिक भी प्रसन्न होता हुआ अपने स्थान गया।

क्षमा और धैर्य पूर्वक, अदीन मनसे सहन करने लगे. अब भगवान् ने उत्तर--चावाल ग्रामके पास कनकखल नामक वनमें चंडकौशिक सर्पको प्रतिबोध दिया ❀ जिससे मरकर वह सर्प आठवें देवलोक में गया. वहां

❀ वह सर्प पूर्व-भवमें एक तपस्वी मुनि था. मासक्षमणके पारणे गौचरी जाते समय प्रमाद से उसके पैरके नीचे मेंडकी आगई. वह मेंडकी पहले किसी अन्य के पैरसे मरी या साधुके पैर से मरी इसकी तो कुछ खबर नहीं परंतु पीछे चलने वाले लघु शिष्यने उसे मरी हुई देखा. जब वह साधु स्वस्थान में आया तब छोटे शिष्यने कहा-हे स्वामिन! मंडूकी की विराधना का मिच्छामि दुक्कडं दें. साधुने उस बात पर ध्यान नहीं दिया. लघु शिष्यने शामको आलोपणा के समय फिर याद दिलाई, परन्तु साधुने नहीं मानी. लघुशिष्य ने संथारे के वक्त जब फिर कहा, तब तपस्वी साधुको क्रोध आगया और छोटे शिष्यको मारनेके लिये दौड़ते हुए उसके मस्तक में स्थम्भकी लगी, जिसकी वेदनासे मरकर वह दूसरे भवमें ज्योतिषिदेव हुआ. वहां से च्यव कर वह तापस हुआ. वहां भी क्रोधसे हाथ में फरसी लेकर अपने वनमें आये हुए राजकुमारोंको भगाने के लिये दौड़ता हुआ पग डिगने से खाड़में गिरपड़ा और फरसी लगने से मरकर चौथे भव में चंडकौशिक सर्प हुआ। वहां पर प्रभुको ध्यानमें खड़ा देखकर उसने गुस्सा लाकर प्रभुको जलाने को सूर्य्य की ओर देखकर प्रभुकी तरफ दृष्टि ज्वाला फैंकी, परंतु भगवान् तो उसी तरह ध्यान में रहे. तब अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान्को काटा, परन्तु भगवान्को अव्याकुल और दुग्ध जैसा लोहू निकलता

से विहार कर भगवान् श्वेताम्बिका नगरी गये, जहां पर परदेशी राजा केशीकुमार स्वामीका श्रावक था। उसने भगवान् की भक्ति की। वहांसे सुरभीपुरको जाते हुए भगवान् मार्ग में गंगानदी नावसे उतरने लगे. एकदा भगवान्ने त्रिपृष्ठ वासुदेवके भवमें सिंह मारा था. वह सिंहका जीव, जो उस समय सुदृढ नामक नागकुमारदेव हुआ था, पूर्व-भवके वैरसे भगवान्की नाव डुबोने लगा. तब जिनदास श्रावकके ❀ कंबल संबल

हुआ देखकर सर्पका क्रोध शांत हुआ. प्रभुने कहा- हे चंडकौशिक! कुछ समझ. भगवान्का वचन सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, अपने पूर्व भव देखे और भगवान्को तीन प्रदक्षिणा देकर बोला- अहो! करुणा-सागर भगवान्ने कृपा करके दुर्गतिसे मेरा उद्धार किया. इस प्रकार विचार कर वैराग्य भावसे अनशन कर, एक पक्ष तक बिलमें अपना मुख रखकर रहा. जब लोगोंने घृतादि से उसकी पूजा की. तब गन्धसे आकर्षित कीड़ियोंने उसे बहुत दुःखित किया, किन्तु प्रभुकी सुधादृष्टिकी वृष्टिसे सींचा हुआ वह समताभावसे मरकर अष्टम देव-लोकमें देव उत्पन्न हुआ।

❀ कंबल-संबलकी उत्पत्ति-मथुरा नगरीमें साधु-दासी श्राविका और जिनदास श्रावक (स्त्री-पुरुष) ने पंचम व्रतमें गाय आदि पशुओं को न रखनेका नियम लिया था. वहाँ पर एक आभीरीके उन्हें उचित मूल्य पर अच्छा

नामक बैलों ने, जो मरकर देव लोकमें गये थे, आकर नाव पार उतार दी। दूसरा चौमासा स्वामी राजगृह नगरमें वणकर शालामें मासक्षमण करते हुए रहे। वहां मंखली पुत्र, गोशाला, भिक्षा मांगता हुआ आकर, भगवान् के पारणे की महिमा देखकर, 'मैं भी आपका शिष्य होता हूं', ऐसा कह कर माथा मुंडाकर भगवान् के

दुग्ध देनेसे उनमें प्रीति होगई. एकदा आभीरीने विवाह पर सेठ-सेठाणी को निमंत्रण दिया. वे तो आ नहीं सके, परन्तु चंदवादि बहुतसी वस्तुएं देकर उनके विवाहकी शोभा बढ़ा दी. इससे वे खुशी होकर, समान उम्रवाले दो सुन्दर बछड़े, सेठकी इच्छा न होने पर भी, उनके घरमें बांधकर चले गये. सेठने विचार किया-यदि वापिस देता हूं तो बोझ उठाने आदिसे ये दुःखित होंगे. ऐसा विचार कर वह अचित्त घास-जलसे उनका पालन करने लगा. जिनदास अष्टम्यादि पर्व में पौषध करके पुस्तक बांचता था, जिन्हें सुनकर बैल भी धर्मी हो गये. जिस दिन श्रावक उपवास करता, उसी दिन बैलभी घास आदि कुछभी नहीं खाते. एकदा जिनदासका मित्र, बिना पूछेही, सुन्दर व बलिष्ठ देखकर, उन बैलोंको यक्षकी यात्रामें ले गया और रास्तेमें इतने भगाये कि उनकी नसें टूट गई और शामको वापिस लाकर, बांध कर वह चला गया. सेठने उनका मरना समीप जानकर, नवकार आदि धर्म-ध्यान सुनाया और अनशन कराया। वे बैल शुभ-ध्यानसे मरकर नागकुमार देव हुए, ज्ञानसे भगवान्का उपसर्ग जानकर, आकर, दुष्ट देवको भगाकर, नाव पार उतार कर, भगवान् की भक्ति करके देव-लोकको वापिस चले गये।

साथ होगया. एकदा स्वामी स्वर्णखलग्राम को जाते थे. मार्ग में गोवालियों को खीर पकाते देखकर गोशाला बोला–खीर खाकर आगे चलेंगे. सिद्धार्थ बोला– हांडी फूटेगी. यद्यपि गोवालियों ने वहुत रक्षा की, तथापि हांडी फूटही गई । यह देखकर "यद्भाव्यं तद्भवत्येव" ऐसा मत गोशालाने अंगीकार किया । उसके वाद भगवान् ब्राह्मणग्रामको गये, जहां पर नंद और उपनंद नामक दो मोहल्ले थे–नंदने भगवान्को उत्तम आहारसे पडिलाभे, उपनन्दने गोशाले को वासी अन्न दिया, तव नाराज होकर गोशालाने श्राप देकर उसका घर जला दिया. तीसरी चौमासी स्वामी चम्पामें रहे । वहां से कालाय सन्निवेश गये, शून्य गृहमें काउसग्ग ध्यानमें रहे, जहाँ पर सिंह नामक ग्रामणी पुत्रको गोमती दासीके साथ रमण करते हुए देखकर गोशाला हँसा. उसने गोशालाको पीटा, तव गोशालाने भगवान्से कहा– मुझको बचाओ. सिद्धार्थ बोला–आगेसे ऐसा काम नहीं करना. एकदा स्वामी कुमार सन्निवेश गये, जहाँ पर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के शिष्य मुनिचन्द्रनामक आचार्य्य थे. उनके शिष्योंको देखकर गोशाला बोला–तुम कौन हो ? साधु बोले–हम निर्ग्रन्थ हैं. गोशाला बोला–कहां तुम और कहां मेरा धम्मांचार्य्य, मेरु-सरषोंका अंतर है. साधु बोले–जैसा तू है, वैसाही तेरा धर्माचार्य होगा.

तब गोशालाने नाराज होकर साधुओंको शाप दिया कि तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जाय. परन्तु उपाश्रय जला नहीं, तब उसने स्वामीसे कहा—आजकलतो तपका प्रभाव कम होगयाहै. सिद्धार्थ बोला—तेरे कहनेसे साधु नहीं जलेंगे. रात्रिमें जिनकल्पीकी तुलना करते हुए काउसग्गमें रहे हुए मुनिचन्द्राचार्यको मदोन्मत्त कुम्हारने मारा. वे स्वर्ग गये. उनकी महिमाके वास्ते देव आये. उद्योत हुआ देखकर गोशाला बोला—अब देखो, उनका उपाश्रय जलता है. सिद्धार्थने यथावत् कहा, प्रातःकाल गोशाला वहां जाकर, देखकर मुंह उतार कर पिछा आया. तत्पश्चात् स्वामी चौराग्राम गये. वहां लोगोंने हेरक समझकर, पकडकर पहले गोशाले को फिर भगवान्को कुएमें डाल दिया. उस समय श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की शिष्या सोमा और जयन्तिने, जिन्होंने साधुपना छोड दिया था, भगवान् को और गोशालाको छुडाया. चौथा चौमासा पृष्ठ चंपा रहे. वहां जीर्ण सेठ प्रतिदिन पारणेकी विनंति करता था तोभी भगवान्ने पूर्ण सेठके यहां पारणा किया. वहांसे कयंगल गये, जहांपर माघ महीनेमें वृद्ध दरिद्री स्त्री को जागरण में गाती हुई देखकर गोशाला हँसा. लोगों ने उसे मारा, परन्तु अधिक न मारकर, आर्य शिष्य जानकर छोड दिया। वहांसे भगवान् सावत्थी गये, जहांपर पितृदत्त सेठकी

स्त्री, निन्दुरोगवाली भद्रा सेठानी के मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते थे. उसने शिवदत्त नैमित्तियेके वचनसे,अपने पुत्रको जीवित करने के लिये, गर्भ मांस मिश्रित खीर गोशाला को दी. सिद्धार्थ के वचनसे गोशालाने वमन कर, यह बात जानकर, नाराज होकर, तपके प्रभावसे मोहल्ले सहित उसके घरको जला डाला । एकदा स्वामी बहुत निर्जरा के वास्ते लाडदेशमें गये. बीचमें दो चोर मिले और स्वामीको मारने के लिये खड्ग लेकर दौड़े, तब प्राणान्त उपसर्ग जानकर इन्द्रने निवारण किया. उसके बाद् स्वामी भद्रिका नगरी गये, और पंचमी चौमासी वहींपर रहे. एकदा कूपसन्निवेश गये, हेरु समझ कर गांव वालोंने पकड लिये, तब विजय नामक पार्श्वनाथ स्वामी की शिष्याने छुड़ाये. इसके बाद् गोशाला स्वामीसे अलग होगया और जहां भी गया, वहीं पर मार खाई. तब उसने विचार किया कि स्वामीके साथमें रहनाही ठीकहै. इस प्रकार विचार करके भगवान् की तलाश करने लगा. स्वामी विशाला गये, जहां लौहारकी शालामें रहे. बहुत दिनों के पश्चात् लौहार आया, स्वामीको देखकर, 'यह मुंड अमंगल है,' ऐसा कहकर लोहे के घनसे जब भगवान्को मारने दौड़ा, तब इन्द्रने आकर उसको मारा । छः महीनों के पश्चात् गोशाला मिला. स्वामी छठी चौमासी भद्रिकामें रहे और

उस समय आठ महीनों तक कोई उपसर्ग नहीं हुआ. भगवान् सातवीं चौमासी आलंभिका नगरीमें देवकुलमें रहे। गोशाला बलदेवकी मूर्त्तिकी कुचेष्टा करने लगा. लोगोंने खूब मारा. एक समय वहांपर लम्बे दांतवाले स्त्री-पुरुषको देखकर गोशाला हँसकर बोला— अहो ! दैवने प्रसन्न होकर कैसा इनका संयोग मिलाया है। इसपर उन्होंने गोशालाको पीटा. एकदा स्वामी बहुशाल ग्रामके शालवान–उद्यानमें माघ-महीने में काउ-सग्गमें रहे. वहां त्रिपृष्ठ वासुदेवके भवमें अपमानिता स्त्री ने, जो अभी कटपूतना व्यतरी हुई थी, तापसीका रूप करके दुस्सह शीतोपसर्ग किया, तथापि भगवान्‌को ध्यानमें निश्चल देखकर, उपशांत होकर, स्तुति करके चली गई. इस उपसर्गमें भगवान्‌को विशुद्ध लोकावधि उत्पन्न हुआ, और देवों ने आकर महोस्सव किया. उसके बाद स्वामी पुरिमतालनगर गये, उद्यान और नगरके बीचमें काउसग्गमें रहे. उस नगरमें वग्गुरसेठ और उसकी सुभद्रा स्त्री दोनों ने पुत्रके लिये श्रीमल्लीनाथ स्वामीका मन्दिर बनाने की मान्यता की थी. जब उनके पुत्र हुआ, तब उन्होंने नवीन मन्दिर बनवाया, जिसमें सेठ नित्य पूजा करता था. एकदा वह जब पूजाके लिये जा रहाथा, तब इन्द्र भगवान्‌की महीमा के वास्ते सेठसे बोला— श्रेष्ठिन् ! जिनकी तू पूजा करता है, उनको मैं तुझे

प्रत्यक्ष दिखाढूँ। ऐसा कहकर उसने भगवान् के चरणों में नमस्कार कराया. सेठने भी शुद्ध भावसे भगवान् को वन्दना करने के बाद मल्लीनाथ स्वामीकी प्रतिमा पूजी. इसके बाद स्वामी राजगृहमें आठवीं चौमासी रहे और अनार्य देशमें नवमी चौमासी की, जहाँपर बहुतसे उपसर्ग हुए. इसके बाद सिद्धार्थपुरसे स्वामी कूर्म-ग्राम को चले. मार्गमें एक तिल ऊगा हुआ देखकर, गोशालाने स्वामीसे पूछा– क्या इसमें तिल निष्पन्न होंगे ? स्वामीने कहा–इन्हीं सात पुष्पोंके जीव एक फलीमें इकट्ठे सात तिल होंगे। स्वामीका वचन अन्यथा करने के लिये गोशालाने उसके मूलसे तिलको उखाड़ दिया, तोभी वर्षा होनेसे, गायके खुरसे उसकी जड़ पृथ्वी में घुसगई और तिल उत्पन्न हुआ. भगवान् उसी रास्तेसे वापिस आये. गोशालाने तिलका स्वरूप पूछा. स्वामी ने उसे बताया और उसका स्वरूप कहा, तब 'होनहार होवे सो होवेही है' ऐसा गोशाले का मत हुआ।

राजगृह–चंपानगरी के बीचमें गुबरग्राममें कौशाम्बि नामका कौटुम्बी था. उसके ग्रामके पासका ग्राम कटकने भागा. वहांके निवासी भागे, जिनमें पुत्र सहित एक स्त्री भी भागी. उसको चौरों ने पकड़ा. जंगलमें रोते हुए बालकको कौशांबि कौटुम्बीने लिया। उसके पुत्र नहीं था, इस बालकको पुत्र मानकर बड़ा किया.

अनुक्रमसे वह बालक युवा हुआ. उसकी माताको चौरोंने पकड़ कर चंपा नगरी में वैश्याको बेच दिया. वह भी वैश्या हुई. कर्म-योगसे वह कौटुम्बी पुत्र व्यापारके वास्ते चंपा नगरी आया और अज्ञानतासे अपनी माता वैश्याके संग आसक्त हुआ, परन्तु गोत्र देवी ने गाय और वच्छडा का मैथुन दिखा कर देववाणी से उसे प्रतिबोधा, तब सर्व त्याग करके वह कौटुम्बी पुत्र वैश्याय ऋषि नामक तापस हुआ. और कुर्म ग्राममें आतापना करता हुआ वह मुंह नीचा करके अग्निमें झंपाता हुआ धूम्रपान करने लगा. अपनी जटासे जो जुवां नीचे पड़ने लगतीं उन्हें वारम्बार वापिस जटामें रखते हुए उसऋषिसे गोशाला बोला—यह तो जुंओंका घर है. ऐसा कहकर वह हँसा, जब उस तपस्वीने नाराज होकर गोशालाको जलाने के लिये तेजोलेश्या फैंकी, तब स्वामीने शीतल लेश्या डाल कर गोशाल को बचाया. गोशालेने तेजोलेश्या का सिद्धार्थसे साधन पूछा तब सिद्धार्थ ने उसका साधन बताया. दशमी चौमासी स्वामी सावत्थी रहे। वहांपर गोशालेने एक मुट्ठी उर्दका बाकुल खाकर ऊपरसे तीन चुल्लु पानी पीकर, सूर्य्य के सन्मुख छः महीनों तक आतापना करके तेजोलेश्या सिद्ध की, बादमें अष्टांग निमित्त सीखा, जिन नहीं तब भी मैं जिन हूँ, ऐसा लोगोंसे कहता हुआ अलग फिरने लगा।

एकदा स्वामी म्लेच्छ देशमें गये, जहां उन्हों ने कुत्तों के वहुतसे उपसर्ग सहे। वादमें स्वामी दृढभूमिका में पेढाल ग्रामके उद्यानमें पोलास नामक देव-मन्दिरमें एक रात्रि की प्रतिमा में रहे। उस समय इन्द्रने स्वामीके धैर्यकी प्रशंसा की, जिसे सुनकर संगम नामक इन्द्रका सामानिक देव इन्द्रके वचनको नहीं मानता हुआ, स्वामीको चलाने को आया और एक रात्रिमें बीस उपसर्ग किये– धूलिकी वर्षा की १, वज्रमुखी कीड़ियोंसे शरीर को चूँटा २, वज्रमुखी डांससे शरीरको खाया ३, घीमेलोंसे शरीरको काटा ४, बिच्छुओंने डंक मारे ५, सर्पों ने डसा ६, नौलियों ने नख मुखों से विदारण किया ७, चूहों ने काटा ८, हाथी व हथनी ने आकर सूंड़से पकड़कर आकाशमें फेंक दिया ९, दांत–पैरों से मर्दन किया १०, पिशाचका रूप करके डराया ११, व्याघ्रने फाल भरकर डराया १२, माता बनकर कहा– पुत्र ! किस वास्ते दुःखी होताहै ? मेरे साथ चल, सुखी करूँगी १३, कानोंमें तीक्ष्ण मुखवाले पक्षियों के पिंजरे बांधे जिन्होंने भगवान् को काट २ कर दुःखित किया १४, दुष्ट चांडालने आकर दुर्वचनों से तर्जना की १५, दोनों पैरों के ऊपर हांडी रखकर बीचमें अग्नि जलाकर खीर पकाई १६, कठोर वायुका विकुर्वण करके दुःख दिया १७, गोल वायुसे शरीरको चक्रवत् घुमाया,

और ऊंचा उठा २ कर पृथ्वी पर गिराया १८, हजार भार प्रमाण वाला लोहे का गोला भगवान् के मस्तकपर गिराया, जिससे भगवान् कमर तक पृथ्वी में धँस गये परन्तु तीर्थंकरका शरीर होने से कुछ भी नहीं हुआ, औरका शरीर होता तो चूर्ण २ हो जाता १९, रात्रि रहते भी प्रभात बना दिया. उस समय कोई आकर कहने लगा—हे आर्य्य! प्रभात हुआ है, विहार करो, अब क्यों ठहरे हो? परन्तु स्वामी ने अवधि-ज्ञानसे रात्रि जान ली. उसके बाद देव अपनी ऋद्धि दिखाकर स्वामी से कहने लगा— आर्य्य! वर मांगो— स्वर्ग चाहिये तो स्वर्ग दूँ अथवा देवांगना दूँ। ऐसा सुनकर के भी भगवान् चलायमान नहीं हुए २०. इन वीसों उपसर्गों को एकही रात्रिमें करनेके बाद उस देवने ग्राम २ में आहार अशुद्ध किया, स्वामीपर चौरीका कलंक लगाया, और कुशिष्यका रूप करके घर घरमें भेद देखता और लोगोंके पूछने पर कहता— मेरा गुरु रात्रिको चौरीके वास्ते आवेगा— इससे मैं छिद्र देखता हूँ. इसपर जब लोग भगवान्को ताडन करने लगे, तब भगवान्ने अभिग्रह लिया— जब तक उपसर्ग निवृत्त नहीं होगा, तबतक आहार नहीं लूंगा। संगमदेवने छः महीनों तक इस प्रकार उपसर्ग किये परन्तु इन्द्रने उसे मना नहीं किया. इन्द्रने विचार किया कि यदि मैं मना करूंगा तो यह कहेगा

कि भगवान्‌को तो मैं चला देता परन्तु तुमने ही तो मना किया। इस प्रकार जंवतक संगमने स्वामीको उपसर्ग किये, तब तक इन्द्र निरानन्द, निरुत्साह रहा और देव–देवांगनाएँ भी शोक सहित रहे। छः महीनों के अन्तमें जब वह देव थककर स्वर्ग गया और इन्द्रने उसे स्वर्गसे निकाल दिया, तव वह अपनी देवांगनाओंको लेकर मेरुचूला पर जाकर रहा। इस तरह दशवें वर्ष में वहुतसे उपसर्ग हुए, परन्तु वे सव भगवान्‌ने सहे। जब भगवान्‌ने छः मासीका पारणा वज्रग्राममें गोवालके घरमें खीरसे किया, तव देवोंने उसकी महिमा की और इन्द्रादि देवोंने आकर भगवान्‌से सुखशाता पूछी। ग्यारहवीं चौमासी स्वामी विशालामें रहे। उसके वाद सुसुमारपुरमें चमरेन्द्रका उत्पात हुआ।

एकदा कौशाम्बी नगरी में पौष वदी एकमके दिन स्वामीने ऐसा अभिग्रह ग्रहण किया–वन्दीखानेमें डाली हुई, पैरोंमें बेडी पडी हुई, मस्तक में मुंडी हुई, तीन दिन की भूखी होने से दुर्वल शरीर वाली, रोती हुई और अश्रुपात करती हुई, पैरों के वीचमें देहली करके खडी हुई, ऐसी राजकुमारी जव दो प्रहरके बाद उर्द के बाकुले दे, तव पारणा करूं। इस प्रकार अभिग्रह लेने के चार महीने बाद कौशाम्बी नगरी के राजा, शता-

नीकने चम्पानगरी तोड़ी. दधिवाहन राजा भागा. धारणी रानी को चन्दन बाला पुत्री सहित किसी सिपाहीने पकड लिया. रानी तो अपने शील-खंडनके भयसे जिह्वा काटकर मर गई परन्तु चन्दना धन सेठको बेच दी. सेठने चंदना को पुत्री करके रक्खा. सेठके मूला नामकी स्त्री थी. उसने चन्दना को देखकर विचार किया— मैं तो बुड्ढी होगई हूँ, अब सेठ इसको सेठाणी बना लेगा. एकदा सेठ किसी कार्य्यको बाहर गया था. पीछे से मूला चन्दनाको पकडकर, मस्तक मूंडकर, पैरों में बेडी डालकर, एक कोठे में बन्द कर, दरवाजे के ताला लगाकर अपने पिताके घर चली गई। चौथे दिन सेठने आकर चंदनाको ढूंढकर कोठेसे निकाला और मस्तक में मुंडी हुई, और पैरों में लोहेकी सांकल सहित उसे देखकर कहा कि हे पुत्री ! जब तक मैं लोहारको बुला कर तेरे पैरोंकी बेड़ी कटवाऊँ, तब तक तू मुँह धोकर सूपके कोनेमें रहे हुए उर्दके ये बाकुले खा. ऐसा कहकर सेठ गया. पीछे चन्दनाने विचार किया— आज मेरे अष्टमका पारणा है, यदि कोई साधु आवे तो कुछ देकर पारणा करूं. ऐसे विचारती हुई चन्दना के आगे तीसरे प्रहरमें भिक्षाके वास्ते स्वामी आये. सर्व अभिग्रह पूर्ण हुए, परन्तु चन्दनाके अश्रुपात न देखकर भगवान्ने आहार नहीं लिया और जब स्वामी बिना

आहारके लिये ही निकले, तब चन्दना रोती हुई कहने लगी– अहो ! मैं अभागिनी हूँ जो स्वामीने भी आज मेरे हाथसे उर्दके बाकुले नहीं लिये. चंदनाका ऐसा रोना सुनकर, और आंखों में आंसु देखकर भगवान्‌ने पीछे लौटकर उर्दके बाकुले ग्रहण किये. तब देवों ने पांच दिव्य प्रगट किये–साढ़े बारह करोड़ सौनैयों की वर्षा की, और चंदन बालाके मस्तकमें नवीन वेणी रची. लोहेकी सांकल ही सौनेके नेवर हुए. स्वामीके आहार लेकर चले जाने के बाद सेठ आया. मालूम होनेपर राजाभी आया और जब धन लेने लगा, तब इन्द्रने आकर सबके समक्ष कहा– जब स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न होगा, तब यह धन चन्दनाके दीक्षा-महोत्सवमें खर्च किया जावेगा. राजा चन्दनाको अन्तःपुरमें ले आया. रानीने भी चन्दनाको बहिनकी पुत्री पहिचान कर रक्खा. इस प्रकार भगवान्‌का पांच दिन कम छः मासका पारणा चन्दनाने कराया।

बारहवीं चौमासी स्वामीने चम्पामें की और पारणा करके षाणमासिक ग्रामके बाहर काउसग्गमें रहे. भगवान्‌ने त्रिपृष्ठके भवमें शय्यापालकके कानोंमें कथीर गिरवाया था. वह शय्यापालक कितनेही भव करके अभी गोवालिया हुआ. उसने भगवान्‌के कानोंमें कांसवृक्षकी शलाका डालकर ऊपरसे काटकर गुप्त कर दी. भगवान्

विहार करते हुए अपापा नगरीमें सिद्धार्थ बनियेके घरमें आहारके लिये आये हुए स्वामीकें कानोंमें खरक वैद्यने कांसकी शलाका देखी. भगवान् बाहिर काउसग्गमें रहे, तब वैद्यने कीलों को संडासीसे पकडकर, वृक्षकी शाखा को नमाकर बांधा, और एकही वक्तमें शाखा छोडी. इस रीतिसे जब स्वामी के कानोंकी शलाका निकाली, तब भगवान्ने बहुत वेदना होनेसे पुकार किया. भगवान्ने मनसे वेदना सही, परन्तु काय-व्यापार से पुकार होंगई. संरोहिणी औषधि से कानोंकी परिचरिया की गई. गोवालिया मरकर सातवीं नरकमें गया और खरक वैद्य पांचवें देव-लोकमें गया। अब सर्व उपसर्गों में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट का भेद बतलाते हैं— जघन्य उपसर्गों में कटपूतना व्यन्तरी द्वारा किया हुवा शीतोपसर्ग हुआ। मध्यम उपसर्गों में संगम देवने हजार भारका लोहे का गोला डाला। उत्कृष्ट उपसर्गों में कानोंकी कीलें निकाली गईं।

अब बारह वर्ष किस रीति से बीते ? दीक्षा लेनेके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनागार हुए, इरिया समिति १, भाषा समिति २, ऐषणा समिति ३, आदान भंड मत्त निक्षेपणा समिति ४, उच्चार प्रश्रवण खेल्ल जल्ल संघाण पारिट्ठापनिका समिति ५ सहित हुए, जिसमें भी तीन समितियां तो निश्चय ही होती हैं

परन्तु तीर्थंकरके पात्रादि न होनेसे चौथी समिति नहीं होती और तीर्थंकरकी आहार-निहार-विधि अदृश्य होती है इसलिये पांचवीं पारिट्ठावणिया समिति की भी जरूरत नहीं होती, तथापि पांच समितियोंका कथन बहुत अपेक्षा से किया गया है. पुनः-भगवान् मन-वचन-कायाकी तीन गुप्तियों से गुप्त हैं, पाठान्तरमें मन-वचन-कायासे सम्यक् प्रकार से प्रवर्तन रूप तीन समिति युक्त हैं, पांच इन्द्रियोंके तेवीस विषयों का निवारण करके गुप्तेन्द्रिय हैं, नौ वाड सहित ब्रह्मचर्यके पालने वाले हैं, और क्रोध, मान, माया, लोभ रहित अतिशय-उपशान्त हैं, भगवान्के पास आने से दूसरों के भी क्रोधादि उपशान्त होते हैं. पंच आश्रवों के रोकने से भगवान् निराश्रव, ममत्वरहित, बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह रहित और निर्लेप हैं. कांसीके पात्रमें जैसे-जल नहीं लगता, उसी प्रकार भगवान्को मोह नहीं लगता. जैसे-शंखमें रंग नहीं लगता, वैसे ही भगवान्को भी किसी पर राग नहीं लगता और स्वामीका किसीपर द्वेषभी नहीं है. जैसे-जीवकी गति कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार भगवान्का विहार भी कोई नहीं रोक सकता. जैसे-आकाश निराधार है, वैसेही भगवान् भी किसी के आधारकी इच्छा नहीं करते. जैसे-वायु कहींभी स्खलित नहीं होती, वैसेही भगवान्भी अप्रतिबद्ध विहारी

तथा शरद् ऋतुके जलके तुल्य निर्मल हृदय वाले हैं. जैसे—कमल कीचड़में उत्पन्न होकर जलसे बढ़ता है, और दोनोंसे निर्लिप्त होकर ऊपर अधर रहता है, वैसेही स्वामीभी संसाररूपी कीचड़में उत्पन्न हुए, भोगरूपी जलसे बढ़े और अनुक्रमसे दोनोंसे पृथक् रहे हैं. भगवान् परिषह—उपसर्ग सहनेमें सिंहके जैसे शूर, समुद्र के जैसे गंभीर, चन्द्रके जैसे सौम्य, कच्छप जैसे गुप्तेन्द्रिय, गैंडे के सींग जैसे एकाकी, भारंड पक्षी के जैसे अप्रमादी, हाथीके जैसे पराक्रमी, वृषभ जैसे संयम-भारके निर्वाह करने वाले, मेरु जैसे अप्रकंप, सूर्य जैसे तेजस्वी और पृथ्वी जैसे सर्व सहन करने वाले हैं। द्रव्य—क्षेत्र—काल—भावसे चार प्रकारके प्रतिबंध होते हैं, परन्तु भगवान्के किसी प्रकारकाभी प्रतिबंध नहीं है— द्रव्यसे—सचित्त, अचित्त, मिश्रवस्तुओं में १, क्षेत्रसे—ग्राम, नगर, उद्यान वगैरह किसीभी स्थानमें २, कालसे—समय, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस वगैरह कालमें ३, और भावसे— अठारह पापस्थानों में ४, कहींभी भगवान्की प्रवृत्ति नहीं है और ग्राममें एकादिन, नगरमें पांचदिन और वर्षाकाल में चारमहीने ठहरने के सिवाय आठमहीने तक हमेशा विहार करते रहे. जैसे—कुठारसे चन्दनवृक्षको काटने परभी चन्दन कुठार के मुखमें सुगन्धी देता है, उसी प्रकार भगवान् दुःखदायक परभी उपकार

करते थे। फरसीसे भगवान्के शरीरको काटने वाले तथा चन्दनसे पूजा करने वाले दोनोंपर भगवान् समभाव रखते. मणि, स्वर्ण, पाषाण और सुख-दुःख को समान मानते थे, इस लोक, परलोक तथा जीवन—मरण के ऊपर समभाव रखते और कर्म—शत्रुको जीतनेमें सावधान रहते थे. इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट चार ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व और यथा-ख्यात-चारित्रादिसे विराजमान् भगवान् बारह वर्ष छःमहीने पन्द्रह दिन तक छद्मस्थ विचरे.

अब भगवान् का तप वर्णन करते हैं– छः मासी एक, पारणा एक. संगम उपसर्ग में पांच दिन कम छः मासी एक, पारणा एक. चौमासी नौ, पारणे नौ. तीन मासी दो, पारणे दो. अढाई मासी दो, पारणे दो. दोमासी छः, पारणे छ. डेढमासी दो, पारणे दो. एक मासी १२, पारणे १२. अर्धमासी ७२, पारणे ७२. छट्ठ २२९, पारणे २२९. भद्रप्रतिमा दो दिनकी, महाभद्र प्रतिमा चार दिनकी, सर्वतो भद्र प्रतिमा दस दिनकी, ये तीनों प्रतिमाएँ लगातार वहन की जिनके १६ उपवास, पारणे तीन और बारह अट्ठम, बारह पारणे हुए. इस तरह से ग्यारह वर्ष, छः महीने, पच्चीस दिनका भगवान्का तप हुआ. दीक्षाके तपके पहिले पारणे सहित ३५० पारणे हुए और सर्व मिलाने से बारह वर्ष, छः महीने, पन्द्रह दिनका सर्व छद्मस्थ काल हुआ. उसमें भगवान्को सिर्फ

एक मुहूर्त्त तक खड़े २ प्रमाद हुआ, उसमें भी स्वामीने दशस्वप्न देखे थे.

अब भगवान्के केवल ज्ञान उत्पन्न होनेका अधिकार कहते हैं:— स्वामीको तेरहवें वर्षमें, उष्ण कालके दूसरे महीनें में, चौथे पक्षमें, वैशाख सुदी १० के दिन, पिछले प्रहरमें, सुव्रत नामक दिनमें, विजय नामक मुहूर्त्तमें, ऋजुवालिका नदीके तटपर, व्यावर्त्तक नामक जीर्ण उद्यानमें, विजयावर्त्त व्यन्तर के चैत्यसे न बहुत दूर, न बहुत नजदीक ऐसे श्यामाक कौटुम्बी के क्षेत्रमें शाली वृक्षके नीचे गोदोहिकासन से आतापना करते हुए बेलेकी तपस्यामें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेपर, शुक्ल ध्यान ध्याते हुए श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीको अनन्त अर्थका बतलाने वाला, सर्व ज्ञानों से अधिक, भींत वगैरह व्याघातों से रहित, आवरण रहित, क्षायिक, अप्रतिपाति, सर्व द्रव्य पर्यायका ग्राहक होनेसे पूर्णमासी चन्द्रके जैसा सम्पूर्ण, सहाय रहित ऐसा केवल ज्ञान और केवल–दर्शन उत्पन्न हुआ। अर्हन् हुए, आठ महा प्रातिहार्य सहित अथवा राग-द्वेष रूपी शत्रुका नाश करने वाले केवली, केवल ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए. श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी देव-मनुष्य-असुर सहित सर्वजीवोंके पर्याय, उत्पत्ति, स्थिति, गति, आगति, च्यवन, उत्पात, तर्क, मनके शुभा-

शुभ विचार, आहार–चौरी–मैथुन प्रकट या गुप्तसे भी गुप्त बात हो, इन सबको जानने और देखने वाले हुए. तब देवोंने समवसरण किया. स्वामीने, लाभका अभाव जानते हुए भी आचारके वास्ते क्षणमात्र देशना दी, परन्तु किसीने प्रतिबोध नहीं पाया. पहिली देशना निष्फल गई। उसके बाद संघ सहित, देवोंके रचे सौनेके कमलों पर चलते हुए स्वामी रात्रिमें बारह योजन पर मध्यपापापुरीके पास आये। देवों ने समवसरण रचा और स्वामी पूर्व–द्वारसे प्रवेश करके अशोक वृक्षकी तीन प्रदक्षिणा कर "नमो तित्थस्स" कहकर पूर्व दिशाके सन्मुख सिंहासन पर विराजमान् हुए, तब तीन दिशाओं में सिंहासनोंपर व्यन्तर देवों ने भगवान्के समान भगवान्की ३ प्रतिमा रक्खी. उस समय भगवान्के अतिशयसे भगवान् चौमुख दीखने लगे और चार प्रकारका धर्मोपदेश देने लगे. उस समय उस नगरमें सोमिल ब्राह्मणने यज्ञ करने के लिये इन्द्रभूति १, अग्निभूति २, वायुभूति ३, व्यक्त ४, सुधर्मा ५, मंडित ६, मौरियपुत्र ७, अकम्पित ८, अचलभ्राता ९, मैतार्य १०, प्रभास ११, इन ग्यारह उपाध्याओं को बुलाया, उनके अलग २ संदेह हैं– जीव है, या नहीं १, कर्म है या नहीं २, जीव शरीर एकही है अथवा पृथक् पृथक् ३, पांचभूत हैं या नहीं ४, जो इस भवमें जैसा होताहै, वैसाही वह

पर भवमें होता है ५, जीवके बन्ध-मोक्ष नहीं है ६, देव हैं अथवा नहीं ७, नारकी हैं अथवा नहीं ८, पुण्य व पाप है अथवा नहीं ९, परलोक नहीं है १०, और मोक्ष है या नहीं ११. अब उन पंडितोंका परिवार कहते हैं– पहिले पांचों के प्रत्येकके पांच २ सौ विद्यार्थियोंका परिवार है, छठे और सातवें के साढ़े तीन २ सौ शिष्योंका परिवार है, आगेके चारों के प्रत्येकके तीन २ सौ विद्यार्थियोंका परिवार है. कुल मिलाकर चवांलीस सौ (४४००) हुए। वहांपर पृथक् २ जातिके औरभी बहुतसे ब्राह्मण आये थे और स्वर्गकी वांछासे यज्ञ करते थे। उस वक्त प्रभात समयमें नगरी के बाहर समवसरण ब्राह्मणों ने और नगरी के लोगोंने देखा. पहिला चांदीका गढ और सौनेके कांगरे, दूसरा सौनेका गढ और रत्नोंके कांगरे, तीसरा रत्नोंका गढ और मणियों के कांगरे, ऊपर अशोक वृक्षकी छाया, समवसरणके आगे हजार योजनका इन्द्रध्वज इत्यादि ऋद्धि और चार प्रकारके देवोंका आना जाना, देवांगनाओंका गीत-गान इत्यादि प्रभाव देखकर ब्राह्मणों ने जाना– अहो ! यज्ञका प्रभाव सत्य है साक्षात् देव यहां आते हैं। ऐसा विचारते हुए ब्राह्मणों के यज्ञ–वाडाको छोडकर सब देव नगरके बाहर स्वामी के समवसरणमें गये और ऐसा बोलने लगे–सर्वज्ञ वन्दनको शीघ्र चलो, सर्वज्ञ वन्दनको शीघ्र चलो। इन्द्र-

भूति, देवों के मुखसे ऐसी वाणी सुनकर मनमें क्रोध लाकर विचार करने लगा जगत् में, सर्वज्ञ तो मैं ही हूँ, मेरे सिवाय सर्वज्ञ और कौनहे ? लोगतो सर्वदा मूर्खही होते हैं, परन्तु देवभी भूल जाते हैं, जो मुझ सर्वज्ञ को नमस्कार करना छोड़कर वे अन्यत्र फिरते हैं अथवा– यह कोई इन्द्रजालिया होगा, जो इन्द्रजाल विद्या से सर्व देवों और लोगोंको मोहित करता है परन्तु इसके वृथा अभिमानको मैं उतारूंगा. इसका गर्व उतारनेमें मेरे सिवाय और कोईभी समर्थ नहीं है। ऐसा विचार कर इन्द्रभूति समोवसरणकी ओर बडे आडंबरसे चला, उसके साथ पांच सौ विद्यार्थी भी अपने गुरुकी विरुदावली बोलते हुए चले और छात्रों के मुख से सरस्वती कण्ठाभरण, वादिविजय लक्ष्मीशरण इत्यादि विरुद सुनता हुआ इन्द्रभूति समोवसरणके पास गया और भगवान् की वाणी सुनकर विचार करने लगा— क्या समुद्र गर्जता है ? अथवा–गंगाका प्रवाह बोलता है, या ब्रह्मा वेद्–ध्वनि करता है। इस प्रकार विचार करते हुए इन्द्रभूति ने जब समोवसरण की पहिली सीढीपर पैर दिया, तब स्वामी को देखकर विचार करने लगा– पांच वर्ण वाले, सौने, चांदी और रत्नों के तीन गढों से विराजमान्, तीन छत्रों से शोभित, सिंहासन पर बैठा हुआ, देवेन्द्रों से स्तूयमान,

देवांगनायें जिसका गुण गावें ऐसा कोई भी वादी आज तक तो मैंने कभी नहीं देखा. तो क्या यह ब्रह्मा है, या विष्णु है या महादेव है या सूर्य है अथवा गणपति है ? इस प्रकार विचार करता हुआ निर्मल स्वभावी, वीतराग भगवान्का सर्वोत्कृष्ट रूप देखकर फिर विचार करने लगा– यह नवीन देव है, देवाधिदेव सर्वज्ञ होगा. इसके साथ वाद करने को मैं यहां आया सो अच्छा नहीं किया, इतने दिन तक जो यश उपार्जन किया सो जावेगा, मैं जानता हुआभी आज अज्ञानी होगया, अब जो यहां आकर और इसे देखकर वापिस जाता हूँ, तो लोकमें मेरी निंदा होगी, आगे वादका व्यवहार भी दुष्कर है, तो 'इतो व्याघ्र इतस्तटीः' यह न्याय यहां आया। कोई कीली के वास्ते मकान खोदे, कोई ठीकरी के वास्ते कामघट को फोड़े, ऐसी बात मैंने की. ऐसा विचारता हुआ इन्द्रभूति साहस करके जब सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, तब स्वामीने ऐसे संशय करते हुए इन्द्रभूति को देखकर कहा—भो इन्द्रभूति ! कुशल है. इस प्रकार नाम लेकर बुलाने से इन्द्रभूति फिर विचार में पड़ गया–यह तो मेरा नाम भी जानता है, अथवा मेरा नाम कौन नहीं जानता ? यह भी मुझसे डरकर मीठे वचन बोलता है, इससे मालूम पड़ताहै कि वह मेरे साथ वाद करना नहीं चाहता, परन्तु मैं इसके मीठे वचनों

से प्रसन्न नहीं होऊँगा ? यदि यह सर्वज्ञ है तो मेरे मनका संशय दूर करेगा और मैं इसका शिष्य होऊँगा। इतने ही में श्रीमहावीर स्वामीने कहा–हे इन्द्रभूति ! तेरे मनमें यह सन्देह है कि जीव है या नहीं !

"विज्ञानघन एव आत्मा एतेभ्यः भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येव अनुप्रविशाति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति इति"

विज्ञानघनही का नाम आत्मा है, वह आत्मा इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं भूतों में प्रवेश करती है, जीवका परलोक गमन नहीं होता. इस वेदवाक्यसे तू जीवका अभाव मानताहै* परन्तु जीव स्थापनमेंभी वेदपदहै.

"सर्वे अयं जीवात्मा ज्ञानमयो ब्रह्मज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयो कायमयः चक्षुर्मयः श्रोत्रमय आकाशमयो वायुमयस्तेजोमयोऽप्मयः पृथिवीमयः हर्षमयः धर्ममयः अधर्ममयो ददद्-मयः, इति"

यह आत्मा ज्ञानस्वरूप, ब्रह्मज्ञानस्वरूप, मन, वचन, कायामयी, चक्षुः, श्रोत्र, आकाश, वायु, तेज, पानी, पृथ्वी स्वरूप, हर्ष, धर्म, अधर्म स्वरूप और दम, दया, दानस्वरूप है। आत्मा जैसा करती है, वैसाही होता है, अच्छा करने से अच्छा होता है, खोटा करने से खोटा होता है, पुण्य करने से पुण्य वढता है और पाप करने

* इसी वाक्य से जीव की सिद्धि होती है उसका समाधान अन्य टीकाओं से जान लें.

से पाप। यह यजुर्वेद के उपनिषद् की ऋचा का वाक्य आत्माका अस्तिपना बतलाती है–हे इन्द्रभूते ! तू ने वेदका अध्ययन किया है, तोभी वेदका अर्थ नहीं जानता. यह जीव सर्व शरीरव्यापी है और शरीर से पृथक् भी होता है; जैसे—दूधमें घृत, काष्ठमें अग्नि, तिलों में तैल, पुष्पों में सुगन्ध, और चन्द्रकान्त में अमृत सर्वव्यापी है और पृथक् भी होता है, ठीक वही अवस्था इस जीव और शरीर की है इसमें ज़राभी सन्देह नहीं है. दम, दया, दान इन तीनों दकारको जानने वाले को जीव जानों. ऐसा कहने से प्रतिबोध को प्राप्त हुए इन्द्रभूति ने ५०० शिष्यों सहित दीक्षा ग्रहण की और भगवान् ने सर्व विरति सामायिकका उच्चारण करवाया। दीक्षा लेनेके बाद इन्द्रभूतिने स्वामीसे पूछा–तत्त्व क्या है ! स्वामी बोले 'उप्पन्नेइ वा' वस्तुकी उत्पत्ति होती है। यह पद सुनकर इन्द्रभूति ने विचार किया–यदि वस्तुकी उत्पत्ति ही होती रहेगी तो यह परिमित क्षेत्र भर जायगा. फिर पूछने पर स्वामी ने कहा–'विगमेइ वा' उत्पन्न होकर विनाश होता है। यह सुनकर फिर विचार किया–विनाशही होता रहेगा तो जगत् शून्य हो जावेगा. तब फिर प्रश्न किया. स्वामीने कहा–'किंचिय धुएइ वा' उत्पन्न होना, विनाश होना और कुछ कालतक स्थिर रहना. उत्पत्ति और

विनाश तो पुद्गल धर्म है, स्थिरत्व जीव धर्म है, यह जगत् की शाश्वति स्थिति है, जीव १, अजीव २, धर्म ३ अधर्म ४, आकाश ५, पुद्गल ६, इन द्रव्यों का आवर्त्तन और परावर्त्तन व्यवहार में आता है, जीव-पुद्गल इधर उधर फिरते हैं, इन त्रिपदीसे इन्द्रभूति ने जगत् का स्वरूप जाना और भगवान् ने त्रिपदी का दृष्टांत दिया. जैसे-एक राजाके एक पुत्र और एक पुत्री थी. पुत्रीने राजासे कहा- सौनेका घड़ा बनवाकर मुझे दो. राजाने पुत्रीको घड़ा बनवा दिया. पुत्रने कहा- सौनेका घड़ा तुड़वाकर मुझको मुकुट बनवादो. राजाने घड़ा तुड़वाकर पुत्रको मुकुट बनवा दिया. उस समय पुत्री को दुःख हुआ और पुत्रको हर्ष, परन्तु राजाको हर्ष और दुःख कुछभी नहीं हुआ. ठीक यही स्थिति संसारकी है- एक उत्पन्न होता है तो एक विनाश पाता है, जीव तो जितने हैं, उतने ही रहते हैं, ज्यादा कम नहीं होते, चाहे घटका मुकुट बने अथवा मुकुटका विनाश होकर घट बने, परन्तु स्वर्णकी हानि व वृद्धि नहीं है. इस प्रकार तत्त्व जानकर इन्द्रभूति ने अन्तर्मुहूर्त्तमें बारह अंगोंकी रचना की और गौतम ऐसा नाम स्थापन हुआ: इन्द्रभूति की तरह अग्निभूति वगैरह सबको भगवान्ने प्रतिबोधा और दीक्षा दी । इस प्रकार ग्यारह गणधरों की स्थापना की गई और उनका पूर्व परि-

वार उनकाही शिष्य किया गया। उसके बाद चन्दनबालाने भी भगवान्की वाणी सुनकर, प्रतिबोध पाकर और द्रव्यसे महोत्सव करके भगवान्के पास दीक्षा ली। इसी समय औरभी बहुतसे लोगों ने दीक्षा ली. बहुत से श्रावक हुए, बहुतसी श्राविकायें हुई. इस प्रकार दूसरे समवसरणमें चतुर्विध संघकी स्थापना हुई परन्तु प्रथम देशना में संघकी स्थापना नहीं हुई, इसलिये यह अच्छेरा हुआ। इस प्रकार संघकी स्थापना करके भव्यजीवों को प्रतिबोधते हुए और परोपकार करते हुए श्रीमहावीर स्वामी विचरने लगे.

तिसकाल और तिस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी दीक्षा लेकर, अस्थिग्रामके बाहर शूलपाणि यक्षके मन्दिरमें पहिली चौमासी रहे। चम्पा नगरी और पृष्ट चम्पामें तीन चौमासी, विशाला नगरी और वाणीया ग्राममें बारह चौमासी, राजगृह नगरके उत्तरदिशि नालिंद पाडे में चौदह चौमासी, मिथिला नगरी में छः चौमासी, भद्रिका नगरीमें एक चौमासी, आलंबिकामें एक चौमासी, सावत्थिमें एक चौमासी, अनार्य्य देशमें एक चौमासी और मध्यम पावापुरीके हस्तिपाल राजाकी जूनी दाण सभामें स्वामी अन्तिम चौमासी रहे। ऐसे छद्मस्थपने में और केवलीपने में श्रीमहावीर स्वामीने बियांलीस चौमासे किये.

अब भगवान्का निर्वाण-कल्याणक कहते हैं:- भगवान् बियांलीसवीं चौमासी पापापुरी के हस्तिपाल राजा की जीर्ण राजसभामें, (धानमंडीमें) रहे. वर्षा कालके चौथे महीने के सातवें पक्षमें, कार्त्तिक अमावास्याके दिन भवस्थिति छेद्कर महावीर स्वामी संसारसे निकले और संसारमें फिर नहीं आवेंगे, इस प्रकार मोक्ष गये. जाति-जरा-मरण-वन्धनको छेदकर सर्व कार्य्य में सिद्ध हुए, तत्त्वके जानने वाले भगवान् संसारसे छूटे, सर्व दुःखों का अन्त करने वाले हुए, सर्व प्रकारसे सुखी हुए, अनन्त सुखके भोक्ता हुए, चन्द्र नामक दूसरे सम्वत्सरमें, प्रीतिवर्धन नामक महीने में, नन्दिवर्धन पक्षमें, अग्निवेष नामक दिनमें, देवानन्दा नामक रात्रिमें, अर्च्यनामक लवमें, प्राण नामक स्तोकमें, नागनामक करणमें, सर्वार्थ सिद्ध मुहूर्त्तमें, स्वाति नक्षत्रमें, भगवान् श्रीवर्धमान स्वामी भवस्थिति व कायस्थिति से गये, शरीर-मन-सम्वंधी सर्व दुःखोंसे रहित होकर मोक्षको प्राप्त हुए।

जिस रात्रि में महावीर मोक्ष गये, वह रात्रि, कृष्ण होते हुए भी, वहुतसे देव-देवियों के आने से, प्रकाशवाली हुई और बहुतसे देव-देवियों के कोलाहल से अव्यक्त शब्दवाली हुई. जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् महा-

वीर मोक्ष गये, उस रात्रि में श्रीमहावीर स्वामी के बड़े शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक गणधरका श्रीमहावीर स्वामी के साथ जो प्रेम बन्धन था, सो टूटा और उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ सो बतलाते हैं–

श्रीमहावीर स्वामीने इन्द्रभूति को दीक्षा देकर गणधर पद्वी दी. प्रथम संघयणवाले, प्रथम संस्थान वाले महा-तपस्वी, आमर्षी ओषधि वगैरह लब्धि सहित तेजोलेश्याका संक्षेप करनेवाले, चार ज्ञानसहित, चौदह पूर्वधारी, श्रुतकेवली ऐसे गौतम स्वामी ने, जिस २ को दीक्षा दी, वे सबही केवली हुए, परन्तु भगवान्के ऊपर मोहनीय कर्मके वशसे स्नेह होने से अपने आपको केवल ज्ञान नहीं हुआ. एकसमय भगवान्ने देशनामें कहा कि आत्म-लब्धिसे जो अष्टापद् तीर्थ की यात्रा करता है, वह उसी भवमें मोक्ष जाता है. तब गौतम स्वामी अपने आत्मा की परीक्षा करने को भगवान् की आज्ञा लेकर वहां गये. वह अष्टापद् पर्वत बत्तीस कोश ऊँचा था और उसमें, एक २ योजन ऊँची आठ सीढियां थीं, जिससे पैरके बलसे उस पर्वतपर कोई भी नहीं चढ़ सकता था। पहिली सीढ़ीपर एकान्तर उपवास करके पारणे में वृक्षों के फल खाने वाले पांचसौ तापस सहित कोडिण्ण तापस बैठा था. दूसरी सीढीपर दो उपवास करके पारणेमें सूखे हुए वृक्षों से अपने आप नीचे गिरे हुए फल खाने-

वाले पांचसौ तपस्वी सहित दिन्न नामक तापस और तीसरे सौपानपर तीन उपवास करके पारणे में सूखी हुई शैवाल तीन चल्लू पानी के साथ खाने वाले पांचसौ तपस्वी सहित शैवाल नामक तापस बैठाथा, परन्तु इन सबमें से कोई भी आगे चढनेको समर्थ नहीं हुआ। जब उन तापसों ने गौतम स्वामी को आतेहुए देखा, तब उन्होंने विचार किया– कि हम तपस्या करते २ दुर्बल होगये , तथापि ऊपर नहीं चढ़ सकते, तो यह स्थूल शरीर वाला पुरुष कैसे चढ़ेगा परन्तु गौतमस्वामी तो लब्धि के बलसे सूर्यकी किरणों को पकड़कर शीघ्रही ऊपर चढ़ गये और भरत चक्रवर्तीका बनाया हुआ 'सिंहनिषध्या' नामक प्रासादमें चत्तारि, अट्ठ, दस, दोय, इस तरह चौवीस तीर्थकरों की लांछन–वर्ण–प्रमाण सहित जिन प्रतिमाओं को नमस्कार कर, तीर्थ उपवास कर प्रासादके द्वारदेशमें अशोक वृक्षके नीचे शिलापट्टको प्रमार्जित करके उस दिन वहीं रहे. रात्रिमें स्वामीने वृज्र-स्वामीके जीव तिर्यक् जृंभक देवको प्रतिबोधा. प्रभातमें देव-दर्शन करके जब गौतम स्वामी नीचे उतरे, तब श्री गौतम स्वामीका माहात्म्य देखकर पन्द्रह सौ तीन तापस शिष्य हुए. सबको गौतम स्वामीने दीक्षा दी. सब तप-स्वियोंका पारणा उसी दिन आया, तब उनसे पूछा–हे तपस्वीओं ! आज तुमको किस आहारसे पारणा करावें ?

इसपर तपस्वियोंने कहा-आप जैसे गुणवान् गुरुके मिलनेसे परम आनन्द हुआ इसलिये परमान्न(खीर)से पारणाहो. गौतम स्वामी वहोरने गये, पात्रमें खीर ले आये और अक्षीण महानसी लब्धिके बलसे खीरके उस एक पात्र से ही सबको पारणा कराया. उस वक्त शैवाल खाने वाले पांचसौ एक तापसोंको गुरुका माहात्म्य विचारते हुए प्रथम कवल लेते ही केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ. इसी तरह दिन्न आदि पांच सौ तापसोंको भगवान्‌का समवसरण देखनेसे केवल ज्ञान हुआ. कौडिन्न आदि पांचसौ तापसोंने भगवान्‌की वाणी सुनकर केवल ज्ञान पाया. इस तरह पन्द्रह सौ तीन तापस मुनियोंके साथ गौतम स्वामी समवसरणमें आये और स्वामीको तीन प्रदक्षिणा देकर तापस-केवलियोंकी परिषदामें जाने लगे. गौतम स्वामीने भगवान्‌को वन्दना करके तापसोंसे कहा—हे तपस्विओं ! यहाँ आकर भगवान्‌को वन्दना करो. भगवान् बोले—हे गौतम ! केवलियोंकी आशातना मत कर. गौतम बोले—हे स्वामिन् ! ये नये दीक्षित भी केवली हो गये तो मुझको केवल ज्ञान कैसे नहीं होता ? स्वामी-बोले—अन्तमें अपन दोनों सरीखे होवेंगे ? तू मुझपर स्नेह छोड़ दे, जिससे तुझे केवल ज्ञान होवे. गौतम स्वामीने कहा—मुझे केवल ज्ञान नहीं चाहिये, आपमें मेरा स्नेह बना रहे. ऐसे गुरुभक्त और प्रतिबोध देनेमें अतीव

निपुण गौतमस्वामीने छःवर्षके अतिमुक्त कुमारको प्रतिबोधा. इसके बाद् वर्षाके पानीसे बहते हुए नालेमें पाल बांधकर उसने कांचली तिराई. साधुओंने जब मना किया, तब भगवान्के पास आकर इरियावहीका प्रतिक्रमण करता हुआ, १८ लाख, २४ हजार, १२० मिच्छामि दुक्कडं देता हुआ वह शुक्ल ध्यानसे केवली हुआ. ऐसे गौतम स्वामीने जिस २ को प्रतिबोधा, दीक्षा दी, वही केवली हुआ। गौतम स्वामीका चरित्र कितने महत्वकाहै ? भगवती सूत्रमें ३६ हजार प्रश्नोंका उत्तर, भगवान्ने, 'हे गौतम!' ऐसा नाम लेकर दिया है। भगवान्ने अपना निर्वाण-समय जानकर पावापुरीके पास वाले ग्राममें, उसी दिन देवशर्म्मा ब्राह्मणको प्रतिबोधने के वास्ते गौतमस्वामी को भेजा. उसी रात्रिमें भगवान् निर्वाण गये. प्रभातमें देवोंके मुखसे भगवान्का निर्वाण सुनकर गौतम वज्राहतके जैसे हुए और चेतना पाकर बोले–अहो! इस वक्त मिथ्यात्वरूप अन्धकार फैलेगा और कुमति घुग्घुओंका समुदाय जागेगा. हे स्वामिन्! तीन जगत्के सूर्य्य आप अस्त हुए, चतुर्विध संघका मुखकमल म्लान हुआ और पाखंडी तारे देदीप्यमान् होवेंगे; ऐसा कहकर विलाप करने लगा– अहो वीर! आपने यह क्या किया ? जिस वक्त अपने बालकोंको दूरसे बुलाना चाहिये था, उस वक्त आपने मुझको दूर किया. आपने यह लोक-

व्यवहार भी तो नहीं पाला. क्या मैं बालककी तरह पल्ला पकड़कर आपको मोक्ष नहीं जाने देता; अथवा क्या मैं केवल ज्ञान मांगता था, अथवा क्या आपमें मेरा कृत्रिम स्नेह था, अथवा क्या मुक्ति-स्थान मुझसे सकडा होता था, जिससे आप मुझको लेकर नहीं गये, अथवा क्या मैं आपको तकलीफ देता। हे वीर ! हे स्वामिन् ! आप मुझको कैसे छोड गये, अब मैं सन्देह किससे पूछूँगा, ऐसे दुःख कर २ के गौतम स्वामी ने औरभी विचार किया— अहो ! श्रीमहावीर स्वामी वीतराग हैं और निःस्नेही हैं, धिक्कार है मुझको ! जो श्रुतज्ञानसे भी मैंने मोहका माहात्म्य नहीं जाना, निर्मोहमें मोह क्या करना ! मेरा कोई नहीं है और मैं किसीका नहीं हूँ। यह आत्माही शाश्वत तथा ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप है और अन्य सर्व भाव अनित्य हैं। इस प्रकार विचार करते हुए गौतम स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। प्रभात समय सर्व देवों ने तथा इन्द्रोंने आकर केवल ज्ञानका उत्सव किया, इन्द्रादिकों ने 'जम्बूद्वीप पन्नत्ति' सूत्रमें कही हुई विधिसे श्रीमहावीर स्वामी के शरीरको स्नान करा करके चन्दनसे अग्निसंस्कार किया और दांत, डाढ़ वगैरह अपने २ अधिकारके अनुसार लेकर अपने २ विमानों के रत्नों के डब्बों में पूजाके लिये रख लीं। इस प्रकार श्रीमहावीर स्वामी का निर्वाण विवाह–

मंगलके सरीखा हुआ—

वीरो वरः, प्रिया सिद्धिः, गौतमऽनुवरस्तथा । प्रत्यक्षं संघलोकस्य, जातं विवाह मंगलम् ॥ १ ॥

श्रीमहावीर वर राजा, मुक्ति विवाह योग्य कन्या और गौतम अनुवर हुए। इस प्रकार श्रीमहावीर स्वामीका निर्वाण रूपी विवाह प्रत्यक्ष रूपसे श्रीसंघके लिये मंगल करने वाला हुआ. श्री महावीर स्वामी के निर्वाणके बाद् श्री गौतम स्वामीका केवल ज्ञान सर्व के लिये हर्ष जनक हुआ। सर्व देवेन्द्रोंने और सर्व लोगों ने 'जुहार भट्टारक' कहकर गौतम स्वामी को वन्दना की। दूसरे दिन सुदर्शना वहिनने नन्दिवर्धन राजाको अपने घर भोजन कराकर भगवान्के वियोगका शोक दूर कराया और वह दिन लोक में 'भाई वीज' पर्व हुआ। जिस रात्रिमें भगवान् निर्वाण गये, उसी रात्रि में काशी देशके स्वामी मल्लकी गौत्रीय नौ राजा तथा कौशल देशके मालिक लेच्छकीय गौत्रीय नौ राजा, इन अठारह राजाओं ने, जो कि श्रीमहावीर स्वामीके मामा चेडामहाराज के सामन्त थे, संसारका पार कराने वाला आठ प्रहरका पौषध उपवास किया था. भाव उद्योत करने वाले, ज्ञानवान् तीर्थंकर का निर्वाण जानकर उन राजाओं ने द्रव्य-उद्योत किया, मकानों में रत्न रक्खे, जिन

रत्नोंका दीप सरीखा प्रकाश हुआ, तभीसे 'दीपमालिका' पर्व प्रवृत्त हुआ. जिस रात्रिमें भगवान्का निर्वाण हुआ, उस रात्रिमें ८८ ग्रहोंमेंसे भस्म राशिनामक दुष्ट ग्रह, जो दो हजार वर्षतक एक ही राशिपर रहता है, भगवान्की जन्म-राशि के ऊपर आया। जब तक वह ग्रह रहेगा, तब तक भगवान्के शासनमें साधु-साध्वियोंका उदय-पूजा-सत्कार न होगा, ऐसा विचारकर, इन्द्रने निर्वाण-समयमें भगवान्से विनती की-हे स्वामिन्! दो घडी तक आयुः बढाओ, जिससे यह दुष्ट भस्मग्रह आपकी दृष्टिसे निर्बल हो जाय। स्वामीने इन्द्रसे कहा-हे इन्द्र! अनन्तबलवीर्यवाले तीर्थंकरभी आयुः बढानेमें समर्थ न हुए हैं, न हैं और न होवेंगे, आयुः की हानि-वृद्धि कोई भी नहीं कर सकता ❋। जब यह भस्म ग्रह उतरेगा, तभी भगवान्के शासन में साधु-साध्वियों का उदय, पूजा और सत्कार होगा। जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष गये, उस रात्रिमें कुन्थुएँ जीवों की उत्पत्ति बहुत हुई, जो स्थिर रहने पर छद्मस्थ साधु-साध्वियों को शीघ्रतासे देखनेमें नहीं आसकते थे, और चलने परभी काठिनतासे देखे जा सकते थे, ऐसे सूक्ष्म कुन्थुएँ जीवोंको देखकर बहुतसे साधु-साध्वियोंने भात-पानीका

❋ घडी न लब्भइ अग्गली, इंदह अक्खइ वीर। इम जाणी जिउ धम्म करि, जां लगि वहइ सरीर ॥ १ ॥

पच्चक्खाण किया—आज पीछे संयम मुश्किलसे पाला जायगा, पृथ्वी जीवाकुल और उपद्रव वाली होवेगी, संयम पालनेके योग्य विरलाही क्षेत्र मिलेगा, पाखंडी बहुत होंगे. ऐसा विचारकर उन साधु-साध्वियों ने अनशन ग्रहण किया।

अब भगवान्का परिवार कहते हैं:—तिसकाल, तिस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओंका समुदाय हुआ. चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार साध्वियां हुईं. शंख, शतक, पुस्कली वगैरह एक लाख, उनसठ हजार श्रावक हुए. सुलसा, रेवति आदि तीन लाख, अठारह हजार श्राविकाएँ हुईं, और श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के, जिन नहीं परन्तु जिनके जैसे सर्व अक्षरों की संयोजना जानने वाले तीन सौ चौदह पूर्वधारी हुए. तेरह सौ अवधि ज्ञानी हुए तथा अढाई द्वीप—समुद्रों में सन्निपंचेन्द्रिय परियाप्ता, मनुष्य—तिर्यंचों के मनोगत भावों को जानने वाले पांच सौ मनपर्य्यवज्ञानी हुए। (ऋजुमति वाले ढाई द्वीपमें ढाई अंगुल कम देखे, परन्तु विपुलमति वाले सम्पूर्ण देख सकते हैं)। भगवान् महावीर स्वामीके चार सौ वादी हुए, जिनके साथ विवाद करने में इन्द्रादि देवभी समर्थ नहीं होते थे। भगवान् महावीर स्वामी के स्वहस्त दीक्षित सात सौ साधु और चौदह सौ साध्वियाँ मोक्ष गईं। आठ सौ साधु पंचानुत्तरवासी देव हुए, जो देव-

भवसे मनुष्यभव प्राप्त करके मोक्ष जावेंगे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके दो प्रकार की अन्तकृत भूमि हुई— युगान्तकृत भूमि १, पर्याय अंतकृत भूमि २. युग पुरुष का अन्त करनेवाली भूमिको युगान्तकृत भूमि कहते हैं श्रीमहावीर स्वामी के मोक्ष को प्राप्त होनेके बाद भगवान्के पट्टमें सुधर्मा स्वामी मोक्ष गये. उनके बाद जम्बू स्वामी मोक्ष गये. ये तीन पाट परम्परा से मोक्ष गये. जम्बू स्वामी के पीछे कोई भी पट्टधारी मोक्ष नहीं गया, यह युगान्तकृतभूमि हुई १, और तीर्थंकरके केवल ज्ञानकी उत्पत्तिसे लेकर जितने समयसे मोक्षमार्ग शुरु हो, उसको पर्य्यायन्तकृत—भूमि कहते हैं. श्रीमहावीर स्वामीको केवल ज्ञानकी उत्पत्तिके चार वर्ष बाद मुक्तिमार्ग शुरू हुआ, यह दूसरी पर्य्यायन्तकृत भूमि हुई २. अब भगवान् महावीर स्वामीकी सर्व आयुः कहते हैं—तिसकाल, तिस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने तीस वर्ष तक गृहवासमें रहकर दीक्षा ली, कुछ अधिक बारह वर्ष तक छद्मस्थपर्याय, किंचित् कम तीस वर्ष केवली पर्य्याय, और ४२ वर्ष तक चारित्र पर्याय पाल करके बहत्तर वर्षका सर्व आयुः पालन किया। वेदनीय १, आयुः २, नाम ३, गोत्र ४, इन चार कर्मों के क्षय होनेपर दुःषम सुषम नामक चौथे आरे के बहुत कुछ समाप्त होनेपर, तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहनेपर, मध्यपावापुरी-

नगरी के हस्तिपाल राजाकी जीर्ण राजसभामें चौविहार, बेलेकी तपस्यायुक्त स्वाति नक्षत्रके साथ चन्द्रमा का योग आनेपर प्रातःकाल दो घडी रात्रि बाकी रहनेपर, पद्मासनपर बैठे हुए, पचावन अध्ययन पुण्य फलके तथा पचावन अध्ययन पापफलके विपाकको कहते हुए, छत्तीस अपृष्ट व्याकरण (प्रश्न विनाही उत्तर) कहकर, प्रधान नामक अध्ययनमें मरुदेवी के अधिकारको कहते हुए श्रीमहावीर स्वामी मोक्ष गये, सम्यक् प्रकारसे ऊंचे गये और अब नीचे नहीं आवेंगे, इस प्रकार गये हुए स्वामी जन्म-जरा-मरण-बन्धन रहित हुए और सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और सर्व कर्मोंका अन्त करने वाले वे सर्व प्रकार से शीतल, दुःख तथा संतापसे रहित होकर शाश्वत सुखों में मिले।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुक्ति जानेके नौसौ अस्सी (९८०) वर्ष बाद देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने कालविशेष से हियमान बुद्धि जानकर, सिद्धान्त विच्छेद हो जायेंगे, ऐसा विचार कर, बारह वर्षी दुर्भिक्ष के अन्तमें, वल्लभी नगरीमें सर्व साधुओंके साथ मिलकर सिद्धांत पत्रों में लिखवाये—पहले सर्व सिद्धान्तों का पठन—पाठन मुखसे ही होता था, अब गुरु शिष्यों को पुस्तकपर सिद्धान्त पढ़ाते हैं. कई आचार्य ऐसा भी

कहते हैं— भगवान् के मुक्ति जाने के नौ सौ अस्सी वर्ष बाद ध्रुवसेन राजाका पुत्रशोक निवारण करने के लिये सभा समक्ष कल्प—सूत्र सुनाया गया. तबसे प्रति वर्ष प्रत्येक गांव—नगरमें पर्युषणा पर्व में संघसमक्ष कल्पसूत्र वांचनेकी प्रवृत्ति शुरू हुई है और नौ सौ तिरानवें (९९३) वर्ष में मथुरा नगरी में स्कन्दलाचार्य ने साधुओंको इकट्ठे करके वाचना की, तबसे माथुरी वाचना तथा वल्लभी वाचना कहलाई. और नौ सौ तिरानवें वर्षमें कालकाचार्यने पंचमी से चौथको पर्युषणा पर्व किया, जिसका विशेष विवरण टीकाओंसे जान लें. इस प्रकार जिनचरित्राधिकारमें, पश्चानुपूर्वी करके छःकल्याणकोंसे युक्त श्रीमहावीर स्वामीका चरित्र कहा गयाहै॥

श्रीकल्पसूत्रवरनाममहागमस्य गूढार्थभावसहितस्यगुणकरस्य। लक्ष्मीनिधेर्विहितवल्लभकामितस्य व्याख्यानमाप किल पञ्चममत्र पूर्तिम् ५.

सूचनाः— जन्मसे निर्वाणतक भगवान्का चरित्र टीकाकारने एकही वाचनामें लिया है। शीघ्र बांचने वाले कई महाशय इसको एकही वाचनामें समाप्त करते हैं और धीरे २ वांचने वाले दीक्षा लेनेके अधिकार तक अथवा कुछ विशेष एक वाचना में वांचकर दूसरी वांचनामें संपूर्ण करते हैं. इस प्रकार जिसको जैसा सुभीता हो, वे वैसा ही कर सकते हैं—इसमें कोई दोष नहीं है।

॥ इति पंचम व्याख्यान संपूर्ण ॥ ५ ॥

॥ अथ छठा व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

अब छठी वाचना में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी तथा श्रीनेमिनाथ स्वामी के पांच २ कल्याणक श्रीभद्रबाहु स्वामी कहते हैं–तिस काल और तिस समयमें, ६३ शलाका पुरुषों में तथा सर्व दर्शनों में प्रसिद्ध श्री पार्श्वनाथ अर्हन् विशाखा नक्षत्रमें देवलोकसे च्यवकर, वामादेवी के गर्भमें उत्पन्न हुए, विशाखा नक्षत्र में जन्म लिया, विशाखा नक्षत्र में ही दीक्षा ली, विशाखा नक्षत्रमें ही सर्वोत्कृष्ट केवल ज्ञान व केवल दर्शन प्राप्त किया और विशाखा नक्षत्र में ही मोक्ष गये. इस प्रकार संक्षेप से पांच कल्याणक कहे. अब विस्तारसे कहते हैं–तिस काल, तिस समयमें पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हन् उष्ण कालके प्रथम मासके प्रथम पक्षकी चैत्रवदी चतुर्थीको प्राणत नामक दशम देव–लोकसे, बीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयुः पालनेके बाद, च्यवकर इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काशीदेशमें वनारसी नगरीके अश्वसेन राजाकी वामारानीके गर्भमें, देवसम्बन्धी आहार, भव तथा भवधारिनीय वैक्रीय शरीरका त्याग करके, मध्यरात्रिमें चन्द्रमाका योग आनेपर विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

अब श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके पूर्व–भवोंका स्वरूप कहते हैं. इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके पोतनपुर नगरमें

अरविन्द नाम राजा था, जिसके विश्वभूतिनामक पुरोहितके अनुधरी नामकी स्त्री थी. उनके दो पुत्र हुए— पहला कमठ और दूसरा मरुभूति. जब विश्वभूति कालधर्मको प्राप्त हुआ, तब अरविन्द राजाने पुरोहित पदवी कमठको दी. कमठ स्वभावसे ही कठोर, क्रूर, लम्पट, और शठ था, और मरुभूति सरल, तत्त्वज्ञ, और श्रावक धर्मका पालने वाला था. कमठके वरुणा नामकी स्त्री थी और मरुभूति के वसुन्धरा नामकी स्त्री. । एकदा वसुंधरा को अतीव स्वरूपवान् देखकर कमठ मोहित होगया, बारंबार कामकी प्रार्थना करने से वसुन्धरा भी कमठमें आसक्त हुई. कुछ समय बाद कमठ—वसुन्धराका दुराचार जब कमठकी स्त्री वरुणाने जाना, तब उसने कमठको मना किया— हे स्वामिन् ! यह अकार्य्य छोड़ो, यदि मरुभूति जानेगा, तो लोगों में फजेत करके तुमको निकाल देगा । भाईसे प्रीति जावेगी, और राजाभी सुनकर विरुद्ध करेगा. इसपर भी कमठ अकार्य से निवृत्त नहीं हुआ. अत्यन्त क्रोधित हुई वरुणाने वसुन्धरा और कमठका दुराचार मरुभूति से कहा. मरुभूतिने विचार किया—जब मैं अपनी दृष्टिसे देखूंगा, तब मानूंगा. एकदा कुछ मिस करके वह घरसे निकला, दूसरे दिन सन्यासी का वेष धारण करके सन्ध्या समय रहनेको स्थान मांग कर रहा और रात्रिमें जब उनका दुराचार स्वयं

देखा, तब उसने अरविन्द राजा से कमठका अनाचार कहा. अरविन्द राजाने भी कमठका दुराचार सुनकर कमठकी निर्भत्सना कर, चौर जैसी विडम्बना करके, नगरमें फिराकर नगरसे निकाल दिया और मरुभूतिको पुरोहित किया. कमठ लोगोंमें लज्जित हुआ, दुःखगर्भित वैराग्य पाकर तापसी दीक्षा ली. वहुत देशांतर फिरता २ वह एकदा पोतनपुरके पास एक पर्वतके ऊपर आकर आतापना करने लगा. सर्व लोग कमठको देखनेको गये, पहिले निन्दा करते थे, अब प्रशंसा करने लगे. मरुभूतिने भी विचार किया—मैंने अपने बड़े भाईके साथ विरोध किया. दुःखसे निकल कर वह तापस हुआ. अब मैं उसके पास जाऊँ और नमस्कार करके अपना अपराध क्षमा कराऊँ. ऐसा विचार करके मरुभूति कमठके पास गया और जब पैरों में पड़कर अपराध की क्षमा मांगने लगा, तब कठोर कमठने मरुभूतिको मारनेके वास्ते मस्तक पर शिला डाली, जिससे मस्तक चूर्ण २ हो गया. वेदनासे पीड़ित मरुभूति आर्त्तध्यानसे मरकर दूसरे भवमें विन्ध्याचलकी अटवीमें सुजातोरु नामक हाथी हुआ. कमठभी वहांसे डरकर भागा, दुष्टकर्मके वशसे मरकर उसी वनमें कुर्कुट पक्षी जैसी आकृति वाला उड़ना सर्प हुआ ॥ २ ॥ अरबिन्द राजाने भी कमठ और मरुभूतिका स्वरूप सुनकर संसारको

जाने तथा पीछे आनेमें असमर्थ हुआ. वहींपर दावानलके भयसे भागते हुए कमठके जीव, कुर्कुट सर्पने हाथी को कादेमें फँसा देखकर, पूर्व भवके वैरसे माथेपर बैठकर डसा. जहरकी वेदनासे पीडित हुआ, वह हाथी श्रावक धर्म पालने से, धर्मध्यानसे मरकर तीसरे भवमें आठवें सहसारदेव–लोकमें देव हुआ । कुर्कुट सर्पभी दावानलसे मरकर पांचवीं नरक गया ॥३॥ अब मरुभूतिका जीव आठवें देवलोकसे च्यवकर चौथे भवमें इसी जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेहक्षेत्रमें, सुकच्छ विजय, वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें, तिलकवती नगरी के विद्युत गति विद्याधर राजाकी कनकवती रानीके पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ, 'किरणवेग'नाम दिया गया, यौवनावस्थामें राज्य पाया और रूपवती स्त्रियोंके साथ सुख भोगने लगे. एकदा गवाक्षमें बैठेहुए वे सन्ध्याका स्वरूप देखकर, वैराग्य पाकर, मुनियोंके पास दीक्षा लेकर, पुष्करवरद्वीपके वैताढ्य पर्वतके पास हेमशैलपर्वतके ऊपर काउसग्गमें रहे । उस समय कमठका जीव पांचवीं नरकसे निकलकर उसी पर्वतमें सर्प हुआ ॥ ४ ॥ सर्पने साधुको देखकर पूर्व वैरसे डसा. साधु काल करके, पांचवें भवमें, अच्युत नामक बाहरवें देवलोकमें देव हुए. सर्पभी मरकर पांचवीं नरकमें गया ॥५॥ अब मरुभूतिका जीव बारहवें देवलोकसे च्यवकर छठे भवमें, इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम महावि-

देहमें, गंधलावती विजय शुभंकरा नगरीके वज्रवीर्य राजाकी लक्ष्मीवती रानीकी कुक्षिमें पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ. 'वज्रनाभ' उनका नाम रक्खा गया, अनुक्रमसे पिताने राज्य दिया. यौवनावस्थामें विषयसुख भोगते हुए वे सुखसे रहने लगे। एक समय उद्यानमें क्षेमंकर तीर्थंकर पधारे, वज्रनाभराजा तीर्थंकरको वन्दना कर, देशना सुन, सर्व अनित्य जानकर, पुत्रको राज्य देकर, क्षेमंकर तीर्थंकरके पास दीक्षा लेकर, आचार-विचार वाले सर्व शास्त्रोंका अध्ययन करके चारण लब्धिसे विहार करते हुए वज्रनाभ राजर्षि सुकच्छाविजयमध्यवर्ति ज्वलन पर्वतपर काउसग्गमें रहे। उस समय कमठका जीव पांचवीं नरकसे निकलकर बहुतसे भव भ्रमण करके उसी पर्वतपर भील हुआ ॥ ६ ॥ मृग मारनेको जाते हुए उस भीलने साधुजीको देखकर पूर्व भवके वैरसे एक बाण मारा. साधुजी शुभध्यानसे मरकर मध्यमग्रैवेयकमें देव हुए. भील मरकर सातवीं नरकमें गया ॥ ७ ॥

मरुभूतिका जीव आठवें भवमें इसी जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेहमें शुभंकर विजय पुराणपुर नगरके कुशलबाहु राजाकी सुदर्शना रानीके चौदह स्वप्न सूचित चक्रवर्त्ति पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ. 'सुवर्णबाहु' नाम दिया गया. क्रमशः उसने राज्य पाया, कितने ही वर्ष बाद चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, छः खंड साधकर चक्रवर्त्ति पदवी पाकर, वृद्धा-

वस्थामें चारित्र लेकर वीश स्थानकका सेवन कर तीर्थंकर नाम कर्म बांधकर, अटवीमें काउसग्गमें खडे रहे। सातवीं नरकका मध्यम आयुः पालकर, कमठका जीव उसी अटवीमें सिंह हुआ ॥८॥ उसने सुवर्णबाहु राजर्षि को देखकर पूर्वभवके वैरके कारण हत्थलसे मारे. साधुजी मरकर नवम भवमें प्राणतनामक दशम देवलोकमें वीससागरके आयुः वाले देव हुए. कमठका जीव सिंह मरकर नरकमें गया ॥ ९ ॥ मरुभूतिका जीव प्राणत देव-लोकसे सम्पूर्ण आयुः पालकर वामारानीकी कुक्षिमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर रूपसे अवतरा. कमठका जीव नरकसे निकलकर दरिद्री ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

अब श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका अधिकार कहते हैं—पार्श्वनाथ पुरुषादानीय अर्हन्, देव-लोकसे मेरा च्यवन होगा, ऐसा जानते थे, परंतु च्यवन-समय अति सूक्ष्म होने से नहीं जान सके और माताके गर्भ में उत्पन्न होनेके बाद जान लिया कि मैं यहां आया हूँ. भगवान्, मति, श्रुति, और अवधि इन तीन ज्ञान सहित थे. इसके पश्चात् चौदह स्वप्नोंका देखना, भर्त्तारके आगे उनका कहना, प्रभातमें राजाका स्वप्न—लक्षण—पाठकों से पूछना, फल सुनना, पीछे इन्द्रकी आज्ञासे धनदके सेवक, तिर्यग् जृंभक देवोंद्वारा धनकी वर्षा करना इत्यादि सर्वाधिकार श्रीमहावीर

स्वामी के तुल्य जानने चाहिये, परन्तु मेरा गर्भ गल गया इत्यादि अधिकार नहीं कहना ।

अब श्रीपार्श्वनाथस्वामी का जन्म कल्याणक कहते हैं—तिस काल, तिस समयमें ९ महीने साढ़े सात दिनके पश्चात्, शीतकालके दूसरे महीनेके तीसरे पक्षमें पौषवदी दशमीके दिन, आधी रात्रिके समय विशाखा नक्षत्रके साथ चन्द्रका योग आने पर, आरोग्यवान् पार्श्वनाथको आरोग्यवती वामादेवी ने जन्म दिया। जिस रात्रिमें वामादेवीने भगवान् पार्श्वनाथको जन्म दिया, उस रात्रिमें बहुतसे देव–देवियोंके मनुष्य–लोकमें आने-जानेसे अन्धकारवाली रात्रिमें भी प्रकाश हुआ और उन देव–देवियोंके अव्यक्त शब्द तथा हास्य से बहुतसा कोलाहल मचा। छप्पन्न दिक्कुमारियोंका सूतिकर्मका करना और चौसठ देवेंद्रोंका मेरु शिखरपर जन्मम-होत्सवका करना, स्वर्णरत्नादिकी वृष्टिका करना तथा प्रभातमें अश्वसेन राजाको पुत्र–जन्मकी बधाई देने-वाली दासीको वांछित धन देना, पीछे बन्दियोंका छुड़ाना, मान, उन्मादका बढाना, नगरकी शोभा करना इत्यादि दश दिन तक जन्ममहोत्सव महावीर स्वामीके अधिकार मुजब जान लेना। बारहवें दिन सर्व ज्ञातीय लोगोंको भोजन कराकर पिताने 'पार्श्वकुमार' ऐसा नाम दिया । इसका कारण यह है कि अंधेरी रात्रिमें

वामादेवीने पासमें जाते हुए एक सर्पको देखा और निद्रामें श्रीअश्वसेन राजाके नीचे लटकते हुए हाथको उठाकर सैज पर लिया। राजाने पूछा–निद्रामें मेरा हाथ ऊँचा क्यों किया? रानी बोली–हे स्वामिन्! यहां काला सर्प जाता है, इससे मैंने हाथ उँचा किया. उस समय राजाने जाना कि जो ऐसी अँधेरी रात्रिमें रानी नें सर्प देखा, तो यह गर्भकाही प्रभाव है, इस कारणसे इस बालकका 'पार्श्व' ऐसा नाम रक्खेंगे। इसी विचारसे बारहवें दिन सबको भोजन कराकर माता–पिताने सर्व जन समक्ष 'पार्श्व कुमार' ऐसा नाम दिया। अब बाल्यावस्थामें इन्द्र देवोंको भेजकर भगवान्को रमाता, आपभी कुमारका रूप धरकर साथमें क्रीडा करता. जन्मसेही इन्द्रने भगवान्के अंगूठेमें अमृतका संचार किया था. जब तक अग्निपक्व आहार नहीं करते, तब तक भगवान् अंगूठे से ही अमृतपान करते रहे. ऐसी रीति सर्व तीर्थंकरों की है। अब श्रीपार्श्वनाथ स्वामी कल्पवृक्षके अंकुरके समान बड़े होने लगे. नौ हाथ ऊँचे शरीर वाले, मेरुके जैसे धीर तथा नील कमलके जैसे शरीरके वर्ण वाले वे यौवनावस्थाको प्राप्त हुए. कुशस्थल नगरके स्वामी प्रसेनजित् राजाकी प्रभावती नामकी पुत्री श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको परणाई गई, जिसके साथ विषय सुख भोगते हुए स्वामी सुख-पूर्वक निवास करने लगे। एक समय गवाक्षमें बैठे

हुए पार्श्वनाथ कुमारने जब नगरके लोगोंको पक्वान्नादि भोजन थालों में रखकर नगरसे बाहर जाते हुए देखे, तब सेवक से पूछा. उसने कहा–स्वामिन्! उद्यानमें कमठ नामका पंचाग्नि साधक महा तापस आया है जिसे नमस्कार करनेको ये लोग जाते हैं. उस समय स्वामीने ज्ञानसे जाना कि यह तो जन्म दरिद्री ब्राह्मणका कमठ नामक पुत्र है, बालकपनमें जिसके माता–पिता मरे, जिसको लोगोंने बडा किया और जो क्षुधादि दुःखसे पीड़ित होकर, तापसी दीक्षा लेकर आया है–यह निर्दयी, अज्ञानी, क्रोधादि कषायोंसे युक्त है, ऐसा विचार कर भी स्वामी चुप रहे. उसी समय वामारानीने अन्य लोगों के आग्रहसे तापसके देखनेकी इच्छा प्रगट की. बैठनेको हाथी तैयार किया गया. श्रीपार्श्वकुमार भी, माताके कहने से और जीवरक्षाका लाभ जानकर, हाथीपर बैठकर माता के साथ चले. तापसने, यह वार्त्ता सुनकरके कि वामारानी पार्श्वकुमारके साथ मुझे नमस्कार करनेको आती है, और भी बड़े २ काष्ठों का समूह चारों दिशाओंमें जलाया, पांचवाँ सूर्य्य अग्नि जैसा ऊपर तपे, बीचमें वह स्वयं बैठा. स्वामीके साथ नगरके बहुतसे लोग आश्चर्य देखनेको आये. तीन ज्ञानसे विराजमान् भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी जीव-हिंसा देखकर बोले–अहो तपस्वी! तुम्हारा यह तप अज्ञानतासे युक्त है, अज्ञानियों को तपमें बहुत

कष्ट होता है और फल थोडा मिलता है, दयाहीन अज्ञानीका तपश्चरणादि सब धर्म निष्फल है:—

कृपा महानदी तीरे, धर्माः सर्वे तृणांकुराः ॥ तस्यां शोषमुपेतायां, कियन्नन्दन्ति तेऽङ्कुराः ॥ १ ॥

दया एक बडी नदी है, जिसके किनारे पर दान, शील, तप आदि सर्व धर्म तृणांकुर समान हैं. उस कृपा-रूपी नदीके बढनेसे सर्व धर्म बढते हैं और सूकने पर सर्व धर्म, तृणांकुरके समान सूक जाते हैं, इसलिये दया विना सर्व धर्म-कार्य कष्टरूप ही हैं. तुम पंचाग्नितपका स्वरूप नहीं जानते, अग्नि जलानेसे पंचाग्नितप नहीं होता—यह प्रत्यक्षरूपसे छः जीवनिकाय की हिंसा है और जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म नहीं है, और पंचाग्नितप तो यह है:—

पंचाग्निरिन्द्रियाणां तु, विषयेन्धनचारिणां । तेषां तिष्ठति यो मध्ये, स वै पंचतयास्मृतः ॥ १ ॥

पांच इन्द्रियोंके तेवीसविषयरूपी काष्ठोंको तपरूपी अग्निसे जलाकर जो इन्द्रिय—निरोध करता है, और इन्द्रिय—निरोधसे तपस्वी बनता है, वही पंचाग्निसाधक तपस्वी है। तुमतो इसे नहीं जानते, कष्टमात्र ही करते हो, इसलिये दया-पूर्वक ज्ञानगर्भित तपःचरण करो, क्रियाहीन पुरुषका ज्ञान नष्टप्रायः है, और अज्ञानी पुरुषकी

क्रिया भी किसी कामकी नहीं है। देखता हुआ पांगुला, और दौड़ता हुआ अन्धा आगमें जल जाय और अन्धे व पांगुलेका होजाय मिलाप, तो दोनों अग्निसे निकल जावें, परन्तु दोनों अलग २ होवें तो कुछभी नहीं कर सकते. उसी तरह ज्ञान-क्रिया युक्त पुरुषका मोक्ष है, अज्ञानी अन्धे जैसा है और क्रियाहीन ज्ञान पांगुले जैसा है। अन्धेपर पांगुला बैठे, और पांगुला रास्ता बतावे और अन्धा चले, तो वांछित स्थान पर पहुंचे. पार्श्वनाथ स्वामीने तापसको इस प्रकार उपदेश दिया. इस पर तापस नाराज हुआ:—

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये। पयःपानं भुंजगानां, केवलं विषवर्धनम् ॥ १ ॥

मूर्खोंको उपदेश भी क्रोधके लिये होता है, शान्तिके लिये नहीं, सर्पोंको दूध पिलाना भी केवल जहरको बढाने वाला ही होता है. नाराज हुआ वह तापस श्रीपार्श्वनाथ स्वामीसे बोला—हे राजकुमार! तुम शस्त्र व हाथी-घोडोंकी परीक्षामें निपुण हो और राजनीतिज्ञ हो, परन्तु धर्मनीति नहीं जानते, हम पंचाग्नितपसे इन्द्रियों का दमन करते हैं और विषयोंसे निवृत्त होते हैं। इस तपमें कौनसी जीव हिंसा है? यदि है, तो बताओ। नहीं तो व्यर्थ ही तपस्वियोंकी निन्दा क्यों करते हो? ऐसा कहने पर पार्श्वनाथ स्वामीने अपने सेवकोंसे जलते हुए एक

बडे काष्ठको निकलवाकर, कुल्हाडेसे उस यलस तुडवाकर और उसके अन्दरसे जलते हुए सर्पको निकालकर सर्व लोगोंको दिखाया, और अर्द्ध जले हुए सर्पकी थोडी आयुः जानकर स्वामीने 'ओं असिआउसाय नमः' यह पंचपरमेष्ठि मन्त्र सुनाया। प्रभुके दर्शनसे तथा उस मन्त्रके प्रभावसे वह सर्प मरकर पातालमें नागकुमार योनी में धरणेन्द्र हुआ। प्रभुका ज्ञान देखकर सर्व लोगोंने प्रभुकी प्रशंसा की और तापसकी बहुत निन्दा. लोगोंके मुखसे अपनी निन्दा और पार्श्वनाथकी प्रशंसा सुनकर वह तापस वहाँसे चल दिया. पार्श्वनाथ स्वामीसे पहले भी विरोध था, परन्तु अब अधिक हो गया. अज्ञान तप करता हुआ और भगवान्‌से द्वेष धरता हुआ, वह मरकर, अज्ञान तपके प्रभावसे मेघमाली देव हुआ.

एकदा वसन्तऋतुमें श्रीपार्श्वनाथ स्वामी वनमें दिनको क्रीडा करके सन्ध्या समय घर आये परन्तु वहाँ दिवारमें नेमिनाथजीका सर्व वृत्तान्त–'जिस तरह वे राजीमतीके पाणिग्रहणके वास्ते सर्व यादवोंके साथ तोरण तक आये, सर्व पशुओंको बन्धनसे छुडाया और राजीमतीका त्याग करके गिरनार पर्वत पर दीक्षा ग्रहण की इत्यादि स्वरूप' लिखा हुआ देखकर भगवान्‌को वैराग्य उत्पन्न हुआ. पार्श्वनाथ स्वामी अपनी प्रतिज्ञाका पालन

करने वाले, संसारमें रहते हुए भी संसारसे अलिप्त रहने वाले, सरलस्वभावी, विनीत, माता-पिताके भक्त थे, जिनके जन्मसे वाणारसी तीर्थभूमि कही जाती है, जिनके स्नानसे गंगा नदी भी सर्व पापहारिणी, पवित्र हुई है:—

परदारा—परद्रोह—परद्रव्यपराङ्मुखः । गंगाऽप्याह कदाप्यम्भो ममाऽयं पावयिष्यति ॥ १ ॥

गंगा भी ऐसा मनोरथ करती है कि परस्त्री, परद्रोह, परद्रव्यसे पराङ्मुख पुरुष मेरे पानीको कब पवित्र करेगा ? ऐसा कहनेसे गंगाभी धर्मात्मा पुरुषोंके शरीरके स्पर्शसे पवित्र होती है, फिर परमेश्वरके शरीर-स्पर्शसे पवित्र होवे, इसमें तो कहना ही क्या है ! भगवान् तीस वर्ष तक घरमें रहे. लोकातिन्क देवोंने आकर दीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार विनती की—हे स्वामिन् ! आप जयवन्त होवें, वृद्धिको प्राप्त होवें ! हे क्षत्रीयवर वृषभ ! हे लोकनाथ ! हे प्रभो ! आप बोध पावो, संसारका स्वरूप जानो और धर्मतीर्थ प्रवृत्तक बनो ! आपकी जय हो ! गृहस्थावाससे विरक्त पार्श्वनाथ स्वामी अवधिज्ञानसे पहले भी अपनी दीक्षाका अवसर जानते थे, परन्तु लोकान्तिक देवोंके वचनसे सम्वत्सरी दान देकर दीक्षा लेनेको तैयार हुए. तिसकाल, तिस समयमें पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हन् प्रधान ज्ञान-दर्शनसे अपना दीक्षावसर जानकर, सौना, वगैरह धनका त्यागकर, महावीर

स्वामी के समान गौत्रीयजन वगैरहको उचित दान देकर, शीतकालके दूसरे महीने के तीसरे पक्षकी पोषवदी ग्यारसके दिन, मध्याह्न समय विशाला नामकी पालकीमें बैठकर, जैसे श्रीमहावीर स्वामी क्षत्रीयकुन्ड नगरसे बाहर गये, वैसे ही महोत्सवसे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी वाणारसी नगरीके मध्यमें होकर जहाँ आश्रमपद उद्यान है वहाँ आकर अशोक वृक्षके नीचे पालकी रखवाई. पालकीसे उतर कर भगवान्‌ने ही माला आदि आभरण उतारे, और अपने हाथसे पंचमुष्टी लोचकर, चौविहार अट्ठम सहित विशाखा नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आने पर तीन सौ राजपुरुषोंके साथ दीक्षा ली। श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके कन्धेपर इन्द्रने देवदुष्य वस्त्र रक्खा और तीन सौ स्थविरकल्पी साधुओंको चौदह उपकरण देवोंने दिये. इस प्रकार स्वामी गृहवासको छोडकर अनागार हुए। श्रीपार्श्वनाथ अरिहन्तने ८३ दिन तक लगातार शरीरकी शुश्रूषाका त्याग किया, और जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होते, देवोंसे किये उपसर्ग, और मनुष्य या तिर्यंचोंसे किये हुए, शरीरको सुखदायक चन्दनका विलेपन, स्त्री वगैरह, और शरीरको दुःखकारी, भय उत्पादक इत्यादि सर्व उपसर्गोंको, शरीरमें शक्ति रखकर तथा मन स्थिर करके, क्षमा-पूर्वक अदीन मनसे सहन किये।

अब भगवान्‌ने तीन उपवासका पारणा कोपट—सन्निवेशमें धन्य नामक गृहस्थके घरमें परमान्नसे किया. वहाँ देवोंने पांच दिव्य प्रकट करके साढ़े बारह करोड़ सौनैयोंकी वर्षा की, छद्मस्थावस्था में विहार करते हुए, कलिकुंड पार्श्वनाथ, तथा कुर्कुटेश्वर पार्श्वनाथ और जीवितस्वामी तीर्थकी स्थापना हुई. एक समय श्रीपार्श्व-नाथ स्वामी विहार करते शिव नगरी के पास तापसोंके आश्रममें आये. सूर्य्य अस्त हो गया. वहां एक जूना-कुआके पास वटवृक्ष था. स्वामी वहीं पर काउसग्गमें खड़े रहे । इसी समय कमठका जीव मेघमाली देव स्वामीको काउसग्गमें खड़े देखकर क्रोधित हुआ, और उपद्रव करने लगा। उसने पहले वैतालका रूप बनाकर अट्टहास करके भगवान्‌को डराये, पीछे सिंहके रूपसे उपसर्ग किया, बिच्छु, और सर्प बनकर डसा, ऐसे बहुतसे उपसर्ग किये, परन्तु स्वामी ध्यानसे नहीं चले । वह अत्यन्त क्रोधातुर हुआ, मेघ-घटा बनाकर काली रात्रिके समान श्याम मेघ-घटासे आकाशको ढककर प्रलय—काल सदृश मूसलधारासे मेघ वर्षाने लगा, ब्रह्माण्ड फूटे ऐसा गर्जारव हुआ, यमराजकी जिह्वा जैसी बिजलियाँ चमकने लगीं, काउसग्गमें खड़े हुए स्वामीके एक क्षणमें नाशिका तक जल आ गया, तथापि भगवान् ध्यानसे चलायमान् नहीं हुए. तब धरणेन्द्रका आसन कंपित

हुआ, धरणेन्द्रने अवधिज्ञानसे अपने पूर्व भवके गुरु भगवान्को उपसर्ग जानकर, पद्मावती सहित आकर, स्वामी को कंधेपर उठाकर मस्तकपर हजार फणोंका छत्र लगाया और पद्मावती–जया–विजया–वैरोट्यादि, सखियों सहित भगवान्के आगे दिव्य वादिंत्रों सहित आकाशमें नाटक करने लगीं. धरणेन्द्रने विचारा–ऐसी मेघवृष्टि स्वाभाविक नहीं हो सकती, कुछ उत्पात होगा. अवधिज्ञानसे मेघमाली कृत उपसर्गको भगवान्के साथ पहले के वैरसे जानकर धरणेन्द्र बोला–अरे दुष्ट मेघमाली! तूने यह क्या किया! अजाकृपाणि न्यायसे तेराही बुरा होगा– जैसे बकरीके छुरीसे गला खुजवाने पर बकरीका ही गला कटता है, उसी तरह भगवान्को जो तू उपसर्ग करता है, सो तेरे ही दुःखके वास्ते होगा, अथवा ये तो वीतराग कृपालु हैं, परन्तु मैं भगवान्का सेवक तेरा यह दुष्टपना नहीं सहूँगा। अरे! स्वामीने तो पंचाग्नितप करते हुए तुझको अच्छा दयामय उपदेश दिया, परन्तु वह तेरे क्रोध के वास्ते ही हुआ। जैसे लवणक्षेत्रमें बरसा हुआ पानी लवण ही होता है, वैसेही भगवान्के अमृतरूप वचन तेरे लिये जहर रूपही हुए. धरणेन्द्रके ऐसे क्रोधके वचन सुनकर मेघमाली भयभीत हुआ, मेघमाला मिटाकर स्वामीके चरणोंमें लगा, अपना अपराध क्षमाया, सम्यक्त्व पाया और श्री पार्श्वनाथ स्वामी की मन्त्रगर्भित

स्तुति करके धरणेन्द्रके साथ वन्दना कर मेघमाली स्वस्थान गया। धरणेन्द्र भी भगवान्को वन्दना कर पद्मावती आदि सहित पातालमें गया, लोगोंने शिवनगरीको 'अहिच्छत्रा' नाम दिया. वहां तीर्थ स्थापना हुई. यह 'अहिच्छत्रा, पूर्व देशमें तीर्थ है। पुरुषादानीय श्रीपार्श्वनाथ अरिहन्त अनागार हुए. इर्यासमित्यादि पांच समितियों सहित, तीन गुप्तियुक्त, आत्मा भावन करते हुए ८३ दिन गये बाद ८४ वें दिनमें, उष्णकालके पहिले महीनेके पहिले पक्षकी चैत्रवदी चतुर्थीके दिन, पूर्वाह्नमें धातुकी वृक्षके नीचे चौविहार छठयुक्त विशाखा नक्षत्रमें चन्द्रका योग आने पर शुक्लध्यान धरते हुए भगवान्को अनन्त अर्थका ग्राहक, सर्वोत्कृष्ट केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। श्रीपार्श्वनाथ स्वामी केवल ज्ञान व केवल दर्शनसे षट्द्रव्योंके तथा लोकालोकके भाव जानने और देखने लगे. उस अवसरपर चारों निकायके देवों ने आकर समोसरण रचा और अशोक वृक्षादि अष्टमहाप्रातिहार्यकी शोभा की. चौसठ इन्द्र आये. भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीने समवसरणमें पूर्व दिशाके सन्मुख सिंहासन पर बैठकर बारह पर्षदाके आगे चार प्रकारका धर्मोपदेश दिया. देशना सुनकर बहुतसे लोगों ने प्रतिबोध पाया. चतुर्विध संघकी स्थापना हुई।

अब भगवान्का परिवार कहते हैं—पुरुषादानीय श्रीपार्श्वनाथ अरिहन्तके आठ गच्छ और आठ गणधर हुए—शुभ १, आर्यघोष २, वशिष्ठ ३, ब्रह्मचारी ४, सौम्य ५, श्रीधर ६, वीरभद्र ७, यशोधर ८. इन आठों गणधरोंने पृथक् २ द्वादशांगीकी रचना की. उनके आठ गच्छ हुए. पार्श्वनाथ भगवान्के आर्यदिन्न आदि सौलह हजार साधुओंकी संपदा हुई. पुष्पचूला आदि अड़तीस हजार साध्वियाँ हुई. सुव्रत आदि एक लाख, चौसठ हजार श्रावक हुए. सुनन्दा आदि तीन लाख, सत्ताईस हजार श्राविकाएँ हुई. साढ़े तीनसौ चौदह पूर्वधारी जिन नहीं परन्तु जिनके सरीखे सर्व अक्षरोंका संयोग जानने वाले हुए. श्रीपार्श्वनाथस्वामीके चौदह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवली, ग्यारह सौ वैक्रीयलब्धिधारक, साढ़े सात सौ विपुलमति, तथा छः सौ ऋजुमति मनपर्यवज्ञानी, छः सौ वादी हुए और श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके हाथसे दीक्षा दिये हुए एक हजार मुनि मोक्ष गये. दो हजार साध्वियाँ मोक्ष गई. बारह सौ पंचानुत्तर विमानवासी देव हुए। श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके दो प्रकारकी अन्तकृतभूमि हुई—श्रीपार्श्वनाथ स्वामीसे लेकर चार पट्टधारी मोक्ष गये, यह तो हुई युगान्तकृत भूमि. श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके तीन वर्ष बाद मुक्तिमार्ग शुरू हुआ, यह पर्यान्तकृत भूमि हुई।

तिस काल तिस समयमें पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अरिहन्त तीस वर्ष तक गृहवासमें रहे, तयांसी दिन छद्मस्थावस्था में, तयांसी दिन कम ७० वर्ष केवली पर्य्याय, पूर्ण ७० वर्ष चारित्र पर्याय और एक सौ वर्षका सर्वायुः पालकर वेदनीय, आयुः, नाम, गोत्र इन चार कर्मोंके क्षय होने पर तथा इस अवसर्पिणीके चौथे आरेके बहुत कुछ व्यतीत होने पर वर्षा कालके पहिले महीनेके दूसरे पक्षकी श्रावण सुदी अष्टमीके दिन सम्मेतशिखर पर्वतके ऊपर तैंतीस साधुसाहित और चौतीसवें स्वयं भगवान् चौविहार एक महीनेका अनशन करके, विशाखा नक्षत्रमें चंद्रमाका योग आनेसे पहिले दो प्रहरमें खडे खडे ही काउसग्गमें मोक्ष गये और सर्व प्रकार के दुःखोंसे रहित हुए। पार्श्वनाथ स्वामीके मुक्ति प्राप्त होनेके वारह सौ तीस वर्षके वाद श्रीकल्प-सूत्र पुस्तकमें लिखा गया. पार्श्वनाथस्वामीके निर्वाणके अढाई सौ वर्षके वाद श्रीमहावीर स्वामी निर्वाण गये. उनके नौ सौ अस्सी वर्ष वाद कल्पसूत्र लिखा गया। इस प्रकार सर्व संघके मंगल के लिये तेवीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामीके पांच कल्याणक कहे गये।

॥ इति श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का संक्षिप्त चरित्र सम्पूर्ण ॥

अब पश्चानुपूर्वी करके बाईसवें तीर्थंकर, सर्व पाप नाशक, आबाल ब्रह्मचारी, संसार समुद्रसे तारने वाले, श्रीगिरनार तीर्थ मंडन, राजीमतीका परिहार करने वाले, शीलसन्नाहके धारने वाले, ऐसे श्रीनेमिनाथ स्वामीके पांच कल्याणक कहते हैं—तिसकाल, तिस समयमें अरिहन्त अरिष्टनेमिके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए. चित्रानक्षत्रमें देवलोकसे च्यवकर भगवान् माताकी कुक्षिमें उत्पन्न हुए १, चित्रानक्षत्रमें जन्म हुआ २, चित्रानक्षत्रमें चारित्र ग्रहण किया ३, चित्रानक्षत्रमें केवल ज्ञान पाये, ४, चित्रानक्षत्रमें मोक्ष गये ५.

अब विस्तारपूर्वक कहते हैं—तिसकाल तिससमयमें अरिहन्त अरिष्टनेमि वर्षाकालके चौथेमहीनेके सातवेंपक्ष की कार्त्तिकवदी बारसके दिन, पंचानुत्तरविमानोंमेंसे उत्तरदिशाके अपराजित नामक विमानसे, बत्तीससागरोपम का आयुः भोगकर इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें शौरीपुर नगरके समुद्रविजय राजाकी शिवा—देवी नामक रानी की कुक्षिमें चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेसे उत्पन्न हुए। उस समय चौदह स्वप्नोंका देखना, भर्तार के आगे कहना, स्वप्न-लक्षण-पाठकोंसे फलका सुनना, बन्दीजनोंका छोड़ना, नगरमें उत्सव करना, इन्द्रकी आज्ञासे धनदके तिर्यक्जृम्भक देवोंके धन-धान्यकी वृष्टि करना इत्यादि सर्व कार्य्य जैसे महावीरस्वामीके समय

में हुए, वैसेही यहांभी समझ लेना. अब नेमिनाथ स्वामीका जन्म-कल्याणक कहते हैं–तिस काल, तिस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि वर्षाकालके पहिले महीनेके दूसरे पक्षकी श्रावणसुदी पंचमीके दिन नौ महीने साढे सात दिन पूर्ण होने पर, चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आने पर आरोग्यवती शिवा देवीने अरिष्टनेमि भगवान्को जन्म दिया। भगवान्के जन्मका अधिकार तो श्री महावीर स्वामीके जैसाही समझलेना, परन्तु विशेष यह है–समुद्रविजय राजाने भगवान्का जन्म–महोत्सव करके सर्वज्ञातिजन वगैरहको भोजन कराकर नाम देने के प्रस्तावमें शिवादेवीके चौदह स्वप्न देखने के बाद अरिष्टरत्नका एक चक्र देखा था, इस कारणसे श्रीनेमिनाथ को 'अरिष्टनेमि' नाम दिया गया अथवा लोगोंके अरिष्ट अमंगल दूर करनेके कारण अरिष्टनेमि नाम रक्खा गया। अब बाल्यावस्थामें श्रीअरिष्टनेमि कुमारको इन्द्राणी आकर रमाती, अंगूठेमें अमृत संचारण इन्द्रने किया था, जिससे भूख लगने पर भगवान् अंगूठाही चूस लेते, परन्तु सामान्य लोगों के समान माताका स्तन–पान नहीं करते. पांच धायोंसे पाले जाते हुए अरिष्टनेमि क्रमशः बड़े होने लगे. श्यामवर्ण, सर्वांग सुन्दर आकार वाले श्रीअरिष्टनेमि कुमार बालकका रूप धारण किये हुए देवों के साथ क्रीडा करते २ समय व्यतीत करने लगे.

अब द्वारका नगरीकी उत्पत्ति तथा सौरीपुरसे यादवोंके द्वारका आनेका स्वरूप ⊛ बतलाते हैं—

मथुरा नगरीमें हरिवंश कुलके बहुतसे राजा हुए, जिनमें से यदु नामक राजाके शूर नामक पुत्र हुआ. उसके दो पुत्र हुए—बड़ा शौरी, छोटा सुवीर. शूर राजाने बड़े पुत्र शौरीको मथुराका राज्य और सुवीर को युवराज पद देकर दीक्षा ली। शौरी राजा मथुराका राज्य छोटे भाई, सुवीरको देकर, आप कुशावर्त देश में जाकर अपने नामका शौरीपुर नगर बसाकर वहां राज्य करने लगा. शौरी राजाके अन्धकवृष्णी और सुवीर राजाके भोजकवृष्णी पुत्र हुआ. भोजक वृष्णी के उग्रसेन पुत्र हुआ. भोजक वृष्णीने उग्रसेनको मथुराका राज्य देकर दीक्षा ली। अन्धक वृष्णीके दस पुत्र हुए—समुद्रविजय १, अक्षोभ २, स्तिमित ३, सागर ४, धनवन्त ५ अचल ६, धरण ७, पूर्ण ८, अभिचन्द्र ९, वसुदेव १०. अन्धक वृष्णीने अपने बड़े पुत्र समुद्रविजयको, शौरीपुरका राज्य दिया. अन्धक वृष्णीके दो पुत्रियां हुईं—कुन्ती १, माद्री २. कुन्ती पांडु राजाको दी, माद्री दमघोषको परणाई।

⊛ यहाँ पर टीकाकारने यादवों के विषयमें कृष्णजी के वासुदेव पदवी प्राप्त होने तक कुछ अधिक लिख दिया है। शीघ्र बांचने वाले इसको पूर्णतया बांचते हैं, अन्य कई महाशय इसको नहींभी बांचते—जिसको जैसा सुभीता हो, वे वैसा ही कर सक्ते हैं।

और अंधक वृष्णी ने दीक्षा अंगीकार की.

अब पांडवों की उत्पत्ति कहते हैं—श्री ऋषभदेवस्वामी के कुरु नामक पुत्र था जिसके नामसे कुरुदेश हुआ. उसके बाद असंख्यात राजा हुए, जिनमें एक राजाने हस्तिनापुर बसाया. उसके कितनेही काल बाद संभूम चक्रवर्त्ती हुआ. उसके बाद बहुतसे और राजा हुए. तदनन्तर शान्तनु नामक राजा हुआ, जिसके दो स्त्रियां थीं एक विद्याधरकी पुत्री गंगा नामकी, दूसरी नाविककी पुत्री सत्यवती नामकी. गंगा का पुत्र गांगेय हुआ, ब्रह्मचर्य पालनेसे भीष्म नाम हुआ. सत्यवतीके दो पुत्र हुए—एक चित्रांगद, दूसरा चित्रवीर्य। शान्तनु राजा चित्रांगद पुत्रको राज्य देकर परलोक गया और चित्रांगदराजा श ुओं के साथ युद्ध करता हुआ मरा. बादमें चित्रवीर्य राजा हुआ, जिसके अम्बिका १, अंबालिका २, अंबा ३, ये तीन स्त्रियाँ थीं. पहली अंबाके धृत-राष्ट्र नामक पुत्र था उसके गांधारी वगैरह आठ स्त्रियों के सुयोधनादि एक सौ पुत्र हुए. दूसरी अंबिका के पांडु पुत्र हुआ, पांडु राजाके दो स्त्रियाँ थी. पहली कुन्ती स्त्री के युधिष्ठिर १, भीम २, अर्जुन ३, नामक तीन पुत्र हुए. दूसरी पद्मा (माद्री) के नकुल, सहदेव दो पुत्र हुए. इस प्रकार पांडु राजाके पांच पुत्र उत्पन्न हुए.

चित्रवीर्य के तीसरी स्त्रीके विदुर नामक पुत्र हुआ, इनका विस्तार पांडव चरित्र से जान लें।

शौरीपुरमें समुद्रविजयजी राज्य करने लगे, इनके नौ भाई कुमार अवस्था में सुख से इकट्ठे रहते थे. अन्यदा समुद्रविजय राजाकी शिवादेवी रानी के चौदह स्वप्न सूचित नेमिकुमार हुआ। जब मथुरा नगरीमें उग्रसेन राजा राज्य करते थे, तब वहां पर वनमें एक तापस आया. उसके ऐसा नियम था. मासक्षमणके मध्य में पहले जो कोई आकर निमन्त्रण करे, उसी के घरमें मासक्षमणका पारणा करता, यदि निमन्त्रण करने वाला भूल जाय, तो दूसरा मासक्षमण करता परन्तु औरके घरमें पारणा करने नहीं जाता. उस तापसने मासक्षमण प्रारंभ किया। उग्रसेन राजा क्रीडाके वास्ते वनमें आये, तापसको देखा. नमस्कार करके राजाने पारणे का निमन्त्रण दिया, परन्तु पारणे के दिन राजा तापसको भूल गया. तापसने संध्यातक बुलानेकी वाट देखी, परन्तु बुलाने को जब कोई भी नहीं आया, तब तापसने दूसरा मासक्षमण प्रारंभ किया. कितने ही दिनके बाद राजाको तापस फिर याद आया और विचार किया कि मैंने तापसको पारणा नहीं कराया, अभी जाकर निमन्त्रण करूँ. ऐसा विचार कर राजाने और भी मासक्षमणके पारणे की निमन्त्रणा की, परन्तु पारणे के

दिन फिर भी भूल गया, तब तापसने तीसरा मासक्षमण धारण किया और राजापर बहुत नाराज होकर विचार करने लगा—यह दुष्ट राजा न तो आप पारणा कराता है और न ओरों के यहाँ पारणा करने देता है, जब मैं मरूँ तब भवान्तर में इसको दुःख देने वाला होऊँ। ऐसा नियाणा करके अनुक्रमसे तापस मर कर उग्रसेन राजाकी धारिणी रानीकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ। तीसरे महीने में रानी को राजाका कलेजा खानेका दोहद हुआ. अति आग्रह से राजाके पूछने पर रानी ने दोहद कहा. मन्त्री ने बुद्धिके बलसे पूर्ण किया. रानी ने दुष्ट गर्भ जानकर उसके गिरानेको अनेक उपाय किये, परन्तु वह गर्भ नहीं गिरा. पूर्ण महीनों में पुत्र उत्पन्न हुआ, तब रानी ने राजाकी नामांकित मुद्रिका बांधकर और कांसीकी पेटी में जातमात्र बालकको रखकर यमुना नदीमें वह पेटी बहा दी. पेटी बहती २ मथुरासे शौरीपुर आई. प्रभात समय घृत, तैल, गुड, लवण बेचने वाला समुद्र नामक वणिक् शौचके वास्ते आया, पेटी को बहती हुई देखकर यमुनामें प्रवेश कर पेटी को लेकर खोला, मुद्रासहित बालकको अपनी स्त्री को दिया और लोगों से कहा कि मेरी स्त्रीके गुप्त गर्भ था सो पुत्र हुआ है, उस का कंस ऐसा नाम दिया। क्रमशः वह बालक बडा होने लगा, बच्चोंको कूटता हुआ लोगों

में दुर्दांत हुआ, जिससे लोग समुद्रवनिये को नित्य उपालम्भ देते। उस समय समुद्रने जाना कि मैं सामान्य वनिया हूं, यह बालक राज वंशी है, मेरे घरमें कैसे रहेगा— जैसे बुढ़िया के झोंपडे में सिंह नहीं समा सकता, सिंहनीका दूध सोने के पात्रके सिवाय और धातुके पात्रमें नहीं रह सकता, वैसे ही यह राजवीर्य राजा ही के घरमें शोभेगा. ऐसा विचार कर उसने कंस वसुदेव कुमारको दिया. कंस भी वसुदेवका सेवक होकर रहने लगा और वसुदेव कंसपर बहुत कृपा रखने लगे। इसी अवसरमें वसुराजाके वंशमें वृहद्रथ राजा हुआ, उसका पुत्र प्रतिवासुदेव, प्रचंड शासक जरासन्ध, राजगृह नगरीमें राज्य करता था. सर्व यादव उसकी आज्ञामें थे. उस जरासन्ध राजाने समुद्रविजयजीको दूत भेजकर कहलाया कि जो वैताढ्यपर्वत के पास सिंहपुरके राजा सिंहपल्लीपतिको जीवित बांध कर मुझे देगा, उसको मेरी पुत्री जीवयशा और वांछित नगर का राज्य दूँगा. समुद्रविजयजी सैना लेकरके सिंहपल्लीपतिको जीतनेके लिये जानेको तैयार हुए, तब स्वयं वसुदेव कुमार, समुद्रविजयजीको मना करके कंस सहित चले. वहां युद्धमें कंसने सिंह पल्लीपतिको बांधकर वसुदेवको सौंपा। पीछे से समुद्रविजयजी के कोष्टक निमित्तियेको बुलाकर जीवयशा और वसुदेवका सम्बन्ध

पूछने पर निमित्तियेने निमित्त विचार कर कहा—हे महाराज ! जीवयशा कन्या, पिता व ससुर दोनोंके कुल का क्षय करने वाली है, इसलिये विचार कर कार्य्य करना. समुद्रविजयजीने निमित्तियेको विदा किया, परन्तु उसके वचन पर विचार करके चिन्तातुर हुए—अब क्या करना ? वसुदेवने सिंह राजाको जीता सुननेमें आया है. जरासन्ध अपनी पुत्री जीवयशा, वसुदेव को देगा और जीवयशा उभय कुलका नाश करने वाली है । इतने ही में सिंहपल्लीपतिको बांधकर समुद्रविजयजीके पास आये हुए वसुदेवने ससुद्रविजयजीको चिन्तातुर देख कर चिन्ताका कारण पूछा. समुद्रविजयजी ने वसुदेवसे एकान्तमें कहा—हे भाई ! जरासन्ध तुमको अपनी पुत्री देगा और वह दोनों कुलका क्षय करने वाली है, इससे मैं चिन्तातुर हूँ। वसुदेवने कहा—मैंने सिंहको नहीं बांधा, कंसने बांधा है. समुद्र बनियेसे कंसकी उत्पत्ति पूछी गई. उग्रसेनका पुत्र जानकर नामांकित मुद्रिका सहित सिंहराजाको साथमें लेकर वसुदेव जरासन्धके पास गये और कंसकी उत्पत्ति कहकर जीवयशा कंसको दिलाई. जरासन्धने भी कंसको जीवयशा परणाकर मांगा हुआ मथुराका राज्य दिया. कंस मथुरा जाकर और अपने पिता उग्रसेनको काष्ठके पिंजरेमें डालकर मथुराका राज्य करने लगा । पिताका दुःख

देखकर कंसके छोटे भाई, अतिमुक्तक कुमारने संसारसे विरक्त होकर दीक्षा ली।

अब वसुदेवजी के पूर्व-भवका स्वरूप कहते हैं-वसुदेव पूर्व भवमें एक ग्राममें 'नन्दीषेण' नामक कुल पुत्र था. बालकपनमें उसके माता-पिता मरे. शरीरसे कुरूप, चौकून मस्तक, बड़ा पेट, लंबे दांत और छोटे कान वाला वह मामाके घरमें बड़ा हुआ, कुरूप होनेसे सर्व स्त्रियां जिसकी निन्दा करतीं, यहाँ तक कि मामाकी कन्याने भी जब उसे अंगीकार नहीं किया, तब मरने के लिये पर्वत पर चढ़कर झंपापात करते हुए उसे साधुने मना किया और दीक्षा दी। उसके बाद वह 'नन्दीषेण' साधु सर्व साधुओंकी वैयावच्च करता हुआ मासक्षमण आदि तप करने लगा. इन्द्रने प्रशंसा की. दो देव साधुका रूप बनाकर आये-एक अतिसार रोग वाला और दूसरा छोटा साधु. अतिसारी वनमें रहा. लघुशिष्य नन्दीषेणके पास आकर बोला-तू तो पारणा करता है और रोगी साधु वनमें पडा है. तब नन्दीषेण उसी वक्त उठा, फासु जल लेकर वनमें गया, साधुको शौच कराकर और कंधेपर बैठाकर चला। अतिसारी मुनिने देवमायासे नन्दीषेणके शरीर पर अत्यंत दुर्गंधयुक्त विष्टा की, बहुत निर्भत्सना की, तोभी नन्दीषेण क्रोध रहित तथा वैयावच्चमें दत्तचित्तवाला रहा. अन्तमें देवने परीक्षा करने के

पश्चात् वन्दना करके अपने अपराधकी क्षामणा की. उसके बाद नन्दीषेण बहुत काल तक संयम पालकर, अनशन करके, जन्मान्तरमें मैं स्त्रीवल्लभ होऊँ, ऐसा नियाणा करके वहाँसे मरकर वसुदेव हुआ। साक्षात् कामदेवके जैसे रूपवान् परम सौभाग्य धारण करनेवाले वसुदेव क्रीडाके वास्ते शौरीपुरमें जहां २ और जब २ फिरते, तब २ नगरकी स्त्रियाँ ढुलते हुए घीके घडे और रोते हुए बालक आदि घरका कार्य्य छोड़कर वसुदेवके रूपसे मोहित हुई उनके पीछे २ फिरतीं. उनके पति आदि मनाकरते तोभी नहीं मानतीं. घरशून्य देखकर चौर चौरी करते. तब सर्व लोगोंने आकर वसुदेवका भ्रमण रोकनेके लिये समुद्रविजयजीसे विनति की हे महाराज ! आपके राज्यमें हमको कुछभी दुःख और भय नहीं, परन्तु वसुदेव कुमारके बारंबार नगरमें फिरनेसे स्त्रियाँ उनके रूपसे मोहित हुई घर शून्य छोड़कर उनके पीछे २ फिरती हैं और घर शून्य देख कर चौर चौरी करते हैं, इसका उपाय करो। तब समुद्रविजयजी हंसकर बोले–यह क्या बात है ? आप लोग चिन्ता न करें, आपको सुख होगा, वैसे ही करेंगे. सर्व लोग अपने २ घर गये. इसी अवसर पर वसुदेव कुमार समुद्रविजयजीको नमस्कार करनेको आये. समुद्रविजयजी, वसुदेवजीको खोलेमें बैठाकर बोले–

भाई ! आजकल शरीरसे तू दुर्बल दिखाई देता है, नगरमें बहुत फिरता है, कितने ही सज्जन होते हैं और कितने दुर्जन, वक्त बे वक्त छल करके कुछ उत्पात कर बैठें, बहुत फिरनेसे पढ़ी हुई विद्या भी भूल जाय, इस वास्ते अब अपने आवासों में और बगीचों में ही क्रीड़ा करो, अध्ययन की हुई विद्या याद करो। तब वसुदेव समुद्रविजयजी की आज्ञानुसार घरमें ही रहते, घरमें क्रीडा करते, जिससे नगरके लोगभी शांति-पूर्वक रहने लगे। एकदा उष्णकालमें समुद्रविजयजी के शरीर में विलेपन के वास्ते शिवादेवी महारानी ने चन्दन घिसकर, सोने के कटोरे में भरकर दासी के हाथ भेजा. बीचमें वसुदेवजीने दासी के हाथमें कटोरा ढकाहुआ देखकर कहा–तेरे हाथमें क्या है ? दासी बोली—महारानीने महाराजके विलेपनके लिये चन्दन भेजा है. वसुदेवजीने थोडासा चंदन मांगा, दासीने नहीं दिया, तब जबरदस्तीसे लेकर अपने शरीरमें लगा लिया. इसपर दासी नाराज होकर बोली– ऐसा करनेसे ही तो आप बन्दीखानेमें पडे हो. पूछने पर दासी ने कहा–लोगोंने राजाके आगे आपकी शिकायत की थी, इसीलिये राजाने नगरमें आपका फिरना बन्द किया है. यह सुनकर वसुदेवने नगरके लोगों के ऊपर क्रोधकरके, राजापर अमर्ष सहित, मध्यरात्रिमें नगरसे एकाकी

निकलकर, एक अनाथ मृतकको नगरके दरवाजे के बाहर जलाकर, दरवाजे पर अपने रुधिरसे लिखा—'नगरके लोगों के और भाईके सुखके वास्ते मैं चितामें जला हूं, सर्व सुखी रहना' ऐसा करके पीछे की बाहर मिटाकर चले, प्रातःकाल पोलिये ने दरवाजा खोला, मृतक जला हुआ और वसुदेव का लिखा हुआ देखकर राजासे कहा. राजाने आकर देखा. वसुदेवका मरण जानकर राजाने और सर्व लोगों ने बडा शोक किया. जब समुद्रविजयजी भी वसुदेवके पीछे मरने को तैयार हुए, तब नगरके लोगों ने और मंत्रियों ने बहुत आग्रह-पूर्वक राज्य सिंहासन पर बैठाये. वसुदेव कुमार घरसे निकलकर प्राचीन निदानके वशसे तथा पुण्य कर्मके उदय से जहां २ गये, वहीं २ हजारों दिव्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया. अनेक प्रकारकी विद्या और ऋद्धि-संपदा प्राप्त की. इसी अवसरपर अरिष्टपुर नगरमें रोहक, राजाकी रोहिणी नामकी कन्याका स्वयंवर हुआ, जिसमें जरासिन्ध आदि अनेक राजाओंको कन्याके पिताने दूत भेजकर बुलाये. कंस, समुद्रविजयजी वगैरह यादवभी बहुत से राजकुमारोंके साथ आये. रात्रिमें वसुदेवको रोहिणी-प्रज्ञप्ति विद्यादेवीने आकर स्वप्नमें कहा—हे वसुदेव ! रोहिणीके स्वयंवरमें रोहिणी आपको पाणिग्रहण करेगी, प्रातःकाल रोहिणीके स्वयंवरमें मृदंग बजाने

वालेका वामन रूप बनाकर आप वहां जाना, मृदंगमें 'हे कुरंगाक्षि! आ, आ मृगीके जैसी क्या देखती है ?' ऐसा बजाना । विद्यादेवीने उसी रात्रिमें रोहिणी कन्यासे कहा–हे रोहिणी ! प्रभातमें मृदंग बजाने वालेके रूपमें कुब्जवामनका रूप धरने वाला वसुदेव आवेगा. तू उसीके साथ पाणिग्रहण करना. प्रभातमें सुवर्ण के स्थंभों वाला, रत्न जटित आभूषणों की शोभायुक्त पुतलियों वाला स्वयंवर–मंडप श्रृंगारा गया. सिंहासनों की पंक्तिमें क्रमसे सर्व राजा बैठे. देदीप्यमान् श्रृंगारके धारण करने वाले सर्व राजकुमार अपने २ भद्रासनों पर बैठे. सखियोंसे परिवृत्त रोहिणी राजकन्याने सौलह श्रृंगार कर और पुष्पमाला हाथमें लेकर जब स्वयंवर-मंडपमें प्रवेश किया, तब सर्व लोग कन्याको देखते २ चित्रलिखितके जैसे हो गये. राजकन्या रोहिणी सती अपने पतिके सिवाय दूसरे पुरुषके सामने नहीं देखती थी, प्रतिहारीने हाथमें दर्पण लेकर उसमें राजाओंके रूप कुमारीको दिखाये और उनके वंश, आचार, गुण आदि सुनाये परन्तु राजकन्याको कोई भी पसन्द नहीं आया. देवीके वचनानुसार मृदंगवादक कुबडेके रूपमें वसुदेवको 'एहि २' इत्यादि बजाता हुआ देखकर उनके कंठमें वरमाला पहराई । इस पर कुब्जक बोला–अहो, सर्व राजाओंके रहते भी कन्याने मुझे ही वरा.

सर्व राजा रोहिणीका यह स्वरूप देखकर नाराज हुए, कितने ही राजाओंने कन्याके पिताकी निन्दा की और कितने ही ने कन्या की. कोई बोला—कन्या को मारो. कोई बोला—कन्याके पिता को मारो. कितने हीने कहा—कुबडेसे वरमाला छीन लो और उसे मारो, जिसका सेवक कुबड़े के पाससे वरमाला ले, उसका स्वामी ही राजकन्या कों वरे. ऐसा सुनकर राजाओं के सेवक वरमाला लेनेको दौड़े, परन्तु उन सर्व को मृदंगका प्रहार देकर, पृथ्वीपर गिरा कर मूर्च्छित कर दिये। बाद्में उन सेवकोंके राजा शस्त्र लेकर दौड़े, वसुदेव ने विद्या के बलसे सबको शस्त्र रहित करके कितने ही की दाढी-मूंछ मूंडी, और कितने ही का आधा मस्तक मूंडा, ऐसे विरूप कर सर्वको परास्त किये. जरासिन्ध राजाने समुद्रविजयजी के सन्मुख देखा तब समुद्रविजयजी बख्तर पाहिन कर धनुष्य-बाण लेकर युद्ध के लिये खड़े हुए. वसुदेवजी ने विचार किया—यह मेरे बड़े भाई पिता के जैसे हैं— इनके साथ युद्ध करना युक्त नहीं है. अब मैं अपना स्वरूप भी प्रकट करूँ, बहुत काल से छिपा रहा हूँ, प्रकट होने पर युद्ध भी न होगा। ऐसा विचार कर कूबड़े के रूप और मृदंग को छोड़कर, स्वाभाविक परमसुन्दर मूल रूप प्रकट करके, वसुदेव धनुष्य लेकर समुद्रविजयजी की ओर अपने नामका एक बाण

फेंका, जिसमें 'वसुदेवः प्रणमति' ऐसे सौनेके अक्षर लिखे हुए थे। समुद्रविजयजी बाणके अक्षर बांचकर आश्चर्य- पूर्वक विचार करने लगे- वसुदेवको मरे हुए बहुत वर्ष हो गये, कोई इन्द्रजालिया होगा, मुझे भी विगोयेगा. इतने ही में वसुदेवने आकर समुद्रविजयजी के चरणों में नमस्कार किया. समुद्रविजयजी भी वसुदेवको पहिचान कर हर्ष से पूर्ण हृदय वाले हुए. जरासिन्ध वगैरह सर्व राजाभी प्रसन्न हुए. सबने कहा- रोहिणी को धन्य है! कैसे इसने वसुदेवको पहिचान कर वरमाला डाली. महामहोत्सवसे वसुदेवका रोहिणी के साथ विवाह किया गया. जिस दिनसे घरसे निकले और जहां २ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया, वह सब स्वरूप वसुदेवने समुद्रविजयजी आदि राजाओं से कहा, एक कम बहत्तर हजार कन्याओं के साथ विमानमें बैठ कर घरमें आये, बादमें वसुदेवजी को कंस मित्र स्नेहसे मथुरा लाया. दोनों एकत्र रहने लगे. देवकराजाकी पुत्री देवकीका विवाह वसुदेवजीके साथ किया गया. देवकी जीवयशा के साथ क्रीड़ा करती, जीवयशा पिताके गर्वसे उन्मत्त थी. एकदा देवकी के विवाहमें, जीवयशा मद्यपान करके देवकी को कंधे पर बैठा कर नाचने लगी. उस समय कंसका छोटा भाई अतिमुक्तक कुमार साधु वहां आगया. जीवयशा दोड़

कर साधुके कंठमें लगी और कहने लगी– हे देवर ! अच्छे अवसर पर आये, अब आपको भी एक राजकन्या परणावेंगे. साधुने जीवयशासे अपनेको छुड़ाने के लिये और उसको डराने के लिये कहा–तू साधु–असाधुका विचार नहीं करती. अरे मूर्खी ! नाचती क्या है ! जिसको तूने कंधेपर उठाया है, उसका सातवां गर्भ तेरे पति और तेरे पिता दोनों को मारने वाला होगा। यह सुनकर जीवयशाने अतिमुक्तक साधुको छोड़ दिया, अपने मनमें डरी, शंकित हुई और मुनिका वचन झूठा नहीं होता, ऐसा विचार कर साधुका वचन कंससे एकान्त में कहा. कंसने भी मुनिका वचन झूठा करने तथा अपने जीवितव्यकी रक्षाके वास्ते 'जलसे पहले पाल बांधनी' इस न्यायसे इस रहस्य को जब तक कोई नहीं जाने, तब तक इसका प्रतिकार करना, ऐसा विचार किया. एकदा वसुदेवजी कंसपर संतुष्ट हुए और बोले–हे कंस ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ तू जो मांगेगा, वही दूंगा. कंस बोला– यदि आप संतुष्ट हो, तो देवकी के सातों गर्भ मुझको दो. वसुदेवजी ने सरल चित्तसे कंसका वचन अंगीकार किया और घर आकर देवकी से कहा. देवकीने वसुदेवजीसे अतिमुक्तक मुनिका वचन कहा और बोली–सातों बालकों को कंस मारेगा. इसपर वसुदेवजीने पश्चात्ताप किया, परन्तु वचन दे दिया, सो तो पूरा करना ही पड़े, सत्पुरुषों का

एकही वचन होता है. इसलिये विचक्षणोंको विचार कर बोलना चाहिये. अन्यथा पीछे वसुदेवजीकी तरह पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसीसमय भद्दीलपुर नगरमें नागनामक सेठकी सुलसा नामकी नन्दुरोगवाली श्राविका मरे हुए पुत्र जनती थी. उसने हरिनैगमेषिदेव की आराधना की. वह देव तीसरे उपवासमें प्रकट हुआ और बोला– मेरा स्मरण क्यों किया ? सुलसा बोली– हे देव ! मेरा निन्दुरोग दूर करो, जिससे मैं अब जीवित पुत्र उत्पन्न करूं। देवने कहा– यह कर्मोंका फल है—मैं कर्म दूर नहीं कर सकता, परन्तु पुत्रकी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा. मथुरानगरीमें रहनेवाली देवकीके छः बालक गुप्त रूपसे तुझे दूंगा और तेरे मरे हुए पुत्र देवकीको दूंगा. ऐसा कहकर देव गया। दैवयोगसे एकही वक्तमें दोनोंके गर्भाधान और पुत्रका जन्म हुआ. हरिनैगमेषि देवने देवकी के जीवित पुत्रको सुलसाके पास और सुलसाका मरा हुआ पुत्र देवकी के पास रक्खा. जब पुत्रका जन्म–समय नजदीक आता, तब कंसके सेवक पास रहते, जन्म होनेपर वे मरा हुआ बालक कंसको देते। कंस भी शिलापर पछाड़ कर मारता। इस रीतिसे देवकीके छःओं जीवित पुत्र सुलसा को दिये गये और सुलसाके मरे हुए छःओं पुत्र कंसने मारे. देवकीने पूर्व भवमें सौत (सौक) के रत्न चुराये थे इसी कारणसे इस

भवमें जन्मसे ही पुत्रोंका वियोग हुआ. अनीकयशा १, अनन्तसेन २, विजितसेन ३, निहितारी ४, देवयशा ५, शत्रुसेन ६, देवकी के ये छः पुत्र सुलसाके यहां बड़े हुए. उसके बाद सात स्वप्नोंसे सूचित सातवाँ गर्भ पंचम देवलोकसे च्यवकर देवकीकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ. जब कंसके सेवक पहरेदार पुत्र ग्रहण करने को बैठे, तब देवकीने वसुदेवजीसे कहा—हे स्वामिन्! कोई उपाय करके इस उत्तम गर्भकी रक्षा करनी चाहिये. जब देवकी का विवाह हुआ था, तब देवक राजाने नन्दगोप और यशोदाको दायजे में दिये थे. यशोदाके भी गर्भ था. जब देवकीके कृष्ण पुत्र हुआ, तब श्याम अंग होनेसे कृष्ण २ ऐसा कहा गया. उसी समय यशोदाके पुत्री हुई. कंसके सेवकों को कृष्णजीके अंगरक्षक देवोंने निद्रा दी. वसुदेवजी कृष्णजीको गुप्त रीतिसे ढककर मथुरा से निकले और दरवाजेके पास काष्टके पिंजरे में रहे हुए उग्रसेन राजाको बालक दिखाकर कहा—आपका काष्टका पिंजरा तोड़ने वाला यह बालक होगा. ऐसा कहकर वसुदेवजी आगे चले, कृष्णजीके अंगरक्षक देवों द्वारा खुले हुए दरवाजेसे निकलकर, यमुनाके पार, नन्दगोपके घरमें जाकर कृष्णजी यशोदाको दिये, यशोदाकी तत्काल में जन्मी हुई पुत्रीको लेकर, अपने घर आकर, देवकीके पास रक्खा. पहरेवाले जागे, और पूछा— देवकीके

क्या हुआ ? वसुदेवजी ने कहा—पुत्री. कंसने उस कन्याको लेकर और उसका एक नाक छेदकर वापिस दिया, ❋ और निश्चन्त हुआ. वसुदेवजीने भी कृष्णजीकी बहुत भोलावना नन्द—यशोदा को दी. कृष्णजी भी यशोदा द्वारा पाले जाते हुए सुखसे बड़े होने लगे. देवकी कृष्णजीको देखनेके वास्ते गोपूजन, वच्छद्वादशी वगैरह पर्वका मिस करके पक्ष २ में, मास २ में यशोदाके घर जाती, कृष्णजीको खोलेमें बैठाकर स्तनपान कराती, ऐसे कृष्णको रमा कर अपने घर आती. वसुदेवजी देवकीको मना करते—हे प्रिया ! वारंवार गोकुलमें जाना ठीक नहीं— यदि कंस जानेगा तो कुछ उत्पात करेगा। जब कृष्णजी सात आठ वर्षके हुए, तब कला—अभ्यासके वास्ते रोहिणी के पुत्र, बलभद्रजीको, जिसको कंसने नहीं देखाथा, कृष्णजी के पास रक्खा. बलभद्रसे कृष्णजी के गुप्त रखनेका कारण कहा गया. बलभद्र और कृष्ण दोनों नन्दके घरमें रहने लगे, कृष्णको बलभद्र विद्या पढ़ाते और कला सिखाते गोप—गोपियोंके साथ गान करते, नृत्य करते, नील-पीत वस्त्र धारण करते, मस्तकपर मोरपिछ बांधते, बंशरी बजाते, दिनमें क्रीडा करके सन्ध्या समय घर आते, इसप्रकार कृष्णजी चौदह वर्ष के हुए.

❋ शिव शासनमें ऐसा भी कहा गया है कि-कंसने उस कन्याको भी शिला पर पछाड़ कर मारा और वह मरकर बिजली हुई।

इसी अवसरपर कंसने एकनासा कन्याको देखा, मनमें उदास हुआ और एकान्तमें निमित्तिये से पूछा—साधुका वचन सत्य है अथवा असत्य, और मेरा वैरी जीवित है या मर गया. निमित्तियेने कहा—आपका वैरी जीवित है मरा नहीं, जो कालीयनागको वशमें करेगा, केसी नामक घोडेका दमन करेगा, मेष नामक गधे को मारेगा, अरिष्टनामक सांडको जीतेगा, तथा स्वयंवरमें सारंगधनुषको चढावेगा, चाणूर—मोष्टिक मल्लको मारेगा और नगरके दरवाजे पर चंपोत्तर—पद्मोत्तर हाथियोंको मारेगा, वही आपका मारने वाला होगा. इन कार्यों से अपने शत्रुको पहिचानो. निमित्तिये को विदा कर कंसने शत्रुको देखनेका उपाय विचार करके यह उद्-घोषणा की—जो कोई शारंग धनुषको चढ़ावेगा, उसको मैं अपनी बहिन सत्यभामा परणाऊँगा. उद्घोषणा सुनकर बहुतसे राजा आये. इसी अवसर पर वसुदेवजीका बलवान् पुत्र अनादृष्टि भी धनुष चढ़ानेके लिये आता हुआ रात्रिको गोकुलमें रहा, बलभद्रजीने जिसकी बहुत सेवा की. प्रभातमें बलभद्रजीसे अनादृष्टि बोला—हमको गोकुलसे मथुराका मार्ग दिखाने वाला दो. बलभद्रजीने कृष्णजीको भेजा. मार्गमें अनादृष्टिका रथ वृक्षोंमें फँस गया. अनादृष्टि रथको न निकाल सका. यह देखकर कृष्णजीने लातके प्रहारसे वृक्ष उखाड़ दिये और

रथको चलाया. अनादृष्टि, कृष्णजीको बलवान् देखकर रथमें बैठाकर मथुरा ले गया. वहां पर अनादृष्टिने सारंग धनुष चढ़ानेको हाथ लंबे किये, परन्तु देव–प्रभावसे वापिस गिरा। अनादृष्टिको गिरा हुआ देखकर सर्व हँसे. कृष्णने अनादृष्टिका हास्य देखकर, धनुष लेकर लीलासे ही चढ़ा दिया. पास खड़ी हुई सत्यभामाने दर्शनमात्र से कृष्णको वरा. इसपर वसुदेवजी अनादृष्टिपर नाराज होकर बोले–गोकुलसे कृष्णको किस वास्ते लाया ? जा, गोकुलमें कृष्णको पहुंचा दे. उसी समय वसुदेवजीने कृष्णको गोकुल में रखनेका रहस्य अनादृष्टिसे कहा. अनादृष्टिने कृष्णको गोकुलमें पहुंचा दिया. इतने कालतक कृष्णजीने यह नहीं जाना था कि बलभद्र मेरा भाई है, परन्तु जब कृष्णजी सोलह वर्षके हुए तब बलभद्रजी कृष्णजीको सर्व सम्बन्ध बतानेकी इच्छा करने लगे। इसी अवसर पर कंसने केशीनामक घोड़ा, खर नामका बकरा, अरिष्ट नामक बैल छोड़े, जिनको गोकुल में उपद्रव करते देखकर कृष्णजीने मारे. उसके बाद कंसने मल्लअखाडा मांडा. चारों ओरसे मल्ल आये, जिनमें चाणूरमल्ल, मुष्टिकमल्ल नामी थे. कंसने सोचा–आज शत्रुको देखूंगा, जब सारंग धनुष चढ़ाया, तब अच्छी तरह नहीं देख सका, जल्दी चला गया था, अब किसी प्रकार देखकर मारूँ. ऐसा विचार कर कंसने मल्ल

तैयार किये, और अपने सेवकोंको बुलाकर अपनी रक्षाके वास्ते अपने पास रक्खे. यादव भी कंसका छल जान कर एक तरफ़ मिलकर सभामें रहे. मल्ल-युद्धका कौतुहल सुनकर कृष्णजी बलभद्रजीसे बोले-हे स्वामिन्! आज मथुरा जाकर मल्लयुद्धका कौतुक देखें. बलभद्रजीने हां भरी, विचार किया-मथुरामें जावें और कंसके साथ युद्ध हो जाय तो कृष्णसे सर्व बात कहूं. ऐसा विचार बलभद्रजी यशोदासे बोले-गरम जल स्नानके वास्ते दो, स्नान करके मथुरा जावें. जब गृहकार्य में व्यग्रचित्त यशोदाने बलभद्र का वचन नहीं सुना, तब नाराज होकर बोले—अरे यशोदा! तू दासीपना भूल गई. मेरे भाई, कृष्णको पालकर तू क्या रानी हो गई, जो हमारा वचन नहीं सुनती है? ऐसा कहकर बोले-हे भाई! चलो, यमुनामें स्नान करके मथुरा जायेंगे। कृष्णजी बलभद्रजीके वचनसे उदास हुए. तब मार्गमें चलते हुए बलभद्रजीने छः भाइयोंका कंसके द्वारा मारा जाना, कंसके भयसे नन्द-यशोदाके घरमें रहना, तेरी रक्षा व विद्याभ्यासके वास्ते वसुदेवके द्वारा मेरा तेरे पास रक्खा जाना, अपन दोनों बंधु हैं, वसुदेवजी अपने पिता हैं, देवकी तेरी माता और रोहिणी मेरी माता है इत्यादि सब स्वरूप कृष्णजीसे कहा. इसपर कृष्णजीने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं कंसको मारकर छः भाइयोंका वैर आज

ही ले लूं, तब तो मैं कृष्ण हूं. ऐसा कहकर मार्गमें यमुना नदी में कालीयनागका नाक बींधकर उसमें कमल-नाल डालकर और ऊपर बैठकर घोड़ेके जैसा फिराया। वह स्वरूप मथुरामें कंसके सहित लोगोंने सुना. वहां से राम–कृष्ण गोवालियों सहित चले. नगरका दरवाजा चंपोत्तर–पद्मोत्तर हाथियोंने रोका. सर्व गोवाल तो डरे, परन्तु राम–कृष्ण दोनों हाथियोंको मारकर और मथुरा नगरीके मध्यमें होकर मल्ल अखाडे में आये। वहां एक राजाको मंचसे गिराकर जब वे मंचके ऊपर बैठे, तब रामने कृष्णको अपना वर्ग दिखाया. कंसने भी जब हरि और बलभद्र देखे, तब चाणूरमल्ल और मुष्टिकमल्ल तैयार किये. कृष्णने चाणूरमल्लको मुष्टि से मारा, और बलभद्रने मुष्टिकमल्लको.

"दामोदरकराघात विह्वली कृत चेतसा। दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥ १ ॥

दोनों मल्लोंका मरण देखकर कंस नाराज हुआ और बोला–ये काले सर्प किसने पाले? हे सेवकों! जाओ और नन्द–यशोदाको बांधकर लाओ, उन्हें घाणीमें पिलाऊं. कंसके ऐसा कहते ही, कृष्णजी कूदकर, 'मेरे छः भाइयोंका वैर लेऊं' ऐसा कहकर, कंसके केश पकड़कर, सिंहासनसे नीचे गिराकर मुष्टिके और पैरके प्रहारसे

मारडाला. कंस मरकर नरकमें गया. उसी वक्त सर्व यादवोंने उग्रसेन को पींजरेसे निकालकर राज्य सिंहासन पर बैठाये. तब लोगोंने पहिचाना कि ये वसुदेवजी के पुत्र राम—कृष्ण हैं. उग्रसेन राजाने कृष्णजीको सत्यभामा परणाई. कृष्णजी सौलह वर्षके और सत्यभामा तीन सौ वर्षकी थी। यादवोंने जरासिन्धका प्रभुत्व जान कर और कंसको अपना ज्ञातीय समझकर कंसकी प्रेताक्रिया करनेको जीवयशासे पूछा. जीवयशा नाराज होकर बोली—जब बलभद्र—कृष्ण आदि बहुतसे यादवोंका दाह कंसके साथ हो, तब मैं जलांजलि दूं. इसपर कृष्णजी ने जीवयशाका बहुत तिरस्कार किया. जीवयशा राजगृहीमें जरासिन्धके पास उघाड़े मस्तक रोती हुई जाकर कहने लगी. यादव कैसे उन्मत्त होगये हैं जो आपके जीते हुए आपके जमाई को उन्हों ने मारा। यह सुनकर जरासिन्ध बोला—हे पुत्री ! धैर्य्य धारण करो—जो हुआ सो तो हुआ, परन्तु यदि यादव मेरे अपराधी कृष्ण और बलभद्रको मुझे देंगे, तब तो मेरे देशमें रहेंगे, नहीं तो सर्व यादवोंका क्षय करूंगा. इस प्रकार जीवयशाको धैर्य देकर सौमा नामक एक सामन्तको उसने यादवोंके पास भेजा। वह आकर समुद्रविजयजी आदि यादवों से बोला— हे यादवों ! जो होने वाला था, सो तो हुआ, परन्तु दोनों गोप, तुम्हारे दास, नन्द-यशोदाके पुत्र,

राम-कृष्णको बांधकर जरासिन्धके पास मेरे साथ भेजो. उनके वास्ते कुलक्षय करना नहीं, वे दोनों जरासिन्ध के अपराधी हैं, ये आपके पुत्र हैं, तोभी देनेही चाहिये यह सुनकर समुद्रविजयजी बोले–हे सौमा सामन्त ! ऐसे गुणवान् और बलवान् पुत्रोंको मारने के लिये देकर हम वृद्ध कितने कालतक जीवेंगे, जो होने वाला है सो होगा. कृष्णजी बोले–अरे सौमा ! पितासे पुत्रको मांगते तुझे लज्जा नहीं आती है. मैंने तो छः भाइयों में से एक भाईका वैर कंसको मारकर लिया है, पांच भाइयोंका वैर तो वाकी ही है–तू जो अपना भला चाहता है तो यहांसे चला जा, नहीं तो फल दिखाऊँगा. ऐसा सुनते ही वह डरसे चलागया. वादमें यादवोंने कौष्टुक नेमित्तियेसे पूछा–किस दिशामें हमारी जय होगी ? निमित्तियेने कहा– हे यादवों ! आपके कुलमें राम–कृष्ण ये दोनों महापुरुष हैं–कृष्णजीको राजा बनाओ और आप पश्चिम दिशामें जाओ, जहाँ समुद्रके किनारे सत्यभामा पुत्रोंका जोड़ा जन्मेगी. वहां रहने पर आपकी वृद्धि होगी. यह सुनकर शौरीपुरसे समुद्रविजयजी आदि ११ कुल कोटि और मथुरानगरीसे उग्रसेन आदि सात कुलकोटि यादव सव कुटुंब सहित निकल कर सौरठ देशकी तरफ़ चले. सौमासामन्तने जरासिन्धसे सव स्वरूप कहा. यह सुनकर जरासिन्ध प्रयान भेरी बजाकर

जब चलने ही वाला था, तब कालकुमार आदिने जरासिन्धको मनाकरके पिताके आगे प्रतिज्ञा की— आप का पुत्र कालकुमार तब ही हूँ, जब गोप–यादवोंको मारूँ. यदि आकाशमें जावें तो निसरणी लगाकर, पृथ्वी में प्रवेश करें तो खोदकर मारूं, यदि समुद्रमें प्रवेश करें तो अगस्त्य होकर सुखा दूं, अथवा जाल डालकर मारूं और अग्निमें प्रवेश करें तो मैं भी अग्निमें कूदकरके मारूंगा. ऐसी प्रतिज्ञा करके पांचसो भाइयों सहित कालकुमार शस्त्र लेकर पिताके चरणोंमें नमस्कार करके अपनी बहिनसे बोला– हे भगिनी ! यादवों का क्षय करके बहनोईका वैर लेकर आऊं, तब तो मैं तेरा भाई हूं, वरना नहीं, इसपर जीवयशाने आशीर्वाद दिया–हे भाई ! तू मर जाना, परन्तु यादवोंका तो क्षय कर ही देना. प्रायः जैसी होनहार होती है, वैसी ही वाणी निकला करती है. कालकुमार सैना लेकर अपने भाइयों सहित यादवोंके पीछे चला. कालकुमार और यादवोंके बीचमें एक मंजलका अन्तर रह गया. यादवोंके कुलमें श्रीनेमिनाथ स्वामी तीर्थंकर, श्रीकृष्ण महा-राज वासुदेव, श्रीराम बलदेव और बहुतसे उत्तम २ पुरुष उसी भवमें मोक्षजाने वाले थे. उनके पुण्य-प्रताप से कुलदेवीने कालकुमार और यादवोंकी सैनाके बीचमें एक पर्वत बनाकर बीचमें अग्निचिता स्थापित की.

उसके पास एक बुढियाका रूप बनाकर रोने लगी. इतने ही में कालकुमारने आकर पूछा—हे वृद्धा ! यह चिता किसकी है ? इसमें कौन जलते हैं ? कुलदेवी कालकुमारको छलनेके लिये रोती हुई बोली– हे पुत्र ! कालकुमारके भयसे सर्व यादव कुटुम्ब सहित इस चितामें जले हैं— मेरी सेवा करनेको भी कोई नहीं बचा, इससे मैं भी प्रवेश करती हूँ। ऐसा कहकर उस बुढ़ियाने अग्निमें प्रवेश किया. कालकुमारने देवीके छलसे मोहित होकर और अपनी प्रतिज्ञावश कितने ही भाई और सामन्तोंके सहित खड्ग निकालकर अग्निमें प्रवेश किया. सब जल गये. सवेरे जो बचे, वे देवमायाको जानकर पीछे चले। यादव हर्षित हुए और पश्चिम समुद्रके तटपर आये, जहाँ सत्यभामाने भानु–भामर नामक जोड़ा जन्मा, नैमित्तियेके वचनसे यादव वहीं रहे. कृष्णजीने तीन उपवास करके लवण समुद्रके स्वामी सुस्थित नामक देवका आराधन किया, देव आया, कृष्णजीने अपने रहने के लिये जगह मांगी. सुस्थित देव बोला–इन्द्रकी आज्ञासे दूंगा। देवने इन्द्रसे पूछा, इन्द्रकी आज्ञानुसार धनदने सुस्थितके पाससे बारह योजन जलको हटाकर, उसकी जगह अठारह हाथ ऊंचा, बारह हाथ चौड़ा, नौ हाथ पृथ्वीमें, ऐसा सोने का कोट, रत्नोंके कांगरे, खाई और देववाटिकासे घिरी हुई साक्षात् अलकापुरी समान द्वारिका

नामकी नगरी बसाकर कृष्णजीको दी, बीचमें कल्पवृक्षकी बाड़ी सहित सात मंजलों वाला कृष्णजीका भवन, उसके पास समुद्रविजयजी आदि के प्रासाद, दूसरी तरफ़ उग्रसेन आदि के महल, और उसके पास भाइयों के घर बनाये गये. तीन दिन तक धन, धान्य और अलंकार आदि भरकर, कृष्णजी को सौंप कर धनद अपने स्थान को गया. द्वारिकामें यादव सुखसे रहने लगे. पचास वर्ष में १८ करोड़ से ५६ करोड़ उनकी संख्या होगई. इसी अवसर पर व्यौपारियों के आने जानेसे राजगृह नगरमें जरासिन्ध राजाने "यादव द्वारिकामें सुख से रहते हैं" यह बात सुनी और सैना लेकर युद्धके लिये चला. तब नारद ऋषिने जरासिन्धको कृष्णजीके ऊपर जाता हुआ जानकर, कृष्णजीको पहिले ही ख़बर दी. कृष्णजी भी सैना इकट्ठी करके पाटला पंचाशरा ग्राम तक सामने आये। दोनों सैना एक योजनके अन्तरसे ठहरी। परस्पर बड़ा युद्ध हुआ. लाखों हाथी-घोड़े-रथ-मनुष्यों की हानि हुई. युद्धमें श्रीकृष्णजी को अजय जानकर जरासंध ने जरा विद्या डाली, जिससे कृष्णजीका सर्व सैन्य रुधिर वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर गया. तब श्रीनेमिनाथ स्वामीके कहनेसे कृष्णजीने तेला करके धरणेन्द्रका आराधन किया. धरणेन्द्रने प्रत्यक्षमें आकर अपने देवमन्दिरसे भावि तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी

प्रतिमा लाकर दी. कृष्णजीने हर्षसे शंख बजाया, उस जगह प्रतिमा स्थापित की. शंख पूर्णेसे संखेश्वर तीर्थकी स्थापना हुई. श्रीनेमिनाथजीके लिये इन्द्रने मालतिसारथी सहित रथ दिया, जिसपर बैठकर नेमिनाथजीने शंखनाद दिया, जिससे जरासन्धका सैन्य प्रयास रहित होगया. कृष्णजीने श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाका स्नात्र-महोत्सव करके उसका जल अपने सैन्यमें छांटा. सब सैन्य सावधान हुआ। बड़ा युद्ध हुआ. जरासंधने अपना चक्र कृष्णजीको मारनेको फैंका. चक्र कृष्णजीको न लगकर उनके पास ठहर गया. कृष्णजीने वह चक्र जरासंध पर छोड़ा, जिसमें जरासंधका मस्तक कट गया. देवोंने कृष्णजीके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि की और कहा नवमवासुदेव कृष्णजी हुए. इस प्रकार जरासंधका सैन्य कृष्णजीके सैन्यमें मिल गया ❋

अब श्रीकृष्ण वासुदेव द्वारिकामें आकर सुखसे तीन खंडका राज्य करने लगे. श्रीनेमिकुमार आबाल ब्रह्मचारीने यौवनावस्था पाई. उस समय माता सिवा देवीने कहा कि हे पुत्र ! एक कन्याके साथ पाणि-गृहण कर के मेरे पैरों में बहुको लगा, और हमें हर्षित कर. श्रीनेमिकुमार बोले– हे माता ! जब मैं अपने योग्य कन्या

❋ द्वारिका की उत्पति संबंधी पृष्ट २४४ से यहां तक कोई बांचते हैं कोई नहीं भी बांचते, जैसा जिसको सुभीता हो, वे वैसा कर सकते हैं.

देखूंगा, तब विवाह करूंगा. ऐसा कहकर उन्होंने माताको हर्षित किया. एक दिन राजकुमारों के साथ कृष्णजी की आयुधशालामें नेमिकुमारने जाकर शंख बजाया, जिसके शब्दसे और शारंगधनुष चढाया, जिसके टंकारसे सर्व लोग बधिर जैसे हो गये. पृथ्वी कांपने लगी. पर्वत हिलने लगे. समुद्रसे पानी उछलने लगा. यादव मूर्छित होगये. ब्रह्मांड भयसे विह्वल हुआ. कृष्णजीभी मनमें कांपने लगे, और विचार किया– क्या नवीन वासुदेव हुआ है ? इसी समय आयुधशाला रक्षकने नेमिकुमारके सब हाल कहे. कृष्णजीने विचार किया– नेमिकुमार बलवान् है तो मेरे राज्यका स्वामी होगा. बलभद्र बोले–हे भाई ! भय मत करो—यह निःरागी एक कन्याके साथभी पाणीग्रहण नहीं करता तो तुम्हारा राज्य किस वास्ते लेगा ? उसी समय आकाशमें देव वाणी हुई—

यो राज्यं न समीहते गजघटाटंकारसंराजितं । नैवाकांक्षति चारुचन्द्रवदनां लीलावतीं योऽङ्गनाम् ॥
यः संसारमहासमुद्रमथने भावी च मन्थाचलः । सोऽयं नेमिजिनेश्वरो विजयते योगीन्द्रचूडामणिः ॥१॥

श्रीनेमिनाथ हाथियोंकी घटाके टंकारसे शोभित राज्यकी इच्छा नहीं करते, मनोहर चन्द्रके जैसे मुख वाली सुरूप अंगना की भी इच्छा नहीं करते, और संसाररूपी समुद्रको मथनेमें मन्थाचल समान ऐसे श्रीने-

मिनाथ स्वामी योगीन्द्रचूडामणि-विजय वाले हो. यह नेमिकुमार दीक्षा लेंगे. इसपर कृष्णजी हर्षित हुए. इसी अर्से में नेमिकुमारभी वहां आये. कृष्णजीने पूछा– हे भाई ! शंख आपने बजाया. नेमिकुमार बोले–मैंने लीला से बजाया. कृष्णजी फिर बोले–मल्लयुद्धसे बलकी परीक्षा करें–अपनेमें कौन अधिक बली है. कृष्णजीने अपनी भुजा पसारी. नेमिकुमारने कमल नालके समान उसे नमा दी. नेमिकुमारने वज्रसमान अपनी भुजा फैलाई. कृष्णजीने अपने शरीरका सर्व बल लगाया, तोभी नेमिकुमारकी भुजा नहीं नमी और जैसे बन्दर शाखामें लटक जाताहै, वैसेही कृष्णजीभी भुजामें लटक गये. कृष्णजीने जाना–यह बडा बलवान् है, विवाह करेगा, तब हीन-बल होवेगा. ऐसा विचारकर समुद्रविजयजी और सिवादेवीकी आज्ञासे कृष्णजी बत्तीसहजार रानी और सोलह हजार गोपियोंको संगमें लेकर वसंतऋतुमें गिरनार पर्वतपर नेमिनाथके साथ गये. नेमिकुमार रानियों के साथ पुष्पादिसे क्रीडा करने लगे, जलकुंडमें आपसमें जल डालने लगे, परन्तु चित्तमें विकार धारण नहीं करते. रुक्मणी आदि स्त्रियां नेमिसे हँसकर बोली– हे देवर ! क्या स्त्रीका उदर भरनेके भयसे विवाह नहीं करते हो– इसकी कुछ चिन्ता मत करो. आपका भाई श्रीकृष्ण आपकी स्त्रीका पोषण करेगा, आप क्या नवीन मुक्ति-

गामी हो, पहिले भी ऋषभादि तीर्थंकर विवाह करके सांसारिक सुख भोगकर पीछे दीक्षा लेकर मोक्ष गयेहैं. यह कहके कृष्णजीकी सर्व रानियाँ बोलीं— आज विवाह करना स्वीकार करो तो छोड़ेंगे, वरना नहीं छोड़ेंगे. ऐसा कहकर कोई जल डालने लगी, कोई गुलालकी मुट्ठी डालने लगी और कोई कुछ डालने लगी. इनका इतना आग्रह करनेपरभी नेमिकुमार मौन रहे. तब सबने जाना कि नेमिने विवाह मानलिया. कृष्णजीसे भी रानियोंने विनति की कि नेमिको विवाह मनाया है. कृष्णजीने उग्रसेन राजाके घर जाकर उनकी पुत्री राजीमतीको नेमि-कुमारके लिये मांगी, कौष्टिक निमित्तियेको बुलाकर लग्न दिखाया. निमित्तिया बोला— वर्षा कालमें लग्न नहीं हो सकता. तोभी कृष्णजीके वचनसे शीघ्रतासे श्रावण सुदी छठका लग्न ठहराया. अब दोनों जगह पक्वान्न तैयार होने लगे. याचकोंके जय २ शब्द होने लगे. गीत-गान और वादित्र बजने लगे. लग्नके दिन श्रीनेमिकु-मारके पीठी की, बहुमूल्य वस्त्र-आभूषणोंसे श्रृंगार किये गये, मस्तक पर मुकुट बांधा और इनको पट्ट हस्तिपर बैठाये, साढे तीन करोड़ कुमार बहुत जातिके घोडों पर सवार होकर साथमें चले, बलभद्रजी आदि दश दशार्ह आगे चले, पीछेसे सिवादेवी परिवार सहित चली. बहिन लवण उतारे, कृष्णजीभी खासा घोड़ापर बैठकर मस्तक

पर छत्र धारणकर श्वेत चंवर ढुलाते हुए साथ चले. नेमिकुमारके आगे आठ मांगलिक चले. ढाईलाख वादित्र बजे, जिनके शब्दसे कानमें पडा हुआ दूसरा शब्द सुननेमें नहीं आता. इसप्रकार बडे आडंबरसे उग्रसेन राजाके महलों के पास आने लगे. आगे ऊँचा धवल घर देखकर नेमिनाथने सारथिसे पूछा—यह घर किसका है ? सारथी बोला— स्वामिन् ! यह आपके श्वसुर उग्रसेन राजाका कैलाश—सरीखा विराजमान् राजमहल है. प्रासादके गोखडेमें अनेक प्रकारके श्रृंगार करके मेघ-घटामें बिजलीके जैसी विराजमान् राजीमती आपके सन्मुख देख रही है. इस अवसरपर स्वाभाविक सौन्दर्यसे देदीप्यमान्, आभूषणों से अधिक शोभायुक्त श्रीनेमिकुमारको आते हुए देखकर राजीमती विचार करने लगी— क्या यह इन्द्र है, चन्द्र है, क्या पातालवासी नागकुमार है अथवा मैंने जाना—यह मेरे पूर्व-भवका पति है, अथवा मेरा मूर्तिमान् पुण्य है जो तोरण बांधनेको आता है, सासु विवाह मंगल आचार करनेके लिये दरवाजे पर खडी है. उस समय श्रीनेमिकुमारने पशुओं की पुकार सुनकर सारथीसे पूछा—ये जीव किस वास्ते इकट्ठे किये गयेहैं. सारथी बोला—हे स्वामिन् ! आपके विवाहमें इनके मांस से भोजन होगा. नेमिकुमार उन जीवोंकी पुकार सुनकर मनमें विचार करने लगे—अहो, कानोंको कटुक इस

शब्दको सुननेमें भी असमर्थ हूँ—इस उत्सवसे क्या प्रयोजन है—जिसमें निरपराधी मारे जावें, इस विवाह-उत्सव को धिक्कार हो। इस अवसरपर राजीमती अपनी सखियों से बोली— मेरा दाहिना नैत्र फडकता है—कुछ अमंगल होगा. सखियाँ बोली— हे भागिनी, इस मंगलके अवसर पर ऐसा वचन बोलना उचित नहीं. इसी अर्सेमें नेमिकुमार सारथिसे बोले— रथको पीछा फिराओ. उसी समय एक हरिण नेमिकुमारके सन्मुख देख कर रोता हुआ अपनी ग्रीवा हरिणी की ग्रीवापर रखकर यह गाथा बोला—

मा पहरसु मा पहरसु एयं मह हिययहारिणिं हरणिं ॥
सामी अज्ज मरणा वि हु दुस्सहो पियतमाविरहो ॥ १ ॥

हे स्वामिन्! मेरे हृदयको हरने वाली इस वल्लभ हरिणीको मत मारो २. आज मरनेसे भी इसका विरह दुस्सह है, इसलिये पहले मुझको मारो, तब मृगी अपने स्वामी से बोली——

एसो पसन्नवयणो तिहुअणसामी अकारणो बंधू ॥ ता विण्णवेसु वल्लह रक्खत्थं सव्वजीवाणं ॥२॥

हे स्वामिन्! यह नेमिकुमार प्रसन्न मुख कमल वाले, निष्कारण बंधु और तीन भवनके स्वामी हैं इनसे सर्व

जीवोंकी रक्षाके लिये विनति करो। हिरणी की प्रेरणासे हिरण नेमिकुमार प्रति बोला—

निज्झरणे नीरपाणं अरण्णातिणभक्खणं च वणवासो ॥
अह्माण निरवराहाणं जीवियं रक्ख रक्ख पहो ॥ ३ ॥

हे स्वामिन्! हम निरपराधी हैं-हमारी रक्षा करो, रक्षा करो, हमारा क्या अपराध है? हम निर्झरणेका जल पीते हैं, जंगलके तृण भक्षण करते हैं, वनमें रहते हैं, किसीका कुछ नहीं बिगाड़ते. इस प्रकार सर्व जीवों ने अपनी २ भाषामें प्रभुसे विनति की. भगवान् ज्ञानसे उनकी विनति जानकर पशुपालकों से कहने लगे- हे पशुपालको! तुम इन पशुओं को छोडो. ऐसा कहकर सर्व जीवों को छुडाकर आप तोरणे से वापिस चले। उसी समय समुद्रविजयजी और सिवादेवी रथको रोककर बोले- हे पुत्र! पहले हमारे मनोरथों को पूर्ण कर, एक स्त्री के साथ पाणीग्रहण कर हमको वहुका मुख दिखाकर, भोगोंको भोगकर पीछे दीक्षा लेना, तू माता-पिता का भक्त है. नेमिकुमार बोले- हे माता-पिता! ऐसा आग्रह नहीं करना. दृढनेमि आदि आपके पुत्र आपके मनोरथ पूर्ण करेंगे. यह स्त्री मल-मूत्रकी मटकी मुझे अच्छी नहीं लगती, मुक्ति स्त्री में मेरा मन लगा है, इस

लिये इस विषयमें कुछभी कहना नहीं। यह वार्ता सुनकर राजीमती दीन वचन बोलती, भूमिपर लोटती, आंसुओं से पृथ्वी सींचती, रोती हुई निःश्वास डालकर ऐसा कहने लगी–

हा ! यादवकुल दिनयर ! हा ! निरूवम नाह ! हा जगस्सरण !
हा ! करुणायरसामी ! मुत्तूणमहं कहं चलिओ ॥ १ ॥

अहो यादवकुल सूर्य ! निरुपमनाथ ! हे जगत् शरण ! हे दयाके निधान ! हा ! मुझको छोड़कर कैसे चले हो ! राजीमती अपने हृदयको दुःखसे उपालम्भ देती है–अरे ढीठ, कठोर, निर्लज्ज, हृदय ! अब तक तू क्यों जीता है. श्रीनेमिनाथ तेरा स्वामी तो तुझको छोड़कर अन्यत्र रागसे बंधा हुआ जाता है. अरे धूर्त्त ! मुक्तिगणिका में तेरा राग था तो किस वास्ते मेरा पाणिग्रहण करनेको यहां आया था. इस समय राजीमतीसे सखियाँ बोली– हे राजीमती ! इसने अच्छा किया, यदि विवाह करके छोडता तो ठीक नहीं करता. इस निःनेही पतिसे क्या प्रयोजन है ! स्नेह सहित अन्य पति की गवेषणा करेंगे– यादवों के कुमार एकसे एक अधिक गुणवन्त हैं. यह सुनकर राजीमती हाथों से कानोंको ढककर बोली–हे सखियों ! ऐसी बात फिर नहीं कहना, यदि सूर्य्य पश्चिम

में उदय हो, मेरु की चूला चले, समुद्र मर्यादा छोडे तोभी इस कायासे अन्य पति मुझे नहीं करना, इस भव में नेमिही मेरा पति है. यदि वह इस वक्त पाणिग्रहण नहीं करेगा, तोभी दीक्षाकालमें मेरे मस्तक पर हाथ रक्खेगाही. राजीमतीके ऐसे वचन सुनकर सखियाँ बोली–हे राजीमती! तू सती है. तेरेको धन्य है, तेरा जन्म प्रमाण है. राजीमती ने सखियों से कहा–हे सखियों! मैं यह दुःख सहन नहीं कर सकती. ऐसा कहकर उसने महलों में प्रवेश किया. दशदशार्ह और कृष्ण-बलभद्रादि सर्व यादव नेमिनाथको समझाने लगे–हे नेमि! ऋषभादि तीर्थंकर भी पाणिग्रहण कर सुख भोग करके पीछे दीक्षा लेकर मोक्ष गये हैं। ऐसा कोई नियम नहीं है कि बिना परणे हुए ही मोक्ष जाते हैं और परणे हुए नहीं. तब श्रीनेमिकुमार ने कहा– मेरे भोगावली कर्म नहीं है धर्म कार्यमें अन्तराय मत करो. इसी अर्से में लौकान्तिक देवों ने आकर भगवान् को दीक्षा लेनेकी विनाति की–

हे स्वामिन्! आप जयवन्त होवें, समृद्धि को प्राप्त होवें, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तक बनें। इस समय इन्द्रादि देव भी आकर समुद्रविजयजी आदि सर्वको समझाने लगे– यह नेमिनाथ स्वामी बाल ब्रह्मचारी हैं और दीक्षा लेकर धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक बनेंगे– इनका दीक्षा महोत्सव करें. तब भगवान्ने सम्वत्सरी दान दिया.

अब दीक्षा का अधिकार कहते हैं:— तिसकाल तिस समयमें अर्हन् अरिष्टनेमि वर्षाकालके पहिले महीनेके दूसरे पक्षकी श्रावण सुदी छट्ठके पहले पहरमें उत्तरकुरुनामकी पालखी में बैठकर देव–असुर–मनुष्यों के समुदाय सहित द्वारिका नगरी के मध्यमें होकर निकले, रैवताचल उद्यान में आये, अशोक वृक्षके नीचे पालकी को रखवा कर पालकी से उतरकर पंचमुठि लोच किया, चौविहार दो उपवास करके चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेसे इन्द्र द्वारा दिया हुआ देवदुष्यवस्त्र कंधेपर रखकर, गृहवासको छोड़कर अनागार हुए, एक हजार पुरुषों के साथमें दीक्षा ग्रहण की और उसी समय भगवान्को चौथा मनपर्य्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ. अर्हन् अरिष्टनेमिने चौवन दिन तक शरीर की शुश्रुषाका त्याग करके जो जो उपसर्ग उत्पन्न हुए, उन सर्वको अच्छी तरह से सहन किये। इस प्रकार संयममें विचरते हुए श्रीनेमिनाथ स्वामीको पचपनवें दिन; अर्थात्– वर्षाकालके तीसरे महीने के पंचम पक्षमें आसोजवदी अमावस्याके दिन पिछले पहरमें गिरनार पर्वतके ऊपर दो उपवास सहित, चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेसे शुक्ल ध्यान ध्याते हुऐ भगवान्को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। भगवान् सर्व पदार्थ जानने और देखने वाले हुए. वनपालकने द्वारिकामें आकर श्रीकृष्णवासुदेव को

बधाई दी। कृष्ण महाराज वंदना करने को परिवार सहित गिरनार पर्वतपर आये, तब चार निकायके देवोंने मिलकर समवसरण बनाया। भगवान्ने सिंहासनपर बैठकर देशना दी। राजीमती भी समवसरणमें आई थी. उस समय कृष्णजीने राजीमती के स्नेहका कारण भगवान् श्रीनेमिनाथसे पूछा. भगवान्ने सम्यक्त्व प्राप्तिसे लेकर आठ भवोंका सम्बन्ध कहा– पहले भवमें मैं धन यह धनवती १, दूसरे भवमें सुधर्म देवलोकमें देव–देवी २, तीसरे भवमें मैं चित्रगतिविद्याधर यह मेरी रत्नवती स्त्री ३, चौथे भवमें माहेन्द्र देवलोकमें मित्रदेव हुए ४, पांचवें भवमें अपराजित राजा, प्रियमती रानी ५, छठे भवमें ग्यारहवें आरण्यदेवलोकमें मित्रदेव ६, सातवें भवमें शंखराजा, यशोमति रानी ७, आठवें भवमें अपराजित विमान में मित्रदेव हुए ८, नवम भवमें मैं नेमि हुआ हूँ, यह राजीमती हुई है परन्तु अब स्नेहसम्बन्ध टूटा है। ऐसे पूर्वभव सुनकर राजीमतीने दीक्षा ली। जब नेमिनाथ स्वामीने दीक्षा ली, तब रथनेमि राजीमती पर स्नेह करने लगा. उस समय राजीमती ने वमन किये हुए आहारके दृष्टान्तसे रथनेमिको समझाया. रथनेमिने भी दीक्षा ली. एक समय राजीमती साध्वियों के साथ गिरनारपर जाती थी. मार्ग में वर्षा हुई. राजीमती वस्त्र सुकाने को एक गुफामें गई. वहांपर रथनेमि पहले

सेही काउसग्ग ध्यानमें खड़ा था, राजीमतीको वस्त्ररहित देखकर बोला– हे सुन्दरी ! आवो, सुख भोगें, पीछे फिर दीक्षा लेंगे. रथनेमिका ऐसा वचन सुनकर राजीमती अपने अंग-उपांग ढककर बोली– हे देवानुप्रिय ! तू अन्धकवृष्णीके कुलमें उत्पन्न हुआ है, और मैं भोजकवृष्णी के कुलमें उत्पन्न हुई हूँ, अपन अगन्धन कुलमें उत्पन्न हुए सर्प के तुल्य हैं. जैसे अगन्धनकुल में उत्पन्न हुआ सर्प अग्नि में प्रवेश करे, परन्तु जहर पीछा नहीं लेवे, वैसेही तुझको मर जाना श्रेय है, परन्तु शील–खंडन करना ठीक नहीं. यदि तू रूपवती स्त्रियोंको देख कर इच्छा करेगा, तो वायुसे प्रेरित सेवाल के जैसा अस्थिर आत्मा वाला होगा। अंकुशसे जैसे हाथी वशमें होता है, उसी तरह राजीमतीने ऐसे उपदेशसे रथनेमिको संयम–मार्ग में स्थिर किया. रथनेमि चारसौ वर्ष तक घरमें रहे, एक वर्ष छद्मस्थपन में रहे, पांचसौ वर्ष केवली अवस्थामें, इस तरहसे नौ सौ एक वर्षका सर्वायुः पालकर रथनेमि श्रीनेमिनाथ स्वामी से चौवन दिन पहले मोक्ष गये. राजीमतीभी मोक्ष गई.

अब श्रीनेमिप्रभुका परिवार कहते हैं– अरिहन्त अरिष्टनेमिके अठारह गणधर हुए, वरदत्त आदि अठारह हजार अपने हाथसे दीक्षा दिये हुए साधुओं की संपदा हुई, आर्ययक्षणी आदि चालीस हजार साध्वियों की

संपदा हुई, अरिहन्त अरिष्टनामक नन्द आद एक लाख उनहत्तर हजार श्रावकों की सम्पदा हुई, तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं की सम्पदा हुई, चार सौ चौदह पूर्व धारी, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवल ज्ञानी, पन्द्रह सौ वैक्रीयलब्धिधारक, एक हजार विपुलमती, आठ सौ वादी, सौलह सौ पंचानुत्तरगामी, पन्द्रह सौ साधु मोक्ष गये, तीन हजार साध्वियाँ मोक्ष गई. श्रीनेमिनाथ स्वामीके आठ पट्टधारी मोक्ष गये. यह युगान्तकृतभूमि हुई. श्रीनेमिनाथ स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न होनेके बारह वर्षके बाद मुक्ति मार्ग शुरू हुआ. यह पर्य्यायान्तकृतभूमि हुई. अब भगवान्का निर्वाण-कल्याणक कहते हैं—तिसकाल तिस समयमें अर्हन् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष कुमारावस्थामें रहे, चोवन दिन छद्मस्थावस्थामें चारित्र पालकर, कुछ कम सात सौ वर्ष केवली और एक हजार वर्षका सर्वायुः पालकर वेदनीय १, आयुः २, नाम ३, गोत्र ४, इन चार कर्मों का क्षय करके, इसी अवसर्पिणी कालके चौथे आरेके बहुत कुछ व्यतीत होनेपर, उष्ण कालके चौथे महीने के आठवें पक्षकी आषाढ सुदी अष्टमी के दिन, गिरनार पर्वत पर पांच सौ छत्तीस साधु सहित एक महीनेतक अनशन कर, चार प्रकारका आहार त्याग करके चित्रानक्षत्रके साथ चंद्र का योग आनेसे मुक्तिमें गये। अर्हन् अरिष्टनेमि के मुक्तिको प्राप्त

होने के चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष बाद कल्पसूत्र पुस्तक पर लिखा गया। इस प्रकार संघके मंगलके लिये श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के और श्रीनेमिनाथ स्वामीके पांच २ कल्याणक कहे गये।

॥ इति श्रीनेमिनाथ स्वामी का चरित्र सम्पूर्ण ॥

अब पश्चानुपूर्वी से चौवीशही तीर्थंकरों के मुक्ति-गमनका अंतर काल संक्षेपसे कहते हैं:—

महावीर स्वामी के मुक्ति जानेके ढाई सौ वर्ष पहले पार्श्वनाथ स्वामी मुक्ति गये और महावीर स्वामी के मुक्ति जाने के नौ सौ अस्सी वर्ष बाद शास्त्र लिखे गये. महावीर स्वामी के चौरासी हजार वर्ष पहले नेमिनाथजी मुक्ति गये. महावीर स्वामीके पांच लाख वर्ष पहले नमिनाथजी मुक्ति गये. नमिनाथजी के छः लाख वर्ष पहले मुनिसुव्रतस्वामी मुक्ति गये. मुनिसुव्रतस्वामी के पैंसठ लाख वर्ष पहले मल्लिनाथजी मुक्ति गये. मल्लिनाथजी से एक हजार करोड वर्ष पहले अरनाथजी मुक्ति गये. अरनाथजीके एक हजार करोड वर्ष कम एक पल्योपमका चौथाई भाग इतने काल पहले कुंथुनाथजी मुक्ति गये. कुंथुनाथजी के अर्ध पल्योपम पहले शांतिनाथजी मुक्ति गये. शांतिनाथजी से पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम पहले धर्मनाथजी मुक्ति गये. धर्मनाथजीसे सात

सागरोपम पहले अनंतनाथजी मुक्ति गये. अनंतनाथजीसे नौ सागरोपम पहले विमलनाथजी मुक्ति गये. विमलनाथजीसे तीस सागरोपम पहले वासुपूज्यजी मुक्ति गये. वासुपूज्यजीसे चौवन सागरोपम पहले श्रेयांसजी मुक्ति गये. श्रेयांसजी से एकसौ सागरोपमसे कुछ कम, एक करोड सागरोपम पहले शीतलनाथजी मुक्ति गये. शीतलनाथजीसे नौ करोड सागरोपम पहले सुविधिनाथजी मुक्ति गये. सुविधिनाथजी से नव्वे करोड सागरोपम पहले चन्द्रप्रभुजी मुक्ति गये. चन्द्रप्रभुजीसे नौ सौ करोड सागरोपम पहले सुपार्श्वनाथजी मुक्ति गये. सुपार्श्वनाथजीसे नौ हजार करोड सागरोपम पहले पद्मप्रभुजी मुक्ति गये. पद्मप्रभुजीसे नव्वे हजार करोड सागरोपम पहले सुमतिनाथजी मुक्ति गये. सुमतिनाथजीसे नौ लाख करोड सागरोपम पहले अभिनन्दनजी मुक्ति गये. अभिनन्दनजीसे दश लाख करोड सागरोपम पहले संभवनाथजी मुक्ति गये. संभवनाथजीसे तीसलाख करोड सागरोपम पहले अजितनाथजी मुक्ति गये. अजितनाथजीसे पचास लाख करोड सागरोपम पहले श्रीऋषभदेवजी मुक्ति गये. इक्कीस हजार वर्षका पंचम आरा और इक्कीस हजार वर्षका छट्ठा आरा, इन बैंयांलीस हजार वर्ष सहित चौथा आराका एक कोटा कोटि सागरोपमका प्रमाण है और चौथा आराके तीन वर्ष साढे आठ महीने

शेष रहने पर महावीर स्वामी मुक्ति गये. इसलिये आदीश्वर भगवान् के और महावीर स्वामीके ४२ हजार, ३ वर्ष, ८॥ महीने कम एक कोटा कोटि सागरोपमका अन्तर समझना चाहिये ॥ इति छठा व्याख्यान सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

श्रीपर्युषणा पर्वणि में जिन चरित्राधिकार में पश्चानुपूर्वी करके श्रीमहावीर स्वामी के छः कल्याणक वर्णन किये. उसके बाद श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके व श्रीनेमिनाथ स्वामीके पांच २ कल्याणक कहे, तथा चौवीस तीर्थंकरोंका अन्तर काल कहा गया। अब प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी के पांच कल्याणक कहते हैं– जिसमें पहले ऋषभदेव स्वामीके तेरह भवोंका वर्णन करते हैं– सम्यक्त्व प्राप्तिके अन्तरसे जितने भव किये हों, उतने भवोंकी संख्या होती है, अन्य भवोंकी कोई संख्या नहीं है. पहले भवमें धना सार्थवाह ने सम्यक्त्व पाया सो बतलाते हैं– इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महा-विदेह क्षेत्रमें सुप्रतिष्ठित नामक नगर में प्रियंकर नामक राजा था. उस नगरमें धना नामका एक सार्थवाह रहता था, उस सार्थवाह ने एकदा वसन्तपुर जाने के लिये साथी इकट्ठे किये, नगरमें उद्घोषणा कराई— जिस किसी को वसन्तपुर जाने की इच्छा होवे, वह हमारे साथ में आवे, हम

उनका निर्वाह करेंगे. ऐसा सुनकर बहुतसे लोग साथमें हुए, और श्री धर्मघोष सूरिजी भी पांच सौ साधुओं सहित यात्रादि निमित्त वसन्तपुर जानेका विचार करके सार्थवाहकी आज्ञा लेकर साथमें चले. साथी बहुत होने से मार्ग में थोडा २ चलना होता था. बीचमें अटवी आई. इसके बाद वर्षाकाल आया. पूर्व दिशाका वायु चलने लगा. मेघ आकाश में गर्जने लगा. बिजली चमकने लगी. नदियोंने पर्वतों से उतर कर मार्ग रोके, हरे अंकुरों से सर्व पृथ्वी रोकी गई. कीचड़से मार्ग व्याप्त हुए, जिससे सर्व साथी ऊंची जगहमें तम्बू डालकर ठहरे. धर्मघोष सूरिजीभी एक निर्वद्य पर्वतकी गुफ़ामें स्थान मांगकर सर्व साधुओं सहित धर्म ध्यान करते हुए रहे. बहुत दिन होनेसे सर्व लोगोंकी भोजन सामग्री क्षीण हो गई, और लोग अटवीमें कन्द-मूल-फलोंसे उदर-वृत्ति करने लगे. एकदा सब साथियोंका विचार करते हुए धना सार्थवाहने पिछली रात्रिमें किसी भट्टके मुखसे यह श्लोक सुना—

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं, कूर्मो बिभर्त्ति धरणीं निजपृष्ठभागे ॥
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्निमंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥१॥

अंगीकार किये हुए कार्यका उत्तम पुरुष अच्छी तरह पालन करते हैं जैसे—महादेवजी ने कालकूट जहर स्वीकार

किया, जिससे उनका शरीर नीला हो गया, कच्छप पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण करता है, और समुद्र दुःसह वाडवाग्नि को धारण करता है।

इसी तरह बडे २ पुरुष अंगीकार किये हुए को नहीं छोड़ते. यह वचन सुनकर उसे धर्मघोष सूरिजी याद आये. अहो! मेरे वचनसे वे मेरे साथ चले. मैंने उनके साथ विश्वासघात किया, उनकी आज तक खबरभी नहीं ली, अब सबेरे उनके पास जाकर अपना अपराध क्षमा कराऊं. ऐसा विचारकर प्रभातमें अपने मित्रके साथ आचार्य के पास जाकर, वन्दना कर लज्जासे मुंह नीचा करके विनति की– हे महाराज! मेरा अपराध क्षमा करो. मैंने आपकी कभी खबर भी नहीं पूछी. सब लोग क्षीण संबल हो गये, मुझको कोई आज्ञा दे. तब धर्मघोषसूरिजी बोले– हे सार्थेश! हमारी चिन्ता मत करो. हमारे सुखसे धर्म ध्यान होता है, आपके साथ बहुतसे जंगल पार करके आये हैं। तब संतुष्ट हुआ सार्थेश अपने उतारे में आहारके लिये साधुओं को ले आया. साधुओंने शुद्ध घृत देखकर ग्रहण किया. धना सार्थवाहने, शुद्ध परिणामसे घृतका दान दिया, जिससे सम्यक्त्व पाया और आत्मा निर्मल की। अब वर्षा काल जानेसे सार्थवाह वसन्तपुर गया, और धर्मघोष सूरिजीभी तीर्थयात्रा के

वास्ते सार्थवाहको धर्मलाभ देकर और सार्थवाहसे पूछकर गये। बादमें धना सार्थवाह बहुत काल तक सम्यक्त्व पालकर, अन्त अवस्थामें मनुष्यका आयुः बांधकर दूसरे भवमें उत्तर-कुरुक्षेत्र में युगलिया हुआ, जहां तीन पल्योपम का आयुः पालकर, युगलियोंका सुख भोगकर आयुः क्षयसे मरकर, तीसरे भवमें सौधर्म देवलोकमें देव हुआ. वहांसे च्यवकर पश्चिम-महाविदेह क्षेत्रमें गन्धलावती विजयमें शतबल राजा और चन्द्रकान्ता रानीके महाबल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, यह चौथा भव हुआ ॥४॥ वहां यौवनावस्थामें महा विषयी, सदा स्त्रीसमूह से परिवृत वह गीत-गान-नृत्यादि शृंगार रसमें लुप्त रहता था, जिससे उदय अस्तकी भी खबर नहीं रहती, और धर्मकार्यभी कभी नहीं करता. एकदा नाटक होरहा था. मधुरस्वरसे गीत-गान होते थे, और महाबल राजा एकाग्रचित्तसे बैठा हुआ सुन रहा था, तब सुबुद्धि नामक मन्त्री ने राजाको प्रतिबोधनेके लिये ऐसा कहा—

सव्वं विलंवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबना ॥ सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥ १ ॥

सर्व गाना रोने जैसा है, सर्व नाटक भूत चेष्टा जैसे हैं, सर्व आभूषण भाररूप हैं, और सर्व काम दुःख रूप हैं. यह सुनकर महाबल राजा मन्त्री से बोला—हे सुबुद्धि ! अप्रसंगमें यह क्या कहा. मन्त्री बोला— हे महा-

राज ! केवलज्ञानीने मुझसे कहा है कि महाबल राजाका एक महीनेका आयुः है, इसलिये मैंने ऐसा कहा. यह सुनकर राजा डरा और मन्त्रीसे पूछा– अब क्या किया जावे ? आज तक तो मैं विषयों में ही रहा. अब आयुः थोडा है, एक महीनेमें क्या धर्म होता है ? मन्त्री बोला–एक महीनेमें बहुत धर्म हो सकता है, साधु धर्मका एक दिनभी अच्छी तरह पालने वाला मनुष्य मोक्ष जाता है, कदाचित मोक्ष नहीं जावे, तो भी वैमानिक देव तो अवश्य ही होता है. यह सुनकर, पुत्रको राज्य में स्थापित कर दीक्षा लेकर, अनशन करके पांचवें भवमें महाबल का जीव ईशान देवलोकमें स्वयंप्रभविमानमें ललितांग नामक इन्द्रका सामानिक देव हुआ, यह पांचवां भव हुआ ॥ ५ ॥ वहां अत्यंत वल्लभ स्वयंप्रभा देवी के साथ विषयसुख भोगता हुआ रहने लगा. कितनेही समय बाद स्वयंप्रभा देवी च्यवी, तब ललितांग देवने बहुत दुःख किया. यदि मनुष्यको वैसा दुःख हो तो छाती फट कर मर जावे. उस समय पूर्व भवका सुबुद्धि मन्त्री का जीव धर्म कर, मर करके उसी देवलोकमें देव हुआ था. उसने ललितांग को स्वयंप्रभाके विरहसे दुःखी देखकर कहा– तू दुःख मतकर–स्वयंप्रभा देवी से मिलाने का उपाय करूंगा. इसी समय नन्दग्राममें नागिल नामक एक दरिद्रके नागश्री नामकी स्त्री थी. उसके लगा-

तार छः पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं. घरमें दरिद्र और बहुत सी पुत्रियों का जन्म होनेसे बडा दुःख हुआ. दैवयोग से उसके सातवीं पुत्री भी हुई. तब उसने दुःख और क्रोध से उसको नाम भी नहीं दिया. लोगोंमें निर्नामिका प्रसिद्ध हुई, उसको कोई भी नहीं चाहता. काष्टका भारा बनसे लाकर वेचकर बड़े दुःखसे निर्वाह करती. एकदा निर्नामिका काष्टका भारा लेकर नगरमें आती थी. मार्गमें उसने युगंधर नामक केवलीको वन्दना की, धर्म सुना और पूछा– हे स्वामिन् ! मेरे पति वगैरा का कुछभी सुख नहीं हुआ, इसका क्या कारण है ? तब केवली ने कहा– भद्र! धर्म बिना सुख नहीं होता. जो तू सुखकी इच्छा करती है तो धर्म कर. केवलीका वचन सुनकर उसने श्रावक-धर्म अंगीकार किया, पर्व दिनमें पौषध करती, नवकार गुणती, और देव-गुरुको वन्दन आदि धर्म कार्य करती. यह देखकर लोगोंने उसे धर्मणी नाम दिया और साधर्मियोंने सहायता की, जिससे धर्मके प्रसादसे सुखी हुई. उसके बाद बहुत तप करनेसे धर्मणीका शरीर दुर्बल होगया. उसी समय स्वयंप्रभा देवी च्यवी और धर्मणीने अनशन किया, तब सुबुद्धि मंत्री देवने वहां आकर ललितांगका रूप धर्मणीको दिखा कर नियाणा कराया. धर्मणी मरकर स्वयंप्रभा देवी हुई, जिसके साथ ललितांग सुख भोग कर, आयुः पूर्ण कर च्यवकर छठे भवमें

पूर्व-महाविदेह क्षेत्र में लोहार्गल नगरके सुवर्णजंघ राजाकी लक्ष्मीवती रानीके वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ स्वयंप्रभा देवी भी च्यवकर वज्रसेन चक्रवर्ती के श्रीमती नामक पुत्री हुई. एकदा श्रीमतीने तीर्थंकरकी सभामें देव-देवियोंको देखकर जाति-स्मरण पाया, निर्नामिकाके भवसे स्वयंप्रभा के भवमें ललितांग अपने पतिका स्मरण किया. चक्रवर्ती के पूछने पर श्रीमतीने पूर्व भवका सर्व वृत्तान्त कहा. चक्रवर्तीने श्रीमतीके पूर्व-भवका पति ललितांग देव कहां उत्पन्न हुआ है, ऐसा केवलीसे पूछकर, वज्रजंघको जानकर श्रीमती वज्रजंघको परणाई ❀ अब वज्रजंघ और श्रीमती सुखसे रहने लगे. वज्रजंघ कुमारने राज्य पाया, एकदा शामको सन्ध्याका स्वरूप

❀ कोई ऐसाभी कहते हैं—श्रीमतीसे चक्रवर्तीने पूछा. तब श्रीमतीने स्वयंप्रभा देवी, ललितांग देव सम्बन्धी पूर्व भवका स्वरूप कहा और बोली—पूर्व भवका पति मिले, तो मैं पाणिग्रहण करूंगी वरना नहीं। तब चक्रवर्तीने अपनी पुत्री की प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये स्वयंवरका महोत्सव रचा. श्रीमतीने अपने पूर्व भवमें नन्दनवन, भद्रशालवन वगैरहमें प्रछन्नपने अपने पति ललितांगदेवके साथ क्रीड़ा की, वह सर्व चित्रपट पर लिखाकर रखवाया. जब स्वयंवरमें सर्व राजा इकट्ठे हुए, तब श्रीमतीने राजाओंसे पूर्व भवका स्वरूप पूछा. राजाओं ने स्वार्थके वशसे झूठा ही यथा तथा कहा. परंतु वज्रजंघ कुमारने क्रीड़ादि सर्व प्रछन्न स्वरूप, जैसा लिखा था, वैसा ही यथार्थ कहा. तब श्रीमती वज्रजंघ कुमारको परणाई गई.

देखकर वैराग्य पाकर मनमें निश्चय किया कि प्रभातमें पुत्रको राज्य देकर दीक्षा लूंगा. रात्रिमें श्रीमती सहित सोते हुए वज्रजंघ राजाको जहरके धुंआका प्रयोग करके पुत्रने मारे, दोनों मरकर सातवें भवमें उत्तर-कुरु क्षेत्रमें युगलिये हुए ॥ ७ ॥ वहाँ से च्यवकर आठवें भवमें सौधर्म देवलोक में वे दोनों मित्र देव हुए ॥ ८ ॥ देव-लोकसे च्यवकर वज्रजंघका जीव महाविदेह क्षेत्र में सुबुद्धि वैद्यका पुत्र जीवानन्द हुआ. उसके राजाका पुत्र १, मंत्रीका पुत्र २, सेठका पुत्र ३, सार्थवाहका पुत्र ४, और पांचवा श्रीमतीका जीव, उसी नगरमें एक सेठका पुत्र केसव नामक हुआ. ये पांचों ही जीवानन्द वैद्यके मित्र थे. ये छ ओं मित्र स्नेहसे साथमें रहते. एकदा मित्र वैद्यके घरमें सब बैठे थे, तब वहां एक कोढ़ी साधु आहारके लिये आये. उस मुनिको देखकर पांचों ही मित्रोंने वैद्य मित्रकी निन्दा की और कहा कि-वैद्य निर्दयी और लोभी है, जहाँ कुछ स्वार्थ देखता है, वहीं औषधी करता है, यदि वैद्य धर्मार्थी होता, तो ऐसे पुण्यवान् साधुकी औषधि करके वैयावच्च करता. यह सुनकर वैद्य बोला-मेरे घरमें लक्षपाक तैल है, परन्तु रत्न कम्बल और गोशीर्ष चन्दन नहीं है. ये दोनों चीजें होवें, तो मैं इन साधुका उपचार करूं. यह सुनकर, अढ़ाई लाख सोनैये लेकर छ ओं मित्र वृद्ध सेठकी दुकान पर

गये. सेठको सौनैये देकर रत्न कम्बल और गोशीर्ष चन्दन मांगा. सेठने पूछा—क्या कार्य है ? उन्होंने कहा—रत्न कम्बल व चन्दनसे रोगी साधुकी वैयावच्च करना है. यह सुनकर, उनकी प्रशंसा करके, वह धन धर्मार्थ देकर, साधुके लिये रत्न कम्बल और चन्दन देकर सेठ स्वयं दीक्षा लेकर अन्तकृत केवली होकर मोक्ष गया । वे छओं मित्र औषधिकी सामग्री लेकर, वनमें काउसग्गमें रहे कोढ़ी साधुके पासमें गये और उनकी आज्ञा मांग कर, चर्मके ऊपर उनको सुलाकर वैद्यने लक्षपाक तैलका मर्दन किया, चन्दनका विलेपन किया और इसके बाद शरीर पर रत्न कम्बल लपेट दिया. पहले मर्दनकी गर्मीसे चर्ममें रही हुई कृमियाँ चन्दनकी ठंडकसे रत्न कम्बलमें आकर लगीं. उन कृमियोंको वैद्यने दयासे एक गायके कलेवरमें डालीं. इसी प्रकार दूसरे मर्दन से मांसमें रहे हुए कीड़े निकले, तीसरे मर्दनसे हाडमींजीके अन्दर रहे हुए कीड़े निकले, इसके बाद संरोहिणी औषधिका विलेपन करके सब छिद्र बंद कर दिये, साधुका शरीर सौने जैसा होगया. इस प्रकार साधुको पीड़ारहित करके वे अपने घर आये. रत्न कम्बलको बेचकर उसका धन सातक्षेत्रोंमें खर्च किया. उसके बाद छओं मित्रोंने दीक्षा ली, यह नवमां भव हुआ ॥९॥ निरतिचार चारित्र पालकर बारहवें देवलोकमें छओं मित्र

देवपने उत्पन्न हुए, यह दशवां भव हुआ ॥१०॥ वहाँसे च्यवकर ग्यारहवें भवमें पूर्व-महा-विदेहमें पुण्डरीकीणि नगरीके वज्रसेन राजाकी धारिणी नामक रानीके अनुक्रमसे पांच पुत्र हुए, जिसमें जीवानंद वैद्यका जीव चौदह स्वप्न सूचित वज्रनाभ नामा चक्रवर्ती हुआ १, राजाके पुत्रका जीव बाहु २, मंत्रीके पुत्रका जीव सुबाहु ३, सेठके पुत्रका जीव पीठ ४, सार्थवाहके पुत्रका जीव महापीठ ५, और छट्ठा निर्नामिका का जीव भी एक राज पुत्र हुआ था. वह वज्रनाभ चक्रवर्तीका अतीव प्यारा सारथी हुआ. इस प्रकार छओं जीव सुखसे रहने लगे. अब वज्रनाभ चक्रवर्तीके पिता वज्रसेन राजा वज्रनाभको राज्यदेकर, लौकान्तिक देवोंके वचनसे सम्वत्सरी दान देकर, दीक्षा लेकर, कर्मक्षयकर, केवल ज्ञान उत्पन्न कर और तीर्थंकर पद प्राप्तकर, विहार करते हुए पुण्डरीकीणि नगरी समोसरे. समवसरणमें पिता तीर्थंकरकी देशना सुनकर छओं जीवोंने दीक्षा ली. वज्रनाभ चक्रवर्ती ने चौदह पर्व पढ़े, और पांच साधुओंने ११ अंग पढ़े. बाहु साधु; पांचसौ साधुओंको आहार-पानी लाकर देते, सुबाहु; साधुओंकी वैयावच्च करते, पीठ-महापीठ स्वाध्याय करते. बाहु-सुबाहुकी गुरु प्रशंसा करते, इन मुनिओंको धन्यहै साधुओंकी वैयावच्च करते हैं. तब पीठ-महापीठ ईर्षा करते, हम स्वाध्याय करते हैं तोभी गुरु

हमारी प्रशंसा नहीं करते, गुरुभी स्वार्थी हैं. वज्रनाभ चक्रवर्ती मुनिने बीस-स्थानक का सेवन करके तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन किया. बाहुसाधुने साधुओंको आहार—पानी लाकर देनेसे भोगफल कर्मबांधा. साधुओंकी वैयावच्च करके सुबाहु साधुने बाहुबलकर्म उपार्जन किया. पीठ-महापीठने गुरुसे कपट करके स्त्री वेदकर्म उपार्जन किया. छट्ठा निर्नामिकाका जीव श्रेयांस होने वालाथा. ये छः जीव चारित्र पालकर सर्व सर्वार्थ-सिद्ध विमानमें देव हुए *, यह बारहवां भव हुआ ॥ १२ ॥ तेरहवें भवमें वे कहां उत्पन्न हुए, सो कहते हैं—

तिस काल, तिस समयमें अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेके अन्तमें चौरासी लाख पूर्व, चार वर्ष, छः महीने कुछ कम समय बाकी रहनेपर श्रीऋषभदेव कौशलिकके(कौशल देशमें उत्पन्न हुए इसलिये कौशलिक कहेजाते हैं) चार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्रमें हुए, और पांचवां कल्याणक अभिजित् नक्षत्रमें हुआ। उत्तराषाढा नक्षत्रमें सर्वार्थसिद्ध-विमानसे च्यवकर माताकी कुक्षिमें उत्पन्न हुए १, उत्तराषाढा नक्षत्रमें जन्म हुआ २,

* आवश्यक चूर्णिमें लिखा है कि आदीश्वर भगवान्का जीव वज्रजंघ सर्वार्थसिद्ध विमानमें गये पीछे छः लाख पूर्व बाद बाहु-सुबाहु आदि सर्वार्थसिद्धमें गये थे और आदीश्वर भगवान् छः लाख पूर्वके हुए तब भरत—बाहुबली आदि पुत्र हुए थे।

उत्तराषाढा नक्षत्रमें दीक्षा ली ३, उत्तराषाढा नक्षत्रमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ४, और अभिजित् नक्षत्रमें निर्वाण हुआ. इस प्रकार संक्षेपसे श्रीऋषभदेव स्वामीके पांच कल्याण कहे. अब विस्तारसे कहते हैं—

तिस काल, तिस समयमें श्रीऋषभदेव अर्हन् ग्रीष्मकालके चौथे महीनेके सातवें पक्षकी आषाढवदी चौथ के दिन, तैंतीस सागरोपमका आयुः पालकर, सर्वार्थसिद्ध विमानसे च्यवकर इसी जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें नाभिकुलकरकी मरुदेवा स्त्रीकी कुक्षिमें, मध्यरात्रिके समय देव संबंधी आहार और देव संबंधी शरीर छोडकर गर्भ में उत्पन्न हुए.

अब इक्ष्वाकु भूमिका स्वरूप कहते हैं—भगवान्से इक्ष्वाकु वंश उत्पन्न हुआ, इसलिये इक्ष्वाकु भूमि कही जाती है, उस समय नगरादि व्यवहार नहीं होता, कल्पवृक्षही सबके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते थे. अब कुल-करोंकी उत्पत्ति कहते हैं—दाक्षिण भरतार्धके तीन भाग करने, जिसमें गंगा-सिन्धुके बीचके प्रदेशमें इस अव-सर्पिणीमें तीसरे आरेके अन्तमें पाल्योपमका आठवां भाग बाकी रहनेपर सात कुलकर उत्पन्न हुए, जिसमेंसे पहिले कुलकरकी उत्पत्ति कहते हैं— पश्चिम-महा-विदेह क्षेत्रमें दो बनिये आपसमें मित्र थे. उनमें एक

कपटी और दूसरा सरल था. परस्पर द्रव्य बांटने के समय कपटी सरलको बंच (ठग) कर गुप्तरीतिसे अधिक द्रव्य ले लेता, और सरल निष्कपट व्यवहार करता. इसके बाद दोनों मरकर, सरल बनिया इक्ष्वाकुभूमिमें युगलिया हुआ, और कपटी उसी जगह श्वेतहाथी हुआ. एकदा वह हाथी फिरता हुआ सरल बनिये के जीव युगलियेको देखकर, प्रीतिसे उसे अपने ऊपर बैठाकर वहाँसे चला. उस युगलियेको श्वेतहाथीपर बैठा हुआ देखकर दूसरे युगलियोंने 'विमलवाहन' नाम दिया और दोनोंको जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न होनेसे आपसमें अधिक प्रीति हुई. कुछ समय बाद हीनकालकी महिमासे कल्पवृक्ष जैसे पहले वांछित देतेथे, वैसे नहीं रहे, युगलिये परस्पर क्लेश करते, अपने २ कल्पवृक्षकी रक्षा करने लगे, एक युगलिया अपने कल्पवृक्षको छोड़कर दूसरेके कल्पवृक्षसे मांगता तो उसका स्वामी उसके साथ लड़ाई करता हुआ विमल-वाहनके पास आता, विमल-वाहन उसपर'ह'का दंड करता. विमलवाहनके हकारकी दंडनीति हुई. जब कोई कुछभी अनुचित करता तब विमल-वाहन "हां तुमने ऐसा किया", ऐसा कहता, तब वह युगलिया जानता कि राजाने मेरा सर्वस्व ले लिया और वैसा कार्य्य फिर कभी नहीं करता, यह दंडनीति बहुत कुछ समय तक युगलियोंमें चली. विमल-वाहनके

नौ सौ धनुषका शरीर और चन्द्रयशा नामकी स्त्री थी। दूसरा आठ सौ धनुष्यका शरीरवाला चक्षुष्मान कुलकर हुआ, जिसके चन्द्रकान्ता नामक भार्या थी, उसकेभी हकारकी दंड नीति थी। तीसरा सात सौ धनुषका शरीर वाला यशोमान कुलकर हुआ, जिसके स्वरूपा नामक स्त्री थी, उसके भी हकारकीही नीति रही। चौथा साढ़े छः सौ धनुषका शरीरवाला अभिचन्द्र कुलकर हुआ, जिसके प्रतिरूपा स्त्री थी और मकारकी दंडनीति हुई। पांचवां कुलकर प्रसेनजित् हुआ, जिसके छः सौ धनुषका शरीर, चक्षुमती नामक पत्नी और धिक्कारकी दंडनीति हुई. छठा कुलकर मरुदेव हुआ, जिसके साढ़े पांच सौ धनुषका शरीर, श्रीकांता स्त्री और धिक्कारकी दंडनीति. सातवां सवापांचसौ धनुषका शरीर वाला नाभिकुलकर हुआ, जिसकेभी धिक्कारकी दंडनीति और मरुदेवी भार्या थी. नाभिकुलकर सुखसे रहता. जब जुगलियोंमें कोई झगडा होता नाभिकुलकर के पास जाते तब नाभिकुलकर जघन्य अपराधमें हकार, मध्यमें मकार और उत्कृष्टमें धिक्कारका दंडदेता. काल महिमासे ऐसी दंडनीतिको भी कोई २ समय युगालिये नहीं मानने लगे, उसी समय तीनज्ञानसे युक्त श्रीऋषभदेव भगवान् मरुदेवी के गर्भमें उत्पन्न हुए. देवलोकसे मैं च्यवुंगा, ऐसा जानते थे, परन्तु जिस समय च्यवे. उस समयको नहीं

जानसके और माताके गर्भमें उत्पन्न हुए बाद जान लिया कि मेरा च्यवन हुआहै. जब भगवान् देवलोकसे च्यवकर मरुदेवीके गर्भमें उत्पन्न हुए,तब मरुदेवीने चौदह स्वप्नदेखे, (प्रथम स्वप्नमें वृषभ देखा था) स्वप्न नाभि कुलकरसे कहे, नाभिकुलकरने ही अपनी बुद्धिके अनुसार स्वप्नोंका अर्थ कहा (उस समय स्वप्नपाठक नहीं थे) उसको सुनकर मरुदेवी प्रसन्न हुई ।

अब भगवान्का जन्म अधिकार कहते हैं–तिसकाल तिस समयमें ऋषभदेव अर्हन् कौशलिक उष्णकाल के पहले महीनेके पहले पक्षकी चैत्रवदी अष्टमीको, नौ महीने साढे सात दिनकी गर्भस्थिति पूर्ण होनेसे, उत्तराषाढा नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेपर आरोग्यवती मरुदेवीने आरोग्यवान् श्रीऋषभकुमार पुत्रको जन्म दिया. तब ५६ दिक्कुमारियोंका आना, इन्द्रादिका जन्माभिषेकका करना, वसुधाराका वर्षाना इत्यादि देवोंके कृत्य श्री वर्धमान स्वामीके जैसेही हुए, परन्तु प्रातःसमयमें कैदी छोडने, मान, उन्मान प्रमाणोंका बढ़ाना, कर वगैरहका छोड़ना, जुसर-मूसलादि ऊंचे करने इत्यादि मनुष्योंके पुत्रजन्म-योग्य-व्यवहार नहीं था. वे जुगलिये थे. इसलिये इन्द्रादि देवोंने सर्व विधि व्यवहार किया. मरुदेवीने पहले स्वप्नमें वृषभ देखा था और ऋषभदेव

भगवान्‌के दोनों जंघोंमें रोमोंके वृषभोंका चिह्न देखनेसे नाभिकुलकरने "ऋषभ कुमार" ऐसा नाम दिया. भगवान् देव भवसे च्यवकर आये थे. उत्कृष्ट लावण्यको धारनेवाले, देव-देवी व इन्द्राणियोंके वृन्दसे लाल्य-पाल्य मान, सुनन्दा तथा दूसरी सुमंगला युगलिनीके साथ वड़े होने लगे, भ्रमरके जैसे केश, कमलपत्र जैसे नेत्र, पक्क बिम्ब फल जैसा ओष्ठ, अनारकी फलीके जैसे दांत, तपेहुए सौनेके जैसी शरीरकी कान्ति, कमलके सुगन्ध जैसा निःश्वास, अप्रतिपाति तीन ज्ञानोंसे विराजमान, सर्व उत्तम लक्षणोंसे युक्त ऋषभकुमार वाल्यावस्थामें रमते, माताके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते, मन, मन, भाषा बोलते, दूर रही हुई वस्तु लाने के लिये धीरे २ गोडा-लिये चलते हुए(ऋषभदेव) को देखकर मरुदेवीने विचार किया—हे पुत्र ! तू सर्व देव-देवियोंको वल्लभ है अत्यन्त शोभाग्ययुक्त है, तुझे देवांगनयें रमाती हैं, इंद्र द्वारा संचारण किये हुए अमृतका तू पान करता है तब मैं किस गुणसे तेरी माता होऊं. इस प्रकार भगवान् कुछ कम एक वर्षके हुए, तब इन्द्र, वंश स्थापनाके लिये हाथमें इक्षुयष्टि लेकर आया. इन्द्रको आता हुआ देखकर श्रीऋषभदेव गोडालिये चलकर शेलडीकी लकड़ी पकडकर खड़ेहुए. इन्द्रने भगवान्‌को इक्षु खानेकी इच्छा हुई विचारकर इक्ष्वाकु नामक वंशकी स्थापना की.

तथा अन्य तीर्थंकर बाल्यावस्थामें अंगूठा चूसकर अमृतका आहार लेते हैं पीछे अग्निपक्व आहार करते हैं, परन्तु ऋषभदेव भगवान् तो देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्रसे देवोंके लाये हुए कल्पवृक्षके फलोंकाही आहार करते रहे, दीक्षा लिये बादभी वर्षी तपका पारणा इक्षुरससे हुआ. मरुदेवी ऋषभदेवजीको क्रीडाकरते हुए देखकर हृदयमें लगाकर अपने चक्षु मींचकर अन्दर देखती है—मेरा हृदय हर्षसे कितना भरा हुआ है, अब कितना भरना है, हृदय तो बाह्य दृष्टिसे नहीं देखा जाता और मैं तेरा उपकार कुछभी नहीं कर सकती. तूने तो मेरा बहुत उपकार किया है, तेरे प्रभावसे मैं सर्व देवेन्द्रोंके वंदन-पूजन-नमस्कार करने योग्य हुई हूं. इस प्रकार माता-पिताके मनोरथोंके साथ श्रीऋषभदेव भगवान् बड़े होने लगे।

अब भगवान् भोगसमर्थ हुए उस समय चारों निकायों के देव-देवियोंने और इन्द्र-इन्द्राणियोंने आकर, वरपक्षमें इन्द्रादि देव हुए. और इन्द्राणियोंने कन्याके पक्षमें होकर सुनंदा-सुमंगलाके साथ ⊛ पाणीग्रहण विधिका

* जिस तरह अभी विवाह संस्कार हुए बाद पतिके मरनेसे स्त्री विधवा मानी जाती है, परन्तु कुमारिकावस्थामें अगर पति मर जावे तो वह कन्या विधवा नहीं मानी जाती इसी तरह जब तक संसारिक सुख का संयोग नहीं होता तब तक युगलियों में स्त्री पुरुष का सम्बन्ध नहीं माना जाता, किन्तु भाई बहन का सम्बन्ध माना जाता था। सुमंगला युगलनी के जन्म काल में ही युगलिया भाई के

महोत्सव किया. इन्द्रद्वारा दिखाई हुई वह विवाह-विधि अब भी लोकमें होती है. सुनन्दा-सुमंगलाके साथ श्रीऋषभदेवजीको विषयसुख भोगते हुए छः लाख पूर्व वर्ष गये, उस समय सुमंगलाने भरत-ब्राह्मीरूपी जोड़ला जन्मा, सुनन्दाने बाहुबली-सुन्दरीरूप जोड़ला जन्मा. उसके बाद सुमंगलाने गुनपचास पुत्ररूप जोड़ले जन्में. सुनन्दाके तो एक ही पुत्र-पुत्रीका जोड़ला उत्पन्न हुआ, इसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई। अब जैसे २ काल

मस्तक पर ताड़ वृक्ष का फल गिरने से वह अकस्मात् मर गया, उनके माता पिता भी देवलोक चले गये, अकेली सुमंगला को देखकर दूसरे युगलियों ने सुमंगला नाभिकुलकर को लाकर दी. ऋषभदेव भगवान् एक वर्ष के भी नही हुए थे उस समय की यह बात है, इसलिये सुमंगला दूध पीने वाली एक वर्ष से भी छोटी अवस्था की थी और उस समय सब युगलिये थे, इसलिये सुमंगला के साथ ऋषभदेव स्वामी ने पाणी-ग्रहण किया इसमें कोई दोष नहीं आसकता. तथापि अभी कई जैनी भाई सुमंगला के युगलिया भाई मरजाने से सुमंगला को विधवा समझकर ऋषभदेव भगवान् पर विधवा विवाह का आरोप लगाते हैं, यह उनकी बड़ी अन समझ है. देखो-जिस तरह भरत के साथ जन्मी हुई ब्राह्मी बहुत वर्षों तक बाल्यावस्था में भरत के साथ रही थी तो भी भरत की स्त्री नहीं मानी गई, ऐसेही बाहुबली के साथ जन्मी सुन्दरी भी बाहुबली की स्त्री नहीं मानी गई. और ऋषभदेव स्वामी ने युगलिया धर्म का निवारण करने के लिये ब्राह्मी का बाहुबली के साथ, सुन्दरी का भरत के साथ और अठानवे पुत्रों का अन्य युगलियों की बहनों के साथ पाणी--ग्रहण करवाया, इससे भरत बाहुबली आदि को परस्त्री ग्रहण करने का दोष नहीं आसकता, इसी तरह सुमंगला भी उनके मृत भाई की स्त्री नहीं मानी गई थी, जिस से ऋषभदेव स्वामी ने उनके साथ पाणी ग्रहण किया इसमें विधवा--विवाह का दोष कभी नहीं आसकता।

हीन होता गया, वैसे २ ही कल्पवृक्षोंका प्रभाव कम होता गया. जिससे युगलिये परस्पर क्रोधसे लड़ाई करने-लगे, हकार, मकार, धिक्कारके दंडसे भी नहीं मानते, नाभिकुलकर वृद्ध होगये, जब युगलियोंने मिलकर ऋषभ-देवजी से विनती की हमारा न्याय आप करो, तब ऋषभदेवजी ने कहा—जो राजा होता है, वह न्याय करता है, मैं तो राजा नहीं हूं. तब युगलियोंने कहा—हमारे आप राजा होओ. ऋषभदेवने कहा—नाभिकुलकरसे पूछो. वह जो कहें, सो ही प्रमाण है. तब युगलियोंने नाभिकुलकरकी आज्ञासे गंगा-नदीके तटपर धूलिके ढेरपर ऋषभदेवजी को बैठाकर राज्याभिषेक करनेके लिये जल लेनेको गये. उस समय इन्द्रका आसन कंपायमान हुआ, अवधि-ज्ञानसे श्रीऋषभदेवका राज्याभिषेक का उत्सव जानकर इन्द्र आया और भगवान्को राज्य योग्य मुकुट, कुन्डल, हार आदि पहिना कर स्वर्णके सिंहासन पर बैठाये. युगलिये कमलनीके पत्तोंमें जल लेकर आये, ऋषभ-देवको वस्त्र-आभूषणोंसे शोभित देखकर, पैरोंकी अंगुलियों पर जल चढ़ाया. इन्द्रने उनका विवेक और विनय देखकर कहा— ये बहुत ही विनीत पुरुष हैं इसलिये यहांपर विनीता नामकी नगरी स्थापित की जावे. इसलिये लोक प्रसिद्ध विनीता नामकी नगरी स्थापित की गई, इन्द्रकी आज्ञासे धनददेवने आकर बारह योजन लम्बी

नौ योजन चौड़ी, सौ धनुष ऊँचे व पचास धनुष चौड़े आठ दरवाजे वाली सौनेके कोटसे घिरी हुई, मध्य भागमें ईशान कौनमें नाभिकुलकरके रहनेके लिये सात भूमि वाला चौकोना प्रासाद बनाया, पूर्व दिशामें वैसाही भरतके लिये, अग्नि कौनमें बाहुबलीके लिये और अठानवे कुमारोंके लिये दक्षिण दिशामें भवन बनाये, अन्य क्षात्रियोंके लिये भी यथायोग्य महल बनाये, पश्चिम दिशामें नवनारु नवकारुके घर बनाये, उत्तर दिशामें व्यौपारियोंके निवासस्थान किये, नगरीके मध्यमें एक-बीस मंजलोंका त्रैलोक्य-विभ्रमनामका प्रासाद श्रीऋषभदेवजीके रहनेके लिये एक सौ आठ जालीसहित बनाया और भी बहुत जिन मन्दिर सहित विनीता नगरी स्थापित की. जन्मसे बीसलाख पूर्व वर्ष व्यतीत हुए तब इन्द्रने राज्याभिषेक किया, देवदूष्यवस्त्र पहिनाये भगवान्के शरीरमें चन्दनका विलेपन किया. इस प्रकार विनीता नगरीमें श्रीऋषभदेवस्वामीको राज्यमें स्थापित करके धनद सहित इन्द्र अपने स्थान गया।

अब श्रीऋषभदेवजीने मनुष्योंके योग्य हाथी, घोडे, बैल वगैरह वस्तुओंका संग्रह किया, पीछे चार वर्णोंकी स्थापना की, नगरीकी रक्षाके लिये कोतवाल बनाये उनका उग्रवंश हुआ १, जिनको गुरुरूपसे स्थापित किये

उनका भोगवंश हुआ २, जिनको मित्र रूपसे स्थापित किये, उनका राज्यवंश हुआ ३, जिनको सेवकरूपसे स्थापित किये, वे क्षत्रिय कहलाये ४, अठारह वर्णोंकी स्थापना की, भरतके साथमें जन्मी हुई ब्राह्मीको बाहुबली के साथ परणाया, और बाहुबलीके साथ जन्मी हुई सुन्दरी भरतको परणाई. भरतने स्त्रीरत्नके लिये रक्खा. इस प्रकार श्रीऋषभदेव भगवान्‌ने युगलिया–धर्मका निवारण किया। अब कालके वशसे कल्पवृक्ष नष्ट प्रभाव हुए, युगलिये भूखसे बहुत दुःखी होने लगे, कन्द–मूल–फल–पत्रादि खाते वहभी पचता नहीं था, जब भगवान्‌ने चाँवल उत्पन्न हुए देखे तो उनको लेकर; हाथसे मसलकर, चाँवल निकालकर युगलियों को दिये, उनके खानेसेभी पेट दुःखने लगा. कल्पवृक्षके दिये हुए मनोज्ञ भोजन करने वाले युगलियोंको कच्चे अन्न-फल-फूलभी पाचन नहीं होते, तब युगलिये आकर ऋषभदेवस्वामीको अपना दुःख दिखाते. भगवान् भी उनके पेटपर अपना हाथ स्पर्श करके पीड़ारहित करते. कल्पवृक्षों के विना युगलिये अत्यन्त दुःखी हुए. उस समय वनमें अग्नि उत्पन्न हुई, पहले अठारह कोडा-कोडी सागरोपम तक भरतक्षेत्रमें बादर अग्नि नहीं था. अपूर्व निर्मल आश्चर्यकर पदार्थको देखकर युगलियोंने उसके लेनेको हाथ डाले, हाथ अग्निसे जले तब श्री

ऋषभदेवजीको अपने जले हुए हाथ दिखाये. भगवान्ने अग्निका उत्पन्न होना जानकर युगलियोंसे कहा— अब कन्दमूल-फल-पुष्पादि अग्निमें पका कर खाना. यह सुनकर युगलिये कन्दमूलादि अग्निमें डालते, परन्तु वापिस नहीं ले सकते, वे अग्निमें ही भस्म हो जाते, तब युगलिये ऋषभदेवजीसे पुकार करते— हे स्वामिन् वह अग्नि तो हमसेभी अधिक भूखी है, हम जो पकानेको डालते हैं वह सब खाजाती है हमको वापिस नहीं देती, इस प्रकार कहकर युगलिये भूख से दुःखित अपना पेट दिखाकर रोने लगे. तब श्रीऋषभदेव स्वामी हाथी पर बैठ कर नगर के बाहर गये, युगलियों के पाससे तलाव की गीली मिट्टी मंगवाकर, हाथीके कुंभस्थलपर मिट्टीकी हांडी बनाकर, अग्निमें पका कर, उसमें जल और अन्नका प्रमाणसे पाकविधि दिखाकर भोजन तैयार करके वह भोजन युगलियोंको कराया, उसके बाद सर्वत्र पाकविधि लोगोंमें प्रकट हुई. श्रीऋषभदेव स्वामीने कुम्हारका कर्म १, लोहारका कर्म २, चित्रकारका कर्म ३, खाती (सुथार) का कर्म ४, और नाईका कर्म ५. यह पांच शिल्प प्रकट किये, इनके भी एक २ के बीस २ भेद करके सौ भेद दिखलाये. और ब्राह्मीको दक्षिण हाथसे अठारह प्रकारकी लिपियें दिखाईं—हंसलिपी १, भूतलिपी २, यक्षलिपी ३, राक्षसीलिपी ४, यावनीलिपी ५, तुरकीलिपी ६,

कीरीलिपी ७, द्रविडीलिपी ८, सैंधवीलिपी ९, मालवीलिपी १०, नड़ीलिपी ११, नागलीलिपी १२, लाटीलिपी १३, पारसीलिपी १४, अनिमित्तीलिपी १५, चाणक्कीलिपी १६, मौलदेवीलिपी १७, उड्डीलिपी १८. देवविशेषसे औरभी लिपियाँ हुई हैं— जैसे, लाटी १, चौड़ी २, डाहली ३, कानड़ी ४, गूर्जरी ५, सौरठी ६, मरहठी ७, कौंकणी ८, खुरासानी ९, मागधी १०, सिंहली ११, हाडी १२, कीडी १३ हम्मीरी १४, परती १५, मसी १६, मालवी १७, महायोधी १८, इत्यादि लिपियोंके साथ ही साथ भगवान्ने अंकोंकी गणितकला भी दिखाई, और वाम हाथसे सुन्दरीको भी लिखनेकी लीपियें बताई ।

तिस काल तिस समय में आदीश्वर भगवान् विचक्षण, प्रातिज्ञा का निर्वाह करने वाले, सर्व गुण पूर्ण, अलिप्त, भद्रक, सरल स्वभावी, विनीत, बीसलाख पूर्व वर्ष कुमारावस्थामें रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष राज्य भोगा. लिखनेकी कलासे लेकर गणितप्रधान पुरुषोंकी बहत्तर तथा स्त्रियोंकी चौंसठ कला प्रकट करके सबको सिखलाई, सौ शिल्प, सौ विज्ञान बतलाये और सेवा, व्यौपार, खेती वगैरह तीन प्रकारकी उदर वृतिका उपाय सर्व प्रजाको बतलाया. सौ पुत्रों को राज्य में स्थापित किये. अब पुरुषों की ७२ कला कहते हैं— लिखने की कला १, पढ़ने

की कला २, गणित कला ३, गीत कला ४, नृत्य कला ५, ताल बजानेकी० ६, पटह बजानेकी० ७, मृदंग बजाने की० ८, बीणा बजानेकी कला ९, वंश परीक्षा १०, भेरी परीक्षा ११, गजशिक्षा १२, अश्व शिक्षा १३, धातु वाद् १४, दृष्टिवाद् १५, मन्त्रवाद् १६, वृद्धका जवान करना १७, रत्न परीक्षा १८, स्त्री परीक्षा १९, नर परीक्षा २०, छन्दबन्धन २१, तर्कवाद् २२, नीतिविचार २३, तत्त्वविचार २४, कवि-शक्ति २५, ज्योतिष्शास्त्रज्ञान २६, वैद्यकशास्त्रज्ञान २७, षट्भाषाज्ञान २८, योगाभ्यास २९, रसायणविधि ३०, अंजनविधि ३१, अष्टादशलिपीज्ञान ३२, स्वप्नलक्षणज्ञान ३३, इन्द्रजाल दिखाना ३४, कृषिज्ञान ३५, व्यौपारकी विधि ३६, नृपसेवा ३७, शकुनविचार ३८, वायुस्तंभन ३९, अग्निस्तंभन ४०, मेघवृष्टि ४१, विलेपनविधि ४२, मर्दनविधि ४३, ऊर्ध्वगमन ४४, घटबन्धन ४५, घटभ्रमन ४६, पत्रछेदन ४७, मर्मभेदन ४८, फलाकर्षण ४९, जलाकर्षण ५०, लोकाचार ५१, लोक रंजन ५२, जिन वृक्षोंके फल नहीं लगते हों, उनके फल लगादेना ५३, खड्ग बन्धन ५४, क्षुरीबन्धन ५५, मुद्राविधि ५६, लोहज्ञान ५७, दन्तसमारण ५८, कालज्ञान ५९, चित्रकला ६०, बाहुयुद्ध ६१, मुष्टियुद्ध ६२, दंडयुद्ध ६३, दृष्टियुद्ध ६४, खड्गयुद्ध ६५, वाक्युद्ध ६६, गारुडी विद्या

६७, सर्पदमन ६८, भूतदमन ६९, योग–द्रव्यानुयोग–अक्षरानुयोग–औषधानुयोग ७०, वर्षज्ञान ७१, नाममाला ७२, इत्यादि पुरुषोंकी ७२ कलायें भगवान् ने भरत-बाहुबली आदि को बतलाईं.

अब स्त्रियोंकी चौंसठ कला कहते हैं—नृत्यकला १, औचित्यकला २, चित्रकला ३, वादित्रकला ४, मन्त्र ५, तन्त्र ६, ज्ञान ७, विज्ञान ८, दंड ९, जलस्तंभन १०, गीतगान ११, तालमान १२, मेघवृष्टि १३, फलाकृष्टि १४, बगीचा लगाना १५, आकारगोपन १६, धर्मविचार १७, शकुनविचार १८, क्रियाकल्प १९, संस्कृतजल्पन २०, प्रासादनीति २१, धर्मनीति २२, वाणिवृद्धि २३, सुवर्णसिद्धि २४, सुगन्धतेल २५, लीलासंचरन २६, हाथी घोड़ोंकी परीक्षा २७, स्त्री-पुरुषलक्षण २८, सुवर्ण रत्नभेद २९, अष्टादश लिपीका जानना ३०, तत्कालबुद्धि ३१, वस्तुसिद्धि ३२, वैद्यकाक्रिया ३३, कामक्रिया ३४, घटभ्रमन ३५, सारपरिश्रम ३६, अंजनयोग ३७, चूर्णयोग ३८, हस्तलाघव ३९, वचनपाटन ४०, भोज्यविधि ४१, वाणिज्याविधि ४२, मुखमंडन ४३, शालीखंडन ४४, कथाकथन ४५, पुष्पग्रन्थन ४६, वक्रोक्तिजल्पन ४७, काव्यशक्ति ४८, स्फारवेष ४९, सकल भाषाविशेष ५०, अभिधानज्ञान ५१, आभरणपरिधान ५२, नृत्योपचार ५३, गृहाचार ५४, शाठ्यकरण ५५,

परानिराकरण ५६, धान्यरंधन ५७, केशबन्धन ५८, वीणादिनाद ५९, वितंडावाद ६०, अंकविचार ६१, लोकव्यवहार ६२, अन्ताक्षरिका ६३, प्रश्नप्रहेलिका ६४, इत्यादि कला ब्राह्मी, सुन्दरी आदिको दिखाई. अब ऋषभदेव स्वामी ने सौपुत्रों को अपने २ नामके देश बसा कर राज्य दिया. उन पुत्रोंके नाम कहते हैंः—भरत १, बाहुबली २, श्रीमस्तक ३, अंगारक ४, मलदेव ५, अंगज्योति ६, मलयदेव ७, भार्गवतीर्थ ८, वंगदेव ९, वसुदेव १०, मगधनाथ ११, मानवर्तिक १२, मानयुक्ति १३, वैदर्भदेव १४, वनवासनाथ १५, महीपक १६, धर्मराष्ट्र १७, मायकदेव १८ आस्मक १९, दंडक २०, कलिंग २१, ईषिकदेव २२, पुरुषदेव २३, अकलदेव २४, भोगदेव २५, विमलभोग २६, गणनाथ २७, तीर्णनाथ २८, अमोदपति २९, आयुर्वीर्य ३०, वल्लीवसु ३१, नायक ३२, कांक्षिक ३३, आनर्तक ३४, सारिक ३५, गृहपति ३६, कुरुदेव ३७ कच्छनाथ ३८, सौराष्ट्र ३९, नर्मद ४०, सारस्वत ४१, तापसदेव ४२, कुरु ४३, जंगल ४४, पंचाल ४५, शूरसेन ४६, पुटदेव ४७, अकलंकदेव ४८, काशीकुमार ४९, कौशल्य ५०, भद्रकाश ५१, विकाशक ५२, त्रिगर्त्तक ५३, आवर्ष ५४, शाल्लुक ५५, मत्स्यदेव ५६, कुलीयक ५७, मुषकदेव ५८, बाल्हीक ५९, कांबोज ६०, मधुनाथ ६१, सान्द्रक ६२, आत्रेय ६३, यवन ६४, आभीर

६५, वानदेव ६६, वानस ६७, कैकेय ६८, सिन्धु ६९, सौवीर ७०, गन्धार ७१, काष्टदेव ७२, तोषक ७३ शौरक ७४, भारद्वाज ७५, शूरदेव ७६, प्रस्थान ७७, कर्णक ७८, त्रिपुरनाथ ७९, अवन्तिनाथ ८०, चोदिपति ८१, किष्कन्द ८२, नैषद ८३, दशार्णनाथ ८४, कुसुमवर्ण ८५ भूपालदेव ८६, पालप्रभु ८७, कुशल ८८, पद्म ८९, महापद्म ९०, विनिद्र ९१, विकेश ९२, वैदेह ९३, कच्छपति ९४, भद्रदेव ९५, वज्रदेव ९६, सान्द्रभद्रक ९७, सेतज ९८, वज्रनाभ ९९, अंगदेव १००, इन पुत्रोंको अलग अलग देशोंका राज्यदेकर, विनीता नगरी का राज्य भरतको और बहुली देशमें तक्षशिला नगरीका राज्य बाहुबलीको दिया और सर्व प्रकारकी लोकस्थिति का व्यवहार बतलाया, जिससे प्रजापति ❀ (ईश्वर) कहलाये ।

❀ भक्तजन अपने परिश्रम से कर्मानुसार कार्य्य सफल करते हैं तोभी राजा, महाराजा, माता, पिता और गुरु आदिका विनयके लिये आपके प्रतापसे यह मेरा कार्य्य हुआ इत्यादि भक्ति वश कहते हैं, यह सज्जन प्रवृत्ति है । राजा, महाराजा आदि ऐश्वर्ययुक्त सम्पत्तिशाली पुरुषों को भी ईश्वर कह सकते हैं । ऋषभदेव स्वामी ने प्रथम ही संसार व्यवहार चलाया और गृहवास व राग द्वेष आदि का त्याग धर्म बतलाकर आत्मिक गुण प्रकट करने वाला मुक्ति मार्ग चलाया। आप स्वयं ही तप-ध्यानादि से जन्म-मरणके हेतु भूत कर्म और शरीर आदिका क्षय करके अशरीरी हुए, मुक्तिमें गये । जिससे इनको ईश्वर, आदीश्वर कहते हैं. इस बातको समझे विना ही लोगोंने जगत्‌का कर्त्ता ईश्वर मानकर कल्पना जालसे तर्क-वितर्क करके बडे २ विवाद खडे कर दिये हैं । कई कहते हैं कि चौर चौरी स्वयं करताहै, परन्तु उसका दंड

अब स्वामी के पांच नाम हुए, सो कहते हैं:—ऋषभदेव १, प्रथम राजा २, प्रथम भिक्षाचर ३, प्रथम केवली ४, प्रथम तीर्थंकर ५. अब भगवान् दीक्षा लेकर, तप करके, केवल ज्ञान प्राप्त कर बहुत भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर मोक्ष गये, उसका अधिकार कहते हैं:— लौकान्तिक देवोंने आकर इष्टवाणियों से भगवान् को दीक्षा लेनेकी विनती की. उस समय प्रायः निर्धनता नहीं थी, तथापि दान धर्म की मर्यादा दिखाने के लिये भगवान्ने एक वर्ष तक स्वर्ण रत्न और अन्न आदिका दान दिया. भगवान् सम्वत्सरी दान देकर उष्ण

राजा देताहै. उसी तरह जीव भी शुभाशुभ कर्म स्वयं करता है, परन्तु उसका फल ईश्वर देता है। इस बात पर दूसरे कहते हैं- राजा तो प्रजा से द्रव्य लेता है उसके बदले में प्रजा की चिन्ता करने वाला नौकर कहा जाता है और ईश्वर के शरीर नहीं है और कुछ स्वार्थ भी नहीं है जिससे वह राजा की तरह जगत् की चिंता करने वाला नौकर नहीं बन सकता। और अशरीरी के मन नहीं होता, मनके विना इच्छा नहीं होती, इच्छा के विना कोई कार्य्य नहीं बन सकता. और जहां इच्छा आदि सांसारिक कार्य्यों की माया जाल लगी है, वहां ईश्वरता नहीं हो सकती. और पहले प्राणियों से पाप-कर्म करवाकर फिर पीछे जीवों को दुःखमें डालने का अन्याय ईश्वर कभी नहीं कर सकता, इसलिये मुक्तात्मा ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानकर ऐसे दोष लगाना ठीक नहीं, किन्तु काल, स्वभाव आदि संयोगोंसे जीव और पुद्गल का व्यवहार अनादि काल से संसार में चला आता है। और जिस तरह नशा किये बाद समयांतर में उसका विपाक उनको स्वयं उदयमें आता है, इसी तरह जीवों के किये हुए कर्म भी उनकी स्थिति पूर्ण होने से काल-स्वभाव आदि निमित्त पाकर स्वयं उदयमें आते हैं, इसमें किसीका हस्तक्षेप नहीं हो सकता। ईश्वरवाद का विशेष निर्णय "जैन तत्त्वादर्श" आदि ग्रन्थों में देख लेना।

कालके पहिले महीने की पहिले पक्ष की चैत्रवदी अष्टमी को दोपहरके बाद सुदर्शना नामक शिविकामें बैठ कर देवता और मनुष्यों सहित श्रीमहावीर स्वामीके दीक्षा महोत्सव जैसे आडंबरसे विनीता नगरी के मध्य में होकर, सिद्धार्थ नामक उद्यानमें अशोक वृक्षकी छायामें आकर पालखीसे नीचे उतरे. सर्व आभूषण वगैरह त्याग कर चार मुष्टि लोच किया, उस समय गौरवर्ण पीठ व कन्धों पर पांचवीं मुष्टि के श्याम और सुन्दर केशों को देखकर इन्द्रने भगवान्‌से विनती की हे स्वामिन् ! ये केश रमणीक दिखाई देते हैं, इनको इसी तरह रहने दें. तब इन्द्रकी विनती से भगवान्‌ने पांचवीं मुष्टिका लोच नहीं किया (इसीसे अब भी श्री आदीश्वर की प्रतिमाके पृष्ट भागमें और कन्धों पर पांचवीं मुट्ठी के केश रक्खे जाते हैं). जब उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्रका योग आनेसे भगवान् ने दीक्षा ली, तब जल रहित दो उपवास किये थे, और उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रीय वंशके चार हजार राजाओं ने भी श्रीऋषभदेव स्वामी के साथ दीक्षा ली, दीक्षावसरमें इन्द्रने भगवान् के बांये कन्धेपर एक देवदूष्य वस्त्र (रत्न कंबल) रक्खा. भगवान् गृहस्थावासका त्यागकर अनागार हुए, उस समय भगवान् को चौथा मनपर्य्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

तिस काल तिस समयमें ऋषभदेव अर्हन् कौशलिकने एक हजार वर्ष तक लगातार शरीरकी शुश्रुषाका त्याग किया, ग्रामानुग्राम विहार करते रहे, चार हजार मुनि भी भिक्षा के लिये फिरे परन्तु भिक्षा नहीं मिलने से कन्दमूल–फलादि खाकर, भोजपत्र वगैरह के वस्त्र पहिनकर वनमें रहने लगे. लज्जासे वापिस घर नहीं गये, उन्होंसे तापस धर्म प्रकट हुआ, तोभी स्मरण–ध्यानतो ऋषभदेव भगवान्का ही करते रहे. जब भगवान् को केवलज्ञान हुआ तब फिरसे भगवान्के पास दीक्षा लेकर कर्मक्षय करके मुक्तिमें गये. और कच्छ–महाकच्छको भगवान्ने पुत्र रूपसे माने थे, उनके पुत्र नमि–विनमि किसी कार्य के लिये परदेश गये थे. पीछे से भगवान् ने सर्व पुत्रों को राज्य दिया, परन्तु उनके लिये कुछभी राज्यका विभाग नहीं रक्खा. दीक्षा लेने के बाद वे आये, और भरतसे पूछा हमारे पिता ऋषभदेव कहां हैं. भरतने कहा स्वामीने दीक्षा ली है, अब तुम मेरी सेवा करो. मैं तुमको देश ग्रामादि दूँगा. तब उन्होंने भरतका वचन नहीं मानकर, राज्यके लिये स्वामी के पास आये, भगवान्के विहारमें आगे २ काँटा, कंकर वगैरह दूर करते, काउसग्गमें खडे हुए भगवान् के डांश, मच्छर वगैरह उडाते और प्रातः कालमें वंदना पूर्वक–"हे स्वामिन् ! राज्य दो" ऐसा कहते हुए हमेशा

सेवा करने लगे। एकदा धरणेन्द्र भगवान्के दर्शन करनेको आया, उनकी भक्ति देखकर तुष्टमान हो करके दोनों को ४८ हजार पठित सिद्ध विद्या दी, सौलह विद्यादेवियोंकी आराधना बतलाई. वैताढ्य पर्वतपर दक्षिण-श्रेणि में रथनुपुर-चक्रवाल वगैरह ५० नगर, और उत्तर-श्रेणिमें गगन-वल्लभ वगैरह ६० नगर बनाकर दिये, और वहां विद्याके बलसे लोगों को बसाकर जितने नगर उतने ही देश स्थापित करके नमि-विनमि विद्याधर राजा अलग २ राज करते रहे। इसके बाद भगवान् ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, भिक्षाके लिये फिरते परन्तु किसी पूर्व-भवमें बैलके मुँहपर छींका बांधने से अन्तराय कर्म उपार्जन किया था, उस कर्म के उदयसे भगवान् जिधर २ गये वहां २ पर हाथी-घोड़े-रथ-कन्या-मणि-मोती-सौना वगैरह के लिये लोगों ने प्रार्थना की, परन्तु शुद्ध आहार किसीने नहीं दिया। इस तरह जब एक वर्ष होगया. तब उस कर्म के क्षय होने से हस्तिनापुर नगरमें बाहुबली के पुत्र सोमयशा राजा, उनके पुत्र श्रेयांस कुमारने रात्रिमें ऐसा स्वप्न देखा कि मेरुपर्वत मैला हो गया था, मैंने दूधसे धोकर निर्मल किया १, उसी रात्रिमें सोमयशा राजाने भी स्वप्न देखा कि— वैरियों से पराभव पायाहुआ कोई सुभट श्रेयांस कुमार की सहायतासे विजयको प्राप्त हुआ २, उसी नगरमें नगरसेठको

भी स्वप्न आया—सूर्य्यकी किरणें गिरने लगीं, उनको श्रेयांसकुमार ने पीछे जोड़ दीं. प्रातःकाल सबने राज्य सभामें आकर अपने २ स्वप्न कहे और बोले श्रेयांसकुमारको आज कोई महान् लाभ होगा. ऐसा कहकर वे सब अपने २ घर गये. उसी समय भगवान् आहारके लिये नगरमें आये, तब लोगोंने आहारके सिवाय अन्य वस्तुओंको लेनेकी प्रार्थना की. श्रेयांसकुमारने गोखमें बैठेहुए श्रीऋषभदेवस्वामीको देखे. जिनमुद्रा देखनेसे श्रेयांसको जातिस्मरणज्ञान हुआ. तब श्रेयांसकुमार साधुओंको आहार देनेकी विधि जानकर भगवान्के पास आया, तीन प्रदक्षिणा देकर, वन्दना करके आहार लेनेकी विनती की और उसी वक्त आये हुए इक्षु रससे भरे हुए घड़े लेकर वहोराने लगा. स्वामीने भी शुद्ध आहार जानकर दोनों हाथ पसारे ।

अब कविकल्लोलसे हाथोंका विवाद कहते हैं:—भगवान्ने हाथ पसारे उस समय पहले वाँया हाथ दाहिने हाथसे बोला. हे वाम हस्त ! तू भिक्षा मांग—मैंनेतो दान दियाहै, मैं दातारके आगे लेनेको कैसे जाऊँ, मैं तो निरन्तर ऊपर रहता हूं, तो इस वक्त नीचे कैसे होऊँ. राज्यस्थापन, देवपूजन, नाटकविधि, व्याख्यान देना इत्यादि पवित्र कार्यों में मैं हीं प्रधान हूँ, इसके अलावा याचनाके समान नीच कार्य कोई भी नहीं है और अपवित्र कार्य भी

तू ही करता है, इसलिये भिक्षाभी तू ही मांग, यह सुनकर दाहिना हाथ ईर्षा करके बोला—अरे बायें हाथ ! उदर भरनेमें तत्पर कैसे मान करताहै, अरे ! कायर बाण फैंकने, ढाल लेने, और संग्राम आदि कठिन कार्य्यों में आगे मैं जाता हूँ। तू वहाँसे पीछे भाग जाताहै, तू मुझको नीच कर्म करने वाला कैसे कहता है, अपना नीचपना नहीं जानता, मींठी २ बातें करता है, नीच तू ही है, तू भिक्षा मांग. इस प्रकार दोनों हाथोंको विवाद करते एक वर्ष हुआ, तब भगवान्‌ने दोनोंका विवाद इस प्रकार कह करके मिटाया— हे वाम हस्त ! तू शुभ कार्य्य उत्पन्न करताहै, और दाहिना हाथ दानादि देकर सफल करता है, संयोगसे सिद्धिहै अकेले कभी नहीं रहना, दोनोंको मिलकर कार्य्य करना चाहिये. भगवान्‌का ऐसा वचन सुनकर दोनों हाथ इकट्ठे हुए. भगवान् ने प्रासुक इक्षुरस लेनेको हाथ पसारे. इस विषयमें कवि कहते हैं— श्रेयांसके सदृश चित्त, इक्षुरसके जैसा दान योग्य पदार्थ, श्रीऋषभदेवस्वामी के समान पात्र, ये तीन—चित्त १, वित्त २ और पात्र ३, महान् पुण्यसे मिलते हैं. श्रेयांसने भगवान्‌को इक्षुरस वहोराया, भगवान्‌ने कर पात्रसे पारणा किया. यहांपर कोई कहेंगे:— भगवान् के हाथों से इक्षुरस का छींटा पडनेसे अयतना नहीं होती ? उसपर कहते हैं—

"माइज्ज घडसहस्स, अहवा माइज्ज सायरा सव्वे ॥ एयारिसि लद्धीओ, सा पाणिपडिग्गही भयवं ॥ १ ॥"

हजारों घड़े हाथोंमें आजावें, अथवा सर्व समुद्रों का जल हाथोंमें अजावे, तो शिखा ऊँची चढे, परन्तु विन्दु मात्रभी नीचे नहीं गिरे, ऐसी पाणिपात्रिकी लब्धि तीर्थंकरके होती है. आवश्यक सूत्रमें कहाहैः–भगवान् के हाथों में एक सो आठ घड़ोंका रस श्रेयांस ने वहोराया. अब उस दानसे क्या फल हुआ, सो कहते हैं– देवोंने "अहो दानं! अहो दानं", ऐसी उद्‌घोषणा की. आकाशमें देवदुन्दुभियाँ बजीं, चारों निकायोंके देव आये, साढे बारह करोड सौनैयों की वर्षा हुई. श्रेयांसकुमार का घर धनसे भरा. तीन जगत् यशसे भरे. भगवान् ने इक्षुरस से वर्षी तपका पारणा किया. श्रेयांसने सुपात्र दानसे मोक्षका अक्षय फल उपार्जन किया, और उसी दिनसे लोगोंमें 'अक्षय तीज' पर्व हुआ. जहां भगवान् का पारणा हुआ, वहां रत्नोंका चबूतरा बनाया, श्रीआदीश्वर भगवान्का प्रथम पारणा इक्षुरस से हुआ, अन्य तीर्थंकरोंका पहला पारणा परमान्नसे हुआ. जब सर्व लोगों ने श्रेयांससे पूछा–हम तो आहार देना नहीं जानते थे. आपने यह कैसे जाना कि भगवान् आहारके लिये पधारे हैं. तब श्रेयांसने भगवान् का और अपने आठ भवोंका सम्बन्ध कहा. जब भगवान्का जीव ललितांग देव था

तब मैं स्वयंप्रभा देवी थी १, जब स्वामी वज्रजंघ राजा हुए थे, तब मैं श्रीमती रानी थी २, इसके बाद हम दोनों युगलिये हुए ३, सौधर्म देवलोक में दोनों मित्र देव हुए ४, स्वामी वैद्य हुए, तब मैं मित्र था ५, अच्युत देवलोक में मित्र देव हुए ६, स्वामी वज्रनाभ चक्रवर्ती हुए थे तब मैं सारथी हुआ था ७, वहां तीर्थंकरके पास दीक्षा ली थी, वह स्वरूप, इस वक्त भगवान् के दर्शनसे मुझको जाति स्मरण ज्ञान हुआ, जिससे याद आया ८. तब मैंने जाना कि भगवान् आहार के लिये फिरते हैं, इसलिये इनको शुद्ध आहार देना. ऐसा सुनकर सर्व लोगोंने आहार देनेकी विधि जान ली।

अब श्रीऋषभदेव स्वामी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए बहुली देशमें बाहुबली की तक्षशिला राजधानी के समीप वनमें संध्या समय आकर काउसग्गमें रहे. वनपालकने आकर बाहुबलीको बधाई दी. बाहुबली ने विचारा कि– प्रातः समय बडे महोत्सव से पिताजी के दर्शन करूंगा. ऐसा विचार कर चार प्रकारकी सैना तैयार कराई और अन्तःपुरियों के शृंगार करवाये, जिसमें बहुत समय लगा. वायुके जैसे अप्रतिबद्ध विहारी भगवान्ने सूर्य्योदय में विहार किया. पीछे बाहुबली बडे आडम्बर के साथ वंदना करने को आया, तमाम

वनमें फिरा. भगवान्‌को नहीं देखे, बहुत उदास हुआ, और विचार किया कि मैं शामको आता तो भगवान् के दर्शन करता. इसके बाद उसने कानोंमें अंगुली डालकर ऊँचे स्वरसे 'बाबा आदम' किधर पधारे. ऐसी पुकार की. जहां भगवान् काउसग्गमें रहे थे, वहां रत्नमय चबूतरे पर भगवान्‌के चरण कराये, धर्मचक्र प्रासाद बनाया और हमेशा दर्शन-पूजन करने लगा.

श्रीऋषभदेव स्वामी के दीक्षा लेनेके अनंतर माता मरुदेवी भरतको उपालम्भ देने लगी, हे भरत ! मलान पुष्पोंकी माला जैसी मुझको छोड़कर ऋषभ गया, सर्व ऋद्धिका त्याग करके अकेला वनवासी हुआ, जो क्षुधा-तृषा से पीड़ित होगा, श्मशान, पर्वतकी गुफ़ा वगैरह स्थानोंमें रहता हुआ शीत, वायु, वर्षा, आताप, डांश, मच्छरोंसे पीड़ा पाता होगा. मैं तो पुत्रको दुःखी सुनकर मरती भी नहीं हूं—पृथ्वीपर मेरे जैसी कोई दुःखी नहीं है. हे भरत ! तू राज्यके सुखमें लोभी हुआ है, जो मेरे पुत्रकी कभी खबर भी नहीं मंगाता. तुम सब भाई नित्य षट्रस सुंदर भोजन करते हो. मेरा पुत्र तो घर २ में नीरस भिक्षा मांगता होगा. तुम रेशम वगैरह के वस्त्र पहनते हो, मेरा पुत्र तो नग्न रहता होगा. तुम हंसतूल वगैरह की शय्यापर सोते हुए, चंवरोंसे वींजाते हुए सुस्वर गीत

ध्वनि सुनते हुए रात्रि व्यतीत करते हो, मेरा पुत्र तो ऊँची नीची भूमिपर डाभ वगैरह पर सोता हुआ अथवा काउसग्ग ध्यानमें खड़ा हुआ वननिकुंजमें वायुसे पीड़ित कानों में मच्छरोंका भनकार सुनता हुआ रात्रि व्यतीत करता होगा. मेरा पुत्र ऋषभ जैसा दुःखी और कोई भी नहीं है. पहले यह सब ऋद्धि मेरे पुत्रकी थी, परन्तु तुम सब भाइयोंने इकट्ठे होकर मेरे पुत्रका राज्य लेकर उसे देशसे निकाल दिया, उसकी तुम कभी खबर भी नहीं लेते हो. इस प्रकार हमेशा भरतको उपालम्भ देती हुई, अश्रुपातपूर्वक रोती हुई मरुदेवीके नेत्रों में पटल आगये, तब भरत कहने लगा हे माताजी ! दुःख मत करो, आपके पुत्र ऋषभदेव बहुत सुखी हैं, मरुदेवीने कहा—मुझको दिखाओ. भरतने कहा—यहां आवेंगे तब दिखाऊँगा ।

अब भगवान् तप-संयम में अपनी आत्माको भावन करते हुए एक हजार वर्ष तक विदेशमें विहार कर घन-कर्मोंका क्षय करके केवल ज्ञान पाये सो कहते हैं—शीत कालके चौथे महीने के सातवें पक्ष की फाल्गुन एकादशी के दिन दो पहर में पुरिमताल नगरके बाहर शकटमुख उद्यान में वट वृक्षके नीचे उत्तराषाढा चन्द्रमा का योग आने से शुक्ल ध्यान ध्याते हुए जल रहित तीसरे उपवासमें श्रीऋषभदेव स्वामी

को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ. तब भगवान् जीवाजीवादि षड्द्रव्यों के भाव जानने वाले तथा देखने वाले हुए. उसी समय भरत राजाकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ. केवलज्ञान और चक्ररत्न की बधाई देने वाले दो पुरुषोंने एकही समयमें आकर बधाई दी. भरत राजाने दोनोंको इनाम देकर विदा किये. बादमें भरतने विचार किया–पहले किसका उत्सव करूँ. थोडे समयमें विचार करके निर्णय किया कि उभय लोक सुखदायक पिताजी की पूजा करनेसे चक्रकी पूजा हो ही चुकी अथवा धर्म के लिये सर्व काम छोड देने चाहियें. ऐसा विचार कर मरुदेवी के पास आकर बोला– हे माताजी ! आप मुझको हमेशा उपालम्भ देती थीं कि तू मेरे पुत्र की खबर भी नहीं मंगाता है, सो आज आपके पुत्र यहां आये हैं, उनकी महिमा दिखाऊं. ऐसा कहकर श्रीमरुदेवी माताको हाथीके होदेपर बैठाया, स्वयं भी पीछे बैठे और बडे आडम्बरके साथ चले. मार्ग में आती हुई मरुदेवी ने देव-दुन्दुभि का शब्द सुनकर भरतसे पूछा ये वाजिंत्र किधर बजते हैं. भरतने कहा– आपके पुत्रके आगे देवता बजाते हैं. मरुदेवी ने सत्य नहीं माना. वहांसे आगे चलती हुई मरुदेवीने देव-देवियों का बडा कोलाहल सुना, और भरत से पूछा–यह कोलाहल कहां होता है ? भरत बोला– आपके पुत्रकी सेवा

के लिये इन्द्रादि देव आते जाते हैं, उन्होंका यह शब्द है. मरुदेवीने तब भी नहीं माना. फिर भी भरतने कहा आपके पुत्रका सौने, चांदी, रत्नोंका समोवसरण देखोगे, तब तो मानोगे. उसका वर्णन में नहीं कर सकता. तब भरतका ऐसा वचन सत्य माना और योजन-गामिनी भगवान्की वाणी सुनने में आई, देखनेका हर्ष उत्पन्न हुआ, हर्षसे अश्रुधारा छूटी, हाथों से नेत्रों को मसले, पटल दूर होगये. तब मरुदेवीने साक्षात् सर्व समोवसरण का स्वरूप और तीर्थंकरका महात्म्य देखा. उसे देखकर विचार किया—अहो ! मोह सहित जीवको धिक्कार हो, सर्व जीव स्वार्थी हैं. मैं तो जानती थी मेरा ऋषभ अकेला दुःखी होगा, जिससे भरतको हमेशा उपालंभ देती थी मैंने इसी दुःखसे अपने आंखों का तेजभी खो दिया. इसने तो मुझको कभी यादभी नहीं किया, संदेश भी नहीं भेजा. हे माता ! मेरी चिन्ता नहीं करना, मैं बहुत सुखी हूँ, जब यह मेरा दुःख नहीं जानता, तब मेरा एक पक्षका प्रेम किस कामका. यह वीतराग है, मैं सराग हूँ. ऐसा विचार करती हुई मरुदेवी माता बारह भावना भावती हुई, गुण स्थानों पर चढती हुई, क्षपक श्रेणिसे अन्तकृत केवली होकर हाथी के होदे पर ही मोक्ष गई। यहां कवि कहता है—श्रीऋषभदेव समान कोई सुपुत्र नहीं हुआ, कि जिसने एक हजार वर्ष तक तपकरके केवल ज्ञान

उत्पन्न कर माता को भेट दे दिया. और मरुदेवी के समान कोई माता भी नहीं हुई कि जो पुत्रको सिद्धिरूपी स्त्री का पाणी ग्रहण करने को उत्सुक देखकर उसका मिलाप कराने के लिये पहले ही आप मुक्ति नगरी गई. इसके बाद मरुदेवीका शरीर देवोंने क्षीर समुद्रमें वहाया. शोक-हर्ष सहित भरतको समझाकर इन्द्र समोवसरण में लाया. आदीश्वर भगवान्को वन्दना करवाई, भरतका शोक दूर हुआ. श्रीऋषभदेव स्वामीने धर्म देशना दी. देशना सुनकर भरत के पांचसौ पुत्र तथा सात सौ पौत्रों ने प्रतिवोध पाकर दीक्षा ग्रहण की. पुंडरीक पहला गणधर हुआ. बारह सौ कुमारों में मरीचिने भी दीक्षा ली. उस समय ब्राह्मी ने भी बाहुबलीसे पूछकर दीक्षा ली. सुन्दरी भी दीक्षा लेनेको तैयार हुई, परन्तु भरतने स्त्री रत्न जानकर दीक्षा की आज्ञा नहीं दी, तब श्राविका हुई, भरत श्रावक हुआ. इस प्रकार चतुर्विध संघकी स्थापना करके स्वामीने अन्यत्र विहार किया।

अब भरतने घर आकर आठदिन तक महोत्सव सहित पूजा करके चक्ररत्नकी आराधना की. बादमें चक्ररत्न चला. उसके पीछे सैना सहित भरत चक्रवर्ती भी चले, साठ हजार वर्षोंमें छः खंड साधन करके आये. सुन्दरीने दीक्षा लेनेकी भावनासे साठहजार वर्ष तक आंबिलका तप किया. दुर्बल शरीर हुआ देखकर भरतने सुंदरीको

दीक्षा की आज्ञा दी. भगवान्‌के पासमें जाकर सुन्दरीने दीक्षा ली. उस समय आयुधशालामें चक्ररत्न प्रवेश नहीं करने लगा. मन्त्रियोंसे उसका कारण पूछा, मंत्रियोंने कहा अपने भाइयोंको आपने वशमें नहीं किये, तब अठाणवें भाइयों को दूत भेज कर अपनी सेवा के लिये बुलाये. वे सर्व मिल कर अष्टापद पर ऋषभदेवस्वामी से पूछने गये. भगवान्‌ने नाशवान् द्रव्य राज्यका त्याग करके कर्मशत्रुओंको जीतकर मुक्तिका अक्षय राज्य प्राप्त कराने वाली देशना दी, वैतालीय अध्ययन सुनाया. उसको सुनकर प्रतिबोध पाकर सबने दीक्षा ली और केवली होगये. यह सब भरतने सुना, तोभी चक्ररत्न को आयुधशाला में प्रवेश करता नहीं देख कर मन्त्रियों के कहनेसे जबतक बाहुबली को नहीं जीता तबतक छः खंड साधन निष्फल हैं, ऐसा विचार कर भरतने सुवेग नामक दूतको बाहुबली को बुलाने के लिये लेख देकर तक्षशिला नगरी भेजा. सुवेग भी बाहुबलीके देशमें वनमें क्षेत्र की रक्षा करने वाले स्त्री पुरुषों को मधुर स्वरसे आनंदपूर्वक बाहुबली के गुणोंके गीत गाते हुए सुनकर और भरतका नाममात्र भी नहीं जानते हुए देख कर आश्चर्य पाया अनुक्रमसे तक्षशिला नगरी में बाहुबली की सभा में बाहुबलीको नमस्कार करके लेख दिया. बाहुबली भी भरतका कुशलप्रश्न पूर्वक लेख बांचकर अपनेको

बुलाया जान कर नाराज हुआ, अपमान करके दूतको निकाल दिया. दूत भी अपने प्राण लेकर भगा और शीघ्र भरतके पास आकर सर्व स्वरूप कहा. तब भरत अपने बडे पुत्र सूर्ययशाको सेनापति बनाकर सब सेना ले करके बाहुबलीके उपर चला. बाहुबली भी भरतको आता हुआ जानकर, अपने बडे पुत्र सोमयशाको सेनापति बनाकर सेना लेकर के अपने देशकी सीमातक सामने आया. दोनोंके १२वर्ष तक महान् संग्राम हुआ. बहुतसे देश उजड़ हुए. तब इन्द्रने यह स्वरूप जान कर, दोनों भाईयोंका युद्ध मिटाने के लिये आकर उपदेश दिया. पांच युद्ध स्थापित किये– दृष्टियुद्ध १, वचनयुद्ध २, बाहुयुद्ध ३, दंडयुद्ध ४, मुष्टियुद्ध ५, दोनों सेनाएँ शांतिसे अलग २ खड़ी रहीं. इन्द्रादि देव साक्षी होकर रहे. दृष्टि आदि चारों प्रकारके युद्धोंमें भरत हारा और बाहुबली जीता. पांचवें मुष्टि युद्धमें भरतने बाहुबली के मस्तक पर मुष्टिका प्रहार किया, जिससे बाहुबली गोड़ों तक पृथ्वी में धँस गया. पीछे निकलकर बाहुबली मुष्टि उठाकर भरतको मारनेको दौड़ा. भरत डरा, और बाहुबली को मारनेके लिये चक्र फैंका, परन्तु चक्र अपने गौत्रीका घात नहीं करता, इसलिये बाहुबलीको आलिंगन करके भरतके पास वापिस आया. भरत मनमें अति उदास हुआ, और मुष्टि उठाये हुए बाहुबली को आता हुआ देख

कर, क्या यह नवीन चक्रवर्त्ती मेरी सर्व ऋद्धि लेगा, ऐसा भरत विचार करने लगा. देव भी बाहुबली की सब युद्धों में जय होनेकी उद्घोषणा करने लगे. उसी समय बाहुबली के मनमें विचार उत्पन्न हुआ—यह मेरा बडा भाई राज्य सुखके लिये मारने योग्य नहीं है, धिक्कार हो ऐसे राज्यको जिसके लिये ऐसा अकार्य किया जाय, और मेरी मुष्टिभी निष्फल न जावे. ऐसा विचारकर वैराग्य भावसे मुष्टिको मस्तकपर रखकर लोच कर साधुजी होगये, और मुझको केवल ज्ञान उत्पन्न होगा, तब मैं काउसग्ग पारकर श्रीऋषभदेवस्वामीके पास समोवसरणमें जाऊँगा. ऐसा नियम करके वहींपर काउसग्गमें खड़े रहे. भरत भी बाहुबलीको नमस्कार करके, अपने अपराध की क्षमा कराकर बाहुबलीके पुत्रको बाहुबलीका राज्य देकर अयोध्या आया. बाहुबली-मुनिको काउसग्ग में खड़े हुए एकवर्ष हुआ. भूख-तृषासे शरीर सूख गया, तृण-लत्तादिसे वेष्टित होगये, पक्षियोंने दाढी-मूंछ-कान आदिमें माले डाल दिये, तोभी केवलज्ञान नहीं हुआ. अब ऋषभदेवस्वामीने बाहुबलीको केवलज्ञान नजदीक जान कर प्रतिबोधने के लिये ब्राह्मी-सुन्दरी साध्वी बहिनोंको भेजीं. उन्होंने बाहुबली के पास आकर, मधुर स्वर से "वीरा मारा गजथकी उतरो, गजचढ्यां केवल न होयरे" इत्यादि गीतध्वनि की. वह गीतध्वनि सुनकर,

मनमें विचार करने लगे मेरी बाहिन, ब्राह्मी-सुन्दरी कहती हैं हे भाई! हाथीसे नीचे उतरो. मैंने तो हाथी छोड दिये हैं. अहो! अब मैंने जान लिया, मैं मानरूपी हाथीपर चढ़ा हूँ. पहले दीक्षा लिये हुए मेरे छोटे भाई और भरतके पुत्र-पौत्रादिको कैसे वन्दना करूँ, यह मेरा अभिमान वृथाहै. धर्ममें अभिमान विनयका घात करने वाला है, पहले दीक्षा ली वे सब वंदनीय हैं, इससे साध्वियों का कहना सत्य है. ऐसा विचार कर मानको छोड कर वंदनाके लिये पैर उठाया, तत्काल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ. बाहुबली केवली समोवसरणमें केवलियोंकी पर्षदा में आये. ब्राह्मी-सुन्दरी भी स्व स्थान गईं. यह भरत बाहुबलीका संक्षेपसे संबंध कहा।

अब श्रीऋषभदेवस्वामीका परिवार कहते हैं–श्रीऋषभदेव अर्हन् कौशलिक के चौरासी गच्छ और चौरासी गणधर हुए. ऋषभसेन आदि चौरासी हजार साधुओंकी संपदा हुई, ब्राह्मी-सुन्दरी वगैरह तीन लाख साध्वियाँ हुई। श्रेयांस आदि तीन लाख पचास हजार श्रावकोंकी संपदा हुई, सुभद्रा आदि पांच लाख चौवन हजार श्राविकाओं की संपदा हुई. ऋषभदेव अर्हन्के चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वधारी सर्वज्ञ नहीं तोभी सर्वज्ञके समान हुए, नौ हजार अवधिज्ञानी हुए, बीस हजार केवलज्ञानी हुए, बीस हजार छः सौ वैक्रिय-

लब्धिधारी हुए, बारह हजार छः सौ पचास, अढाई द्वीप-समुद्रों में रहने वाले संज्ञि पंचेन्द्रीय जीवोंके मनोगत भावोंको जानने वाले मनपर्य्यवज्ञानी हुए, बारह हजार छः सौ पचास (जिन्होंके साथ इन्द्रादि देवभी वादमें नहीं जीत सकें ऐसे) वादी हुए. ऋषभदेव अर्हन्के अपने हाथसे दीक्षा दिये हुए बीस हजार साधु मोक्ष गये, चालीस हजार साध्वियाँ मोक्ष गईं. बाईस हजार नौ सौ पंचानुत्तरविमान वासी एकावतारी देव हुए. ऋषभदेव अर्हन् के दो प्रकार की अन्तःकृतभूमि हुई. एक युगान्तकृतभूमि, दूसरी पर्य्यायान्तकृतभूमि. श्रीऋषभदेवस्वामी के पट्टपरंपरामें असंख्याता राजा मोक्ष गये, श्रीअजितनाथस्वामी के पिता जितशत्रुराजा पर्य्यन्त मोक्षमार्ग चलता रहा, यह युगान्तकृतभूमि हुई और ऋषभदेवस्वामीको केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद अन्तर्मुहूर्त्तसे मरुदेवी माता मुक्ति गई. यह पर्यायान्तकृतभूमि हुई।

अब भगवान्के आयुःप्रमाणका और मुक्ति गमनका अधिकार कहतेहैंः—तिस काल तिस समयमें ऋषभदेव अर्हन् कौशलिक बीस लाख पूर्वतक कुमार अवस्थामें रहे, त्रेसठ लाख पूर्व तक राज्य भोग कर, त्रयासी लाख पूर्व तक गृहस्थावासमें रह कर, एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें दीक्षा पाल कर, एक हजार वर्ष

कम एक लाख पूर्व तक केवलज्ञान सहित विचर कर, सर्व एक लाख पूर्व वर्ष तक चारित्र पाल कर, चौरासी लाख पूर्व वर्षका सर्वायुः पाल कर अन्त में वेदनीय १, आयुः २, नाम ३, गोत्र ४, इन चार अघाति कर्मोंका क्षय करके इस अवसर्पिणीकाल के सुखम-दुःखम नामक तीसरे आरेके बहुत कुछ व्यतीत होनेपर सिर्फ तीनवर्ष साढेआठमहीने शेष रहनेपर शीतकालके तीसरे महीने के पांचवें पक्षकी माघवदी तेरसके दिन अष्टापदपर्वतके ऊपर दश हजार मुनियों के साथ जल रहित छः उपवास करके अभिजित् नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेसे, सवेरेसे लेकर दोपहरमें पद्मासन बैठे हुए भगवान् मोक्षगये, सर्व दुःखरहित हुए. श्रीऋषभदेवस्वामीके मोक्ष जानेके तीन वर्ष साढे आठ महीने जानेसे तीसरा आरा उतरा, और चौथा आरा शुरु हुआ. इस चौथे आरे में तेईस तीर्थंकर हुए. श्रीआदीश्वरके निर्वाणसे एक क्रोडाक्रोडसागरोपम प्रमाणमें तीन वर्ष साढे आठ महीने बियांलीस हजार वर्ष शेष रहे तब श्रीमहावीर स्वामीका निर्वाण हुआ. श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणसे नौसौ अस्सी वर्षे कल्पसूत्र पुस्तकमें लिखा गया. इस प्रकार श्रीआदीश्वर भगवान्के पांच कल्याणक संक्षेपसे कहे।

॥ इति सप्तम व्याख्यान समाप्त ॥

॥ अथ अष्टम व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

अब आठवीं वाचनामें स्थविरावली कहते हैं:—तिस काल तिस समयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीके नौ गच्छ और ग्यारह गणधर हुए. सर्व तीर्थंकरों के जितने गणधर होते हैं, उतने ही गच्छ होते हैं. और श्री महावीरस्वामीके ११ गणधर और नौ गच्छ कैसे हुए? इसका कारण कहते हैं—अकंपित, अचलभ्राता इन दो गणधरोंकी एक वाचना थी. मैतार्य और प्रभास इन दो गणधरोंकी भी एक वाचनाथी. समुदायका नाम गच्छ है, इसलिये श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के ग्यारहगणधरोंके नौ गच्छ ❀ हुए. श्रीमहावीरस्वामीके प्रथम बड़े

❀—धर्माचार्य के पास वाचना लेनेवाले साधुओंकी समुदायका नाम 'गच्छ' है, जिससे सर्व तीर्थंकरोंके शासनमें साधुओंको वाचना देनेवाले जितने गणधर होते हैं, उतने ही 'गच्छ' कहे जाते हैं. सर्वज्ञ शासन अविसंवादी होनेसे सब गच्छ वालों के आपसमें किसी प्रकारका विसंवाद नहीं होता, एक दूसरे को आज्ञा विरुद्ध नहीं कह सकते, धार्मिक व्यवहार सबका समान होता है. परन्तु अभी तो गच्छके नामसे वाडाबंधी होकर दृष्टिराग पक्षपातसे एक दूसरेको आज्ञा विरुद्ध समझने लगे हैं, विरोधभाव फैलाते हैं, यह सर्वथा अनुचित हैं. नवकार में "नमो लोए सव्व साहूणं" कहकर सब जगहके संयमी साधुओं को वंदना करते हैं, परन्तु यदि अपरिचय वाला या अन्य गच्छका कोई संयमी साधु सामने मिल जावे तो बहुत से लोग मुँह फेर लेते हैं और वंदना करनेमें पाप मानते हैं. यह कैसी अज्ञानता है।

शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनागार (गौतमस्वामी) ने पांच सौ साधुओं को वाचना दी १, दूसरे अग्निभूति गौतम गोत्रीयनेभी पांचसौ साधुओंको वाचना दी २, तीसरे वायुभूति गौतम गोत्रीयने भी पांचसौ साधुओंको वाचना दी ३, ये तीनों सगे भाई थे. चौथे आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्रीयने भी पांचसौ साधुओंको वाचना दी ४, पांचवें सुधर्मस्वामी अग्निवैश्यायन गोत्रीयनेभी पांचसौ साधुओंको वाचना दी ५, छठे मंडितपुत्र वासिष्ठ गोत्रीयनेभी साढेतीनसौ साधुओंको वाचना दी ६, सातवें मौर्यपुत्र ❀ काश्यप गोत्रीयनेभी साढेतीनसौ साधुओं को वाचना दी ७, आठवें अकंपित गौतम गोत्रीय, नवें अचलभ्राता हारियायन् गोत्रीय इन दोनों गणधरोंने तीन २ सौ साधुओंको वाचना दी ८–९, दशवें मेतार्य, और ग्यारहवें प्रभास कौडिन गोत्रीय इन दोनोंनेभी तीन २सौ साधुओंको वाचना दी १०-११, इसलिये नौ गच्छ, और ग्यारह गणधर हुए. इन सबका परिवार चार

❀– वासिष्ठ गोत्रीय मंडित पुत्र और काश्यप गोत्रीय मौर्य पुत्र, यह दोनों एकही माता के पुत्र होनेसे भाई थे. उनकी ज्ञाति में उस देशमें एक पति परलोक जाने पर दूसरा पति करनेका रिवाज था. यह बात उन्हों के जैन दीक्षा लेनेके पहले गृहस्थावस्थाकी थी, इसलिये इस प्रमाणसे जैन समाजमें अभी कई लोग विधवा विवाहका रिवाज स्थापित करना चाहते हैं, यह सर्वथा अनुचित है।

हजार चारसौ हुआ. ये ग्यारह गणधर आचारांगादिसे दृष्टिवाद पर्य्यन्त द्वादशांगीके धारण करने वाले, बारह अंग (द्वादशांगी) के स्वयं रचनेवाले, चौदह पूर्वोंके धारण करने वाले, चौदह पूर्वोंका बारहवें अंगमें अन्तर भाव है, तथापि अनेक विद्या मंत्रोंकी महान् प्रभावक आम्नाय पूर्वोंमें है. इसलिये प्रधानपना बतलानेके लिये प्रथक् ग्रहण किया है, और सम्पूर्ण गणिपिटकके धारण करने वाले, अर्थात्–ज्ञानादि सर्व गुण रत्नोंके करंडिये (पेटी) के समान सूत्र और अर्थ सहित व समस्त अक्षरों के संयोगोंका प्रभाव युक्त द्वादशांगीको धारण करने वाले, गणि भावाचार्य हुए. ये सर्व गणधर राजगृह नगरके पासके पर्वतपर एक महीनेका अनशन करके मोक्ष गये, उन्होंमें नौ गणधर तो महावीर स्वामी के विद्यमान रहते मोक्ष गये. श्रीगौतम स्वामी भगवान् के निर्वाण के बारह वर्ष बाद मोक्ष गये. पांचवें गणधर श्रीसुधर्म स्वामी महावीर स्वामी के निर्वाणके २० वर्ष बाद मोक्ष गये. इस वक्त जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं, वे सर्व सुधर्म स्वामीके संतानीय हैं. अन्य गणधरों ने अपने २ निर्वाण समय अपनी २ शिष्य समुदाय सुधर्म स्वामी को दे दिया था, इसलिये उन्हों के शिष्यों की परंपरा नहीं चली.

अब सुधर्मस्वामीसे स्थविरावली कहते हैं–श्रीमहावीर स्वामीके शिष्य अग्नि वैश्यायनगोत्रीय सुधर्मस्वामी १,

सुधर्मस्वामीके शिष्य काश्यपगोत्रीय जम्बूस्वामी २, जम्बूस्वामीके शिष्य कात्यायनगोत्रीय प्रभवस्वामी ३, प्रभवस्वामीके शिष्य मनक पिता, वच्छगोत्रीय शय्यंभवसूरि ४, शय्यंभवसूरिके शिष्य तुंगीयायन गोत्रीय यशोभद्रसूरि ५ हुए. अब इन स्थविरोंके चरित्र कहते हैं:-सुधर्मस्वामीका चरित्रः-कोल्लागसन्निवेशमें धम्मिलनामका ब्राह्मण था. उसके भद्दिलानामकी भार्य्या थी. उनके सुधर्म नामका चौदह विद्यानिधान पुत्र था, जिसने पचास वर्षकी आयुः में भगवान्के पास दीक्षा ली, तीस वर्ष तक भगवान्की सेवाकी, भगवान्के मोक्ष जानेके बाद बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें रहे, आठ वर्ष तक केवल ज्ञानी रहे. सौवर्षका सर्व आयुः पालकर, और जम्बूस्वामी को अपने पट्टपर स्थापित करके मोक्ष गये. जम्बूस्वामीका चरित्रः- एकदा श्रीमहावीर स्वामीको वंदना करनेके लिये समोवसरणमें अनेक देव और चार देवियों सहित महान् कांतिवान् विध्युन्माली नामक देव आया, तब श्रेणिकराजाने पूछा हे स्वामिन् ! इस देवकी ऐसी आश्चर्य करने वाली अधिक कान्ति कैसे है ? स्वामी बोले-हे श्रेणिक ! यह देव पूर्व भवमें महाविदेह क्षेत्रमें शिवनामक राजकुमार था. वैराग्य पाकर बेले बेलेका तपकरके पारणे में आंबिल करता. इस प्रकार बारह वर्ष तक निरन्तर महान् तप करके पांचवें देवलोकमें विध्युन्मालीनामक

महर्द्धिक देव हुआहै. यह देव वहांसे सातवें दिन च्यवकर इसी राजगृह नगरीमें ऋषभदत्त सेठकी धारणी स्त्रीके पुत्र होगा. भगवान्‌के कहने मुजब जंबूकुमार उत्पन्न हुआ. जन्म महोत्सव किया. माताने जम्बूवृक्षका स्वप्न देखा था, इसालिये स्वप्नके अनुसार 'जम्बूकुमार' नाम रक्खा. क्रमशः योवन अवस्था पाया, एकसमय जंबूकुमार श्री-सुधर्म स्वामीके पासमें धर्म सुनकर वैराग्य पाकर दीक्षा की आज्ञा लेनेको अपने घर आताथा. नगरके दरवाजे में प्रवेश करते समय तोपका गोला सामने आया, थोड़ेसे हटकर उसे बचा लिया, नहींतो मरण होजाता, वहींसे पीछे लोटकर उसी वक्त सुधर्मस्वामी के पास जाकर ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया. बादमें नीरागी होनेपर भी माता-पिताके आग्रहसे पाणिग्रहण किया, रात्रिमें आठ स्त्रियोंको प्रतिबोधी. उसी रात्रिमें निद्रादेनेवाली और तालोद्‌घाटनी इन दो विद्यासहित प्रभवनामका चौर पांच सौ चौरोंसहित चौरीकरनेको आयाथा, उसकोभी प्रतिबोधा. प्रभातमें आठ स्त्रियों और उनके माता-पिता २४, अपने माता-पिता २६, और पांचसौ एक चौर इन सर्व ५२७ के साथ जम्बूस्वामीने दीक्षा ली. जिस जम्बूकुमारने नवी परणी हुई आठ स्त्रियाँ और ९९ करोड़ सौनैयोंका त्याग किया, १६ वर्ष घरमें रहे. २० वर्षतक छद्मस्थ चारित्रपाला और ४४ वर्ष केवलीपर्य्याय पालकर, ८० वर्षका

सर्वायुः पालकर श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणके ६४ वर्ष बाद चरमकेवली जम्बूस्वामी मोक्ष गये. तब मनपर्य्यवज्ञान १, परमावधिज्ञान २, पुलाकलब्धि ३, आहारकशरीर ४, क्षपकश्रेणि ५, उपशमश्रेणि ६, जिनकल्पिमार्ग ७, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात ये तीन चारित्र ८, केवलज्ञान ९, सिद्धिगमन १०, यह दशवस्तु विच्छेद हुई. श्रीजम्बूस्वामीका सौभाग्य अधिक है, इसलिये मोक्षलक्ष्मी इनको पति प्राप्त करके दूसरे की इच्छा नहीं करती. जम्बूस्वामी सरीखा कोई कोतवाल भी नहीं हुआ, और होवेगाभी नहीं, कि जिसने चोरों को भी मोक्ष मार्गमें चलने वाले साधु बना दिये, और जम्बूस्वामी वणिक्जाति वाले महालोभी थे, जिससे मुक्तिपुरीमें प्रवेश कर, अनन्त सुखको प्राप्त होकर अन्यका आगमन रोकनेके लिये मुक्तिके ताला लगा दिया. इति जम्बूस्वामी चरित्र. श्रीजम्बूस्वामीने प्रभवस्वामीको आचार्य पदमें स्थापित किये थे. एक समय श्रीप्रभवस्वामीने ज्ञानका उपयोग देकर गच्छमें और संघमें आचार्यपद योग्य किसीको न देखा परंतु राजगृह नगरी में यज्ञ करते हुए शय्यंभवभट्टको देखा. तब प्रभवस्वामीने दो साधुओंको सिखा कर भेजे. वे साधु वहां जाकर बोले— "अहो कष्टं अहो कष्टं तत्त्वं न ज्ञायते" यह सुनकर शय्यंभवने सत्य तत्त्व ज्ञानके लिये हाथमें खड्ग लेकर गुरुसे

पूछा तत्त्व कहो. गुरुने विचारकिया शिरच्छेद कोई करता होवेतो तत्त्व कहदेना, इसमें कोईदोष नहीं. गुरुबोले—यज्ञ स्तम्भके नीचे श्रीशांतिनाथकी प्रतिमाहै, जिससे शांति होती है. यह सुन जैनधर्मपर रुचि हुई, और प्रभवस्वामी के पास जाकर, धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ली. श्रीप्रभवस्वामी गृहस्थावासमें तीस वर्ष रहे, पचपन वर्ष तक दीक्षा पाली, पिचासी वर्ष की सर्वायुः पालकर और शय्यंभवसूरिजी को अपने पट्टपर स्थापित करके स्वर्ग गये. इति प्रभवस्वामी चरित्र. जब शय्यंभवभट्ट ने दीक्षा ली थी, तब उनकी स्त्री के गर्भ था, उसके पुत्र हुआ, 'मनक' नाम दिया. वह पाठशालामें पढने जाता था. लडके आपस में लडने लगे और मनक को बिना पिताका कहने लगे. उससे दुःखी होकर, माताके पास आकर पिताका नाम पूछा. माता बोली—तेरे पिताका नाम शय्यंभव-भट्ट है, दीक्षा लेकर आचार्य हुए हैं, अभी चम्पा नगरी में हैं. तब मनक चम्पा गया. आचार्य बाहर गये थे, उन से रास्ते में मनक मिला और पूछा—शय्यंभवसूरि कहां हैं? गुरु बोले—तेरे क्या प्रयोजन है? उसने अपने आने का कारण कहा, तब उन्होंने अपना संबंध बतलाकर संसारकी असारता दिखाकर प्रतिबोध दिया, मनकने कहा—मुझको दीक्षा दो. गुरु बोले— जो तू अपना पिता-पुत्र का सम्बन्ध साधुओं से नहीं कहे तो मैं दीक्षा दूं. मनक

ने अंगीकार किया. दीक्षा देकर गुरु उपाश्रयमें आये, और ज्ञानसे मनक का अल्प आयुः जानकर सिद्धांतोंमेंसे संक्षिप्तसार लेकर दशवैकालिकसूत्र बना कर मनक को पढाया. छः महीने तक चारित्र पालकर स्वर्ग गया. श्रावक अग्निसंस्कार करके गुरुके पास आये. यशोभद्रसूरि पासमें थे, गुरुने उपदेश दिया. गुरुके नेत्रोंमें आंसू आये. यशोभद्रसूरि ने और संघने कहा कि हे भगवन्! आपके अनेक साधु स्वर्ग जाते हैं, परन्तु आंसू कभी नहीं देखे, आज आंसू आनेका क्या कारण? गुरु बोले:—यह मनक मेरा पुत्र था, थोडे दिनों में इसने अपना आत्म कल्याण किया, इसलिये मोह व हर्षसे आंसू आये, साधुओं ने कहा— हे भगवन्! यह सम्बन्ध आपने पहले क्यों नहीं बताया. गुरु बोले:— जो मैं पुत्रका सम्बन्ध पहले कहता, तो इससे कोई भी साधु वैयावच्च नहीं करवाता, तब इसका कल्याण कैसे होता. इसके बाद गुरु दशवैकालिकको सिद्धांतों में वापिस मिलाने लगे, जब अल्प आयुः व अल्प बुद्धि वालों के हितकारी जानकर संघने मना किया, तब साधुओं में पढाना शुरु हुआ. श्रीशय्यंभवसूरि अपने पट्टपर यशोभद्रसूरि को स्थापित करके श्रीमहावीर स्वामी के निर्वाण से ९८ वर्षे स्वर्ग गये.

अब यशोभद्रसूरिसे आगे संक्षेप वाचना से स्थविरावली कहते हैं. तुंगियायन-गोत्रीय यशोभद्रसूरि के दो

शिष्य हुए– एक संभूति विजय माढर गोत्रीय १, दूसरे भद्रबाहु प्राचीन गोत्रीय २, संभूति विजय आचार्य्य बयांलीस वर्ष घरमें रहे, चालीस वर्ष साधुपने में, आठ वर्ष युग प्रधान पद्में विचर कर श्रीवीर निर्वाणसे एक सौ छप्पन वर्षे स्वर्ग गये. इनके पट्टपर उनके छोटे भाई भद्रबाहु स्वामी आचार्य हुए. इनका सम्बन्ध कहते हैं–प्रतिष्ठानपुरमें वराहमिहिर १, भद्रबाहु २, ये दोनों भाई ब्राह्मण थे, श्रीयशोभद्र सूरिके पासमें धर्म सुनकर दोनोंने दीक्षा ली और क्रमसे चौदह पूर्वधारी हुए. गुरुने भद्रबाहु स्वामीको विनीत जानकर आचार्य पद दिया, परन्तु वराहमिहिरको अविनीत होनेसे आचार्य पद नहीं दिया. क्योंकि आचार्य पद गौतमादि गणधर महापुरुषोंने धारण किया है. यह पद जो गुरु कुपात्रको दे देवें तो गुरु महापापी और अनंत संसारी होवे. इसपर वराहमिहिर नाराज हुआ, गच्छसे निकलकर गुरुपर द्वेष रखने लगा, पूर्व पढे थे जिससे नवीन ज्योतिष्शास्त्र 'वराहसंहिता' नामका ग्रन्थ बनाया, साधुका वेष छोडकर ब्राह्मणका वेष धारण करके निमित्तसे आजीविका करता रहा. एकदा वह लोगोंसे बोला कि मैंने नगरके बाहर लग्न लिखा था, परन्तु लग्नको नहीं मिटाया, घर आकर विचार किया– अहो ! मैंने ज्ञानकी विराधना की, उसके बाद मैं लग्न मिटानेको वहाँ गया, लग्नके ऊपर लग्नका अधिष्ठाता देव

सिंह पूंछ पछाड़ते हुए बैठा देखा, तथापि लग्नकी भक्तिसे साहस करके मैंने सिंहके नीचे हाथ डालकर हाथ फेर दिया. तब सिंह सूर्य होकर बोला—हे वराहमिहिर ! वर मांग मैं प्रसन्न हुआ हूँ. मैंने कहा—नक्षत्रादि चार साक्षात् दिखाओ. तब सूर्य्य मुझको ज्योतिष्मंडल में ले गया, सर्व ग्रहोंका उदय-अस्त-वक्रादि स्वरूप दिखाया, फिर यहाँ पहुँचा दिया. इसलिये मैं ज्योतिष् के बलसे अतित, अनागत और वर्तमान सर्व जानता हूँ. ऐसा कहते हुए राजादिको चमत्कार दिखाकर खुशी किये. उस नगरमें भद्रबाहुस्वामी आये. श्रावकों ने प्रवेश महोत्सवादिसे बहुत महिमा की, वराहमिंहिरसे सहन न हुआ, उनका अपमान करने की इच्छा हुई. बादमें राज्य सभामें जाकर राजाके आगे बोला—आजसे पांचवें दिन पूर्व दिशासे वर्षा आवेगी १, वहभी तीसरे पहरके अन्तमें २, पहले कुण्डली लिख देता हूँ उसके मध्यमें ३, बावन पलका मच्छ पडेगा ४. ऐसा निमित्त सुनकर श्रावकोंने भद्रबाहुस्वामी से पूछा, गुरु बोले—इसमें कुछ सत्य और कुछ असत्यभी है. वर्षा पूर्व दिशासे नहीं किन्तु ईशान कौनसे आवेगी १, तीसरे पहरके अन्तमें नहीं किन्तु छः घडी दिन बाकी रहने पर २, मच्छ कुण्डली के मध्यमें नहीं किंतु कुछ अन्दर और कुछ बाहर पडेगा ३, बावन पलका नहीं किंतु वायुसे सूकने से तौलमें साढे इक्यावन

पलका होगा ४, भद्रबाहु स्वामी का कहा हुआ ऐसा विशेष निमित्तभी राजाने सुना, बादमें पांचवें दिन वृष्टि हुई, भद्रबाहु स्वामीके कहे हुए सर्व बचन सत्य हुए. वराहमिहिर सत्यासत्यवादी ठहरा, और भद्रबाहु सत्यवादी प्रसिद्ध हुए. एक समय राजाके पुत्र हुआ. वराहमिहिरने सौवर्ष आयुःकी जन्मपत्री लिखी. सर्व लोग अक्षतों के थाल भरकर राजाके पास बधाई देनेको जाने लगे. सर्व दर्शनीय लोगभी आशीर्वाद देनेको आये परन्तु भद्रबाहु स्वामी नहीं गये. वराहमिहिरने राजाके आगे कहा—हे महाराज ! आपके पुत्र हुआ सो भद्रबाहुको अच्छा नहीं लगा. जिससे वह यहां नहीं आये. यह बात श्रावकों ने भद्रबाहु स्वामी से कही. गुरु बोलेः—वारंवार क्या जावें, एकवक्त जावेंगे. श्रावकों ने पूछा यह कैसे ? गुरु बोले—आजसे आठवें दिन बिल्ली से राज पुत्रकी मृत्यु होने वाली है. यह बात राजानेभी सुनी, और राज्य महलों में बिल्लियों को रोकने के सैंकड़ों यत्न कराये. उसके बाद आठवें दिन दैवयोगसे दासी के हाथसे बालकके ऊपर अर्गला गिरपडी, बालक मर गया. वराहमिहिरने लोगों से कहा बिल्ली से तो मृत्यु नहीं हुई. गुरु बोले—आगलमें बिल्लीका रूप बना हुआ है, देख लो. इसपर वराहमिहिर लज्जित हुआ, वहां से अन्यत्र गया, मरकर व्यन्तर हुआ. जैनोंपर रोगका उपद्रव करने लगा. तब गुरु महाराज

ने श्रावकों का उपद्रव निवारण करने के लिये महा प्रभाव सहित "उवसग्गहर" स्तोत्र बनाकर दिया और श्रावकों ने उसे घर २ में पढना शुरू किया, उसीके प्रभाव से व्यन्तर का उपद्रव नष्ट हुआ, और सर्वत्र शांति हुई. कभी गाय दूध नहीं देती, तब भी लोग इस स्तोत्रको गुणते, तब अधिष्टायकदेव आकर उन्होंका विघ्न निवारण करता. इस प्रकार हमेशा घर २ में आनेसे देवको बडा कष्ट होने लगा, तब आचार्य से विनती की, कि मैं संघके कार्य्योंसे क्षण मात्रभी विश्राम नहीं पाताहूँ, इसलिये अतिशय वाली छठी गाथा निकाल दो, मैं अपने स्थानपर रहा हुआ ही ये पांच गाथा गुणने वालों के विघ्न दूर करूंगा. तब गुरुने छठी गाथा भंडार कर दी. भद्रबाहु स्वामी के बनाये हुए आवश्यक निर्युक्ति आदि अनेक ग्रन्थ अभी मौजूद हैं, भद्रबाहु स्वामी पैंतालीस वर्ष घरमें रहे, सत्रह वर्ष साधुपने में, चौदह वर्ष युगप्रधानपदमें रहकर छिअत्तर वर्षका सर्वायुः पालकर श्रीवीर निर्वाणसे एकसो शत्तरवर्षे स्वर्ग गये. अब श्रीसंभूतिविजय माढर गोत्रीयके शिष्य श्रीस्थूलभद्र स्वामी गौतम गोत्रीयका चरित्र कहते हैं:—पाटलीपुत्र नगरमें नन्द राजाके 'शकडाल' मन्त्री था. उसके 'लाछलदेवी' स्त्री थी. उनके दो पुत्र हुए—स्थूलभद्र १, और सिरीयक २. वहांपर वररुचिभट्ट राजसभामें आकर हमेशा १०८ काव्यों

से राजा की स्तुति करता था. परन्तु मिथ्यात्वी होने से मन्त्री उसकी प्रशंसा नहीं करे, तबतक राजा कुछ भी इनाम नहीं दे. तब उसने मंत्रीकी स्त्री की सेवा की. स्त्रीकी प्रेरणा से मंत्रीने काव्योंकी प्रशंसा की. राजा खुशमान होकर हमेशा १०८ सौनेये इनाम देने लगा. मन्त्रीने भंडार खाली होता जानकर राजाको मनाकिया तोभी राजाने नहीं माना. मंत्रीके यक्षा आदि सात पुत्रियाँ थीं, प्रथम काव्योंको एकबार सुननेसे यादकर लेती, दूसरी दोबार सुननेसे याद कर लेती थी. इसी प्रकार सातवीं पुत्री सातबार सुननेसे यादकर लेती. उन पुत्रियोंके मुखसे राजसभामें वररुचिके कहे हुए काव्य सुना दिये और यह नवीन काव्य नहीं है ऐसा कहकर सभासे निकाल दिया. बादमें वररुचि सदा गंगा नदी में संध्या समय यंत्र प्रयोगसे पांचसो सौनेयोंकी गठडी रखदेता, सवेरे गंगाकी स्तुति करके पैरसे यन्त्र दबाता. जिससे गठडी उछलकर हाथमें आती, तब लोगोंसे कहता देखो गंगाजी मुझपर प्रसन्न होकर पांचसो सौनेये हमेशा देती हैं. यह बात राजाने भी सुनी और मंत्री से उसका कारण पूछा. मंत्रीने सांझमें आदमी भेजकर गठडी रखता देखकर गुप्त रीतिसे गठडी मंगवा ली. सवेरे राजा गंगापर आया, वररुचिने स्तुति करके यन्त्र दबाया परन्तु गठडी नहीं पाई. तब शकडाल बोला—हे वररुचि !

सन्ध्याको रखना भूल गया, या किसीने ले ली. ऐसा कहकर वह गठडी राजाको बताकर वररुचिको दे दी. बाद में मन्त्री पर द्वेष रखता हुआ वररुचि लडकों को पढाने लगा. लडकों को एक दोहा सिखाया.

नन्दराय न वि जाणही, जं सगडाल करेसि । नन्दराय मारे य करी, सिरीयो राज ठवेसि ॥१॥

यह दोहा लड़के कहते हुए नगरमें फिरने लगे, यह बात राजाने सुनी और मन्त्री के घर गुप्त पुरुष भेजे. सिरीयकके विवाहकी सामग्री तय्यार होती थी. उसमें राजाको बुलाकर भेट देनेके लिये छत्र, चँवर आदि वनते थे. उनको अपने मारने की सामग्री जानकर राजा नाराज हुआ. मन्त्री को कुटुम्ब सहित मारूंगा, राजाका ऐसा विचार मन्त्री ने जान लिया. मन्त्री ने अपने कुलकी रक्षाके लिये सिरीयकसे कहा–राजा नाराज हुआहै, मैं तो वृध्द मरने वाला हूँ. मेरे एकके मरने से सर्व कुटुम्ब वचेगा. इसलिये मैं जब राजाको नमस्कार करूँ, तब तू मेरा मस्तक काट देना. सिरीयकने मुश्किलसे यह बात मानी. मन्त्रीने राजाको नमस्कार किया, जब राजाने मुंह फेर लिया. तब सिरीयक बोला–जो राजाका द्वेषी होता है वह मारने योग्य है, ऐसा कहकर मन्त्री का मस्तक क़ाट दिया. राजा खुशी होकर बोला– तू पिताका अधिकार ले ले. सिरीयक बोला–मेरा बडा भाई

स्थूलभद्र बारह वर्षोंसे कोशा वैश्याके घर रहताहै और बारह करोड़ सौनैये खर्चकर दिये हैं, उसको यह अधिकार दो. राजाने स्थूलभद्रको बुलाकर कहा पिताका पद ग्रहण कर. स्थूलभद्रने वररुचि भट्टके प्रपंचसे पिताका मरण सुनकर संसारको असार जानकर, लोचकरके रत्न कम्बलका रजोहरण बनाकर संभूतिविजय आचार्यके पासमें दीक्षा ले ली. राजाने सिरीयकको मन्त्रीकी मुद्रिका दी. स्थूलभद्र स्वामी गुरुकी आज्ञासे कोशा वैश्याके यहाँ चौमासा रहे १, दूसरा साधु सिंहकी गुफामें चौमासा रहा २, तीसरा साधु सर्पके बिलके पास चौमासा रहा ३, चौथा साधु कुएके बीचके काष्टपर चौमासा रहा ४. स्थूलभद्र स्वामीकी कठिनता बतलाते हैं:—वर्षा काल, मेघ गर्जें, बिजालियाँ चमकें, मयुर बोलें, पपैयें पियु २ करें, मैंडक टर्रावें, वैश्याकी चित्रशालामें रहे, हमेशा षट्रस भोजन करें, रागवान् कोशा वैश्या सौलह श्रृंगार करके सखियोंके साथ नृत्य करती. कामोद्दीपक सराग वचन बोलती. इसतरहसे बहुत हाव भाव नाटक आदि करके उसने मुनिके मनको चलानेका बहुत उद्यम किया, परन्तु महापुरुषका तो रोम मात्रभी नहीं चला और धर्मोपदेश देकर कोशाको श्राविका बना दी. चौमासा पूरण करके चारों साधु गुरुके पास आये. जब तीन साधु आये, तब तो गुरु कुछ उठकर बोलेः— हे दुष्कर

जोडकर दूर से आमका गुच्छा तोड़ कर कोशाको दिया, अपनी कला बताई. तब कोशाने थालमें सरसोंका ढेर कर, उसपर एक सूई रखकर, सूई के अग्रभागमें पुष्पपर देवी के जैसा नाटक किया, और यह गाथा बोली—

" न दुक्करं अंबय लुंबितोडणं, न दुक्करं सिक्खिय नच्चियाए ॥
तं दुक्करं तं च महाणुभावो, जं सो मुणी पमयवणम्मि वुच्छो ॥ १ ॥ "

आमकी लुंब तोड़ना दुष्कर नहीं है, सरसोंपर नाचना भी दुष्कर नहीं है, दुष्करतो वह है, जो स्थूलभद्र महामुनिने स्त्रियोंमें रहकर अखंड ब्रह्मचर्यका पालन किया. बारह वर्षतक मेरे साथमें रहे, बाद दीक्षा ली, फिर चौमासा करनेको यहां आये. मेरे किये हुए हाव-भावादि विकारोंके कारणोंको सर्वथा निष्फल किये, और अखंड ब्रह्मचर्य धारण करते हुए वापिस गये. यह सुनकर सारथीने भी दीक्षा ली. अन्यदा बारह वर्षी दुष्कालके अन्त में पाटलीपुत्रमें साधु इकट्ठे हुए. नहीं गुणनेसे कितनेही साधु सिद्धान्त भूल गये. तब दृष्टिवाद पढ़ानेके लिये भद्रबाहुस्वामीको बुलानेके लिये संघने दो साधु नैपाल देशमें भेजे. भद्रबाहुस्वामीने कहा—इस वक्त मैंने महा प्राणायाम ध्यान प्रारम्भ कियाहै, इससे नहीं आसकता, ऐसा कहकर मुनियोंको वापिस भेजे. तब संघने फिर

मुनियोंको भेजकर कहलाया—जो संघकी आज्ञा न माने, उसको क्या दंड मिले ? भद्रबाहुस्वामीने कहा संघसे बाहर करना चाहिये. परन्तु मेरे आने में ध्यानका भंग होताहै, इसलिये संघ मुझपर महरबानी करके साधुओं को यहां भेजे, मैं पढाऊंगा. तब संघने स्थूलभद्रादि पांचसौ साधुओंको भेजे. गुरु सातवार वाचना देकर पढाने लगे, जिससे अन्य साधु तो घबराकर चले गये, परन्तु स्थूलभद्रस्वामी दो वस्तु कम दश पूर्व पढे. एकदा यक्षादि सात साध्वियाँ स्थूलभद्रस्वामीकी बहिनें भाईको वंदना करनेको आई. आचार्यको वंदना करके पूछा—स्थूलभद्रजी कहाँ हैं ? गुरुने कहा पर्वतकी गुफामें पूर्व गुण रहाहै, तब वे वहाँ गई. बहिनोंको आती देख कर स्थूलभद्रजीने चमत्कार दिखानेको सिंहका रूप किया. बहिनें सिंहको देखकर डरी और गुरुके पास जाकर बोली— वहां हमारा भाई नहीं है, सिंह बैठाहै. तब गुरुने ज्ञानसे जान लिया कि विद्याके बलसे स्थूलभद्र सिंह बना है. गुरु बोले—अब तुम वहां जाओ. भाई तुमको मिलेगा. साध्वियें वहाँ गई, भाईको देख कर हर्षित हुई, वन्दना की. एकदा गुरु महाराजके पास आकर यक्षाने कहा—हमारे साथ सिरीयकने दीक्षालीथी. पर्युषणापर्वमें मैंने सिरीयकको उपवास कराया, वह उसी दिन स्वर्ग गया. उसका प्रायश्चित्तके लिये मुझको श्रीसीमंधरस्वामीके पास जाना है.

तब सब संघने काउसग्ग किया. शासन देवी यक्षाको सीमन्धरस्वामी के पास ले गई. सीमंधरस्वामी ने निर्दोष कहा, और दो चूलिकाएँ दीं, वे लेकर यहाँ आई और गुरुको वन्दना करके अपने स्थान गई. अन्यदा स्थूलभद्र स्वामी अपने मित्र ब्राह्मणके घर गये और पूछा—मेरामित्र कहाँ है ? ब्राह्मणी बोली दरिद्री होनेसे भिक्षाके लिये विदेश गया है. स्थूलभद्रस्वामीने ज्ञानसे जान लिया— इसके घरमें अमुक स्थानमें निधानहै परन्तु यह नहीं जानता. इसके बाद निधानकी तरफ संकेत कर चले गये. मित्रने आकर स्त्रीके वचनसे वह स्थान खोदा, महा निधान निकला, ब्राह्मण सुखी हुआ. सिंह बना और निधान दिखाया, ये दो अपराध जान कर स्थूलभद्रस्वामी वाचना लेनेको आये, तब गुरुने कहा—तू अयोग्यहै, अब तुझे वाचना नहीं दूँगा, तथापि संघके आग्रहसे दूसरोंको नहीं पढाना, ऐसा नियम दिलाकर आगे के चार पूर्व मूलसे पढ़ाये, अर्थसे नहीं. इसप्रकार स्थूलभद्रस्वामी भगवान् के निर्वाणसे दोसौ पन्द्रह वर्ष स्वर्ग गये. जम्बूस्वामी चरमकेवली १, और प्रभवस्वामी १, शय्यंभवसूरि २, यशोभद्रसूरि ३, संभूतिविजय ४, भद्रबाहु ५, स्थूलभद्र ६, ये छः चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली हुए. स्थूलभद्रजी के दो शिष्य—पहिले एलावत्य गोत्रीय आर्य महागिरी १, दूसरे वासिष्ट गोत्रीय आर्य सुहस्ति सूरि २, आर्य महा-

गिरीजी जिनकल्पी मार्ग विच्छेद हुआ था, तथापि उसके समान चारित्र पालते थे एकदा आर्य महागिरीजी गौचरी गयेथे, उस वक्त सेठके घरमें रहे हुए आर्य सुहस्ति सूरिने उन्होंकी स्तुति की.

अब आर्य सुहस्तिसूरिका चरित्र कहते हैं– एकदा दुष्काल पडा. अन्न नहीं मिले, लोग बड़े दुःखी होने लगे. राजा भी रंक जैसे हुए, तोभी श्रावक साधुओंको घर २ में विशेष दान देते थे, उसको देख कर एक भिक्षुक बोलाः–मुझको खानेको दो. साधु बोलेः–गुरु जाने. तब वह गुरुके पास आया, गुरुने भावि लाभ जान कर, दीक्षा देकर यथेष्ट भोजन कराया, बादमें विसूचिका हुई, चारित्र की अनुमोदना करता हुआ वह मरकर उज्जैनी नगरी में संप्रतिराजा हुआ ⊛, संप्रतिको जन्म समयही राज्य मिलगया था. अनुक्रमसे तीन खंड का राजा हुआ. एकदा रथयात्रामें आये हुए आर्यसुहस्ति सूरिको देखकर संप्रतिराजाको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ, तब

---

* श्रेणिक राजा १, श्रेणिकके पट्टपर कोणिक हुआ २, जिसके पट्टपर उदायिन हुआ ३, उदायिनके पट्टपर नौ नन्द हुए १२, नवें नन्दके पट्टपर चन्द्रगुप्त हुआ १३, चन्द्रगुप्तके पट्टपर बिन्दुसार हुआ १४, उसके पट्टपर अशोकश्री १५, जिसका पुत्र कुणाल हुआ १६, कुणालका पुत्र संप्रति राजा हुआ १७.

गुरुके पास आकर पूछा– हे स्वामिन्! अव्यक्त सामायिकका क्या फल होताहै? गुरु बोले– राज्यादि. तब राजाको विशेष प्रतीति हुई, और बोला– आप मुझको जानते हो? गुरुने ज्ञानके उपयोगसे राजाका पूर्वभव जानकर बतलाया, और उपदेश देकर श्रावक किया. संप्रति राजाने सवालक्ष मन्दिर बनवाये, सवा करोड जिन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराई, तेरह हजार जीर्ण उद्धार कराये. पिच्चानवे हजार धातुओंकी प्रतिमा कराई, सातसौ दानशालायें बनाई, जिनमन्दिर और जिनप्रतिमाओंसे तीनखंडकी पृथ्वी शोभित की. कर छोड दिये और पहले साधुओंका वेष धारण करने वाले पुरुषोंको अनार्य देशमें भेजकर साधुओं के विहार योग्य देश किया, अनार्य देशों के राजाओंको भी जिनधर्म के रागी किये और वस्त्र, पात्र, घृत, दूध, गुड़ आदि फासुक द्रव्यों के वेचने वालों को बुलाकर राजाने कहा, आपलोग साधुओंको विनती करके ये वस्तुएँ देना. उसका मूल्य मैं गुप्तरूपसे दिलाऊँगा. उन्होंने वैसा ही किया. साधुओंने भी अशुद्धको भी शुद्ध बुद्धिसे लिया. आर्य सुहस्तिसूरि प्रतिबोधित संप्रति राजा ऐसा धर्म प्रभावक हुआ. आर्य सुहस्तिसूरि चारित्र पालकर स्वर्ग गये। आर्य सुहस्तिसूरिके दो शिष्य कोटिक १, काकंदक २ नामा तत्त्वज्ञ और कठिन क्रियावाले हुए. अथवा सुस्थित-सुप्रतिबुद्धनामक, करोड़

हुआ. राजाने वज्रकुमार गुरुको दिलाया. आठ वर्षका हुआ जब दीक्षा ली, तब माताने भी दीक्षा ली. वज्रस्वामी के पूर्वभवका मित्र जृम्भकदेव महाअटवीमें उज्जेयनीके मार्गमें वर्षा बन्द होनेपर मनुष्यका रूप करके कोलेका पाक देनेलगा, परन्तु अनिमेषनेत्र देखकर देवमाया जानकर नहीं लिया, तब देवने तुष्टमान होकर वैक्रीयलब्धि दी. फिरभी गृष्म कालमें घेवर देनेकी परीक्षा की, वे भी न लेनेसे आकाश-गामिनी विद्या दी. एकदा गुरु बाहर भूमि गये, अन्य साधु गोचरी गये. पीछेसे वज्रमुनि साधुओंके आसन बिछाकर, आप गुरुकी तरह बीचमें बैठकर शिष्यों के समान ग्यारह अंगोंकी वाचना अलग २ देने लगे. गुरु दरवाजे पर आये, खडे रहकर सब सुना, और सब साधुओं में वज्रमुनिका ज्ञान प्रकट करने के लिये अन्यदा ग्रामान्तर जाते हुए गुरु बोले—हे शिष्यों ! तुम्हारा वाचनाचार्य वज्र है, ऐसा कहकर गये. पीछे से वज्रमुनिने विनीत शिष्योंको ऐसी वाचना दी कि जितना अनेक वाचनाओं से पढाया जावे, उतना एक वाचनासे पढाया. साधुओं ने विचार किया—गुरु देरसे आवें तो अच्छा, हमारे श्रुतस्कन्ध जल्दी से समाप्त हो जावें, बादमें गुरु आये और पूछा तुम्हारी वाचना सुखसे हुई. शिष्यों ने कहा—आपके प्रसादसे. अब हमारे वाचनाचार्य वज्रमुनिको बनाओ, तब गुरुने वज्रमुनि

को ग्यारह अंगोंकी वाचना देकर वाचनाचार्य किये, बादमें वज्रस्वामी दशपुरनगरसे उज्जैयनी जाकर गुरुकी आज्ञासे भद्रगुप्ताचार्यके पास दशपूर्व पढे. गुरुने आचार्यपद दिया. विहारकरके पाटलीपुर गये. 'मेरे रूपसे लोगोंको क्षोभ न हो' ऐसा जानकर सामान्य रूप करके राजादि के सामने देशना दी. साधुओं ने लोगों से सुना–अहो ! गुरुकी देशना अमृत समान है, परन्तु वैसा रूप नहीं है. गुरुने भी दूसरे दिन साधुओंसे यह बात सुनकर, सौनेके सहस्त्रदलकमलके ऊपर बैठकर स्वाभाविक रूपसे धर्मोपदेश दिया, सब लोग बडे खुशी हुए. वहांपर धन्न सेठके रुक्मिणी पुत्री थी, वह साध्वियोंके मुखसे वज्रस्वामीके गुण सुनकर मोहित हुई, उसका पिता एक करोड़ सौनेये लेकर, वज्रस्वामी के पास आकर बोला–इस कन्याके साथ पाणिग्रहण करो, यह द्रव्य लो. वज्रस्वामी ने उसको प्रतिबोध देकर दीक्षा दी, और पदानुसारिणी लब्धिसे आचारांगसूत्रके महापरिज्ञा अध्ययनसे मानुषोत्तरपर्वत तक जा सकें वैसी आकाश गामिनी विद्या निकाली. अन्यदा उत्तर दिशामें दुर्भिक्ष हुआ, तब सब संघको वस्त्रपट्टपर बैठाकर वज्रस्वामी आकाशमें चले ❀. मार्ग में जगह २ पर चैत्य वन्दना करते हुए मानसी:

❀ शय्यातर लोच करने से मैं भी सधर्मी हूँ. मुझे भी साथ ले चलो, ऐसा कहने से उसको भी पट्टपर बैठाया.

नगरी पहुँचे, वहां सुभिक्ष था, परन्तु बोद्धराजा था. पर्युषणा आनेसे बोद्ध श्रावकों की प्रेरणासे राजाने जैन मन्दिरों में पुष्प देने बंद किये. संघने वज्रस्वामीसे विनती की. गुरु बोले-चिन्ता मत करो. ऐसा कहकर आकाश मार्ग से माहेश्वरी नगरी के हुताशन नामक देवके वनमें अपने पिताके मित्र मालीसे पुष्प संग्रह करनेका कह कर, हिमवंत पर्वतपर गये. वहाँ श्रीदेवीने वन्दना की और देवपूजा के लिये लक्षदल कमल लायाथा वह दिया, जिसे लेकर पीछे आते हुए हुताशन वनसे वीसलाख पुष्प लेकर विमानमें बैठे हुए पूर्व-भव-मित्र जृम्भकदेव कृत गीत-गान-वादित्रादिके महोत्सव सहित आकर, श्रावकोंको पुष्प देकर जिनमन्दिरोंमें महिमा कराई. संघ हर्षित हुआ. राजाभी चमत्कार देखकर जैनी होगया. अन्यदा दक्षिण तरफ विहार करते हुए श्रीवज्रस्वामी के कफ का विकार हुआ, साधुओंसे कहा-आज गौचरी में सोंठ लाना, साधु लाये. गुरुने कानपर रक्खी, और भूल गये, खाई नहीं. प्रतिक्रमणके वक्त कान पडिलेहनेसे सोंठ नीचे गिरी. गुरुने विचार किया-दशपूर्वधर मेरी स्मृति अल्प हो गई, इससे अब मेरी अल्प आयुः है, इसलिये अनशन करूँगा. बारह वर्षका दुर्भिक्ष जानकर अपने शिष्य वज्रसेनसे कहा- तू सोपारक-पत्तन जाना. वज्रसेनने पूछा सुकाल कब होगा ? गुरु बोले-लाख

द्रव्यसे अन्नकी एक हांडी चढ़ेगी, और तू देखेगा, उसके दूसरे दिन सुकाल होगा. ऐसा कहकर वज्रसेनको भेज दिया. पीछे अपने पासमें रहे हुए साधुओंको भिक्षा न मिलनेसे विद्यापिण्डसे कितने ही दिन आहार करा कर सविग्न पच्चीस साधुओंको साथमें लेकर अनशन करनेके लिये चले. एक छोटा शिष्य था, उसको मना किया तोभी वह साथमें आने लगा, उसको नीचे छोडकर सब साधु पर्वतपर चढे. गुरुको अप्रीति न होवे, ऐसा विचार कर उस लघु शिष्यने पर्वतके नीचेही अग्निके जैसी तपी हुई शिलाके ऊपर अनशन किया. सुकोमल शरीर होनेसे क्षण भर में ही वह शुभ ध्यानसे स्वर्ग गया. देवोंने उसकी महिमा की. यह जानकर साधु धर्ममें विशेष रूपसे स्थिर हुए, परन्तु उस पर्वतपर रहने वाली मिथ्यात्वी देवीने मोदकादिसे निमन्त्रणा करके अन-शनमें उपसर्ग किया. अप्रीति जानकर साधु वहाँसे उठकर नजदीकके दूसरे पर्वतपर अनशन करके शुभ ध्यान से वज्रस्वामी आदि श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणसे पांच सौ चौरासी वर्षे स्वर्ग गये, तब रथमें बैठकर इन्द्रने पर्वतकी प्रदक्षिणा करके साधुओंको वन्दना की. पर्वत पर रथके चक्रकी रेखाएँ पडी, जिससे पर्वतका 'रथावर्त्त' नाम हुआ और वहांके वृक्षभी साधुओंको नमन करनेके अभ्यास से अब भी नमे हुए दिखाई देते हैं. वज्रस्वामी

स्वर्ग गये, तब दशवाँपूर्व और चौथा अर्धनाराच संघहन विच्छेद हुआ. बादमें सोपारक पत्तनमें जिनदत्त श्रावक और ईश्वरी नामकी श्राविका जिनको वज्रस्वामीने पहले प्रतिबोधाथा, उनके घर वज्रसेनसूरि गौचरी गये. उस समय ईश्वरी श्राविका चार पुत्र सहित धान्यके अभाव से लाख मूल्य से धान्य लाकर हांडी चढाई, और विचार किया:- जहर डाल कर, भोजन कर, अनशन कर मरूँगी. वज्रसेन सूरिने जहर डालती हुई देख कर पूछा ऐसा मरनेका उपाय क्यों करती है ? ईश्वरी बोली-धनतो बहुत है, परन्तु अन्न नहीं मिलता. लाख रुपये से एक सेर अन्न आज मिला है. वज्रसेनसूरि बोले-श्रीवज्रस्वामीने मुझसे कहा था कि लाख द्रव्यसे हांडी चढेगी उसके दूसरे दिन ही सुभिक्ष होगा. ईश्वरी को आचार्य के वचन पर विश्वास आया, और बोली-जब ऐसा है, तो मैं चारों पुत्रोंको आपके पास दीक्षा दिलाऊँगी. इसके बाद तोफानी वायुसे बहुत दूर रहे हुए जुगंधरीके जहाज बारह पहरके बाद वहाँ आये, सुभिक्ष हुआ. युगका उद्धार किया, जिससे उसका नाम जुगंधरी (जवार) हुआ. ईश्वरीने नागेन्द्र १, चन्द्र २, निर्वत्ति ३, विद्याधर ४, इन चारों पुत्रोंको दीक्षा दिलाई और आपने भी जिनदत्त श्रावकके साथ दीक्षा ली. वे चारों बहुश्रुत आचार्य हुए. उनसे चार शाखायें निकलीं, जो अब भी देखने

में आती हैं. इस प्रकार सिंहगिरी १, वज्रस्वामी २, वज्रसेनसूरि ३, इन तीनोंका चरित्र कहा. श्रीमहागिरी १, सुहस्ति सूरि २, गुणसुन्दर सूरि ३, श्यामाचार्य ४, स्कन्धलाचार्य ५, रेवतीमित्र ६, श्रीधर्म ७, भद्रगुप्त ८, श्रीगुप्त ९, वज्रस्वामी १०, ये युगप्रधान दशपूर्वधारी हुए. यह संक्षेप-वाचनासे स्थविरावली कही, अब आर्य यशोभद्रसूरिके आगे विस्तार वाचनासे स्थविरावली कहते हैं—इसमे लेखकोंके प्रमादसे स्थविरोंके नाम-गोत्रोंमें व शाखा-कुलोंमें बहुतसे नामान्तर भेद होगये हैं. और बहुतसे शाखा-कुल विच्छेदभी होगये हैं, इसका निर्णय ज्ञानी जाने. एक आचार्यकी शिष्य परंपराको कुल कहते हैं, एक वाचना आचार वाले साधुओंके समुदायका नाम गच्छ है. प्रसिद्ध पुरुषकी पृथक् २ संतानको शाखा कहते हैं. जैसे, हमारे वज्रशाखा और चन्द्रकुल है, यथार्थ अपत्यः— जिसके होनेसे पूर्वज दुर्गतिमें अथवा अपयश रूपी कीचडमें नहीं पडें, उसका नाम अपत्य (शिष्य) है. शुद्ध आचार वाले शिष्य गुरुओंकी शोभा बढाते हैं.

अब विस्तार वाचनामें यशोभद्रसूरिके कितने स्थविर, कितने गच्छ, कितनी शाखायें, कितने कुल हुए, सो कहते हैंः— यशोभद्र स्थविरके दो शिष्य हुए— भद्रबाहुस्वामी १, संभूतिविजय २. भद्रबाहुस्वामी के चार

शिष्य हुए– गोदास १, अग्निदत्त २, यज्ञदत्त ३, सोमदत्त ४. गोदाससे गोदास नामक गच्छ निकला १, गोदासगच्छसे चार शाखायें निकलीं–ताम्रलिप्तिका १, कोडीवर्षिका २, पोण्डुवर्धनिका ३, दासीखर्वेडिका ४. संभूतिविजय के बारह शिष्य हुएः– नन्दनभद्र १, उपनन्दन २, तिष्यभद्र ३, यशोभद्र ४, सुमनभद्र ५, मणिभद्र ६, पूण्यभद्र ७, स्थूलभद्र ८, ऋजुमति ९, जम्बू १०, दीर्घभद्र ११, पांडुभद्र १२, सब उन्नीस स्थविर हुए. संभूति विजयजी के (स्थूलभद्रकी वाहिनें) सात शिष्यायें हुईं–जक्खा १, जक्खदिन्ना २, भूया ३, भूयदिन्ना ४, सेणा ५, वेणा ६, रेणा ७. स्थूलभद्रजी के दो शिष्य हुए– आर्य महागिरी १, आर्य सुहस्ति २. श्रीआर्य महागिरी के आठ शिष्य हुए–उत्तर १, बलिसह २, धनाढ्य ३, श्रियाढ्य ४, कौडिन्य ५, नाग ६, नागमित्र ७, छुल्लुयरोहगुप्त ८. इसी तरह सब स्थविर उन्नतीस हुए. छुल्लुयरोहगुप्तसे त्रैराशिक मत निकला, सो कहते हैं– श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणसे पांच सौ चँवालीस वर्ष अन्तरंजिका नगरी में श्रीगुप्ताचार्यके रोहगुप्त नामक शिष्य हुआ. उसी समयमें पोट्टशाल नामक परिव्राजक एक वादी आया. विच्छु १, सर्प २, मूषक ३, मृगी ४, वराही ५, काक ६, शकुन ७, इन विद्याओं से मेरापेट फटता है, ऐसे मानसे पेटपर पट्टा बांधा था

उस वादीने नगरमें पटह बजाया कि जो मेरे साथ वाद करेगा, वह पटह स्पर्श करेगा. तब रोहगुप्त बोला— मैं वाद करूंगा. गुरुने परिव्राजक की विद्याओं को जीतने वाली मयूरी १, नकुली २, बिलाडी ३, व्याघ्री ४, सिंही ५, उल्लुकी ६, होलावली ७ आदि विद्याएँ दीं. और कहा— जो अन्य विद्याओंका प्रयोग करे तो यह रजोहरण में मन्त्रकर देताहूँ, सो फिराना, जिससे उसकी तमाम विद्याएँ निष्फल होकर तेरा विजय होवेगा. तब रोहगुप्त बल-श्रीराजाकी सभामें वाद करनेको गया. परिव्राजकने जीव-अजीव दो राशि स्थापित की, जैन शास्त्रोंका ही पूर्व पक्ष किया. रोहगुप्तने एक डोरे को उल्टा बटकर पृथ्वीपर डाला, चलाऽचल दिखाया और बोला—जीव १, अजीव २, नोजीव ३, ये तीन राशि हैं. ऐसा कह कर बहुतसे दृष्टान्त देकर रोहगुप्तने वादीका खण्डन किया. परिव्राजकने विद्याओंका प्रयोग किया. रोहगुप्तने प्रतिकूल विद्याओंसे उसकी तमाम विद्याओंको नष्टकर दिया, विजय पाकरके बडे महोत्सवसे गुरुके पास आया, गुरुसे सब हाल कहा. गुरु बोले—तेने वादीको जीता, जिन शासनकी प्रभावना की सो अच्छा किया परन्तु नोजीव पदार्थ नहीं है संघ समक्ष उसका मिच्छामि दुक्कडं दे, रोहगुप्तने अभिमानसे मिच्छामि दुक्कडं नहीं दिया, और बोलाः—नोजीव भी है, मिच्छामि दुक्कडं कैसे

दूँ ? छः महीने तक राजसभामें उसने गुरुके साथ वाद किया. राजा बोलाः— महाराज ! छः महीने हो गये तोभी आपका वाद पूरा नहीं हुआ, मैं तो राजकार्य भी नहीं कर सकता. गुरु बोले—कल पूरा करेंगे. दूसरे दिन वे देव-हाटमें गये, और जीव-अजीव-नोजीव मांगे. देवने जीव-अजीव दिये, परन्तु नोजीव नहीं दिया, और बोला—तीन जगत् में नोजीव नहीं है. इस प्रकार एक सौ चंवालीस प्रश्नोंसे गुरुने रोहगुप्तको जीता. और उसके मस्तक पर राखका पात्र डालकर गच्छसे बाहर किया. रोहगुप्तने त्रैराशिक मत निकाला, इसका विशेष विवरण टीकाओं से जान लेना. उत्तरबलिस्सह स्थविरसे उत्तरबलिस्सह नामक गच्छ निकला, इसकी चार शाखाएँ हुईं— कौशांबिका १, सूक्तिमुक्तिका २, कौटुंबिनी ३, चन्द्रनागरी ४. सब शाखाएँ आठ हुईं. आर्य सुहस्तिसूरि के बारह शिष्य हुए—रोहण १, भद्रयश २, मेघ ३, कामार्द्धि ४, सुस्थित ५, सुप्रतिबुद्ध ६, रक्षित ७, रोहगुप्त ८, ऋषिगुप्त ९, श्रीगुप्त १०, ब्रह्मगुप्त ११, सोमगुप्त १२. सब स्थविर ४१ हुए. रोहणस्थविर से उद्देह नामक गच्छ निकला. सब तीन गच्छ हुए. उद्देहगच्छ से चार शाखा निकलीं. उदुम्बरीज्जिया १, मासपूरिया २, महिपत्तिया ३, पुण्यपत्तिया ४. सब १२ शाखाएँ हुईं. उद्देह गच्छसे छः कुल हुए— नागभूय १, सोमभूइय २,

उल्लगच्छ ३, हत्थलिज्ज ४, नन्दालिज्ज ५, परिहासय ६. श्रीगुप्तस्थविर से चारण नामक गच्छ निकला. सब चार गच्छ हुए. चारण गच्छसे चार शाखाएँ निकलीं—हारियमालागारी १, संकासीया २, गवेधुया ३, विज्जनागरी ४. ऐसी सौलह शाखाएँ हुईं. और चारणगच्छसे सात कुल हुएः—वत्थलिज्ज १, पीइधम्मिय २, हालिज्ज ३, पुसमित्तिज्ज ४, मालिज्ज ५, अज्जवेडय ६, कण्हसह ७. सब बारह कुल हुए. भद्रयश स्थविरसे उडुवालिय नामक गच्छ निकला, सब पांच गच्छ हुए. उडुवालिय गच्छसे चार शाखाएँ निकलीं—चंपिज्जिया १, भद्दिज्जिया २, काकंदिया ३, मेहालिज्जिया ४. इस प्रकार सब बीस शाखाएँ हुईं. उडुवालिय गच्छ से तीन कुल हुए—भद्रयशिक १, भद्रगुप्तिक २, यशभद्रक ३. इस प्रकार कुल पन्द्रह हुए. कामर्द्धि स्थविरसे वेसवाडिय नामक गच्छ निकला. सब छः गच्छ हुए. वेसवाडिय गच्छसे चार शाखाएँ निकलीं:— सावत्थिया १, रज्जपालिया २, अन्तरिज्जिया ३, खेमलिज्जिया४. ऐसी चौबीस शाखाएँ हुईं. वेसवाडिय गच्छसे चार कुल हुए— गणिय १, मेहिय २, कामड्ढिय ३, इदपुरग ४. ऐसे कुल १९ हुए. ऋषिगुप्त स्थविरसे मानव नामका गच्छ निकला. सब सात गच्छ हुए. मानवगच्छ से चार शाखाएँ निकलीं:— कासवज्जिया १, गोयमाज्जिया २, वासिट्ठिया ३,

सोरट्ठिया ४. ऐसी २८ शाखाएँ हुई. और मानव गच्छसे तीन कुल हुए—ऋषिगुप्तिक १, ऋषिदत्तिक २, अभि-
जयन्त ३. इस तरह कुल २२ हुए. सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध स्थविरसे कोटिक नामक गच्छ निकला. सब आठ गच्छ
हुए. कोटिक गच्छकी चार शाखाएँ हुई— उच्चानागरी १, विद्याधरी २, वयरी ३, मज्झिमिल्ला ४. ऐसी ३२
शाखाएँ हुई. कोटिक गच्छसे चार कुल हुए:— वंभलिज्ज १, वत्थलिज्ज २, वाणिज्ज ३, प्रश्नवाहन ४. ऐसे कुल
२६ हुए. प्रश्नवाहन कुलसे मलधार गच्छ निकला. सुस्थित-सुप्रतिबुद्धके पांच शिष्य हुए:— इन्द्रदिन्न १,
प्रियग्रन्थ २, विद्याधरगोपाल ३, ऋषिदत्त ४, अरिहदत्त ५. ऐसे ४६ स्थविर हुए.

अब प्रियग्रन्थ सूरिका चरित्र कहते हैं:— अजमेर के पास श्रीहर्षपुरनगरमें तीनसौ जिनमन्दिर, चारसौ
लौकिक देवमन्दिर, आठ हजार ब्राह्मणोंके घर, छत्तीस हजार बनियों के घर, नौ सौ वगीचे, सातसौ वावडियें
और सातसौ दानशालाएँ थीं. वहां सुभटपाल राजा राज्य करता था. ब्राह्मणों ने यज्ञ शुरु किया, मारनेके लिये
बकरा यज्ञस्तम्भमें बांधा. वहां प्रियग्रन्थसूरि आये, उन्होंने वासक्षेप मन्त्र करके एक श्रावकके हाथमें दिया,
उसने बकरे पर डाला. अम्बिका अधिष्ठाता हुई. बकरा उडकर आकाशमें खडा रहकर बोला—अहो ! दया-

रहित ब्राह्मणों तुम लोग निरपराधी मुझको मारनेके लिये तैयार हुए हो, यदि मैं भी वैसाही निर्दय हो जाऊँ तो तुम्हें सबको अभी मारूं, जैसे—हनुमानने राक्षसों के कुलमें किया, वैसा तुम्हारे लिये मैं भी करूं, परन्तु दया अन्तराय करने वाली है, इतना कहकर फिर बोला—पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्ष तक पशुको मारनेवाले नरकमें पचते हैं. और कोई दाता मेरु पर्वत जितना सोने का दान देवे, अथवा सर्व पृथ्वीका दान करे, इन दो दानोंके पुण्यसे भी मरते हुए किसी जीवको बचावे तो अधिक पुण्य होताहै—एक तरफ यज्ञ, दक्षिणा वगैरह का पुण्य और दूसरी तरफ भयभीत प्राणीकी रक्षा करनेका पुण्य, इन दोनोंमें जीव रक्षाका पुण्य अधिक होता है, तथा अन्य बडे २ दानों का फल बहुत कालसे क्षय होजावे, परन्तु अभयदानका फल क्षय होताही नहीं है. तब यज्ञ करने वाले बोले—आप कौन हैं? अपना स्वरूप कहो. बकरा बोलाः—मैं अग्निदेव हूँ, यह बकरा मेरा वाहन है; तुम इसे क्यों मारते हो? ब्राह्मण बोलेः— धर्मार्थ. देव बोला—पशुवधमें धर्म नहीं किन्तु महापाप है, सच्चे धर्म तत्त्वका स्वरूप प्रियग्रन्थसूरिसे पूछो. ब्राह्मणोंने आचार्यसे पूछा, आचार्य ने जीव दयाको ही पवित्र धर्म कहा. तब यज्ञ कारक वगैरह बहुतसे लोगोंने प्रतिबोध पाया. जैन धर्मकी महिमा हुई. प्रिय-

ग्रन्थसूरिसे मध्यमा शाखा निकली, विद्याधर गोपालसे विद्याधरी शाखा निकली. ऐसी ३४ शाखाएँ हुईं. इन्द्र दिन्नसूरि के शिष्य दिन्नसूरि हुए. सब ४७ स्थविर हुए. दिन्नसूरि के दो शिष्य हुए, आर्य शान्ति सैनिक १, और सिंहगिरी २. यह ४९ स्थविर हुए. आर्य शान्ति सैनिकसे उच्च नागरी शाखा निकली. यह ३५ शाखाएँ हुईं. आर्य शांति सैनिक आचार्यके चार शिष्य हुए. आर्य श्रेणिक १, आर्य तापस २, आर्य कुबेर ३, आर्य ऋषिपालित४. यह ५३ स्थविर हुए, आर्य सैनिक आचार्यसे आर्य्य सैनिका शाखा निकली १, आर्य तापस आचार्य से आर्य तापसी शाखा निकली २, आर्य कुबेरसूरिसे आर्य कुबेरी शाखा निकली ३. आर्य ऋषिपालित सूरिसे आर्य ऋषिपालित शाखा निकली. यह ३९शाखाएँ हुईं. जातिस्मरणज्ञानवान् सिंहगिरि आचार्यके चार शिष्य हुए– धनगिरि १, वज्रस्वामी २, आर्य समितसूरि ३, आर्य दिन्नसूरि ४. यह ५७ स्थविर हुए. आर्य समितसूरिसे ब्रह्मदीपिका शाखा निकली, वज्रस्वामीसे वज्रशाखा निकली. यह ४१ शाखाएँ हुईं.

अब ब्रह्मदीपिका शाखाकी उत्पत्ति कहते हैं– आभीरदेशमें अचलपुर नगरके पास कन्ना, बेन्ना दो नदियोंके बीचमें ब्रह्मनामक द्वीप था. उसमें ५०० तापस रहते थे, जिनमेंसे एक तापस पादलेप कर, खड़ाउ पहिन

बेन्नानदीको पारकर पारनेको जाताथा, लोग उसके तपकी शक्ति जानकर तापसके भक्त हुए और श्रावकोंसे कहते— तुम्हारे गुरुमें कोई शक्ति नहीं है, तब श्रावकोंने वज्रस्वामीके मामा श्रीआर्यसमितसूरिको बुलाये. श्रावकोंने आचार्यसे सब कहा, आचार्य बोले— यह तप शक्ति नहीं है, पादलेपकी शक्ति है. गुरुके कहनेसे श्रावकोंने उस तपस्वीको भोजनके लिये विनती की, बहुत आदरसे घरमें लाये, पैर और खड़ाउ धोकर सत्कार पूर्वक भोजन कराया. उस तपस्वीके साथ श्रावक नदी तटपर गये. नदीमें प्रवेश करतेही पादलेपके बिना डूबने लगा. लोगोंने बाहर निकाला. तपस्वीने निन्दा पाई. उसी समय श्रीआर्यसमितसूरि वहाँ आये, लोगोंको प्रतिबोधनेके लिये वासक्षेप डाला, और बोलेः— हे बेन्ना ! हम तेरे पार जावेंगे. ऐसा कहतेही नदीके दोनों किनारे मिल गये. लोगोंने आश्चर्य पाया. नगरके लोगों सहित आचार्यने नदीपार तापसोंके आश्रममें जाकर धर्मोपदेश देकर तापसोंको प्रतिबोधे. पांच सौ तापसोंने भी दीक्षा ली. आचार्य वापिस आये, जिनशासनकी प्रभावना हुई. उन तापस साधुओंकी ब्रह्मदीपिका शाखा हुई.

वज्रस्वामीके तीन शिष्य हुएः— वज्रसेनसूरि १, पद्मसूरि २ और आर्यरथसूरि ३. वज्रसेनसूरिसे नागली,

शाखा निकली. पद्मसेन सूरिसे पद्मा शाखा निकली. आर्य रथसूरिसे जयन्ती शाखा निकली. ऐसी ४४ शाखाएँ हुई. सब स्थविर ६० हुए. आर्यरथसूरिके शिष्य पूष्यगिरिसूरि १, पूष्यगिरिसूरिके शिष्य फल्गुमित्रसूरि २, फल्गुमित्रसूरिके शिष्य धनगिरिसूरि ३, धनगिरिसूरिके शिष्य शिवभूतिसूरि ४, (श्रीवीर निर्वाणसे ६०९ वर्षे दूसरे शिवभूतिसे दिगंबर मत निकला). शिवभूतिसूरिके शिष्य आर्यभद्रसूरि ५, आर्यभद्रसूरिके शिष्य आर्य्यनक्षत्रसूरि ६, आर्य्यनक्षत्रसूरिके शिष्य आर्य्यरक्षसूरि ७, आर्य्यरक्षसूरि के शिष्य आर्य्यनागसूरि ८, आर्य्यनागसूरि के शिष्य आर्य्यजेहिलसूरि ९, आर्य्यजेहिलसूरिके शिष्य आर्य्यविष्णुसूरि १०, आर्य्यविष्णुसूरिके शिष्य आर्य्यकालिकसूरि ११, आर्य्यकालिकसूरिके दो शिष्य पहले आर्य्यसंपालितसूरि १२, दूसरे आर्यभद्रसूरि १३, इन दोनों के शिष्य आर्यवृद्धसूरि १४, आर्यवृद्धसूरिके शिष्य संघपालितसूरि १५, संघपालितसूरिके शिष्य आर्यहस्तिसूरि १६, आर्यहस्तिसूरिके शिष्य आर्यधर्मसूरि १७, आर्यधर्मसूरिके शिष्य आर्यसिंहसूरि १८, आर्यसिंहसूरिके शिष्य आर्यधर्मसूरि १९, आर्यधर्मसूरिके शिष्य आर्यसंडिलसूरि २०. इस प्रकार विस्तार वाचनामें स्थविर ८० हुए. और श्री सुधर्मस्वामी १, जम्बूस्वामी २, प्रभवस्वामी ३, शय्यंभवसूरि ४, ये चार स्थविर संक्षिप्त

वाचनामें कहे थे. सब मिलकर ८४ स्थविर, ४५ शाखा, ८ गच्छ और २७ कुल हुए हैं. तथा "वन्दामि फग्गुमित्तं" इत्यादि गाथाओंमें क्षमाके सागर, दर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त, अनुयोगधर, सूत्र-अर्थके समुद्र, गुणरत्नोंकी खान समान देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण तक स्थविरोंकी स्तुति करके उन्होंको नमस्कार किया है।

स्थविरावली में आर्य्यरक्षितसूरि आदि नहीं कहे परन्तु वे भी स्थविर हुए हैं, उनका चरित्र कहते हैं—दशपुर नगरमें सोमदेव पुरोहितके रुद्रसोमा स्त्री थी, उनका पुत्र आर्यरक्षित परदेशसे चौदह विद्या पढकर आया, राजा ने बड़े महोत्सवसे हाथीपर बैठाकर घर पहुँचाया, सब लोग खुशी हुए, उसने माताको नमस्कार किया, परंतु माताको हर्ष नहीं हुआ, तब उसका कारण पूछा, माता बोली—मैं परम श्राविका हूँ, तेने नरक देनेवाली विद्या पढी इसमें क्या ? यदि तू मेरा भक्त और बुद्धिवान् है तो मुक्ति दायक दृष्टिवाद पढ. दर्शनोंका वाद 'दृष्टिवाद' इसका नामभी सुन्दर है, ऐसा विचारकर पढनेकी इच्छासे माताकी आज्ञा लेकर इक्षुवाटिका गांवमें अपने मामा तोसलीपुत्र आचार्यके पास जानेको आर्यरक्षित प्रभातमें चला. रास्तेमें पिताका मित्र ब्राह्मण मिलनेको सामने आया, उसके हाथमें साढे नौ सैलडीके सांठे देखकर, साढेनौ पूर्व तक मैं पढूंगा, ऐसा शकुन विचारकर,

ये सांठे मेरी माताको देना, ऐसा कहकर गया. आचार्य महाराजके उपाश्रयमें ढड्ढर श्रावकके साथमें प्रवेशकर गुरुको वन्दना करके बैठा, साधुओंने पहिचाना कि यह तो गुरुमहाराजका भानजाहै, तब गुरुने देशना देकर, योग्यता जानकर दीक्षा दी, अपने पासके सूत्र पढाये, पूर्व पढानेके लिये वज्रस्वामीके पास भेजा, उज्जैयनीमें भद्रगुप्त सूरिने अनशन किया था, उनकी वैयावच्च की. भद्रगुप्तसूरिने कहा–तुम वज्रस्वामीसे अलग उपाश्रयमें रहना, वज्रस्वामीके साथ सोपक्रम आयुः वाला एक रात्रिभी रहे तो उन्हीं के साथ मरण पावे. आर्यरक्षितमुनि वज्रस्वामीके पास गये, अलग उपाश्रयमें रहे. श्रीवज्रस्वामीने उसी रात्रिमें स्वप्न देखा कि मेरा खीरसे भरा हुआ पात्र किसी पाहुणे साधुने आकर पिया, थोडा बाकी रहा. प्रभातमें आर्य रक्षित मुनि आये, नमस्कार करके पूर्व पढने शुरु किये. दसम पूर्वमें यमक पढने लगे, पिताने बुलाने के लिये संदेश भेजा, आर्यरक्षित नहीं गये, तब माता आदिने उसके छोटेभाई फल्गुरक्षितको भेजा, उसकोभी प्रतिबोधकर दीक्षा दी. बादमें माता-पिता आदिको प्रतिबोधने के लिये जानेकी इच्छा हुई, वज्रस्वामीसे पूछा भगवन्! दसवां पूर्व कितना बाकी रहा है? गुरु बोले–बिन्दुमात्र पढाहै, समुद्र जितना बाकी हैं, तवतो पढनेका उत्साह कम होगया, तथापि फिरभी कुछ पढने लगे,

परन्तु पढनेमें दिल नहीं लगा. तब वज्रस्वामीने शेषपूर्वश्रुत उनसे विच्छेद करके आर्यरक्षित मुनिको आचार्य पद देकर जानेकी आज्ञा दी. फल्गुरक्षित सहित दशपुर नगर गये, राजाने प्रवेश उत्सव किया. माता बहिन वगैरहको असार संसारका स्वरूप बतलाकर दीक्षा दी, पितानेभी पुत्रके अनुरागसे दीक्षा ली, परन्तु लज्जासे धौती १, यज्ञोपवित २, छत्ता ३, खडाउ ४, कमंडल ५, ये नहीं छोडे. तब गुरुके सिखलाये हुए बालक आदि बोले कि हम सर्व साधुओंको वन्दना करते हैं, परन्तु छत्ते वालेको नहीं. तब छत्ता छोड दिया, इसतरह कमंडल, यज्ञोपवित, खडाउ भी छोड दिये. अन्यदा किसी साधुने अनशन करके काल किया, गुरुके सिखाने से मृतकको लेजानेमें साधु विवाद करने लगे, तब सोमदेवमुनिने पूछा इसमें बहुत निर्ज्जरा होती है? गुरु बोले हां. वृद्धमुनि बोले– मैं लेजाऊँ, गुरु बोले– उपसर्ग सहनेकी शक्ति हो तो लेजाना, अन्यथा उपद्रव होगा. वृद्धमुनि मृतको उठाकर मार्ग में चले, गुरुके सिखाये हुए बालकोंने धौती खोस ली, साधुओंने चोलपट्टा बांध दिया. मृतकको जंगलमें परिठाकर (छोडकर) सोमदेवमुनि गुरुके पास आये और बोले– पुत्र बहुत उपसर्ग हुआ, गुरु बोले–धौती पहरो, वृद्धमुनि बोले, अब क्या पहरूँ, देखना था सो देखलिया. तबसे चौलपट्टा रक्खा. परन्तु लज्जा

से गौचरी नहीं जावे, गुरु दूसरे गांव जाते हुए साधुओं से कह गये— तुम आहार लाकर वृद्धमुनिको नहीं देना स्वयं लावेगा. साधुओंने आहार लाकर किया, उसको नहीं दिया, वृद्धमुनि भूखाही रहा. दूसरे दिन गुरु आकर बोले क्या वृद्धमुनिको आहार नहीं दिया. साधु बोले आप लेनेको क्यों नहीं जाते. जब उनके लिये खुद गुरु आहार लानेको चले, तब अविनय जानकर आप गौचरी गये. पिछाडीकी खिडकीसे किसी धनवान्के घरमें जाने लगे, घरके स्वामीने कहा हे मुनि ! मुख्य द्वारसे आवो, वृद्धमुनि बोले— जिधरसे लक्ष्मी आवे उधरसेही उत्तम है, इसमें कुछ विचार नहीं, वहांसे बत्तीस मोदक वहोर कर आये. आचार्यने विचार किया इससे हमारे बत्तीस शिष्य होवेंगे, वे मोदक साधुओंको देकर, फिर गौचरी जाकर क्षीर लाकर आपने आहार किया, सोमदेव वृद्ध मुनि लब्धिवान् होनेसे गच्छके आधार भूत हुए. उस गच्छमें तीन साधु लब्धि संपन्न थे—दुर्बलिकपुष्प मित्र १, घृतपुष्पामित्र २, वस्त्रपुष्पामित्र ३. और चार साधु बडे बुद्धिवान् थे—दुर्बलिकपुष्पामित्र १, बन्ध्यमुनि २, फल्गुरक्षित ३, गोष्ठामहिल ४. अन्यदा इन्द्रने श्रीसीमन्धरस्वामी के वचनसे कालिकाचार्य की तरह आर्यरक्षित सूरिकोभी निगोदका विचार पूछकर परीक्षा की, वन्दनाकर स्तुति करके उपाश्रयका दरवाजा पश्चिम था उसको

पूर्वमें करके इन्द्र निज स्थान गया. श्रीआर्यरक्षितसूरिने भविष्य में साधुओंको मन्दबुद्धि वाले जानकर चारों अनुयोगों को अलग२करदिये, पहले एकही सूत्रका चारप्रकारका व्याख्यान होताथा, ऐसे श्रीआर्यरक्षितसूरिहुए.

अब विद्याधर गच्छीय वृद्धवादीसूरि और सिद्धसेन दिवाकरका चरित्र कहते हैं—एक साधु वृद्ध अवस्थामें जोर २ से पढता था, उसको देखकर राजा बोला—आप क्या मुसल फुलाओगे ? वृद्ध साधु बोले— हां, मुसलके भी फूल लगते हैं, बादमें सरस्वती देवीका आराधन करके बाजारमें मुसलको खडा करके राजादिके समक्ष उसके फूल लगा दिये और यह काव्य कहा—

मद्गोश्रृंगं शक्रयष्टिप्रमाणम्, शीतोवन्हिर्मारुतो निष्प्रकम्पः ॥
यो यद्ब्रूते सर्वथा तन्न किंचित्, वृद्धो वादी कः किमाहात्र वादी ॥ १ ॥

शशकके श्रृंग, इन्द्रधनुष्का प्रमाण, अग्नि शीतल, और वायु निष्प्रकंप नहीं है तथापि वृद्धवादी ऐसाभी कर सकते हैं ॥१॥ वृद्धवादीने कुमुदचन्द्र ब्राह्मण पंडितको वादमें जीतकर अपना शिष्य बनाया, आचार्यपद दिया,

सिद्धसेनदिवाकरसूरि नाम रक्खा. सिद्धसेनदिवाकरसूरिने विक्रमादित्य राजाको प्रतिवोधा, विक्रमादित्य राजाने शत्रुंजयकी यात्राका संघ निकाला, संघमें एकसौ सत्तर (१७०) सोनेके देरासर थे. आचार्यके उपदेशसे दूसरे बहुतसे राजाओंनेभी प्रतिबोध पाया और तीर्थका उद्धार किया, आचार्यकी सहायतासे विक्रमादित्य राजाने अपना सम्वत्सर चलाया. पहले नन्दीवर्धन राजाका सम्वत्सर था. इति वृद्धवादी–सिद्धसेनदिवाकर चरित्र.

अब श्रीहरिभद्रसूरिका चरित्र कहते हैं:– हरिभद्र ब्राह्मणने व्याकरणादि शास्त्र पढ़ने के अभिमानसे प्रतिज्ञा की–जिसका कहा वाक्य का अर्थ मैं नहीं समझसकूं उसका शिष्य होउंगा. एक समय सन्ध्याको नगरमें फिरते हुए. साध्वीके मुंह से यह गाथा सुनी—

चक्किदुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की। केसव चक्की केसव, दुचक्कि केसव चक्की य ॥१॥

इसका अर्थ हरिभद्र पंडित नहीं समझ सका तब बोला हे साध्वीजी यह चिकाचिकायमान शब्द क्या है? साध्वी बोली–नये आदमीको चिकाचिकायमान मालूम पडता है, यह सुनकर हरिभद्रने विचार किया–इसका अर्थभी मैं नहीं समझा और साध्वी ने वचनमें भी मुझको जीत लिया. तब साध्वीसे बोला–इसका अर्थ बताओ

साध्वी बोली—मैं नहीं कह सकती ❀, हमारे गुरु उद्यानमें हैं, वे कहेंगे. तब गुरुके पास जाकर गाथाका अर्थ पूछा गुरुने कहा—दो चक्रवर्ती, पांच वासुदेव, पांच चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती फिर एक वासुदेव, दो चक्रवर्ती और एक वासुदेव तथा एक चक्रवर्ती. इस प्रकार क्रमशः बारह चक्रवर्ती और नौ वासुदेव हुए हैं. यह सुनकर प्रतिज्ञा पालनेके लिये दीक्षा ली, जैन शास्त्रोंका अध्ययन करके आचार्य पद पाये. हरिभद्रसूरिके हंस, परमहंस दो शिष्य शास्त्रोंके ज्ञाता हुए, बौद्धोंके शास्त्रोंको पढनेके लिये बौद्धाचार्यके पास गये, विद्यार्थी होकर पढने लगे. एकदा पुस्तकों में अक्षरोंपर खडी लगी हुई देखकर बौद्धाचार्य ने विचार किया, ये कोई जैन होंगे? उसने ऊपरकी माल पढाना शुरु किया, परीक्षाके लिये सीढीपर जिनप्रतिमा लिख दी.

❀—कई महाशय इस प्रसंग का दृष्टांत बतला कर साध्वियों को श्रावक-श्राविकाओं की समुदाय में व्याख्यान वांचने का निषेध करते हैं, यह उचित नहीं है. अकेली साध्वी को अन्य दर्शनीय अकेले पुरुष के साथ वार्ता करना उचित नहीं था जिससे साध्वी ने उनसे विशेष बात नहीं की, परन्तु व्याख्यान तो परिचय वाले भक्त श्रावक-श्राविकाओं की समुदाय में बांचा जाता है। इसमें कोई दोष नहीं है।

बौद्ध साधु प्रतिमापर पैर रखकर उतरे, हंस-परमहंस जिनप्रतिमा देखकर खडियासे प्रतिमाके जनेउ करके बौद्ध प्रतिमा बनाकर उतरे और मरनेके भय से अपनी पुस्तक लेकर अपने देशको चले. बौद्धाचार्यके कहने से राजाने सेना भेजी, सेनाने पहले सहस्रयोधी हंसको मारा और चित्तौड़के पास परमहंसको भी मारा. हरिभद्रसूरि यह जानकर क्रोधित हुए, और उपाश्रयमें लोहके कडाह में तैल गरम करवाकर मंत्रशक्तिसे १४४४ बौद्धोंको मारने के लिये आकर्षित किये, तब श्रावकने यह गाथा सुनाया:—

"जइ जलइ जलो लोए, कुसत्थ पवणा उ कसायग्गी। तं वुज्जं जिणसत्थं, वरिसत्तो वि पज्जलई ॥१॥

मिथ्यात्वी लोग कुशास्त्ररूपी पवनसे प्रेरित कषायरूपी अग्निसे जलते हैं, उनको शांत करनेवाला जैन शास्त्ररूपी अमृत वर्षने परभी आप क्रोधसे अनर्थ क्यों करते हैं. अथवा किसी जगह ऐसाभी लिखाहै—याकिनीमहत्तरा साध्वी एक श्राविकाको उपाश्रयमें लेजाकर गुरुसे पंचेन्द्रीय वधकी आलोयणा पूछी, गुरुने पांच उपवास कहे. साध्वी बोली अज्ञानतासे एक जीवकी हिंसामें इतनी आलोयणा देते हो, तब आप जानते हुए इतने बौद्धोंको मारोगे तो कितनी आलोयणा आवेगी? यह सुनकर हरिभद्रसूरिका क्रोध शान्त हुआ, पश्चात्ताप करके सब

बौद्धों को छोड दिये. अपने पापकी शुद्धिके लिये पूजापंचाशिका, पंचाशक, अष्टक, षोडषकादि १४४४ प्रकरण बनाये, आवश्यक वृहद्वृत्ति आदि टीकाएँ भी बनाई. इति श्रीहरिभद्रसूरि चरित्र. बप्पभट्टसूरि भी बडे प्रभावक हुए. उन्होंने गोपनगरके आमराजाको प्रतिबोधा, उसने शत्रुंजयका संघ निकाला, रास्तेमें अभिग्रह लिया कि शत्रुंजयके दर्शन कर पीछे पारणा करूंगा. छः उपवास हुए, राजा कमजोर होगया, शत्रुंजय दूर रहा. तब देवने 'खिवसरंडी' गांवमें शत्रुंजयावतार प्रासादमें प्रतिमा पादुकाके दर्शन करवाकर अभिग्रह पूर्ण कराया, शत्रुंजयकी यात्राकर तीर्थोद्धार किया और आमराजाने गोपनगरमें १०८ गज ऊँचे जिनमंदिरमें १८ भार प्रमाणे सौनेकी श्रीवीरप्रभुकी प्रतिमा स्थापित की. वह प्रतिमा अब भी पृथ्वी में है। और श्रीपादलिप्ताचार्य भी पादलेपसे आकाशमें उडकर शत्रुंजय, गिरनार, आबू, अष्टापद, संमेतशिखर आदि तीर्थोंकी यात्रा करके पारणा करते थे. उनके बनाये हुए निर्वाण कलिकादि ग्रन्थ हैं। श्रीमलयगिरीजीभी विशेषावश्यक टीका वगैरहके बनानेवाले हुए। कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरिजी भी साढे तीन करोड ग्रन्थ कर्ता, अट्ठारह देशोंका राजा श्रीकुमारपालको प्रतिबोधने वाले, देवीकी सहायतासे शासनकी प्रभावना करने वाले हुए. उक्केश गच्छीय श्रीरत्नप्रभसूरिने

ओसियानगरमें और कोरटानगरमें एकही मुहूर्त्तमें दो रूप करके प्रतिष्ठा की, लोगोंमें चमत्कार दिखाया और ओसियानगरी के उपल राजा आदिको प्रतिबोधकर ओसवाल वंश स्थापित किया, १८ गोत्रोंकी स्थापना की. सच्चाईदेवी को भी प्रतिबोधी। मानदेवसूरि शान्ति स्तवनके कर्त्ता हुए। मानतुंगसूरिको राजाने ४८ तालोंमें बन्द कर दिये थे, भक्तामर स्तोत्रके ४८ काव्य बनाये, जिससे अडतालीस ताले टूट गये। इसीतरह कुमुदचन्द सूरिने कल्याणमन्दिर स्तोत्र बनाकर अवंतीपार्श्वनाथकी प्रतिमा पृथ्वीमेंसे प्रकटकी वह उज्जैनमें अभी मौजूद है. इसी प्रकारसे श्री खरतरगच्छमें नवांगीवृत्ति कर्ता, श्रीस्तंभनकपार्श्वनाथको प्रकट करनेवाले अभयदेवसूरि हुए। और सैकडों साधु-साध्वी तथा एकलक्ष तीसहजार श्रावक बनानेवाले, अनेक देव-देवी साधक महान् प्रभावक दादा श्रीजिनदत्तसूरि हुए. इसीतरह श्रीतपगच्छमें कर्म ग्रन्थादि प्रकरण करनेवाले देवेन्द्रसूरिजी हुए. वादीवैताल शान्तिसूरि और परकाय प्रवेश विद्यावाले जीवदेवसूरि और कुमुदचन्द्र दिगम्बर वादीको जीतने वाले वादीदेवसूरि आदि बहुतसे प्रभावक आचार्य हुए हैं. उन्होंके चरित्रभी स्थविरावली के अन्तमें समय हो तो कहने चाहिये. और तीनों कालिकाचार्यभी स्थविर हुए हैं. पहले कालिकाचार्य श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणसे

३७६ वर्षे श्यामाचार्य नामक पण्णवणासूत्रके करनेवाले हुए. दूसरे कालिकाचार्य महावीर स्वामीसे ४५३ वर्षे सरस्वती साध्वीके कारणसे गर्दभिल्ल राजाका उच्छेद करनेवाले हुए, तीसरे कालिकाचार्य श्रीवीरनिर्वाणसे ९९३ वर्षे हुए, उनके पासमें इंद्रने आकर निगोदका स्वरूप सुना था और इन्हीं तीसरे कालिकाचार्यने चौथकी सम्वत्सरी स्थापित की है. इनका विस्तार 'कालिकाचार्य कथा' से जान लेना. आगमादिके ज्ञाता—ज्ञान स्थविर १, वीशवर्षसे अधिक दीक्षा पालनेवाले पर्याय स्थविर २, साठवर्षकी अवस्थावाले वय स्थविर ३, ऐसे तीन प्रकारके स्थविर होते हैं. इस स्थविरावलीमें संक्षेपसे पूर्वाचार्योंके चरित्र कहे हैं, विस्तारसे उन्होंके अलग २ चरित्र हैं।

॥ इति स्थविरावली नामक आठवां व्याख्यान संपूर्ण ॥८॥

॥ अथ नवम व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

अब नवमी वाचनामें साधु समाचारी कहतेहैं:– तिसकाल तिससमयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी वर्षाकालमें एकमहीना वीशदिने, अर्थात् ५०दिन जानेसे पर्युषणा करतेथे. वर्षाकालमें एकजगह ठहरना और वार्षिक पर्व करना उसको पर्युषणा कहते हैं. अप्रतिबद्ध–उग्रविहारी साधु वर्षाकाल लगतेही ठहर जावें तो लोग समझ लेवें कि इसवर्ष वर्षा बहुत होगी और शीघ्र आवेगी, अतः गृहस्थ लोग अपने घरोंमें वर्षाकी वोछांट न आनेके लिये बांशकी चटाई आदि लगावें, खडी आदिसे पोताई करें, घासादिसे ढकें, गोबर आदिसे लीपें, घरोंके आसपास कांटे आदिकी बाड करें, दरवाजे आदि ठीक करें, ऊंची-नीची जमीनको सम करें, पाषाणादिसे ठीक करें, धूपसे सुगंधित करें, छत्तका जल निकलनेको नाली या घरका जल निकलनेका खाल ठीक करें, और खेती आदिके कार्योंमें लगें उसमें जीवोंकी हानिका निमित्त कारण दोष साधुको न लगे इसलिये ५०दिने पर्युषणा करते हैं. वर्षाकाल लगतेही साधु ठहर जावे और कोई गृहस्थ पूछे महाराज आप यहां वर्षाकाल ठहरोगे तो साधु बोले–अभी पांच दिन ठहरे हैं. इस प्रकार पांच पांच दिन (दश पंचक) करके ५०दिने

वार्षिक पर्व करें. जैसे भगवान् ५०दिने पर्युषणा करतेथे, वैसेही गणधर, गणधरोंके शिष्य, स्थविर और वर्तमान कालके सब साधुभी ५०दिने पर्युषणा करते हैं. उसी प्रकार हमारे आचार्य, उपाध्याय तथा हम लोगभी ५० दिने पर्युषणा करते हैं. उसमेंभी कारण विशेषसे ५०दिनके अंदर पर्युषणा करना कल्पताहै परंतु ५०वें दिनकी रात्रिको उल्लंघन करके आगे पर्युषणा करना नहीं कल्पताहै ❀. पर्युषणा करनेमें दिनोंकी गिनतीका नियम होनेसे

❀—चंद्र पन्नत्ति, सूर्य्य पन्नत्ति, जम्बूद्वीप पन्नत्ति, ज्योतिष्करंडपयन्न आदि जैन शास्त्रों में अधिक महीना होवे तब उसको दिनों में पक्षों में, मासों में गिनती करके तेरह महीनों के छब्बीस पक्षोंका अभिवर्धित वर्ष मानाहै १, "अभिवढ्ढियंमि वीसा, इयरेसु सवीसइ मासो" निशीथ भाष्य, चूर्णि आदिके इस पाठानुसार जब अधिक महीना होवे तब उसकी गिनती करके आषाढ चौमासी से वीस दिने श्रावण में पर्युषणा करनेका और जब अधिक महीना न होवे तब पचास दिने भाद्रपद में पर्युषणा करने का अनादि नियम है २, अधिक महीना होवे तब पर्युषणा के पीछे १०० दिन तक और अधिक महीना नहीं होवे तब ७० दिन तक ठहरने की निशीथ भाष्य, चूर्ण आदि शास्त्रोंकी आज्ञा है ३, यही नियम नवांगी वृत्तिकारक अभयदेवसूरिजी ने भी स्थानांग सूत्रके तीसरे ठाणेकी टीकामें खुलासा लिखाहै ४, इन्हीं महाराजने समवायांग सूत्रमें पर्युषणा संबंधी ७० दिन बाबत पाठको अधिक महीना नहीं होवे तब चार महीनों के वर्षाकाल संबंधी बतलाया है ५, श्रावण आदि अधिक महीने होवे तब वर्षाकालमें पांच महीनों के दश पाक्षिक प्रतिक्रमण सब जैनी करते हैं ६, जैन टिप्पणा विच्छेद होने से लौकिक टिप्पणा मुजब तमाम व्यवहार होता है जिससे श्रावण आदि अधिक महीने होने पर पांच महीनोंका वर्षाकाल सर्व जैनियों को मानना पडता है ७, व्रत पच्चक्खाण, जप, तप आदि धर्म कार्य्य करने में और पुण्य-पाप के कर्म बंधन होने में अधिक महीने के तीस

अधिकमास न होवे तब भाद्रशुदी पंचमीको ५० दिन पूरे होते हैं, इसलिये भाद्रशुदी पंचमीको पर्युषणा करनेका लिखाहै. शालीवाहन राजाके प्रतिष्ठानपुरनगरमें भाद्रशुदी पंचमीको राजाकी तरफसे इन्द्र-ध्वजका महोत्सव होताथा, राजा श्रावक था, राजाने कालिकाचार्यसे छट्ठको पर्युषणा पर्व करनेकी विनति की. छट्ठको ५१दिन होनेसे शास्त्र आज्ञाकी विराधना होतीथी जिससे छट्ठको पर्युषणा करना मंजूर न करके ४९वें दिन चौथको

दिन तो क्या परन्तु समय मात्र भी गिनती में नहीं छूट सकता, यह भगवान् की आज्ञा है ८, तथापि कई जैनी श्रावणादि अधिक महीने के तीस दिनों को पर्युषणा जैसे उत्तम धर्म कार्य्यों में गिनती करनेका छोड देते हैं यह शास्त्र मर्यादा से और प्रत्यक्ष प्रमाण से भी उचित नहीं है ९, अधिक महीने के अभावमें चार महीनों के वर्षाकाल में पर्युषणा के पीछे सत्तर दिन ठहरने संबंधी समवायांग सूत्र का सामान्य पाठका सहारा लेकर अधिक महीना होने से पांच महीनों के वर्षाकाल में पर्युषणा के पीछे सौ दिन होते हैं, इस प्रत्यक्ष सत्यका निषेध करना किसी प्रकार योग्य नहीं है १०, जैन टिप्पणा में पौष-आषाढ बढते थे तब भी उनको गिनती में लेते थे अब कालानुसार लौकिक टिप्पणामें श्रावणादि बढते हैं उनको भी गिनती में लेने पडते हैं और पर्युषणा पर्व आषाढ चौमासी से पचास दिने करने की आज्ञा है, इसलिये श्रावण बढे तो दूसरे श्रावणमें, भाद्रपद बढे तो प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा पर्वका आराधन शास्त्रानुसार करना चाहिये और कार्त्तिक तक सौ दिन रहते हैं इसमें कोई दोष नहीं है ११, पंचपरमेष्ठि नवकार मंत्रके मूल पांच पदों के पैंतीस अक्षर और ऊपर चार चूलिकाओं के तेंतीस अक्षर मिलकर सब अडसठ अक्षर नवकार मंत्रके होते हैं, इसी तरह से अधिक महीनेको कालचूला कहने परभी उसको गिनती में लेकर तेरह महीनों का एक वर्ष शास्त्रों में कहा है इसलिये कालचूला कहने पर भी अधिक महीना गिनती में निषेध नहीं होसकता १२.

मंजूर किये. तब राजाने गुरुमहाराज व चतुर्विध संघके साथ भाद्रशुदी चौथको पर्युषणा पर्वकी आराधना बडे महोत्सवके साथ की. और जैनटिप्पणा विच्छेद होनेसे लौकिक टिप्पणामें हरएक तिथियोंकी वृद्धि होने लगी, कभी संवत्सरी पर्व के दिन छट्ठ न आने पावे इसलिये चतुर्विध सर्व संघने चौथको पर्युषणा पर्व करनेकी मर्यादा कायम रक्खी है और ५० दिने पर्युषणा पर्व करनेकी आज्ञा होनेसे दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें

विवाह, शादी, प्रतिष्ठा आदि मुहूर्त्त देखकर किये जाने वाले कार्य्य तो चन्द्र-सूर्य्यके ग्रहणमें, अधिक मासमें, क्षय मासमें, मल मासमें, और व्यतीपात-अमावस्या-क्षयतिथि-वृद्धितिथि-सिंहस्थ-गुरु-शुक्रका अस्त-चौमासा आदि बहुत से कारणों में नहीं होसकते, परन्तु पर्युषणा आदि धर्म कार्य्य तो अधिक मास आदि किसी भी कारण में नहीं रुक सकते, इसलिये पर्युषणा आदि धर्म कार्य्य अधिक महीने में करनेका निषेध करना सर्वथा अनुचित है १३, कल्पसूत्र के "अन्तरा वियसे कप्पइ नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणा वित्तए" इस पाठानुसार कारण विशेष से भी पचास दिन के अन्दर पर्युषणा करना कल्पता है, परन्तु पचासवें दिनकी रात्रि भी पर्युपणा किये विना उल्लंघन करना नहीं कल्पे, ऐसी खास विशेष शास्त्रों की आज्ञा है १४, तथा "पंचाशतैव दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः" कल्पसूत्र की टीकाओं के इस पाठानुसार सर्व पूर्वाचार्यों ने श्रावणादि अधिक महीने होवें तब भाद्रपद में पर्युषणा करनेका निषेध करके दूसरे श्रावण में या दो भाद्रपद हों तो प्रथम भाद्रपदमें ५० दिनों की गिनती से पर्युषणा करने की आज्ञा दी है १५. इसी प्रकार विशेष रूपसे पर्युषणा के बाद सत्तर दिन रहने का किसी भी शास्त्र में प्रमाण नहीं है और दो आसोज होने से भी पर्युषणा के पीछे कार्त्तिक तक सौ दिन होते हैं, इसलिये अधिक महीना होनेपर पचास दिन उल्लंघन करने और पर्युषणा के बाद सत्तर दिन रहने का आग्रह करना सर्वथा अनुचित है १६. इस

पर्युषणा पर्वकी आराधना करना जिनाज्ञानुसार उचितहै। यह वर्षाकाल निवासरूप प्रथम समाचारी ॥१॥

वर्षाकालमें चौमासी (श्रावणादि अधिक मास हो तो पांच मास, न हो तो चार मास) रहेहुए साधु-साध्वियोंको चारों दिशा-विदिशाओं में पांच कोस तक जाना आना कल्पे, उपाश्रयसे सब तरफ ढाई २ कोस तक आहारादि के लिये जासकते हैं. यदि पहाड़के मध्यमें उपाश्रय आदिमें ठहरे हों और ऊपर-नीचे वस्ती हो तो वहां परभी ढाई २ कोसतक ऊंचे-नीचे जाना आना कल्पता है, जिससे जाने-आनेमें पांच कोस होते हैं तथा किसी रोगी साधुके दवाई आदिके लिये या किसीने संथारा किया हो उनकी सेवाके लिये दूसरा कोई साधु न हो वहां जाना पड़े तो चार-पांच योजन (२० कोस) तकभी जाना कल्पताहै. गीला हाथ सूके जितने समयको 'यथा-लंद' काल कहते हैं, उतने काल तकभी वहां पर अपना कार्य हुए बाद ठहरना नहीं कल्पे. इसको जघन्य लंद कहते हैं, परन्तु विशेष कारणसे उत्कृष्ट लंद, यानी—पांच रात्रि-दिनतकभी ठहर सकते हैं. उसके बाद शीघ्र अपने

विषयमें तमाम प्रकारकी शंकाओं का समाधान "कल्पद्रुम कालिका" टीका के नवम व्याख्यान की टिप्पणी में और "बृहत्पर्युषणा निर्णय" नामा ग्रन्थ में मैंने विस्तार से लिखा है. पाठकगण उन्हें अवश्य देखें।

चौमासी स्थानपर पीछा आना चाहिये. वर्षा कालमें साधु साध्वी द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावसे चार प्रकारके अवग्रह धारण करें. द्रव्य अवग्रहके तीन भेद—सचित्त, अचित्त, मिश्र. सचित्त अवग्रह—सामान्य शिष्यको और साध्वी हो तो शिष्याको दीक्षा न दें, परंतु किसी विशेष वैराग्यवान् संथारा करनेकी इच्छावाले रोगीको या राजा, मंत्री आदिको दीक्षा दे सकते हैं. अचित्त अवग्रह—वस्त्र-पात्रादि न लें, मिश्र अवग्रह, उपाधिसहित शिष्यको दीक्षा न दें १. क्षेत्र अवग्रह—गौचरीके लिये ढाईकोस तक और खास कोई कारण हो तो चार-पांच योजन तक जावें आवें २. काल अवग्रह—अधिक मासके अभावमें भाद्रपद शुक्ल पंचमी से कार्त्तिक सुदी पूनम तक ७० दिन तक एक जगह ठहरें, यह जघन्य कालावग्रह. आषाढ सुदी पूनम से कार्तिक सुदी पूनम तक चार महीनों तक मध्यम कालावग्रह और कभी वर्षा ज्यादा हो, रास्तोंमें कीचड हो तो पांच या छः महीने तक ठहरें यह उत्कृष्ट कालावग्रह ३. भाव अवग्रह—वर्षाकालमें विशेष रूपसे क्रोधादि कषायोंका त्याग करके आठ प्रवचन माताओंका अच्छी तरहसे पालन करना. यथालंद (थोडे समय) तक या बहुत कालतक इन चारों अवग्रहके बिना नहीं रहना, अर्थात्—अप्रमादपने हर समय उपयोग पूर्वक रहना चाहिये. यह दूसरी समाचारी ॥२॥

नदीके दोनों बाजु गांव हो बीचमें नदीमें हमेशा बहुत जल बहता हो उसको उल्लंघन कर गौचरीके लिये चारों तरफ पांचकोस तक आना-जाना साधुओंको नहीं कल्पताहै. जिसतरह कुणालानगरीके पास एरावतीनदी में बहुत जल बहताहै, उसको उलांघकर आहारके लिये नहीं जाना परंतु यदि समुदाय अधिक हो या किसी भक्तके बडे तपका पारणादि कारण हो तो जिस नदीमें अल्प जल बहता हो जिससे एक पैर जलमें और एक पैर जमीन पर या जलसे अधर करके नदीका उल्लंघन होसके, उस नदीको पार करके चारों तरफ पांचकोस तक साधुको गौचरी के लिये जाना कल्पता है, यदि इस तरहसे नदी पार नहीं कर सकें और जलको विलो-डकर जाना पडे तो गौचरी के लिये पांचकोस तक जाना-आना नहीं कल्पता है. यह तीसरी समाचारी ॥३॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें किसीसे गुरुने कहा हो–हे मुनि ! आज अमुक रोगी साधुको आहार लाकर देना, तुम नहीं करना, इसप्रकार गुरुने जिसको आहार लाकर देनेकी आज्ञा दी हो उसीको लाकर दे, परंतु खुद गुरुकी आज्ञा बिना आहार न करे १, इसी तरह गुरुने किसी साधुसे कहा हो, हे महाभाग ! आज तुम्हीं आहार लाकर करना, परंतु रोगी साधुको लाकर नहीं देना, रोगी साधुके लिये दूसरा लाकर देगा या

रोगी साधु आज आहार न करेगा, तब गुरुकी आज्ञासे आपही आहार लाकर करे, रोगीको न दे २, अथवा गुरुने ऐसा कहा हो–हे साधु! आज तू आहार लाकर ग्लानको देना और खुद भी करना, अशक्ति होनेसे उपवास न करना, तब वह साधु आहार लाकर रोगीको दे और आप भी आहार करे ३, अथवा गुरुने ऐसा कहा हो, आज तुम रोगीको आहार न देना और खुद भी न करना, तब गुरुकी आज्ञा बिना रोगीको आहार देना और स्वयं भी करना न कल्पे ४. गुरुकी आज्ञा बिना रोगीके लिये आहार लानेसे यदि रोगी न लेवे तो परठना पडे उसमें साधुको दोष लगे, अथवा शर्मसे रोगी आहार कर लेवे तो अजीर्णादि रोगोंकी उत्पत्ति होवे. दही आदिसे प्रमाद बढे, शीरा-क्षीर आदि सरस आहारसे कीटिका-मक्षिकादिका विनाश होनेसे संयम विराधना, अजीर्णादिसे आत्म विराधना और आहार परठनेसे लोगोंमें उड्डार (लघुता) आदि दोष होवे इसलिये सब गुरुकी आज्ञासे करना चाहिये. यह परस्पर आहार देने रूप चौथी समाचारी ॥४॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें निरोगी शरीर वाले, शक्तिवान् युवानोंको विकार करने वाली वस्तु बारंबार खाना नहीं कल्पे. मदिरा १, मांस २, मक्खन ३, सहत ४. ये चार वस्तुएँ सर्वथा लेने के योग्य नहीं हैं.

और दूध १, दही २, घी ३, तेल ४, गुड ५, मिठाई ६. ये वस्तुएँ लेनेके योग्य हैं. तथापि इन विगयोंको चौमासे में बारंबार उपयोगमें नहीं लेना चाहिये. यह विगय त्याग रूप पांचवीं समाचारी ॥५॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें कोई वैयावच्च करने वाला साधु गुरुसे पूछे कि आज रोगी साधुको विगय देनी है? जब गुरु कहें–रोगी से पूछो कितनी विगय चाहिये, तब वैयावच्च करने वाला साधु रोगीसे दूध आदिका प्रमाण पूछकर गुरुकी आज्ञासे गृहस्थके घरमें मांगकर रोगी के कहे हुए प्रमाणे वस्तु ले. यदि गृहस्थ अधिक देने लगे तो मना कर दे. जिसपर गृहस्थ कहे–रोगीको चाहिये उतनी उसको देना, बाकी बचे सो आप लेना या अन्य साधुको देना, मेरे यहां बहुत है ज्यादे लो. ऐसा आग्रह करे तो अन्य पात्रमें अलग विशेष लेना कल्पे परंतु रोगी के नामसे अधिक लेकर आप खाना या दूसरोंको देना नहीं कल्पे. यह विगय लेने रूप छठी समाचारी ॥६॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको ऐसे गृहोंमें बिना देखी वस्तु मांगना नहीं कल्पे, जिन्होंको स्थविर आदि साधुओंने श्रावक बनाये हों, धर्म सिखाया हो, प्रीति वाले हों, धर्ममें स्थिर हों, साधुओंको वस्तु मिलने

का विश्वास हो, धर्मरागसे सर्व साधुओंका अभेदभावसे आना जाना हो, गच्छभेदसे, दृष्टिरागसे अथवा स्वार्थसे पक्षपात वाले न हों, घरोंके स्वामिओंने कुटुंब वालोंको और नौकरोंको आज्ञा दे रक्खी हो कि साधु जो मांगे सो देना, अथवा गुणवान् या छोटे बडे आदिका भेदभाव रहित समान भक्ति वाले हों, ऐसे घरोंमें बिना देखी वस्तु मांगनी नहीं कल्पे, क्योंकि वे भक्त होने से साधुको देनेके लिये अपने घरमें वस्तु तैयार न हो तो मूल्यसे मंगावें, मूल्यसे न मिले तो चौरी करें परंतु साधुको तो जरूर ही देवें, इसलिये बिना देखी वस्तु किसी भक्तके यहां नहीं मांगनी किंतु जो अभक्त और अपरिचय वाले हों उन्होंके घरोंमें बिना देखी वस्तु मांगने में कोई दोष नहीं क्योंकि वस्तु होगी तो देंगे, न होगी तो नहीं देंगे. यह वस्तु याचनेरूप सातवीं समाचारी ॥ ७ ॥

चौमासेमें रहे हुए साधु-साध्वियोंमें जो कोई साधु हमेशा एकासना करताहो, उसको पहले प्रहरमें स्वाध्याय, दूसरे प्रहरमें ध्यान करके मध्यान्हके बाद गौचरीके लिये गृहस्थोंके घरोंमें एक बार जाना-आना कल्पे, परंतु आचार्य १, उपाध्याय २, तपस्वी ३, रोगी ४, वृद्ध ५, लघुशिष्य (जिसके डाढी मूछ नहीं आई हो) ६, इन्होंकी

वैयावच्च करनेवाले साधुको अपने लिये आहार लेनेको गृहस्थोंके घरोंमें दो वार भी जाना कल्पताहै. अर्थात्– तपस्यासे वैयावच्चका अधिक लाभ है, तपस्या करनेवालेसे वैयावच्च नहीं हो सकती और आचार्य, उपाध्याय, रोगी, तपस्वी आदि जब आहार आदि मांगे तब उसे लानेके लिये बारंबार जाने आने में फिरना पडे इसलिये वैयावच्च करनेवाले साधुको दो बार आहार करना कल्पताहै. वर्षाकालमें एकांतरे आहार करनेवालेको गौचरीके लिये एकबार जाना कल्पे, परंतु इतना विशेष है कि उपवासके पारणे पहले प्रहर में 'आवस्सही' कहकर उपाश्रयसे निकल कर उद्गमादि दोष रहित शुद्ध आहार लाकर करे, तक्रादि पीये, पात्रे वगैरह धोकर वस्त्रसे पूंछकर स्वाध्याय आदि करे. उतने आहारसे संतोष रह सके तब तो वैसे ही रहे, अन्यथा भूख लगे और दूसरे दिन उपवास करनाहै इसलिये दूसरी बार भी गौचरी लाकर आहार करना कल्पताहै. चौमासे में दो २ उपवास करनेवाले साधुको पारणेके दिन गौचरीके लिये गृहस्थोंके घरोंमें दो बार जाना कल्पता है. तीन २ उपवास करनेवाले साधुको पारणेके दिन तीन वार गौचरी जाना कल्पताहै. तीन उपवाससे अधिक तप करने वाले साधुको पारणेके दिन जिस समय जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसी समय गृहस्थोंके घरोंमें जाकर आहारादि

लाकर कर सकता है। प्रभातमें अधिक आहार लाकर शाम तक रखनेमें दोष है इसलिये जब जरूरत हो तब लाकर आहार कर लेनेका कहा है. यह गौचरी गमन रूप आठवीं समाचारी ॥८॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियों में हमेशा आहार करने वालोंको सर्व प्रकारके शुद्ध जल लेने कल्पते हैं. आचारांगसूत्रमें २१ प्रकारके जल बतलाये हैं– आटेकी कठोती धोनेका जल १, पत्ते उबाले हुए का जल २, चांवल धोनेका जल ३, तिलोदक ४, यवोदक ५, तुषोदक ६, ओसामणका जल ७, कांजीका जल ८, उष्ण जल ९, खट्टी वस्तु धोनेका जल १०, बिजोरेका जल ११, द्राक्षका जल १२, कविट्ठका जल १३, अनारका जल १४, खजूरका जल १५, नारियलका जल १६, कषायली वस्तुका जल १७, आंवलेका जल १८, चनोंका जल १९, बौरका जल २०, अम्बाडेका जल २१. ये २१ प्रकारके जल हमेशा आहार करनेवालों को लेने कल्पतेहैं, परंतु रस-गंध-स्पर्शका परिणामांतर होनेका जिनको शुद्ध विवेक हो तो वे समझदार गृहस्थोंको पूछकर या थोडासा चखकर परीक्षा करके ऐसे जल लेसकते हैं, अन्य नहीं. जिसमेंभी चांवलादि के जलका एक प्रहर आदिका काल बतलायाहै, उसके अंदर खलास करदेना परंतु बिना परीक्षाके लेना और शामतक रखना उचित

नहीं, उसमें जीवोंकी उत्पति होनेकी संभावनाहै। चौमासेमें रहे हुए साधुओंमें एकान्तरे उपवास करनेवालेको तीन तरहके जल लेने कल्पतेहैं—आटेका धोवण १, पत्ते उवाल कर ठण्डे पानीसे सींचे वह जल २, चांवलोंका धोवण ३. और दो २ उपवास (बेला २) करके पारणा करनेवालेको—तिलोंका धोवण १, तुषोंका धोवण २, जौका धोवण ३. ये तीन प्रकारके जल लेने कल्पतेहैं और तीन २ उपवास (तेला २) करके पारणा करने वालेको ओसामणका जल १, कांजीका जल २, उष्ण जल ३. ये तीन प्रकारके जल लेने कल्पतेहैं और तीन उपवाससे अधिक तप करनेवाले साधुको तीनवार उबाला आया हुआ उष्ण जल लेना कल्पताहै, उस जलमें अन्नका कुछभी अंश नहीं होना चाहिये. तेले से अधिक तप करने वाले के सहायकारी प्रायः देव अधिष्ठायक होताहै, इसलिये धान्यका अंश रहित शुद्ध गर्म जल पीना कल्पताहै। चौमासे में रहे हुए साधु—साध्वियोंमें किसीने भात-पानीका पच्चक्खाण (अनशन) किया हो उसको सिर्फ गर्म जल ही कल्पताहै वह भी अन्नके कण रहित हो, क्योंकि अन्नकण सहित जल पीनेसे आहारका दोष लगताहै, गर्म जल भी बिना छना हुआ नहीं किंतु वस्त्रसे छाना हुआ होना. वहभी प्रमाण सहित थोडा २ देना, अधिक नहीं, एकबारमें ज्यादे पिलानेसे

अजीर्णादि दोष होनेका संभव है. इसलिये जल पिलाने के पहले गुरुआदि साधुओंको दिखाकर पिलाना परंतु बिना दिखाये न पिलाना. यह जल ग्रहणरूप नवमी समाचारी ॥ ९ ॥

चौमासे में रहे हुए साधु-साध्वियोंमें कोई साधु दत्ति संख्याका नियम वाला, अर्थात्–गृहस्थके घरमें आहार–पानीको साधु जावे, तब गृहस्थ कुडछी आदिसे या हाथसे चाहे निमकके स्वाद मात्रही क्यों न हो एकबारमें जितनी वस्तु पात्रमें देवे उसको एक दत्ति कहते हैं. इसप्रकार अभिग्रहरूप तप करने वाला होवे–वह पांच दत्ति आहारकी और पांच दत्ति जलकी, या चार दत्ति आहारकी, पांच जलकी अथवा पांच आहारकी, चार जलकी. जितनी दत्ति रखी हों उतनी ले या कम ले परंतु बढावे नहीं, जिसतरह बडी कुडछी आदिसे २–३ दत्तियोंमें ही जरूरत जितना आहार आजावे तो आहारकी दो दत्ति बची हों उनको जलकी दत्तियों में मिलाकर सात दत्ति जलकी नहीं करनी चाहियें. इसीतरह पानीकी दत्तियोंको आहारकी दत्तियों में नहीं मिलानी, उसदिन उतनीही दत्तियों से संतोष करना परंतु दत्तियोंको इधर उधर मिलाकर गृहस्थोंके घरोंमें दो तीन वार नहीं जाना चाहिये. यह दत्ति संख्यारूप दशवीं समाचारी ॥१०॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वी 'संनिवृत्तचारी' यानी–मना किये हुए घरोंमें आहार–पानी लेनेको नहीं जावे अर्थात्–जो साधु हमेशा शुद्धआहार लेता हो उसको उपाश्रय या शय्यातर के घरसे लेकर सात घरों तकमें जीमन हो वहां आहारके लिये जाना नहीं कल्पे. जीमनवारके घर गौचरी जाना मना किया है उसे त्यागने वालेको 'संनिवृत्तचारी' कहतेहैं. कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि उपाश्रयको छोडकर आगेके सात घरोंमें जीमनवार हो तो वहां न जाना चाहिये। और कोई आचार्य ऐसा भी कहतेहैं कि उपाश्रय व उपाश्रयके पासका एकघर छोडकर आगेके सात घरोंमें जाना नहीं कल्पताहै. पहले पक्षमें उपाश्रय सहित सात घर, दूसरे पक्षमें उपाश्रय को छोडकर सात घर, तीसरे पक्षमें उपाश्रय व उपाश्रयके पासका एकघर छोडकर आगेके सात घरोंमें जीमनवार हो वहां आहारके लिये साधुको जाना नहीं कल्पे, क्योंकि उपाश्रयके पासवाले घर विशेष रागी होने से आधाकर्मी आदि आहार देनेमें दोष लगा दें, इसलिये उपाश्रयके पासके घरोंमें जाना मना कियाहै। यह जीमनवार विचाररूप ग्यारहवीं समाचारी ॥११॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें जो साधु करपात्री जिन कल्पी हो उसको ओस, धूमर या छोटी २ बूंदें

गिरतीहों तब गृहस्थके घर आहारके लिये जाना नहीं कल्पे. जिन कल्पी साधुको ऊपरसे न ढका हो ऐसे स्थानमें आहार करना नहीं कल्पे, कदाचित् आधा आहार किया और वर्षा शुरु होजावे तो पहले आहार किया सो किया बाकी बचा उसको एकहाथसे ढककर या हृदयके आगे रखकर अथवा कांखमें रखकर ढके हुए स्थानमें अथवा वृक्षके नीचे जावे परंतु आहार को सचित्त पानी न लगे वैसा करे और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अपकाय वर्षतीहो तो जिन कल्पी साधु आहारके लिये नहीं जावे. यह जिन कल्पी साधुके आहार विचाररूप बारहवीं समाचारी ॥१२॥

चौमासेमें स्थविर कल्पी चौदह प्रकारके उपकरणधारी साधुको कंबल भींजकर अंदरकी चद्दर गीली होजावे ऐसी ज्यादा वर्षा होती हो तो गौचरीके लिये जाना नहीं कल्पताहै. परंतु रोगी–तपस्वी आदिके लिये या भूख सहन नहीं होसकती हो और थोडी वारिस होतीहो जिससे अंदर चद्दर या शरीर गीला न होसके ऐसी अल्प वर्षा में चद्दरके ऊपर कंबलसे शरीर ढककर पात्रोंको पडलोंसे ढकेहुए लेकर आहारके लिये गृहस्थोंके घरोंमें जाना आना कल्पताहै। चौमासेमें साधु–साध्वी गौचरी गये बाद ज्यादा वर्षा होने लगे तब किसी गृहस्थके घरमें, आराम (बहुत वृक्षोंके समुह) के नीचे, अन्य किसी साधुके उपाश्रयके नीचे अथवा लोगोंके बैठनेकी ढकी

हुई जगह या किसी वृक्षके नीचे आना कल्पताहै, वर्षा वंद होने पर अपने चौमासी स्थानमें वा गृहस्थोंके घरोंमें आहारके लिये जाना कल्पे. वर्षा होने के समय पूर्वोक्त स्थानोंमें साधु खडा हो वहां पर या समीप वाले गृहमें साधुके आनेके पहले चांवल वनायेहों और पीछे मूंग वगैरह की दाल वनाईहो, तो साधुको चांवल लेने कल्पें, परंतु दाल लेनी नहीं कल्पे १, साधुके आने के पहले दाल वनीहो, पीछे चांवल वनाये हों तो दाल लेनी कल्पे, चांवल लेने नहीं कल्पें २, साधुके आने के वाद चांवल और दाल वनाये हों तो दोनों लेने नहीं कल्पें ३, और यदि साधुके आनेके पहले चांवल-दाल दोनों वनाये हों तो दोनों लेने कल्पते हैं. अथवा चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वी गौचरी लेकर आतेहों और वर्षा अधिक होने लगे तो वगीचा आदि पूर्वोक्त स्थानोंमें ठहरें परंतु पहले लिये हुए आहार–पानीका समय उलंघन करना नहीं कल्पे, अर्थात्–वर्षा वंद न होवे तो वहां निर्दोष स्थान देख, प्रमार्जनकर, आहारकर, जल पी, पात्र साफकर झोलीमें एकत्रित वांध दें और जवतक वर्षा वर्षे तव तक वहीं पर ठहरें, यदि वर्षा बंद न हो तो भी सूर्य्य अस्त होने के पहले उपाश्रयमें आजावें, रात्रिमें वाहर रहना नहीं कल्पे. वर्षाके कारण रात्रिमें अकेले वाहर रहें तो आत्म विराधना, संयम विराधनाका दोष लगे या

उपाश्रयमें रहनेवालोंको उसकी चिंता होवे इसलिये रात्रिमें बाहर रहना नहीं कल्पताहै। चौमासेमें साधु–साध्वी आहारके लिये गयेहों और रास्तेमें वर्षा होने लगे तब वृक्ष आदि पूर्वोक्त स्थानोंमें वर्षा वर्षने से अकेला साधु खडा हो, उसी जगह वर्षा वर्षने से यदि एक साध्वी भी आजावे तो उसके साथ खडे रहना नहीं कल्पे १, एक साधुको दो साध्वियोंके साथ एक जगह खडे रहना नहीं कल्पे २, दो साधुओंको एक साध्वीके साथ खडे रहना नहीं कल्पे ३, दो साधु और दो साध्वियोंको भी साथ में खडे रहना नहीं कल्पे ४, प्रायः दो साधुओंसे या तीन साध्वियोंसे कम विचरना नहीं कल्पता, अतः पांचवां कोई साधु या साध्वी पास में होतो एक जगह खडे रहना कल्पताहै. कदाचित् कारणवश पांचवां न होतो जहां बहुतसे लोग देख सकतेहों या लोगों के जाने आनेका रास्ता हो तो वहां खडे रहना कल्पताहै परंतु एकान्तमें खडे रहना नहीं कल्पता। चौमासेमें साधु–साध्वी आहारके लिये गयेहों और रास्तेमें बहुत वर्षा होने लगे तो आराम आदि पूर्वोक्त स्थानोंमें एकला साधुको अकेली स्त्रीके साथ खडे रहना नहीं कल्पे १, एक साधु दो स्त्रियाँ २, दो साधु एक स्त्री ३, दो साधु दो स्त्रियोंके साथ खडे रहना नहीं कल्पे ४, परंतु कोई पांचवां वृद्ध या बालक हो तो खडे रहना कल्पता है. अथवा

बहुत लोग देख सकतेहों या लोगोंके आने जानेका रास्ताहो तो खडे रहना कल्पताहे. इसी तरह एक श्रावक एक साध्वी, एक श्रावक दो साध्वी, दो श्रावक एक साध्वी और दो श्रावक दो साध्वियोंको भी एक जगह खडे रहना नहीं कल्पे. यह तेरहवीं समाचारी ॥१३॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें वैयावच्च करनेवाले साधुको किसी साधुसे पूछे बिना उसके लिये आहार पानी आदि चार प्रकारका आहार लाने को गृहस्थके घर जाना नहीं कल्पताहे, बिना पूछे लानेसे उसकी इच्छा हो तो आहार करे, इच्छा न हो तो न करे, बिना रुची लज्जासे अथवा दाक्षिण्यता से आहार करले तो उसके शरीरमें प्रमाद बढे या अजीर्ण होवे और यदि आहार नहीं करे तो वर्षाकालमें जीवाकुल भूमिमें परठना योग्य नहीं, इसलिये बिना पूछे आहार नहीं लाना. लाने में आत्म विराधना, संयम विराधनाका दोष लगे. यह चौदहवीं समाचारी ॥१४॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंके शरीर कदाचित् वर्षाकी छांटोंसे गीले हों तो उन्होंको अशन, पान, खादीम, स्वादीम आहार करना नहीं कल्पता है. हाथ १, हाथकी रेखाएँ २, नख ३, नखोंके अग्रभाग ४,

भुंआरे ५, होठों के नीचेका भाग (डाढी) ६, होठों के ऊपरका भाग (मूंछ) ७, ये सात स्थान पानी रहने के हैं जब सब सूख जायें तब आहार करें. यह सप्त स्नेह (जल) स्थानरूप पन्द्रहवीं समाचारी ॥१५॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको ये आठ सूक्ष्म जीवोंके स्थान जो आगे बतलानेमें आते हैं उन्होंको समझने, देखने और पडिलेहने चाहियें. जहां २ साधु–साध्वी रहें, बैठें, पात्रादि उपकरण रक्खें या लेवें, वहां २ पडिलेहना अवश्य करनी. प्राण सूक्ष्म १, पनक सूक्ष्म २, बीज सूक्ष्म ३, हरित सूक्ष्म ४, पुष्प सूक्ष्म ५, अंड सूक्ष्म ६, लयन सूक्ष्म ७, स्नेह सूक्ष्म ८. इन सूक्ष्मों को समझ कर उन्होंका बचाव करना. अब इन आठ सूक्ष्मोंको अलग २ कहते हैं:—प्राण-सूक्ष्मके पांच भेद– काले, नीले, पीले, लाल और सफेद कुंथुयें जातिके सूक्ष्म जीव जब नहीं चलें, स्थिर रहें, तब छद्मस्थ साधु–साध्वियों के देखनेमें नहीं आसकते, इनका उद्धार (बचाव) नहीं होसकता, अतः इनको 'अनुद्धरी' कहते हैं, ये चलतेहों तबभी बारीक दृष्टिसे देख सकते हैं, जिस रंगकी वस्तु होती है उसी रंगके कुंथुयें भी उत्पन्न होते हैं. छद्मस्थ साधु–साध्वियोंको इनका स्वरूप समझकर प्रत्येक कार्य प्रसंगसे बारंबार इनकी प्रतिलेखना-प्रमार्जना करनी चाहिये, इनको प्राण सूक्ष्म कहते हैं १. पनक

सूक्ष्म—कृष्ण-नील-पीत-रक्त-शुक्ल ये पांच वर्णकी होतीहै, यह प्रायः वर्षाकालमें विशेष करके भूमि-काष्ठ-वस्त्र-मिट्टीके बर्तन आदिके ऊपर जिस रंगकी वस्तुहो उसी रंगकी पनक (लीलन–फूलन) उत्पन्न होती है, इसको पनक सूक्ष्म कहते हैं २. गेहुँ-चांवल आदि धान्यके मुंह पर बीजरूप छोटे २ कण होते हैं उनको बीज सूक्ष्म कहते हैं, ये भी पूर्वोक्त पांचों वर्णके होते हैं ३. हरित सूक्ष्म भी पांचों वर्णकी होती है, जो उत्पन्न होनेके समय पृथ्वीके समान वर्णवाले सूक्ष्म अंकुर होते हैं और शीघ्र विनाश होजाते हैं, इसको हरित सूक्ष्म कहतेहैं ४. बड, ऊंबर आदि के फूलों को पुष्प सूक्ष्म कहते हैं, ये भी वृक्षों के वर्ण के समान पांचों प्रकारके होते हैं ५. अंड सूक्ष्म पांच प्रकारके होते हैं—मधु मक्खी के अथवा मत्कुणाके अण्डे १, कोलिकाके अंडे २, कीडियोंके अण्डे ३, ब्राह्मणी-गिलोरी आदिके अण्डे ४, काकीडा वगैरहके अंडे ५, इनको अण्ड सूक्ष्म कहते हैं ६. लयन सूक्ष्म (जीवोंके रहने के घर) पांच प्रकारके होते हैं—पहला 'उत्तिंग लयन' पृथ्वीमें गोल आकारके छोटे २ खड्डे बनाकर उसमें गर्धभाकार के सूंडवाले जीव रहते हैं, उस खड्डेमें कीडी वगैरह गिरनेसे नहीं निकल सकती उन जीवोंको लोक-रूढिसे बालहस्ति कहते हैं १, दूसरा—'भृगुलयन' तालाब आदिमें जल सूखनेसे पृथ्वी पर पापडी बंध जाती है

उसके नीचे जीव रहते हैं उनको 'भृगुलयन' कहते हैं २, तीसरा—सर्प, चूहे, कीडियें वगैरहके बिलोंको 'उद्युतलयन' कहते हैं ३, चौथा—ताडवृक्षके मूलके जैसे ऊपरसे सकडे नीचेसे चौडे जीवोंके रहनेके घर होते हैं उनको 'तालमूललयन' कहते हैं ४, पांचवां—भ्रमर-भ्रमरिओंके गृहोंको 'शंबूकावर्त्तलयन' कहते हैं ५, इनको लयन सूक्ष्म कहते हैं ७. स्नेहसूक्ष्मभी पांच प्रकारके होते हैं—पहला रात्रिमें आकाशसे जो सूक्ष्म जल गिरताहै, यह ओस सूक्ष्म १, दूसरा बर्फ (हिम) सूक्ष्म २, तीसरा धूंमर (महिका) सूक्ष्म ३, चौथा गडे (करा) सूक्ष्म ४, पांचवां हरी घासपर शीतकालमें पृथ्वीके अन्दरसे तृणोंके अग्रभागमें जल आताहै ५, उसको हरित सूक्ष्म कहते हैं ८. इन आठों प्रकारके सूक्ष्मोंके भेदोंको अच्छी तरहसे समझकर छद्मस्थ साधु-साध्वियोंको बारंबार प्रति लेखना-प्रमार्जना करके उन्होंके जीवोंकी बहुत यत्ना करनी चाहिये. यह आठ सूक्ष्मोंकी यत्नारूप सोलहवीं समाचारी ॥१६॥

चौमासेमें साधु गृहस्थके घरमें गौचरी जावे तब आचार्य आदिसे पूछे, आचार्य—द्वादशांगी सूत्रार्थको पढाने वाले अथवा दिग्बंधन करनेवाले, दीक्षा देनेवाले, गच्छके स्वामी या दिग्मंडलाचार्य, सूत्र सिद्धांत पढाने वाले उपाध्याय, ज्ञानादिमें गिरतेहुए साधुओंको स्थिर करनेवाले और ज्ञानादि पढनेवाले साधुओंकी प्रसंशा

करनेवाले स्थविर, गच्छको ज्ञानादिमें प्रवर्त्ताने वाले प्रवर्त्तक, अर्थात्-तुम साधु यह सूत्र पढो, तुम यह सूत्र सुनो, उद्देश-समुद्देश आदिके योग वहनकरो इत्यादि ज्ञान संबंधी प्रेरणा करें, दर्शन संबंधी स्याद्वादरत्नाकर, सम्मतितर्क आदि पढाकर धर्म श्रद्धामें दृढ करें, चारित्रमें योगवहन-प्रायश्चित्तशुद्धि-निर्दोष आहारादिकी शिक्षा देते रहें, तुम अमुक प्रकारका तप करो, तुम वैयावच्च करो इत्यादि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य आदिमें साधुओंको प्रेरणा करनेवाले प्रवर्त्तक. जिसके पासमें आचार्यादि सूत्रार्थका अभ्यास करें, उनको 'गणि' कहते हैं, गणधर जो तीर्थंकरोंके मुख्य शिष्य, 'गणावच्छेदक' जो साधुओंको साथमें लेकर बाहर क्षेत्रमें विहार करें, गच्छके साधुओंके योग्य क्षेत्रकी तपास करें, उपधि मांगकर साधुओंको दें, गच्छके साधुओंकी व्यवस्था और सूत्रार्थ-उत्सर्ग-अपवादके जाननेवाले गणावच्छेदक इनसे पूछकर अथवा जिस गीतार्थ साधुको आगे करके, बडे-मान कर विचरते हों उनसे बिना पूछे साधुको गौचरी जाना नहीं कल्पताहै, आहारके लिये जानेके समय वंदना पूर्वक हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा होतो गृहस्थके घर गौचरीको मैं जाना चाहताहूं. ऐसा कहनेसे आचार्यादि आज्ञा दें तो गौचरी जाना कल्पे, यदि आज्ञा न दें तो जाना नहीं कल्पे. इसका कारण कहतेहैं कि गृहस्थोंके

घरों में जानेसे कोई उपद्रव हो तो उसका निवारण करने में आचार्य समर्थ होते हैं, इसलिये आचार्य आदिसे पूछकर गौचरी जाना कल्पताहै. इसीतरहसे विहारभूमि (जिन मन्दिर), और बाहिरभूमि (ठल्ले) अथवा एक गांवसे दूसरे गांव जाना आदि जो २ कार्य करने होवें सब गुरुआदिसे पूछकर करें। चौमासेमें रहे हुए साधुओं में जो कोई साधु दूध-दही-घृतादि विगय लाकर आहार करना चाहे तो पूर्वोक्त विधि से आचार्यादिसे पूछे बिना लाना नहीं कल्पताहै, आचार्य विगय लेनेमें लाभ अलाभ जानतेहैं, रोगीको विगय देनेसे बुखारादि होजाये, पुष्टिके लिये दूग्धादि देने पर अपुष्टि होजाये, गुरु दीर्घ दृष्टिवाले होते हैं, इसलिये पूछकर लेना चाहिये. इसीप्रकार वर्षाकालमें रहे हुए साधु-साध्वियोंमें किसीके वात, पित्त, कफ, सन्निपात, खून विकार आदि रोगोंका इलाज करानेकी इच्छा हो तो पूर्वोक्त विधिसे आचार्यादिकी आज्ञा लेकर करावें. आचार्य महाराज देश, काल, वय, प्रकृति, योग्य, अयोग्य क्षेत्रादि जानने वाले होते हैं । वर्षाकालमें जो कोई साधु-साध्वी उत्तम तप करनेकी इच्छा करें, तो भी आचार्यादिसे पूछकर करें, तप करनेमें कोई वैयावच्च करनेवाला न हो, औषधादि नहीं मिले, या शरीरकी शक्ति न होवे इत्यादि कारण आचार्य जानते हैं, इसलिये आचार्यसे पूछकर करना चाहिये।

वर्षाकालमें साधु–साध्वियोंमें जो कोई मरणांतिक संलेखना (तपसे शरीर और कर्मनाश) करनेकी इच्छा करें, अर्थात्–अनशन करनेकी इच्छा करें, भात पानीका पच्चक्खाण या पादपोपगमन अनशन करना चाहें अथवा गृहस्थोंके घरोंमें गोचरी आदि किसी कार्यके लिये जाना चाहें, अशनादि चार प्रकारका आहार करना चाहें, उच्चार (ठल्लो), प्रश्रवण (मात्रो) परठाणा चाहें, स्वाध्याय करना चाहें या रात्रिमें धर्म जागरण करनेकी इच्छाहो इत्यादि सब कार्य आचार्यादिसे पूछे विना करने नहीं कल्पतेहें। साधुको गुरुकी आज्ञा विना कुछ भी कार्य करना नहीं कल्पताहै. गुरु लाभ-अलाभ, गुण-दोष, हानि-वृद्धि आदि सर्व जानते हें, यदि योग्यता देखें तो आज्ञा दें अन्यथा नहीं दें। यह गुरु आज्ञासे कार्य्य करनेरूप सतरहवीं समाचारी ॥१७॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको वस्त्र, पात्र, कंवल, ओघा, दंडासन या अन्य उपधि धूपमें रखनेकी इच्छाहो तव एक साधुसे अथवा वहुतसे साधुओंसे पूछे विना रखने नहीं कल्पें अथवा गोचरी जानाहो, आहार करना हो, उपाश्रयसे वाहर जिन मंदिर या ठल्ले आदि जानाहो, स्वाध्याय या काउसग्ग करनेकी इच्छाहो, तव एक साधुसे अथवा वहुतसे साधुओंसे प्रार्थना करें कि हे महानुभावो ! जव तक में गोचरी लेकर आऊँ और काउ-

सग्गमें रहुँ, तब तक मेरे वस्त्र, पात्र, कंबल आदि उपधिकी आप संभाल रखना, ऐसा कहनेसे एक साधु अथवा बहुतसे साधु आज्ञा दें कि तुम जाओ अपना कार्य करो, तुम्हारी उपधि हम देखेंगे, तब उस साधुको गौचरी जाना यावत् काउसग्ग करना कल्पताहै. यदि कोई साधु प्रार्थना न माने, आज्ञा न दे तो कुछ भी कार्य करना नहीं कल्पताहै. यह अनुमति ग्रहणरूप अठारहवीं समाचारी ॥१८॥

वर्षाकालमें साधु-साध्वियोंको सोनेका पाटा और बैठनेकी चौकी आदि अवश्य लेने चाहियें नहीं तो जीवों की यत्ना नहीं हो सकती. सोनेका पट्टा एक पटियाका मिले तो दो पटियोंका न लेना, वहभी एक हाथसे अधिक ऊंचा, उससे कम नीचा व लिचापिच चूँचूँ शब्द करने वाला हिलता हुआ न होवे तो कीड़ी-कुंथुयें आदि की हानि न हो सके, सर्प आदिभी न चढ सकें ऐसा पाटा नहीं रखने वाला १, यदि पाटा हिलता हो तो पायों के बीचमें वंशकंबादि लकड़ी डालकर बंद लगाकर दृढकर ले, एक-दो-तीन या उत्कृष्ट चार बंदसे अधिक बंद न लगावे, पक्षमें एक वार बंद खोलकर प्रतिलेखना करलेनी, परन्तु बिना प्रयोजन अधिक वार न खोलना और अधिक बंद होंतो खोलते समय स्वाध्यायमें बाधा आवे, इसलिये चार बंदसे अधिक बंद लगाने वालेको अनर्थक

बंद करने वाला कहते हैं २, जिस साधुके बहुतसे आशन हों उसको 'अमिताशनी' कहते हैं अथवा बहुतसे आशनोंको बारंबार जगह २ स्थानांतर लेजाने में जीवों की हिंसा होती है ३, अपने वस्त्र, पात्र आदि उपकरण धूप में नहीं रखने वालेको 'अनातापि' कहते हैं, वस्त्र-पात्रादिको धूपमें नहीं रखनेसे नीलण फूलण या कुंथुयें आदि जीवोंकी उत्पत्ति होजाती है ४, बहुतसे वस्त्र-पात्रादि उपकरण रखनेसे सब उपभोगमें नहीं ले सकता उसको 'अनाभावित' कहते हैं ५, इरिया-समिति १, भाषा-समिति २, ऐषणा-समिति ३, आदान-भंड-मत्त-निक्षेपणा-समिति ४, उच्चार-प्रश्रवण-खेल जल्ल-सिंघाण पारिठावणिया समिति ५, इन पांचों समितियोंको अच्छी तरहसे नहीं पालने वालेको 'असमित' कहते हैं ६, और वारंवार पडिलेहणा न करे ७, वारंवार प्रमार्जना न करे ८, ऐसे साधुको संयम पालना दुर्लभ होताहै। अब प्रमादी साधुके कर्म बंधनका कारण कहकर, अप्रमादी साधुके कर्म बंधन नहीं होवे सो कहते हैं—एक हाथ ऊंचा, दृढ बंधन वाला, हिलता न हो ऐसा पाटा रखनेवाला १, जो साधु पाटाका बंधन पक्षमें एक वार खोले व चार बंदसे ज्यादे बंद न देनेवाला २, प्रमाण युक्त थोड़े आशन रखने वाला ३, उपधिको धूपमें तपाने वाला ४, पांच समितियों से युक्त भावित आतमा वाला ५, नियमा-

नुसार शुद्ध क्रिया करने वाला ६, बारंबार पडिलेहणा करनेवाला ७, बारंबार प्रमार्जना करने वाला हो ८, ऐसा साधु सुखसे संयम पाल सकताहै. अब पांच समिति, तीन गुप्तियों के दृष्टांत कहते हैं—

पहली—इरिया-समिति चलनेमें यत्ना करने संबंधी वरदत्तमुनिकी कथा—मिथ्यात्वी देवने रास्तेमें मंडुकिएँ उत्पन्नकीं और हाथीका रूप करके सूंडसे पकडकर वरदत्त साधुको ऊंचा फैंका, साधु जमीन पर गिरते समय जीवदया विचारता हुआ मंडुकियोंकी रजोहरणसे प्रमार्जना करने लगा, परंतु अपने शरीर भंगकी कुछभी परवा नहीं की, यह देखकर देवने अपना अपराध क्षमा कराया और स्तुतिकी. दूसरी—भाषा-समितिमें संगत साधुका दृष्टांत—किसी वैरी राजाने बहुत सेना सहित आकर एक नगर घेरा, उस नगरसे संगत साधु निकला, बाहरकी सेना वालोंने पकड लिया और पूछा हे मुनि ! नगरमें कितनी सेना है. साधु बोला—कान सुनते हैं वे बोलते व देखते नहीं, नेत्र देखते हैं, वे सुनते और बोलते नहीं. जीभ बोलतीहै, वह सुनती और देखती नहीं. ऐसा बार २ कहनेसे सेनावालों ने साधुको पाठगांडा जानकर छोड दिया. तीसरी—ऐषणा-समिति में नंदीषेण मुनिका दृष्टांत—वसुदेवजीका जीव पूर्वभवमें नंदीषेणनामा साधु छट्ठ-अठमादिसे पारणा करता और

रोगी आदि साधुओंकी वैयावच्चभी करता, इनकी इन्द्रने सभामें प्रसंशा की, तब परीक्षाके लिये मिथ्यात्वी देव अतिसारी रोगी साधुका रूप करके, एक छोटे शिष्य सहित वनमें ठहरा, छोटा शिष्य नंदीषेण छट्ठका पारणा करता था, वहां आकर बोला तुझको धिक्कार हो ! तू वैयावच्च करने वाला होकर आहार कर रहाहै, और मेरा गुरु अतिसारी रोगी वनमें पडाहै. ऐसा सुनकर नंदीषेण शीघ्र उठा, रोगी के शौचार्थ शुद्ध पानी लेने के लिये घर २ फिरा, देव घर २ में अशुद्ध जल करने लगा तथापि तपके प्रभावसे एक घरसे शुद्ध जल लेकर वनमें आया। रोगी साधुको शौच कराकर कंधेपर बैठाकर रास्तेमें चला, देवने नंदीषेणके कंधेपर दुर्गंधी विष्टा की, मुंहसे गालियें भी दीं, तो भी नंदीषेणने क्रोध नहीं किया, उसकी चिकित्साके विचारमें रहा. ऐसा देखकर देव प्रत्यक्ष होकर नमस्कार करके, स्तुति करके, देवलोकमें गया ३. चौथी–आदान-भंड-मत्त-निक्षेपणा-समितिमें सोमिल मुनिका दृष्टांत–कई साधुओंने प्रच्छन्नकाल होनेसे पडिलेहणा के समयसे पहले ही पडिलेहणा कर ली, जब अवसर हुआ तब वृद्धमुनि बोले हे भद्रो ! फिर पडिलेहणा करो, तब सोमिल साधु बोला–अभी तो पडिलेहणा की है, क्या झोलीमें सर्प उत्पन्न होगये. उसका वचन सुनकर शासन देवीने झोलीमें सर्प उत्पन्न किये, प्रभातमें

सर्पोंको देखकर सोमिल डरा, शासन देवीने प्रतिबोधा—हे साधु आजसे ऐसे उलंठ वचन नहीं बोलना, गुरुके कहनेसे बारंबार पडिलेहणा करनेसे साधुओंके कर्मोंकी बहुत निर्जरा होती है, ऐसा सुनकर सोमिल पडिलेहणामें दृढ हुआ ४. पांचवीं—उच्चार प्रश्रवणादि पारिठावणिया समितिपर—मुनिचन्द्र नामा लघु शिष्यका दृष्टांत—संध्या समय गुरुने कहा हे मुनिचंद्र उठकर थंडिले करो, ऐसा सुनकर लघुशिष्य बोला—आज संध्यामें थंडिले नहीं किये तो क्या रात्रिमें ऊंट आकर बैठेंगे? गुरुने मौन किया. मुनिचन्द्र रात्रिमें मात्रा परठाने के लिये गया शासनदेवीने ऊँट उत्पन्न किये, ऊँटोंने लात प्रहार दिये, डरा हुआ आकर गुरुसे बोला, गुरुने कहा तेने थंडिले करनेके समय उलंठ वचन बोलाथा, इसलिये शासनदेवीने तेरेको शिक्षा दी है, ऐसा सुनकर शासनदेवीके सामने लघु शिष्यने मिच्छामि दुक्कडं दिया और पारिष्ठापनिका समितिमें स्थिर हुआ ५. अब तीनों गुप्तियोंके उदाहरण कहते हैं—पहली—मन-गुप्तिपर—कोंकण साधुने इरियावही पडिक्कमके काउसग्गमें खेतीका विचार किया, गुरुने प्रतिबोधा तब पाप व्योपार विचारनेका मिच्छामि दुक्कडं दिया ६, दूसरी—वचन गुप्तिपर—गुणदत्त साधु अपने सांसारिक माता, भाई वगैरहको वंदना करानेके लिये जाते हुए रास्ते में चौरोंने कहा किसी को

हमारी खबर नहीं देना, ऐसा कहकर छोड दिया. दैवयोगसे मुनिको आगे संसारी सम्बंधी मिले तो भी मुनि ने चौरों की खबर नहीं दी, पीछे से चौर आये मुनिके संबंधियोंको पहिचान लिये, चौरोंने मुनिकी प्रशंसा की, मुनिकी दाक्षिण्यतासे उन्होंको नहीं लूटे ७. कायगुप्तिपर–अरहन्नक साधुका दृष्टांत–अरहन्नक साधु विहार करता हुआ रास्तेमें छोटासा नाला बहता था, सर्व लोगोंको कूदकर उलांघते हुए देखकर मनमें जीवदया विचार कर अपकायकी विराधना बचाने के लिये उस नालेको अरहन्नक साधुने भी कूदकर उलांघा, शासन देवीने पैरों के बीचमें लकडी डालकर गिराया, पैर टूट गया, शासनदेवीने जिन आज्ञा सुनाकर पैर अच्छा करके प्रतिबोधा, साधुभी मिच्छामि दुक्कडं देकर कायगुप्तिमें स्थिर हुआ ८. इस प्रकार साधु-साध्वियोंको वर्षा-काल में पाट, पाटिये काष्टके आसनादि पर बैठना कल्पता है, परन्तु जमीनपर सोना, आसन बिना बैठना नहीं कल्पता, उन्होंकी पडिलेहणा–प्रमार्जना करनी, काजा निकालना, जमीनसे ऊंचे उपकरण रखने और बिना पडिलेह हुए, बिना वापरे हुए नहीं रखने. साधुओं के चौदह उपकरण व साध्वियों के पच्चीस उपकरण होते हैं. सबकी दिनमें दोवार पडिलेहणा करनी. मन, वचन, कायासे उपयोग पूर्वक जयणा करनी, मुंहपत्तिसे मुंह

ढककर बोलना, दिनमें तो देखकर और रात्रिमें यदि कुछ कार्य हो तो दंडासण आदिसे भूमि प्रमार्जनकर चलना, शुद्ध गौचरी लाकर प्रकाशमें देखकर आहार करना, हमेशा सातवार चैत्यवंदन और चारवार सज्झाय करना, चार प्रकारकी विकथा नहीं करनी, अप्रमादीपने स्वाध्याय ध्यान आदि में रहना, ऐसा करने वाले साधु साध्वियों के सुखसे संयम का पालन होताहै। यह उन्नीसवीं समाचारी ॥ १९ ॥

वर्षाकाल में रहे हुए साधु-साध्वियों को ठल्ले–मात्रेकी तीन भूमि पडिलेहणी कल्पती हैं. जिसके दूरकी भूमि पडिलेहणेकी शक्ति न होवे उसको उपाश्रयमें ही अपनी शय्याके दोनों बाजू दूर, मध्य और नजदीक, ऐसी तीन भूमि पडिलेहणी और उपाश्रयके बाहर भी दूर, मध्य, और नजदीक तीनभूमि पडिलेहणी, इस तरह बारह थंडिले उपाश्रय के अंदर व बाहर और बारह दूर, सब चौबीस थंडिले वर्षाकाल में पडिलेहणे चाहियें. यह बीसवीं समाचारी ॥ २० ॥

वर्षाकाल में रहे हुए साधु-साध्वियों को तीन मात्रे लेने कल्पते हैं–ठल्लेका १, मात्रेका २, श्लेष्मका ३. यह इक्कीसवीं समाचारी ॥ २१ ॥

वर्षाकाल में रहेहुए जिनकल्पी साधु को आषाढ चौमासे से हमेशा लोच करना चाहिये, गोलोम मात्र भी केश रखने नहीं कल्पते, ध्रुव लोची होना चाहिये. स्थविर कल्पि साधुको भी शक्ति हो तो हमेशा लोच करना, वैसी शक्ति न हो तो भी संवत्सरी प्रतिक्रमणके पहले अवश्य लोच करना. लोच किये बिना संवत्सरी प्रतिक्रमण करना नहीं कल्पताहै. चौमासेमें केश रखनेसे पानीसे गीले होकर अपकायकी विराधना होती है, जूं पडें तो नखूनसे खुजलाने पर विराधना होती है, चमडीमें घाव होते हैं, इसलिये गोलोम प्रमाणभी केश नहीं रखने, शक्ति होनेपरभी मुंडन करावे अथवा कैंचीसे केश कटावे तो तीर्थंकरकी आज्ञाकी विराधना होवे, अन्य साधुओंका भी लोच करानेमें मन कम होनेसे मिथ्यात्वकी प्ररूपणाका प्रसंग आवे, संयम विराधना, आत्म विराधनाका दोष लगे, नाई द्रव्यादि मांगे अथवा सचित्त जलसे हाथ आदि धोए, जिससे पश्चात् कर्म लगे, जिनशासनकी हीलना होवे, इसलिये मुख्य वृत्ति (उत्सर्ग मार्ग) से लोच ही कराना चाहिये परंतु यदि लोच कराने में बुखार आदि हो, बालकसे सहन नहीं होसके, रोवे, कोई मंद श्रद्धावाला संयम छोडदे ऐसा हो तो अपवाद मार्गसे उसके मुंडन करा सकते हैं. यदि मस्तक में फोडे वगैरह होनेसे मुंडनभी न होसके तो कैंचीसे

केश कतर लेने चाहियें, पन्द्रह २ दिनमें पाटेका बंधन खोलकर उसकी पडिलेहणा करनी और पन्द्रह दिनमें आलोयणा ले लेनी. लोच नहीं कर सकताहो तो महीने २ मुंडन करावे या पक्ष २ में केश कटवा ले, मुंडनमें 'लघु-मास' केश कटवानेमें 'गुरुमास' प्रायश्चित्त देनेका निशीथसूत्रमें कहाहे. तरुण साधुको चार महीनेमें लोच करना कल्पे, वृद्ध साधुको चक्षुका तेज कम आदि कारण हो तो छः महीने या सालभरमें लोच करना कल्पे, वर्षाकालमें स्थविर कल्पि या जिन कल्पि सबको अवश्य लोच करना कल्पताहे. यह बाईसवीं समाचारी ॥२२॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको पर्युषणामें संवत्सरी प्रतिक्रमण किये बाद क्लेश कारक बचन बोलना नहीं कल्पताहे. तिसपरभी जो कोई साधु क्लेश कारक बचन बोले तो उस साधुसे दूसरे साधु ऐसा कहें हे आर्य ! तुमको ऐसा बचन कहना नहीं कल्पता है, अर्थात्–पर्युषणासे पहले कदाचित् क्लेश कारक बचन कहे हों तो संवत्सरी प्रतिक्रमणमें शुद्धभावसे मिच्छामि दुक्कडं देकर क्षमत क्षामणे करलिये जाते हैं. फिरभी पर्युषणा पर्वके बाद क्लेशके बचन कहे और मना करनेसेभी नहीं माने तो उस साधुको जिसतरह तंबोली सडे पानको निकाल देताहे, उसीतरह गच्छसे निकालदेना. अतः क्रोध, मान, माया, लोभादि कषाय साधुओंको नहीं करने. तथा

क्रोधपिंड १, मानपिंड २, मायापिंड ३ और लोभपिंड ४. ये चार पिंड लेने योग्य नहीं हैं :—

" कोहे घेवरखग्गो, माणे सेवइय खुड्डुए नायं । माये आसाढभूई, लोहे केसरिय साहुत्ति ॥ १ ॥"

क्रोधपिंड जैसे–घेवरीयो साधु क्रोध करके गृहस्थको शराप देकर भय बतलाकर उसके घरसे घेवर वहोर लाया १, मानपिंड जैसे–सेवभोजी साधु एक स्त्री के साथ मान करके सभामें उसके पतिके पास जाकर बोला–श्वेत अंगुली १, बग उड़ाने वाला २, तीर्थ में स्नान करने वाला ३, किंकर ४, हृदन ५, लडके रमाने वाला ६, ऐसे छः पुरुष स्त्री के वशमें होते हैं. वैसा तू भी न हो तो मुझे सेव वहोरा. उसने सभामें सेव वहोरानेका मंजूर किया और घरमें आकर अपनी स्त्री को ऊपरकी मंजल किसी कार्यके लिये चढाकर निसरणी हटा ली, फिर साधुको बुला कर घी खांड सहित सेवका पात्र भर दिया, तब वह साधुभी नाकके ऊपर अंगुली फिराता हुआ उस स्त्री की तर्जना करके सेव वहोर लाया २, माया पिंड जैसे–आषाढ भूति मुनिने नये २ साधुके रूप बनाकर मोदक लिये ३, लोभपिंड जैसे–एक साधु मासक्षमणके पारणेमें सिंहकेसरिये मोदक देखकर धर्मलाभकी जगह सिंहकेसरिये २ ऐसा घर २ में कहते हुए फिरता हुआ देखकर एक श्रावकने घरमें बुलाकर सिंहकेसरिये मोदकोंका

थाल भरकर दिखाया, जिससे मुनिका चित्त ठिकाने आगया ४. इस प्रकार क्रोध-मान-माया और लोभ से साधुको आहार नहीं लेना. यह तेईसवीं समाचारी ॥ २३ ॥

वर्षा कालमें रहे हुए साधु-साध्वियों में से किसीके आपसमें क्लेश हुआ हो, रत्नाधिक बडे मुनि दोषवान् हों, तो भी छोटा साधु बडे साधुको खमावे, यह विधिमार्ग है, कभी शिष्य विधिका जानने वाला न हो या अहंकारी हो तो बडे मुनि शिष्यको खमावें. आप खमना, दूसरों से खमाना. आप उपशम करना, दूसरों को उपशम करवाना. किसी कारणसे गुरु आदि के साथ क्लेश हुआ हो तब राग-द्वेषको छोडकर शुद्ध भावसे क्षमत क्षामणे करना और सूत्रार्थका पूछना वगैरह विनयसे रहना. जो क्षमाकरे वह आराधक होता है, जो क्षमा नहीं करता वह आराधक नहीं होता, अर्थात्—क्रोधी साधु जिन—आज्ञाका विराधक होता है. निश्चय करके क्षमाही चारित्र धर्मका सार है. श्रावकों को भी जिस तरह उदायन राजाने चंडप्रद्योतनके साथ क्षमत क्षामणे किये थे, उसी तरह परस्पर क्षामणे करने चाहियें. उसका दृष्टांत कहते हैं—

चंपा नगरी में जन्मसे लोलपी कुमारनंदी सुनारने धन देकर सुन्दर रूप वाली पांचसो स्त्रियोंसे पाणिग्रहण

किया, एक दिन हासा-प्रहासाका रूप देखकर मोहित हुआ, उनसे प्रार्थना की, तव वे बोलीं-तू पंचशैल आवेगा, तो तेरा मनोरथ पूर्ण होगा. ऐसा कहकर गईं, कुमारनंदीभी एकवृद्ध नाविकको करोड द्रव्य देकर नाव में बैठकर पंचशैलकी तरफ चला, समुद्रमें एक जगह जलके भ्रमरमें वट वृक्षके नीचे नाव घूमने लगी. तब वृक्षकी साखा पकडकर ऊपर चढकर वहां भारंड पक्षीके पैर पकडकर पंचशैल द्वीपमें पंचशैल पर्वत पर गया, वहां की अधिष्टात्री हासा-प्रहासा व्यन्तरी बोलीं-पीछा अपने घर जाकर हमारे ध्यानसे 'इंगिनीमरण' कर, जिससे हमारा पति होवेगा, ऐसा कहकर उठाकर घर पहुंचा दिया. इंगिनीमरण करने की इच्छा वाले कुमारनंदी को उसके मित्र नागिल श्रावकने मना किया, तो भी इंगिनीमरणसे मरकर पंचशैल पर्वत पर हासा-प्रहासाका पति 'विद्युनमाली' नामक देव हुआ. एकदा इन्द्रादिदेव नंदीश्वर द्वीप गये, विद्युनमाली भी हासा-प्रहासा सहित मृदंग बजाता हुआ वहां गया परन्तु बारंबार गलेमें से मृदंग उतारता हुआ, उसके पूर्वभव के मित्र नागिल श्रावक दीक्षा लेकर बारहवें देवलोकमें देव उत्पन्न हुआ था उसने देखा और बोला अरे मित्र ! तेने तुच्छ सुखके लिये जन्म हारा. अब तेरा निस्तार होनेके लिये धर्म मार्ग बतलाता हूँ-तू गोशीर्ष चन्दन की श्रीमहावीर भगवान् जीवित

स्वामीकी प्रतिमा बनाकर पूजा कर, जिससे जन्मान्तरमें तेरेको बोधिबीज की प्राप्ति होगी. तब उसने भी श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा बनाकर पूजी और अंत समय पेटीमें बंद करके जहाज के लोगोंको देकर वीतभयपत्तन भेजी. प्रतिमाकी पेटी बाजारमें रखी, देवाधिदेवके नामसे सब मिथ्यात्वियोंने पेटी खोलने का प्रयत्न किया, परन्तु नहीं खुली. प्रभावती रानी प्रभुकी श्राविका थी उसने देवाधिदेव श्रीमहावीर स्वामीका नाम उच्चारण किया, पेटी खुल गई. प्रभावती प्रतिमाको घरमें देरासरमें स्थापित कर पूजन करने लगी. एकदा प्रभावती रानीने अपना अल्प आयुः जानकर 'मैं देवगतिमें जाऊंगी, तब आपको कष्टके समय सहायता दूंगी' ऐसा उदायन राजासे कहकर आज्ञा लेकर दीक्षा ली, बादमें उस प्रतिमाकी पूजा उदायन राजा करता था, कुब्जादासी पूजाके उपकरण जल वगैरह सामग्री लातीथी, एक समय गंधार श्रावक वहां यात्राके लिये आया, बीमार होगया, कुब्जा ने अच्छी सेवा की, तुष्टमान होकर रूप-परावर्त्तिनी १ और सौभाग्य-कारिणी २ ये दो गुटिकायें कुब्जादासी को देकर उस श्रावकने दीक्षा ली. कुब्जादासी रूपपरावर्त्तिनी गुटिका खाकर सुन्दर रूपवती हुई. राजाने ऐसी दिव्य रूपवाली देखकर पहचानी नहीं, पूछा, उसने गुटिका खानेका स्वरूप कहा, तब राजाने 'सुवर्णगुलिका'

नाम किया. दूसरी गुटिका भी चंडप्रद्योतन की मैं सौभाग्यवती होऊँ, ऐसा विचार कर खाई, चंडप्रद्योतनने भी दूसरी वैसीही चन्दनकी प्रतिमा बनवाकर, उदायन राजाके घर देरासरमें स्थापित करके, मूल प्रतिमाके साथ सुवर्ण-गुलिकाको अनलगिरी हाथीपर बैठाकर उज्जैयनी ले आया. प्रभातमें पूजाके लिये उदायन राजा देरासरमें गया, तब मूल प्रतिमा और सुवर्ण-गुलिकाको चंडप्रद्योतन हरण करके लेजानेकी मालूम हुई. उसके बाद दश मुकुट बद्ध राजाओं सहित बडी सेना लेकर उज्जैयनी पर चला. रास्तेमें उदायन राजाकी सेनाको पहले लोद्रपुर पत्तनमें, दूसरे पोकरणमें, तीसरे अजमेरके पास पुष्करमें, इन तीनों जगह प्रभावती देवीने जलकी सहायता दी. इस प्रकार उदायन राजा अनुक्रमसे मालवा देशमें आकर चंडप्रद्योतनको दूत भेज कर कहलाया कि सुवर्ण-गुलिका तुझको दी. परन्तु जीवित-स्वामीकी प्रतिमा दूतके साथ पीछे भेजो. चंडप्रद्योतनने यह सुनकर दूतको निकालदिया, युद्धके लिये तैयार हुआ, संग्राममें प्रभावती देवीकी सहायतासे उदायनराजाने चंडप्रद्योतनको जीतकर यह 'मेरी दासीका पतिहै' ऐसे लेख वाला सोनेका पट्ट उसके मस्तक पर बंधवाकर पैरोंमें सोनेकी बेडी डालकर उज्जैयनीमें अपनी आज्ञा प्रवर्त्ताकर, उस प्रतिमाको राजा उठाने लगा, प्रतिमा उठी नहीं.

वीतभयपत्तनमें उपद्रव होने वालाहै, इससे यह प्रतिमा वहां नहीं आवेगी. ऐसी देव-वाणी सुनकर प्रतिमा को वहीं रखकर चंडप्रद्योतनको साथमें लेकर अपने नगरकी तरफ चले. रास्तेमें वर्षाकाल आया. मालव देशमें कीचड़ अधिक होनेसे आगे नहीं जासके, उदायन राजा एक ऊंची जगह पर अपनी सेना सहित ठहरे. दश राजा भी अलग २ जगह ठहरे (वहां अब भी मालव देशमें दशपुर नामक नगरहै). सुख पूर्वक वर्षाकाल व्यतीत करते हुए पर्युषणा पर्व आये, उसदिन उदायन राजाने चंडप्रद्योतन के लिये भोजन तैयार करनेका रसोइयेसे कहकर आपने पौषध लिया, रसोइया चंडप्रद्योतनके पासमें आकर बोला—उदायन राजाने आज उपवास करके पौषध लियाहै, आपके लिये क्या भोजन बनावें? चंडप्रद्योतनने विचार किया आज मेरेको जहर देकर मारेगा, ऐसे भयसे पौषधका मिष (बहाना) करके बैठगया, उपवास करलिया और रसोइयेसे बोला मेरेभी आज उपवासहै. यह बात उदायन राजा सुनकर 'स्वधर्मी बंधा होवे तो मेरेको पौषध कैसे कल्पे, भयसे भी यह मेरा स्वधर्मी हुआहै' ऐसा विचार कर पौषधशालासे उठकर, बेड़ी तुडाकर, आपसमें क्रोध भावके क्षमत क्षामणे कर मिच्छामि दुक्कडं देकर, साथमें संवत्सरी प्रतिक्रमण करके, प्रभातमें पारणा करवाकर उज्जैयनी

नगरी भेज दिया. इसी प्रकार पर्युषणा पर्व आनेसे साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविकाओंको आपसमें शुद्ध भावसे क्षमत क्षामणे करने चाहियें. यह चौबीसवीं समाचारी ॥ २४ ॥

चौमासेमें रहे हुए साधु—साध्वियोंको तीन उपाश्रय रखने कल्पते हैं, जिस उपाश्रयमें ठहरे हों उसमें प्रातःकाल १, गौचरीके समय २, मध्यान्ह ३, और तीसरे प्रहर ४, ऐसे चारवार चौमासेमें प्रमार्जना करनी. शीत व उष्ण कालमें मध्यान्ह बिना तीनवार प्रमार्जना करनी, यह विधि निर्जीव उपाश्रयकी है परन्तु जीवाकुल उपाश्रयमें तो बारंबार पडिलेहणा-प्रमार्जना करनी चाहिये और दूसरे दो उपाश्रयों में भी हमेशा दृष्टि पडिलेहणा करनी, तीसरे दिन दंडासनसे प्रमार्जना करनी. यह पचीसवीं समाचारी ॥ २५ ॥

चौमासेमें रहे हुए साधु—साध्वियोंको किसी दिशा अथवा विदिशामें गौचरी वगैरहको जाना हो तो गुरु आदिसे कहकर जाना कल्पे. जिस दिशा-विदिशामें जावें उसका नाम मुनियोंसे कह देना चाहिये, इसका कारण कहते हैं:—बहुत करके वर्षाकालमें श्रमण भगवंत साधु-मुनि तपस्या करके दुर्बल होते हैं इसलिये यदि कहीं पर थककर बैठजावें या गिरजावें अथवा मुर्च्छित होजावें तो जो दिशा बतला कर गये हों तो उस दिशामें

तपस्वी मुनिकी तपास होसके. यह छब्बीसवीं समाचारी ॥ २६ ॥ वर्षाकालमें साधु-साध्वियोंको रोगी आदि साधुके लिये वस्त्र, औषध, पथ्य, वैद्य-चिकित्सादिके लिये चार पांच योजन तक जाना आना कल्पताहै, वहां जबतक कार्य्य हो तबतक ठहरें, कार्य्य होने बाद उस रात्रिको भी वहां पर रहना नहीं कल्पे, वहां से कोस दो कोस चलकर बीचमें रहें, परंतु वहां रहना नहीं कल्पे. यह सत्ताईसवीं समाचारी ॥ २७ ॥

अब अट्ठाईसवीं साधु-धर्म समाचारी कहते हैं:—साधु धर्ममें उपशमही सारहै, जो जानते या अजानते कुछ दोष लगा हो उनका निशल्य होकर मिच्छामि दुक्कडं देना. जिसतरह—मृगावती साध्वीने चंदनबाला स[illegible]वीके पैरों में पडकर मिच्छामि दुक्कडं देती हुई केवलज्ञान उत्पन्न किया, इसीतरह मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये. परंतु कुम्हार और लघु शिष्यने जैसा मिच्छामि दुक्कडं दिया, वैसा मिच्छामि दुक्कडं नहीं देना, इसमें कुछ कार्य सिद्धि नहीं होती. और सासु-जमाईके विवादमें घी-क्षीरके परस्पर मिलाप हुआ, उसका यहां पर लौकिक दृष्टांत बतलाते हैं:—एक जमाई सासुके घर बहुत दिनोंसे लडाई मिटानेको आया, सासुने क्षीर बनाई, जमाईको भोजन करनेको बैठाया, खांड सहित क्षीर परोसी, घी मेंहंगा होनेसे घरमें था, तो भी नहीं परोसा, घी दुकानसे ले आऊं

ऐसा कह कर गई. पीछेसे जमाईने छींके पर जमे हुए घीकी रखी हुई हंडिया देखी, उसको तपाकर पीछी रखदी और विचार किया सासु कृपणहे, घी घरमें है तो भी लेनेको गई है. सासु आकर बोली दुकानमें घी नहीं मिला, जमाई बोला–हे सासुजी ! थोडा बिंदुमात्रभी घी की हंडियामें घी होतो डालो, लूखेका दोष मिटाओ, ऐसा कहनेसे सासुने जमे हुए घी के भरोसे, इसमें कहां है, ऐसा कहती हुई जमाईकी क्षीरकी थाली पर हंडिया उल्टी करदी, सब घी गिर गया, यह देखकर सासु बोली–जमाई पुत्रके समान होते हैं. इसलिये मैं भी आज आपके साथ भोजन करूंगी, जमाई बोला बहुत अच्छा. तब सासु साथमें भोजन करती हुई अपनी तरफ घी लानेको बोली–आपने उस दिन मेरी पुत्रीको पीटी, अमुक दिन गालियें दीं, उस दिन रक्त वस्त्र मांगा सो भी नहीं दिया और आप होलीको, अक्षयतीजको, दिवालीको नहीं आये, ऐसा कहती हुई क्षीरमें अंगुलियोंसे बारंबार रेखा करती हुई घीको अपनी तरफ खींचती हुई देखकर जमाई भी धूर्त्ताई करके सासु से बोला पहले किया सो सब भूल जाओ 'आजसे अलिया गलिया' ऐसा कहकर हाथसे क्षीरमें घी मिलाकर बोला जो मेरे बचन पर विश्वास नहीं है तो मैं तुम्हारे सामने कौश पी जाऊँ, ऐसा कहकर सब क्षीर पी गया. यह लौकिक दृष्टांतमें

जैसे—सासु-जमाईके विवादमें घी क्षीरका परस्पर मिलाप हुआ, वैसेही धर्ममें भी सर्व प्रकारके विरोध भूलकर मिलाप कर लेना चाहिये. ऐसा विचार कर पर्युषणा पर्वमें विशेष करके कषायोंका त्याग करना और अच्चंकारी भट्टा वगैरहके दृष्टांत सुनकर कषायरूपी शल्य बिलकुल नहीं रखना. यह पर्युषणा समाचारी कही.

अब इसका फल कहते हैं:—स्थविर कल्पी साधु-साध्वियोंको हमेशा इस प्रकार संयमका पालन करना चाहिये. यद्यपि जिन कल्पियोंकाभी कुछ आचार बतायाहै, तोभी स्थविर कल्पी साधुओंका विशेष आचार बतलायाहै, उसी प्रकार यथायोग्य मर्यादा सहित, मोक्ष मार्ग साधनरूप, तत्त्वस्वरूप ज्ञान पूर्वक भगवान्‌की आज्ञानुसार मन, वचन, कायासे जावजीव तक अच्छी तरह शुद्ध श्रद्धासे संयमका आराधन करनेवाले, दूसरोंको उपदेश देकर यथोक्त विधिसे आराधना करवाने वाले, अपने दोषोंकी शुद्धि करनेवाले बहुतसे साधु—साध्वी संसारसे तीर प्राप्त होते हैं; अर्थात्—उसी भवमें सिद्ध होते हैं, केवलज्ञान पाते हैं, कर्म बंधनोंसे छूटतेहैं, सर्व प्रकारसे कर्मरूप ताप जानेसे शीतलता पाते हैं, अधिक क्या कहना—सर्व इंद्रिय व मन संबंधी दुःखोंका अंत करते हैं, कदाचित् कई उस भवमें मोक्ष नहीं जासकें तो दूसरे भवमें मोक्ष जातेहैं, कितनेही तीसरे भवमें सिद्ध बुद्ध

होते हैं परंतु सात-आठ मनुष्योंका भव उल्लंघन नहीं कर सकते, अर्थात्—शुद्ध संयम पालन करनेवाले उत्कृष्ट सात-आठ भवोंमें अवश्यही मोक्ष जातेहैं. यह साधु-धर्मस्वरूप अट्ठाईसवीं समाचारी ॥ २८ ॥

यह अधिकार भगवान्के कथनानुसार भद्रबाहुस्वामीने कहाहै सो बतलातेहैं:—तिसकाल तिससमयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने राजगृह नगरमें, गुणाशिलचैत्यमें, समोवसरणमें, बहुत साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, देव और देवियोंकी बडी पर्षदामें बचन योग्यसे कल्प आराधनका फल दिखाकर पर्युषणा कल्प नामक अध्ययनकी प्ररूपणा की. वह सूत्र सहित, अर्थ सहित, एक महीना बीस दिन जानेसे पर्युषणा करने इत्यादि प्रयोजन सहित, उत्सर्गसे लोचही करना, शिरमें तकलीफ हो तो अपवादसे मुंडन कराना इत्यादि उत्सर्ग—अपवाद सहित, व्याकरण प्रश्नोत्तर-सहित, भूलनेके स्वभाव वाले शिष्यों पर कृपा करके ऐसा बारंबार उपदेश दिया. जैसे श्रीमहावीर स्वामीने गणधरादिको उपदेश दिया, वैसेही कल्पसूत्र नामक सूत्रकी रचना करके श्रीभद्रबाहु स्वामीने चतुर्विध संघके आगे उपदेश दिया. इसी प्रकार पूर्वाचार्योंकी परंपरानुसार हमने भी श्रीगुरु महाराजके प्रसादसे यथाबुद्धि श्रीसंघके आगे मंगलके लिये श्री कल्पसूत्रको तीन अधिकार सहित

बांचकर सुनायाहै. इसमें मूलसूत्र, काना, मात्रा, अक्षर, अर्थ ज्यादा कम कहनेसे जो दोष लगाहो उसका संघके समक्ष मिच्छामि दुक्कडं हो. संघको भी श्री कल्पसूत्र सुनते समय पर्वके दिनोंमें निद्रा, विकथा या प्रमादसे अभक्ति, आशातनाका दोष लगा हो उसका मन, वचन, कायासे मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये. इस पर्वमें बहुतसे भव्यजीव दान देते हैं, शील पालते हैं, तप करते हैं, जिनपूजा भक्ति करते हैं, कई स्वधर्मियोंका वात्सल्य, प्रभावना आदि करते हैं और कई भावना भाते हैं ये सर्व कार्य्य मुक्ति देने वाले होते हैं ॥ इति शुभं ॥

श्रीकल्पसूत्रवरनाममहागमस्य, गुढार्थभावसहितस्यगुणाकरस्य ।
लक्ष्मीनिधेर्विहितवल्लभकामितस्य, व्याख्यानमाप नवमं परिपूर्त्तिभावम् ॥

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणं । प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥ १ ॥

॥ साधु समाचारी नामक नवम व्याख्यान संपूर्ण ॥ ९ ॥

॥ इति श्री कल्पसूत्रकी लक्ष्मीवल्लभगणि विरचित कल्पद्रुम कलिका नामक टीकाका हिंदी भाषांतर समाप्त ॥





॥ श्री कल्पसूत्र (हिन्दी भावार्थ) संपूर्ण ॥

खंधप्पएसा परमाणुपोग्गला, ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—वण्णपरिणया गंध० रस० फास० संठाणपरिणया, एवं ते ५ जहा पण्णवणाए, सेत्तं रूविअजीवाभिगमे, सेत्तं अजीवाभिगमे (सू० ५)

अथ कोऽसौ अजीवाभिगमः ?, सूरिराह—अजीवाभिगमो द्विविधः प्रज्ञप्त , तद्यथा—रूप्यजीवाभिगमोऽरूप्यजीवाभिगमश्च, रूपमेषामस्तीति रूपिणः, रूपग्रहणं गन्धादीनामुपलक्षणं, तद्व्यतिरेकेण तस्यासम्भवात्, तथाहि—प्रतिपरमाणु रूपरसगन्धस्पर्शाः, उक्तं च—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसगन्धवर्णो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥" एतेन यदुच्यते कैश्चित् 'भिन्ना एव रूपपरमाणवो भिन्नाश्च पृथक् पृथग् रसादिपरमाणव' इति, तदपास्तमवसेयं, प्रत्यक्षबाधितत्वात्, तथाहि—य एव नैरन्तर्येण कुचकलशोपरिनिविष्टा रूपपरमाणव उपलब्धिगोचरास्तेष्वेवाव्यवच्छेदेन सकलेष्वपि स्पर्शोऽप्युपलभ्यते, य एव च घृतादिरसपरमाणवः कर्पूरादिगन्धपरमाणवो वा तेष्वेव नैरन्तर्येण रूपं स्पर्शश्चोपलब्धिविषयः, अन्यथा सान्तरा रूपादयः प्रतीतिपथमियुः, न च सान्तराः प्रतीयन्ते, तस्मादव्यतिरेक. परस्परं रूपादीनामिति, रूपिणश्च तेऽजीवाश्च रूप्यजीवास्तेषामभिगमो रूप्यजीवाभिगमः पुद्गलरूपाजीवाभिगम इतियावत्, पुद्गलानामेव रूपादिमत्त्वात्, रूपव्यतिरिक्ता अरूपिणो—धर्मास्तिकायादयस्ते च तेऽजीवाश्चारूप्यजीवास्तेषामभिगमोऽरूप्यजीवाभिगमः ॥३॥ तत्रारूपिणः प्रत्यक्षाद्यविषया. केवलमागमप्रमाणगम्यास्तत्त्वत इति प्रथमतस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—सुगमं, सूरिराह—'अरुवी'त्यादि ॥ अरूप्यजीवाभिगमः **'दशविधः'** दशप्रकारः प्रज्ञप्तः, तदेव दशविधत्वमाह—तंजहेत्यादि, 'तद्यथे'ति वक्ष्यमाणभेदकथनोपन्यासार्थः, धर्मास्तिकायः, **'एवं जहा पण्णवणाए'** इति **'एवम्'** उक्तेन प्रकारेण यथा **प्रज्ञापनायां** तथा

वक्तव्यं तावद् यावत् 'सेत्तं असंसारसमापन्नजीवाभिगमे' इति, तच्चैवम्—"धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्स पएसा अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसे अधम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा अद्धासमये" इति, तत्र जीवानां पुद्गलानां च स्वभावत एव गतिपरिणामपरिणतानां तत्स्वभावधारणात्पोषणाद्धर्मः अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायः—सङ्घातः "गण काए य निकाए खंधे वग्गे तहेव रासी य" इति वचनात् अस्तिकायः—प्रदेशसङ्घात इत्यर्थः, धर्मश्चासावस्तिकायश्च धर्मास्तिकायः, अनेन सकलधर्मास्तिकायरूपमवयविद्रव्यमाह, अवयवी च नाम अवयवानां तथारूपः सङ्घातपरिणामविशेष एव, न पुनरवयवद्रव्येभ्यः पृथगर्थान्तरद्रव्यं, तस्यानुपलम्भात्, तन्तव एव हि आतानवितानरूपसङ्घातपरिणामविशेषमापन्ना लोके पटव्यपदेशभाज उपलभ्यन्ते, न तदतिरिक्तं पटाख्यं नाम द्रव्यम्, उक्तं चान्यैरपि—"तन्त्वादिव्यतिरेकेण, न पटाद्युपलम्भनम्। तन्त्वादयोऽविशिष्टा हि, पटादिव्यपदेशिनः ॥ १ ॥" कृतं प्रसङ्गेन, अन्यत्र धर्मसङ्ग्रहणिटीकादावेतद्वादस्य चर्चितत्वात्, तथा तस्यैव बुद्धिपरिकल्पितो द्व्यादिप्रदेशात्मको विभागो धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः—प्रकृष्टा देशाः प्रदेशाः, प्रदेशा निर्विभागा भागा इति, ते चासङ्ख्येयाः, लोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्तेषाम्, अत एव बहुवचनं, धर्मास्तिकायप्रतिपक्षभूतोऽधर्मास्तिकायः, किमुक्तं भवति ?—जीवानां पुद्गलानां च स्थितिपरिणामपरिणतानां तत्परिणामोपष्टम्भकोऽमूर्त्तोऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मकोऽधर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि पूर्ववत्, तथा आ—समन्तात्सर्वाण्यपि द्रव्याणि काशन्ते—दीप्यन्तेऽत्र व्यवस्थितानीत्याकाशम्, अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायोऽस्तिकायः, आकाशं च तदस्तिकायश्चाकाशास्तिकायः, आकाशास्तिकायस्य देश इत्यादि प्राग्वत्, नवरमस्य प्रदेशा अनन्ताः, अलोकस्यानन्तत्वात्, 'अद्धासमय' इति, अद्धेति कालस्याख्या, अद्धा चासौ समयश्चाद्धासमयः, अथवाऽद्धायाः समयो—

निर्विभागो भागोऽद्धासमयः, अयं चैक एव वर्त्तमानः परमार्थतः सन् नातीतानागताः, तेषां यथाक्रमं विनष्टानुत्पन्नत्वात्, ततः कायत्वाभावाद्देशप्रदेशकल्पनाविरहः, अथाकाशकालौ लोकेऽपि प्रतीताविति तौ श्रद्धातुं शक्येते, धर्माधर्मास्तिकायौ तु कथं प्रत्येतव्यौ ? येन तद्विषया श्रद्धा भवेत्, उच्यते, गतिस्थितिकार्यदर्शनात्, तथाहि—यद् यदन्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तद्धेतुकमिति व्यवहर्त्तव्यं, यथा चक्षुरिन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधायि चाक्षुषं विज्ञानं, तथा च जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिपरिणामपरिणतानामपि गतिस्थिती यथाक्रमं धर्माधर्मास्तिकायान्वयव्यतिरेकानुविधायिन्यौ, तस्मात्ते तद्धेतुके, न चायमसिद्धो हेतुः, तथाहि—जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिपरिणामपरिणतानामपि गतिस्थिती न तत्परिणमनमात्रहेतुके, तन्मात्रहेतुकतायामलोकेऽपि तत्प्रसक्तेः, अथ न तत्परिणमनमात्रं हेतुः किन्तु विशिष्टः परिणामः, स चेत्थंभूतो यथा लोकमात्रक्षेत्रस्यान्तरेऽत्र गतिस्थितिभ्यां भवितव्यं न बहिः प्रदेशमात्रमप्यधिकं, ननु स एवेत्थम्भूतो विशिष्टपरिणाम आकालं जीवानां पुद्गलानां चोत्कर्षतोऽप्येतावत्प्रमाण एवाभूद् भवति भविष्यति वा न तु कदाचनाप्यधिकतर इत्यत्र किं नियामकं ?, यथा हि किल परमाणोर्जघन्यतः परमाणुमात्रक्षेत्रातिक्रममादिं कृत्वोत्कर्षतश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकमपि क्षेत्रं यावद् गतिरुपजायते तथा परतोऽपि प्रदेशमात्रमप्यधिका किं न भवति ?, तस्मादवश्यमत्र किञ्चिन्नियामकमपरं वक्तव्यं, तच्च धर्माधर्मास्तिकायावेव नाकाशमात्रम्, आकाशमात्रस्यालोकेऽपि सम्भवात्, नापि लोकपरिमितमाकाशम्, इतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गात्, तथाहि—जीवाना पुद्गलानां चान्यत्र गतिस्थित्योरभावे सिद्धे सति विवक्षितस्य परिमितस्याकाशस्य लोकत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ चान्यत्र जीवपुद्गलानां गतिस्थित्यभावसिद्धिरित्येकाभावेऽन्यतरस्याप्यभावः, अथ किमिदमसंबद्धमुच्यते ?, यत् लोकत्वेन सम्प्रति व्यवह्रियते क्षेत्रं, तावन्मात्रस्यैवाकाशखण्डस्य गतिस्थित्युपष्टम्भकस्वभावो न परस्य प्रदेशमात्रस्यापि ततो न कश्चिद्दोषः, ननु तावन्मात्रस्यैवाकाशस्य

स स्वभावो न परस्य प्रदेशमात्रस्यापीत्यत्रापि सुधियः कारणान्तरं मृगयन्ते, आकाशत्वमात्रस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्, विशेषणमन्तरेण च वैशिष्ट्यायोगात्, कारणान्तरं धर्माधर्मास्तिकायभावाभाववेव नापरमिति स्थितम्, अन्यच्च—तावन्मात्रस्याकाशखण्डस्य स स्वभावो न परस्येत्यपि कुतः प्रमाणात्परिकल्प्यते ?, आगमप्रमाणादिति चेत् तथाहि—तावत्येवाकाशखण्डे जीवानां च पुद्गलानां च गतिस्थितिमतां गतिस्थिती तत्र तत्र व्यावर्ण्येते न परत इति, यद्येवं तर्ह्यागमप्रामाण्यबलादेव धर्माधर्मास्तिकायावपि गतिस्थितिनिबन्धनमिष्येयातां किमाकाशखण्डस्य निर्मूलस्वभावान्तरपरिकल्पनाऽऽयासेनेति कृतं प्रसङ्गेन । अथामीषामित्थं क्रमोपन्यासे किं प्रयोजनम् ?, उच्यते, इह धर्मास्तिकाय इति पदं मङ्गलभूतम्, आदौ धर्मशब्दान्वितत्वात्, पदार्थप्ररूपणा च सम्प्रत्युत्क्षिप्ता वर्त्तते, ततो मङ्गलार्थमादौ धर्मास्तिकायस्योपादानं, धर्मास्तिकायप्रतिपक्षभूतश्चाधर्मास्तिकाय इति तदनन्तरमधर्मास्तिकायस्य, द्वयोरपि चानयोराधारभूतमाकाशमिति तदनन्तरमाकाशास्तिकायस्य, ततः पुनरजीवसाधर्म्योदद्धासमयस्य, अथवा इह धर्माधर्मास्तिकायौ विभू न भवतः, तद्विभुत्वेन तत्सामर्थ्यतो जीवपुद्गलानामस्खलितप्रचारप्रवृत्तेर्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेः, अस्ति च लोकालोकव्यवस्था, तत एतावविभू सन्तौ यत्र क्षेत्रे समवगाढौ तावत्प्रमाणो लोकः, शेषस्त्वलोक इति सिद्धम्, उक्तं च—"धर्माधर्मविभुत्वात्सर्वत्र च जीवपुद्गलविचारात् । नालोकः कश्चित्स्यान्न च संमतमेतदार्याणाम् ॥ १ ॥ तस्माद्धर्माधर्माववगाढौ व्याप्य लोकखं सर्वम् । एवं हि परिच्छिन्नः सिद्ध्यति लोकस्तदविभुत्वात् ॥ २॥" तत एवं लोकालोकव्यवस्थाहेतू धर्माधर्मास्तिकायावित्यनयोरादावुपादानं, तत्रापि माङ्गलिकत्वात् प्रथमतो धर्मास्तिकायस्य, तत्प्रतिपक्षत्वात् ततोऽधर्मास्तिकायस्य, ततो लोकालोकव्यापित्वादाकाशास्तिकायस्य, तदनन्तरं लोके समयासमयक्षेत्रव्यवस्थाकारित्वादद्धासमयस्य, एवमागमानुसारेणान्यदपि युक्त्यनुपाति वक्तव्यमित्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, अत्रोपसंहारवाक्यं—'सेत्तं अरूविअजीवाभि-

गमे' । अत ऊर्द्धमिदं सूत्रम्—'से किं तं रूविअजीवाभिगमे ?, रूविअजीवाभिगमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं०—खंधा खंधदेसा खंधपएसा परमाणुपुग्गला' इह स्कन्धा इत्यत्र बहुवचनं पुद्गलस्कन्धानामनन्तत्वख्यापनार्थं, तथा चोक्तम्—"दव्वतो णं पुग्गलत्थिकाए णं अनन्ते" इत्यादि, 'स्कन्धदेशाः' स्कन्धानामेव स्कन्धत्वपरिणाममजहतां बुद्धिपरिकल्पिता द्व्यादिप्रदेशात्मका विभागाः, अत्रापि बहुवचनमनन्तप्रदेशिकेषु स्कन्धेषु स्कन्धदेशानन्तत्वसंभावनार्थं, 'स्कन्धप्रदेशाः' स्कन्धानां स्कन्धत्वपरिणाममजहतां प्रकृष्टा देशाः—निर्विभागा भागाः परमाणव इत्यर्थः, 'परमाणुपुद्गलाः' स्कन्धत्वपरिणामरहिताः केवलाः परमाणवः ॥ अत ऊर्द्धं सूत्रमिदम्—'ते समासतो पंचविधा पन्नत्ता, तंजहा—वण्णपरिणया गंधपरिणता रसपरिणता फासपरिणता संठाणपरिणता, तत्थ णं जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पन्नत्ता, तंजहा—कालवण्णपरिणता नीलवण्णपरिणता इत्यादि तावद् यावत् 'सेत्तं रूविअजीवाभिगमे, सेत्तं अजीवाभिगमे ॥

से किं तं जीवाभिगमे ?, जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—संसारसमावण्णगजीवाभिगमे य असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य (सू० ६) से किं तं असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य। से किं तं अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ पण्णरसविहे पण्णत्ते, तंजहा—तित्थसिद्धा जाव अणेगसिद्धा, सेत्तं अणंतरसिद्धा । से किं तं परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा—पढमसमयसिद्धा दुसमय-

सिद्धा जाव अणंतसमयसिद्धा, से तं परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे, सेत्तं असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे (सू० ७)

संसरणं संसारो—नारकतिर्यङ्नरामरभवभ्रमणलक्षणस्तं सम्यग्—एकीभावेनापन्नाः—प्राप्ताः संसारसमापन्नाः—संसारवर्त्तिनस्ते च ते जीवाश्च तेषामभिगमः संसारसमापन्नजीवाभिगमः, तथा न संसारोऽसंसारः—संसारप्रतिपक्षभूतो मोक्ष इत्यर्थः तं समापन्ना असंसारसमापन्नास्ते च ते जीवाश्च तेषामभिगमोऽसंसारसमापन्नजीवाभिगमः, चशब्दौ उभयेषामपि जीवानां जीवत्वं प्रति तुल्यकक्षतासूचकौ, तेन ये विध्यातप्रदीपकल्पं निर्वाणमभ्युपगतवन्तः ये च नवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छेदेन ते निरस्ता द्रष्टव्याः, तथाभूतमोक्षाभ्युपगमे तदर्थं प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, न खलु सचेतनः स्ववधाय कण्ठे कुठारिकां व्यापारयति, दुःखितोऽपि हि जीवन् कदाचिद् भद्रमाप्नुयात् मृतेन तु निर्मूलमपि हस्तिताः सम्पद इति, इह केवलान् अजीवान् जीवांश्चानुच्चार्याभिगमशब्दसंवलितप्रश्नोऽभिगमव्यतिरेकेण प्रतिपत्तेरसम्भवतस्तेषामभिगमगम्यताधर्मख्यापनार्थः तेन 'सदेवेद'मित्यादि सदद्वैताद्यपोह उक्तो वेदितव्यः, सदद्वैताद्यभ्युपगमेऽभिगमगम्यतारूपधर्मायोगतः प्रतिपत्तेरेवासम्भवात् । तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथमतोऽसंसारसमापन्नजीवाभिगमसूत्रम्—'से किं तं असंसारसमावन्नजीवाभिगमे ?, २ दुविहे पं०, तं०—अनंतरसिद्धअसंसारसमावन्नजीवाभिगमे परंपरसिद्धअसंसारसमावन्नजीवाभिगमे य' इत्यादि तावद्वाच्यं यावदुपसंहारवाक्यं 'सेत्तं असंसारसमापन्नजीवाभिगमे' अस्य व्याख्यानं **प्रज्ञापनाटीकातो** वेदितव्यं, तत्र सविस्तरमुक्तत्वात् ॥ सम्प्रति संसारसमापन्नजीवाभिगममभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं संसारसमावन्नजीवाभिगमे ?, संसारसमावण्णएसु णं जीवेसु इमाओ णव पडिवत्तीओ

एवमाहिज्जंति, तं०—एगे एवमाहंसु—दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु—तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु—चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु—पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एतेणं अभिलावेणं जाव दसविहा संसार-समावण्णगा जीवा पण्णत्ता (सू० ८)

सूरिराह—संसारसमापन्नेषु णमिति वाक्यालङ्कारे जीवेषु 'इमाः' वक्ष्यमाणलक्षणा **'नव प्रतिपत्तयो'** द्विप्रत्यवतारमादौ कृत्वा दशप्रत्यवतारं यावद् ये नव प्रत्यवतारास्तद्रूपाणि प्रतिपादनानि संवित्तय इतियावत् 'एवं' वक्ष्यमाणया रीत्याऽऽख्यायन्ते पूर्वसूरिभिः, इह प्रतिपत्त्याख्यानेन प्रणालिकयाऽर्थाख्यानं द्रष्टव्यं, प्रतिपत्तिभावेऽपि शब्दादर्थे प्रवृत्तिकरणात्, तेन यदुच्यते शब्दाद्वैतवादिभिः—'शब्दमात्रं विश्व'मिति, तदपास्तं द्रष्टव्यं, तदपासने चेयमुपपत्तिः—एकान्तैकस्वरूपे वस्तुन्यभिधानद्वयासम्भवात् भिन्नप्रवृत्तिनिमित्ता-भावात्, ततश्च शब्दमात्रमित्येव स्यात् न विश्वमिति, प्रणालिकयाऽर्थाभिधानमेवोपदर्शयति, तद्यथा—एके आचार्या एवमाख्यातवन्तः—द्विविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्ताः, एके आचार्या एवमाख्यातवन्तः—त्रिविधाः संसारसमापन्ना जीवाः, एवं यावद्दशविधा इति, इह एके इति न पृथग्मतावलम्बिनो दर्शनान्तरीया इव केचिदन्ये आचार्याः, किन्तु य एव पूर्वं द्विप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमाना एव-मुक्तवन्तः यथा द्विविधाः संसारसमापन्ना जीवा इति त एव त्रिप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमानाः, द्विप्रत्यवतारविवक्षामपेक्ष्य त्रिप्रत्यवतार-विवक्षाया अन्यत्वात्, विवक्षावतां तु कथञ्चिद् भेदादन्य इति वेदितव्याः, अत एव प्रतिपत्तय इति परमार्थतोऽनुयोगद्वाराणीति प्रतिपत्तव्यम्, इह य एव द्विविधास्त एव त्रिविधास्त एव चतुर्विधा यावद्दशविधा इति तेषामनेकस्वभावतायां तत्तद्धर्मभेदेन तथा

तथाऽभिधानता युज्यते, नान्यथा, एकान्तैकस्वभावतायां तेषां वैचित्र्यायोगतस्तथा तथाऽभिधानप्रवृत्तेरसम्भवात्, एवं सति "अष्टविकल्पं दैवं तिर्यग्योनं च पञ्चधा भवति। मानुष्यं चैकविधं समासतो भौतिकः सर्गः ॥ १ ॥" इति वाङ्मात्रमेव, अधिष्ठातृजीवानामेकरूपत्वाभ्युपगमेन तथारूपवैचित्र्यासम्भवादिति, एवमन्येऽपि प्रवादास्तथा तथा वस्तुवैचित्र्यप्रतिपादनपरा निरस्ता द्रष्टव्याः, सर्वथैकस्वभावत्वाभ्युपगतौ वैचित्र्यायोगात् ॥ सम्प्रत्येता एव प्रतिपत्तीः क्रमेण व्याचिख्यासुः प्रथमत आद्यां प्रतिपत्तिं विभावयिषुरिदमाह—

तत्थ(णं) जे एवमाहंसु 'दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०' ते एवमाहंसु–तं०–तसा चेव थावरा चेव ॥ (सू० ९)

'तत्र' तेषु नवसु प्रतिपत्तिषु मध्ये ये द्विप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमाना एवं व्याख्यातवन्तः—द्विविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ता इति ते 'णम्' इति वाक्यालङ्कारे 'एवं' वक्ष्यमाणरीत्या द्विविधत्वभावनार्थमाख्यातवन्तः, 'तद्यथे' त्युपन्यस्तद्वैविध्योपदर्शनार्थः, त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव, तत्र त्रसन्ति—उष्णाद्यभितप्ताः सन्तो विवक्षितस्थानादुद्विजन्ति गच्छन्ति च छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः, अनया च व्युत्पत्त्या त्रसास्त्रसनामकर्मोदयवर्त्तिन एव परिगृह्यन्ते, न शेषाः, अथ शेषैरपीह प्रयोजनं, तेषामप्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, तत एवं व्युत्पत्तिः—त्रसन्ति—अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक् चलन्तीति त्रसाः—तेजोवायवो द्वीन्द्रियादयश्च, उष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्थाः सन्तस्तिष्ठन्तीत्येवंशीलाः स्थावराः—पृथिव्यादयः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसमुच्चयार्थौ, एवकारावधारणार्थौ, अत एव संसारसमापन्नका जीवाः, एतद्व्यतिरेकेण संसारिणामभावात् ॥ तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथमतः स्थावरानभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं थावरा?, २ तिविहा पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया १ आउक्काइया २ वणस्सइकाइया ३ ॥ (सू० १०)

अथ के ते स्थावराः?, सूरिराह—स्थावरास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकाया एव पृथिवीकायिकाः, आर्षत्वात्स्वार्थे इकप्रत्ययः, आपो—द्रवास्ताश्च प्रतीताः ता एव कायः—शरीरं येषां ते अप्कायाः अप्काया एवाप्कायिकाः, वनस्पतिः—लतादिरूपः प्रतीतः स एव कायः—शरीरं येषां ते वनस्पतिकायाः वनस्पतिकाया एव वनस्पतिकायिकाः, सर्वत्र बहुवचनं बहुत्वख्यापनार्थं, तेन 'पृथिवी देवते'-त्यादिना यत्तदेकजीवत्वमात्रप्रतिपादनं तदपास्तमवसेयं, यदि पुनस्तदधिष्ठात्री काचनापि देवता परिकल्प्यते तदानीमेकत्वेऽप्यविरोधः। इह सर्वभूताधारः पृथिवीति प्रथमं पृथिवीकायिकानामुपादानं, तदनन्तरं तत्प्रतिष्ठितत्वादप्कायिकानां, तदनन्तरं "जत्थ जलं तत्थ वणं" इति सैद्धान्तिकवस्तुप्रतिपादनार्थं वनस्पतिकायिकानामिति, इह त्रिविधत्वं स्थावराणां तेजोवायूनां लब्ध्या स्थावराणामपि सतां गतित्रसेष्वन्तर्भावविवक्षणात्, तथा च तत्त्वार्थसूत्रमप्येवं व्यवस्थितं "पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः" (तत्त्वा० अ० २ सू० १३–१४) इति, तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति प्रथमतः पृथिवीकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं पुढविकाइया?, २ दुविहा पं०, तं०—सुहुमपुढविक्काइया य बायरपुढविक्काइया य ॥ (सू०११)

अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, सूरिराह—पृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मपृथिवीकायिकाश्च बदरपृथिवीकायिकाश्च, तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्मा बादरनामकर्मोदयात्तु बादराः, कर्मोदयजनिते खल्वेते सूक्ष्मबादरत्वे, नापेक्षिके बदरामलकयो-

रिव, सूक्ष्माश्च ते पृथिवीकायिकाश्च सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः, बादराश्च ते पृथिवीकायिकाश्च बादरपृथिवीकायिकाः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, सूक्ष्माः सकललोकवर्त्तिनो बादराः प्रतिनियतैकदेशधारिणः ॥ तत्र सूक्ष्मपृथिवीकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं सुहुमपुढविक्काइया?, २ दुविहा पं०, तं०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ॥ (सू० १२)

अथ के ते सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः?, सूरिराह—सूक्ष्मपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चापर्याप्तकाश्च, तत्र पर्याप्तिर्नामाहारादिपुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुरात्मनः शक्तिविशेषः, स च पुद्गलोपचयादुपजायते, किमुक्तं भवति?—उत्पत्तिदेशमागतेन प्रथमं ये गृहीताः पुद्गलास्तेषां तथाऽन्येषामपि प्रतिसमयं गृह्यमाणानां तत्संपर्कतस्तद्रूपतया जातानां यः शक्तिविशेष आहारादिपुद्गलखलरसरूपतापादनहेतुर्यथोदरान्तर्गतानां पुद्गलविशेषाणामाहारपुद्गलविशेषाणामाहारपुद्गलखलरसरूपतापरिणमनहेतुः सा पर्याप्तिः, सा च षोढा, तद्यथा—आहारपर्याप्तिः १ शरीरपर्याप्तिः २ इन्द्रियपर्याप्तिः ३ प्राणापानपर्याप्तिः ४ भाषापर्याप्तिः ५ मनःपर्याप्तिश्च ६, तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साऽऽहारपर्याप्तिः १, यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः २, यया धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः ३, यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणापुद्गलानादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः ४, यया तु भाषाप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय भाषात्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः ५, यया पुनर्मनःप्रायोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः ६, एताश्च यथाक्रममेकेन्द्रियाणां सञ्ज्ञिवर्जानां द्वीन्द्रियादीनां संज्ञिनां च चतुष्पञ्चषट्सङ्ख्या भवन्ति, उत्पत्तिप्रथमसमये एव च एता यथायथं सर्वा अपि युगपन्निष्पादयितुमारभ्यन्ते क्रमेण च निष्ठामुपयान्ति,

तद्यथा—प्रथममाहारपर्याप्तिस्ततः शरीरपर्याप्तिस्तत इन्द्रियपर्याप्तिरित्यादि, आहारपर्याप्तिश्च प्रथमसमय एव निष्पत्तिमुपगच्छति, शेपास्तु प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तेन कालेन, अथाहारपर्याप्तिः प्रथमसमय एव निष्पद्यत इति कथमवसीयते?, उच्यते, इह भगवताऽऽर्यश्यामेन प्रज्ञापनायामाहारपदे द्वितीयोद्देशके सूत्रमिदमपाठि—"आहारपज्जत्तीए अपज्जत्तए णं भंते! किं आहारए अणाहारए?, गोयमा! नो आहारए अणाहारए" इति, तत आहारपर्याप्त्या अपर्याप्तो विग्रहगतावेवोपपद्यते नोपपातक्षेत्रमागतोऽपि, उपपातक्षेत्रसमागतस्य प्रथमसमय एवाहारकत्वात्, तत एकसामायिकी आहारपर्याप्तिनिर्वृत्तिः, यदि पुनरुपपातक्षेत्रसमागतोऽप्याहारपर्याप्त्या अपर्याप्तः स्यात्त एवं व्याकरणसूत्रं पठेत्—"सिय आहारए सिय अणाहारए" यथा शरीरादिपर्याप्तिषु "सिय आहारए सिय अणाहारए" इति, सर्वासामपि च पर्याप्तीनां पर्याप्तिपरिसमाप्तिकालोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः, पर्याप्तयो विद्यन्ते येषां ते पर्याप्ताः, 'अभ्रादिभ्य' इति मत्वर्थीयोऽप्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः, ये पुनः स्वयोग्यपर्याप्तिपरिसमाप्तिविकलास्तेऽपर्याप्ताः अपर्याप्ता एवापर्याप्तकाः, ते द्विधा—लब्ध्या करणैश्च, तत्र येऽपर्याप्तका एव म्रियन्ते ते लब्ध्याऽपर्याप्तकाः, ये पुनः करणानि—शरीरेन्द्रियादीनि न तावन्निर्वर्त्तयन्ति अथचावश्यं निर्वर्त्तयिष्यन्ति ते करणापर्याप्ताः संप्राप्ताः ॥ सम्प्रति विनेयजनानुग्रहाय शेपवक्तव्यतासङ्ग्रहार्थमिदं सङ्ग्रहणिगाथाद्वयमाह—सरीरोगाहणसंघयण संठाणकसाय तह य हुंति सन्नाओ। लेसिंदियसमुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥ १ ॥ दिट्ठी दंसणनाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे। उववायठिई समुग्घाय चवणगइरागई चेव ॥ २ ॥ अस्य व्याख्या—प्रथमतः सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां शरीराणि वक्तव्यानि, तदनन्तरमवगाहना, ततः संहननं, तदनन्तरं संस्थानं, ततः कषायाः, ततः कति भवन्ति सञ्ज्ञाः? इति वक्तव्यं, ततो लेश्याः, तदनन्तरमिन्द्रियाणि, ततः समुद्घाताः, ततः किं सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो वा? इति वक्तव्यं, तदनन्तरं वेदो वक्तव्यः, ततः पर्याप्तयो

यथा कति पर्याप्तयः सूक्ष्मपृथिवीकायिकानाम्? इत्यादि, पर्याप्तिग्रहणमुपलक्षणं तेन तत्प्रतिपक्षभूता अपर्याप्तयोऽपि वक्तव्या इति द्रष्टव्यं, तदनन्तरं दृष्टिर्वक्तव्या, ततो दर्शनं, तदनन्तरं ज्ञानं, ततो योगः, तत उपयोगः, तथा किमाहारमाहारयन्ति सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः? इत्यादि वक्तव्यं, तदनन्तरमुपपातः, ततः स्थितिः, ततः समुद्घातः समुद्घातमधिकृत्य मरणं वक्तव्यमित्यर्थः, तदनन्तरं च्यवनं, ततो गत्यागती इति, इति सर्वसङ्ख्यया त्रयोविंशतिर्द्वाराणि, तत्र प्रथमद्वारव्याख्यानार्थमाह—

तेसि णं भंते! जीवाणं कतिसरीरया पण्णत्ता, गोयमा! तओ सरीरगा पं०, तं०—ओरालिए तेयए कम्मए॥ तेसि णं भंते! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पं०, गो०! जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जतिभागं उक्कोसेणवि अंगुलासंखेज्जतिभागं॥ तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरा किंसंघयणा पण्णत्ता?, गोयमा! छेवट्ठसंघयणा पण्णत्ता॥ तेसि णं भंते! सरीरा किंसंठिया पं०?, गोयमा! मसूरचंदसंठिता पण्णत्ता॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति कसाया पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तंजहा—कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति सण्णा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि पण्णत्ता, तंजहा—आहारसण्णा जाव परिग्गहसन्ना॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिन्नि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—किण्हलेस्सा नीललेसा काउलेसा॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति इंदियाइं पण्णत्ताइं?, गोयमा! एगे फासिंदिए पण्णत्ते॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाया पण्णत्ता?, गोयमा! तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा—

वेयणासमुग्घाते कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सन्नी असन्नी ?, गोयमा ! नो सन्नी असन्नी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया ?, गोयमा ! णो इत्थिवेया णो पुरिसवेया णपुंसगवेया ॥ तेसि णं भंते ! जीवाणं कति पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–आहारपज्जत्ती सरीरपज्जत्ती इंदियपज्जत्ती आणपाणुपज्जत्ती। तेसि णं भंते ! जीवाणं कति अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–आहारअपज्जत्ती जाव आणापाणुअपज्जत्ती ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?, गोयमा ! णो सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी नो सम्ममिच्छादिट्ठी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी ?, गोयमा ! नो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी नो ओहिदंसणी नो केवलदंसणी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! नो नाणी अण्णाणी, नियमा दुअण्णाणी, तंजहा–मतिअन्नाणी सुयअण्णाणी य ॥ ते णं भंते ! जीवा किं मणजोगी वयजोगी कायजोगी ?, गोयमा ! नो मणजोगी नो वयजोगी कायजोगी ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गोयमा ! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि ॥ ते णं भंते ! जीवा किमाहारमाहारेंति ?, गोयमा ! दव्वतो अणंतपदेसियाइं खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं कालओ अन्नयर-

समयट्ठितीयाइं भावतो वण्णवं(मं)ताइं गंधवं(मं)ताइं रसवं(मं)ताइं फासवं(मं)ताइं ॥ जाइं भावओ वण्णमंताइं आ०, ताइं किं एगवण्णाइं आ० दुवण्णाइं आ० तिवण्णाइं आ० चउवण्णाइं आ० पंचवण्णाइं आ० ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि दुवण्णाइंपि तिवण्णाइंपि चउवण्णाइंपि पंचवण्णाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च कालाइंपि आ० जाव सुक्किलाइंपि आ०, जाइं वण्णओ कालाइं आ० ताइं किं एगगुणकालाइं आ० जाव अणंतगुणकालाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणकालाइंपि आ० जाव अणंतगुणकालाइंपि आ० एवं जाव सुक्किलाइं ॥ जाइं भावतो गंधमंताइं आ० ताइं किं एगगंधाइं आ० दुगंधाइं आ० ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगगंधाइंपि आ० दुगंधाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च सुब्भिगंधाइंपि आ० दुब्भिगंधाइंपि आ०, जाइं गंधतो सुब्भिगंधाइं आ० ताइं किं एगगुणसुब्भिगंधाइं आ० जाव अणंतगुणसुरभिगंधाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणसुब्भिगंधाइंपि आ० जाव अणंतगुणसुब्भिगंधाइंपि, आ० एवं दुब्भिगंधाइंपि ॥ रसा जहा वण्णा ॥ जाइं भावतो फासवं(मं)ताइं आ० ताइं किं एगफासाइं आ० जाव अट्ठफासाइं आ० ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आ० नो दुफासाइं आ० नो तिफासाइं आ० चउफासाइं आ० पंचफासाइंपि जाव अट्ठफासाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आ० जाव लुक्खाइंपि आ०, जाइं फासतो कक्खडाइं आ०

ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणकक्खडाइंपि आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आ० एवं जाव लुक्खा णेयव्वा ॥ ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं आ० अपुट्ठाइं आ० ?, गोयमा ! पुट्ठाइं आ० नो अपुट्ठाइं आ०, ताइं भंते ! ओगाढाइं आ० अणोगाढाइं आ० ?, गोयमा ! ओगाढाइं आ० नो अणोगाढाइं आ०, ताइं भंते ! किमणंतरोगाढाइं आ० परंपरोगाढाइं आ० ?, गोयमा ! अणंतरोगाढाइं आ० नो परंपरोगाढाइं आ०, ताइं भंते ! किं अणूइं आ० बायराइं आ० ?, गोयमा ! अणूइंपि आ० बायराइंपि आहारेंति, ताइं भंते ! उड्ढं आ० अहे आ० तिरियं आहारेंति ?, गोयमा ! उड्ढंपि आ० अहेवि आ० तिरियंपि आ०, ताइं भंते ! किं आइं आ० मज्झे आ० पज्जवसाणे आहारेंति ?, गोयमा ! आदिंपि आ० मज्झेवि आ० पज्जवसाणेवि आ०, ताइं भंते ! किं सविसए आ० अविसए आ० ?, गोयमा ! सविसए आ० नो अविसए आ०, ताइं भंते ! किं आणुपुव्विं आ० अणाणुपुव्विं आहारेंति ?, गोयमा ! आणुपुव्विं आहारेंति नो अणाणुपुव्विं आहारेंति, ताइं भंते ! किं तिदिसिं आहारेंति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छदिसिं आहारेंति ?, गोयमा ! निव्वाघाएणं छदिसिं, वाघातं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उस्सन्नकारणं पडुच्च वण्णतो काला नीला जाव सुक्किलाइं, गंधतो सुब्भिगंधाइं दुब्भिगंधाइं, रसतो जाव तित्तमहुराइं, फासतो

कक्खडमउयजाव निद्धलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे विप्परिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे जाव फासगुणे उप्पाइत्ता आतसरीरओगाढा पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति ॥ ते णं भंते! जीवा कतोहिंतो उववज्जंति? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति तिरिक्खमणुस्सदेवेहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणियपज्जत्तापज्जत्तेहिंतो असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमिगअसंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, वक्कंतीउववाओ भाणियव्वो ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं ॥ ते णं भंते! जीवा मारणंतियसमुग्घातेणं किं समोहया मरंति असमोहया मरंति?, गोयमा! समोहयावि मरंति असमोहयावि मरंति ॥ ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?—किं नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उ० मणुस्सेसु उ० देवेसु उवव०?, गोयमा! नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उ० मणुस्सेसु उ० णो देवेसु उवव०। किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिएसु उ०?, गोयमा! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उव०, मणुस्सेसु अ-

कम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उव० ॥ ते णं भंते! जीवा कतिगतिका कतिआगतिका पण्णत्ता?, गोयमा! दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो!, से त्तं सुहुमपुढविक्काइया ॥ (सू० १३)

'तेषां' सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां णमिति वाक्यालङ्कारे 'भदन्त!' परमकल्याणयोगिन्! कति शरीराणि प्रज्ञप्तानि?, अथ कः कमेवमाह?, उच्यते, भगवान् गौतमो भगवन्तं श्रीमन्महावीरं, कथमेतद् विनिश्चीयते इति चेद्, उच्यते, निर्वचनसूत्रात्, ननु गौतमोऽपि भगवान् उपचितकुशलमूलो गणधरस्तीर्थकरभाषितमातृकापदत्रयश्रवणमात्रावाप्तप्रकृष्टश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमश्चतुर्दशपूर्वविद् विवक्षितार्थपरिज्ञानसमन्वित एव ततः किमर्थं पृच्छति?, तथाहि—न चतुर्दशपूर्वविदः प्रज्ञापनीयं किञ्चिदविदितमस्ति, विशेषतः सर्वाक्षरसंनिपातिनः संभिन्नश्रोतसो भगवतो गणभृतः सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसमन्वितस्य गौतमस्य, उक्तं च—"संखातीते वि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा। न य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥" उच्यते, शिष्यसंप्रत्ययार्थं, तथाहि—जानन्नेव भगवान् अन्यत्र विनेयेभ्यः प्रतिपाद्य तत्संप्रत्ययनिमित्तं भूयोऽपि भगवन्तं पृच्छतीति, अथवा गणधरप्रश्नतीर्थकरनिर्वचनरूपं किञ्चित्सूत्रमितीत्थमधिकृतसूत्रकारः सूत्रं रचितवान्, यदिवा संभवति भगवतोऽपि स्वल्पोऽनाभोगः छद्मस्थत्वादिति पृच्छति, उक्तं च—"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति। ज्ञानावरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, प्रस्तुतमुच्यते, भगवानाह—गोयमेत्यादि, अनेन लोकप्रथितमहागोत्रविशिष्टाभिधायकेनामन्त्रणध्वनिनाऽऽमन्त्रयन्निदं ज्ञापयति—प्रधानासाधारणगुणेनोत्साह्य

१ संख्यातीतानपि भवान् साधयति यद्वा पर पृच्छेत्। न चानतिशायी विजानात्येष छद्मस्थ (इति) ॥ १ ॥

विनेयस्य धर्मः कथनीयः, इत्थमेव सम्यक्प्रतिपत्तियोगादिति, त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, इह शरीराणि पञ्च भवन्ति, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं च, तत्रोदारं—प्रधानं, प्राधान्यं चास्य तीर्थकरगणधरशरीराण्यधिकृत्य, ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्यापि अनन्तगुणहीनत्वात्, यद्वा उदारं सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रधानं, बृहत्ता चास्य वैक्रियं प्रति भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या, अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यते, उदारमेव औदारिकं, विनयादिपाठादिकण् १, तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियं, तथाहि—तदेकं भूत्वाऽनेकं भवति अनेकं भूत्वा एकं तथाऽणु भूत्वा महद्भवति महच्च भूत्वाऽणु तथा खचरं भूत्वा भूमिचरं भवति भूमिचरं भूत्वा खचरं तथा दृश्यं भूत्वाऽदृश्यं भवति अदृश्यं भूत्वा दृश्यमिति, तच्च द्विविधम्—औपपातिकं लब्धिप्रत्ययं च, तत्रौपपातिकमुपपातजन्मनिमित्तं, तच्च देवनारकाणां, लब्धिप्रत्ययं तिर्यग्मनुष्याणां २, तथा चतुर्दशपूर्वविदां तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते—निर्वर्त्यते इत्याहारकं, 'कृद्बहुलक'मिति वचनात्कर्मणि वुञ्, यथा पादहारक इत्यत्र, उक्तं च—"कज्जंमि समुप्पन्ने सुयकेवलिणा विसिट्ठलद्धीए । जं एत्थ आहरिज्जइ भणंति आहारगं तं तु ॥ १ ॥" कार्यं चेदम्—"पाणिदयरिद्धिदंसण सुहुमपयत्थावगाहहेउं वा । संसयवोच्छेयत्थं गमणं जिणपायमूलंमि ॥ १ ॥" एतच्चाहारकं कदाचनापि लोके सर्वथाऽपि न भवति, तच्चाभवनं जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः षण्मासान् यावत्, उक्तं च—"आहारगाइ लोगे छम्मासा जा न होंतिवि कयाइं । उक्कोसेणं नियमा एक्कं समयं जहन्नेणं ॥ १ ॥" आहारकं च शरीरं

१ कार्ये समुत्पन्ने श्रुतकेवलिना विशिष्टलब्ध्या । यदत्राह्रियते भणन्त्याहारकं तत्तु ॥ १ ॥ २ प्राणिदयार्द्धिदर्शनसूक्ष्मपदार्थावगाहहेतवे वा । संशयव्युच्छेदार्थं गमन जिनपादमूले ॥ १ ॥ ३ आहारकादयो नियमाल्लोके षण्मासान् यावन्न भवन्त्यपि कदाचित् । उत्कृष्टतो नियमात् एकं समयं जघन्येन ॥ १ ॥

वैक्रियशरीरापेक्षयाऽत्यन्तशुभं स्वच्छस्फटिकशिलेव शुभ्रपुद्गलसमूहात्मकं ३, तथा तेजसां—तेजःपुद्गलानां विकारस्तैजसं 'विकार' इत्यण्, तत् औष्मलिङ्गं भुक्ताहारपरिणमनकारणं, ततश्च विशिष्टतपःसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः, उक्तं च—"सव्वस्स उम्हसिद्धं रसाइआहारपाकजणगं च । तेयगलद्धिनिमित्तं च तेयगं होइ नायव्वं ॥ १ ॥" ४, तथा कर्मणो जातं कर्मजं, किमुक्तं भवति ?—कर्मपरमाणव एवात्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरवदन्योऽन्यानुगता. सन्तः शरीररूपतया परिणताः कर्मजं शरीरमिति, अत एवैतदन्यत्र कार्मणमित्युक्तं, कर्मणो विकारः कार्मणमिति, तथा चोक्तम्—"कम्मविकारो कम्मणमट्ठविहविचित्तकम्मनिप्फन्नं । सव्वेसिं सरीराणं कारणभूयं मुणेयव्वं ॥ १ ॥" अत्र 'सव्वेसिं'मिति सर्वेषामौदारिकादीनां शरीराणां कारणभूतं—बीजभूतं कार्मणं शरीरं, न खल्वामूलमुच्छिन्ने भवप्रपञ्चप्ररोहबीजभूते कार्मणे वपुषि शेषशरीरप्रादुर्भावः, इदं च कर्मजं शरीरं जन्तोर्गत्यन्तरसङ्क्रान्तौ साधकतमं कारणं, तथाहि—कर्मजेनैव वपुषा तैजससहितेन परिकरितो जन्तुर्मरणदेशमपहायोत्पत्तिदेशमभिसर्पति, ननु यदि तैजससहितकार्मणवपुःपरिकरितो गत्यन्तरं संक्रामति तर्हि स गच्छन्नागच्छन् कस्मान्न दृष्टिपथमवतरति ?, उच्यते, कर्मपुद्गलानां तैजसपुद्गलानां चातिसूक्ष्मतया चक्षुरादीन्द्रियागोचरत्वात्, तथा च परतीर्थिकैरप्युक्तम्—"अन्तरा भवदेहोऽपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते । निष्क्रामन् प्रविशन् वाऽपि, नाभावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥" एतेषां पञ्चानां शरीराणां मध्ये यानि त्रीणि शरीराणि सूक्ष्मपृथिवीकायिकाना तानि नामग्राहमुपदर्शयति—तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, वैक्रियाहारके तु तेषां न संभवतो, भवस्वभावत एव तल्लब्धिशून्यत्वात् ।

---

१ सर्वस्यौष्ण्यसिद्धं रसाद्याहारपाकजनकं च । तेजोलब्धिनिमित्त च तैजस भवति ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥ २ कर्मविकारः कार्मणमष्टविधविचित्रकर्मनिष्पन्नम् । सर्वेषां शरीराणा कारणभूतं मुणितव्य ॥ १ ॥

अधुनाऽवगाहनाद्वारमाह—'तेसिणं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरं जघन्यपदोत्कृष्टपदयोस्तुल्यश्रुतावपि जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसातव्यम् ॥ संहननद्वारमाह—तेसिणमित्यादि, तेषां भदन्त! जीवानां शरीरकाणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि?, संहननं नामास्थिनिचयरूपं, तच्च षोढा, तद्यथा—वज्रऋषभनाराचं ऋषभनाराचं नाराचमर्द्धनाराचं कीलिका छेदवर्त्ति च, तत्र वज्रं—कीलिका ऋषभः—परिवेष्टनपट्टः नाराचस्तूभयतो मर्कटबन्धः ततश्च द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिं गच्छता तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाख्यं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रऋषभनाराचसञ्ज्ञं प्रथमं संहननं १, यत्पुनः कीलिकारहितं संहननं तत् ऋषभनाराचं द्वितीयं संहननं २, तथा यत्रास्थ्नोर्मर्कटबन्ध एव केवलस्तन्नाराचसञ्ज्ञं तृतीयं संहननं ३, यत्र पुनरेकपार्श्वे मर्कटबन्धो द्वितीये च पार्श्वे कीलिका तदर्द्धनाराचं-चतुर्थं संहननं ४, तथा यत्रास्थीनि कीलिकामात्रबद्धानि तत्कीलिकाख्यं पञ्चमं संहननं ५, तथा यत्रास्थीनि परस्परं छेदेन वर्त्तन्ते न कीलिकामात्रेणापि बन्धस्तत् षष्ठं छेदवर्त्ति, तच्च प्रायो मनुष्यादीनां नित्यं स्नेहाभ्यङ्गादिरूपां परिशीलनामपेक्षते ६, इत्थं षोढा संहननसम्भवे संशयः—तेषां शरीराणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि? इति, भगवानाह—गौतम! छेदवर्त्तिसंहननानि प्रज्ञप्तानि, अयमत्राभिप्रायः—यद्यपि सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामस्थ्यभावस्तथाऽप्यौदारिकशरीरिणामस्थ्यात्मकेन संहननेन यः शक्तिविशेष उपजायते सोऽप्युपचारात्संहननमिति व्यवह्रियते, शक्तिविशेषश्चात्यन्तमल्पीयान् सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामप्यस्त्यौदारिकशरीरित्वात्, जघन्यश्च शक्तिविशेषश्छेदवर्त्तिसंहननविषय इति तेषामपि छेदवर्त्तिसंहननमुक्तम् ॥ गतं संहननद्वारं, सम्प्रति संस्थानद्वारमाह—'तेसिणं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं 'मसूरगचंदसंठिया' इति, मसूरकाख्यस्य—धान्यविशेषस्य यश्चन्द्राकृति दलं स मसूरकचन्द्रस्तद्वदनुसंस्थितानि मसूरकचंद्रसंस्थितानि, अत्रायं भावार्थः—इह जीवानां षट् संस्थानानि, तानि च समचतुरस्रादीनि

वक्ष्यमाणलक्षणानि, तेषामाद्यानि पञ्च संस्थानानि मसूरचन्द्रकाकारे न संभवन्ति, तल्लक्षणायोगात्, तत इदं मसूरचन्द्रकाकारं संस्थानं हुण्डं प्रतिपत्तव्यं, सर्वत्रासंस्थितत्वरूपस्य तल्लक्षणस्य योगात्, जीवानां संस्थानान्तराभावाच्च, आह च मूलटीकाकारः—"संस्थानं मसूरचन्द्रकसंस्थितमपि हुण्डं, सर्वत्रासंस्थितत्वेन तल्लक्षणयोगात्, जीवानां संस्थानान्तराभावाच्चे"ति ॥ गतं संस्थानद्वारमधुना कषायद्वारमाह—'तेसिणं भंते!' इत्यादि, तेषां भदन्त! सूक्ष्मपृथ्वीकायिकानां कति कषायाः प्रज्ञप्ताः?, तत्र कषाया नाम कष्यन्ते—हिंस्यन्ते परस्परमस्मिन् प्राणिन इति कषः—संसारस्तमयन्ते—गच्छन्त्येभिर्जन्तव इति कषायाः—क्रोधादयः परिणामविशेषाः, तथा चाह—'गोयमे'त्यादि सुगमं, नवरं क्रोधः—अप्रीतिपरिणामः मानो—गर्वपरिणामः माया—निकृतिरूपा लोभो—गार्ध्यलक्षणः, एते च क्रोधादयोऽमीषां मन्दपरिणामतयाऽनुपदर्शितबाह्यशरीरविकारा एवानाभोगतस्तथा तथा वैचित्र्येण भवन्तः प्रतिपत्तव्याः ॥ गतं कषायद्वारं, सञ्ज्ञाद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि सुगमं, नवरं सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा, सा च द्विधा—ज्ञानरूपाऽनुभवरूपा च, तत्र ज्ञानरूपा मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलभेदात्पञ्चप्रकारा, तत्र केवलसञ्ज्ञा क्षायिकी शेषास्तु क्षायोपशमिक्यः, अनुभवसञ्ज्ञा—स्वकृतासातवेदनीयादिकर्मविपाकोदयसमुत्था, इह प्रयोजनमनुभवसञ्ज्ञया, ज्ञानसञ्ज्ञायास्तद्वारेण परिगृहीतत्वात्, तत्राहारसञ्ज्ञा नाम आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः, एषा चासातवेदनीयोदयादुपजायते, 'भयसञ्ज्ञा' भयवेदनीयोदयजनितत्रासपरिणामरूपा, 'परिग्रहसञ्ज्ञा' लोभविपाकोदयसमुत्थमूर्छापरिणामरूपा, 'मैथुनसञ्ज्ञा' वेदोदयजनिता मैथुनाभिलाषः, एताश्चतस्रोऽपि मोहनीयोदयप्रभवाः, एता अपि सूक्ष्मपृथ्वीकायिकानामव्यक्तरूपाः प्रतिपत्तव्याः ॥ गतं सञ्ज्ञाद्वारमधुना लेश्याद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि सुगमं, नवरं लिश्यति—श्लिष्यते आत्मा कर्मणा सहानयेति लेश्या—कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यादात्मनः शुभाशुभपरिणामः, उक्तं च—"कृष्णादि-

द्रव्यसाचिव्यात्परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रवर्त्तते ॥ १ ॥" सा च षोढा, तद्यथा—कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या च, आसां च स्वरूपं जम्बूफलखादकषट्पुरुषदृष्टान्तेनैवावसातव्यम्—"पंथाओ परिभट्ठा छप्पुरिसा अडविमज्झयारंमि । जंबूतरुस्स हेट्ठा परोप्परं ते विचिंतेति ॥ १ ॥ निम्मूलखंधसाला गोच्छे पक्के य पडियसडियाइं । जह एएसिं भावा तह लेसाओवि नायव्वा ॥ २ ॥" अमीषां च सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामतिसंक्लिष्टपरिणामत्वाद्देवेभ्यः सूक्ष्मेष्वनुत्पादाच्चाद्या एव तिस्रः कृष्णनीलकापोतरूपा लेश्याः, न शेषा इति ॥ गतं लेश्याद्वारमिदानीमिन्द्रियद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि, इन्द्रियं नाम 'इदु परमैश्वर्ये' 'उदितः' इति नम्, इन्दनादिन्द्रः—आत्मा सर्वोपलब्धिरूपपरमैश्वर्ययोगात् तस्य लिङ्गं—चिह्नमविनाभावि इन्द्रियम्, 'इन्द्रिय'मिति निपातनसूत्राद्रूपनिष्पत्तिः, तत्पञ्चधा, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रियं जिह्वेन्द्रियं घ्राणेन्द्रियं स्पर्शनेन्द्रियं च, एकैकमपि द्विधा—द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, द्रव्येन्द्रियं द्विधा—निर्वृत्तिरूपमुपकरणरूपं च, तत्र निर्वृत्तिर्नाम प्रतिविशिष्टः संस्थानविशेषः, साऽपि द्विधा—बाह्याऽभ्यन्तरा च, तत्र बाह्या कर्णपर्पटिकादिरूपा, सा च विचित्रा न प्रतिनियतरूपतया निर्देष्टुं शक्यते, तथाहि—मनुष्यस्य श्रोत्रे नेत्रयोरुभयपार्श्वतोभाविनी भ्रुवावुपरितनश्रवणबन्धापेक्षया समे, वाजिनो नेत्रयोरुपरि तीक्ष्णे चाग्रभागे इत्यादि, अभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषामप्येकरूपा, तामेवाधिकृत्य चामूनि सूत्राणि प्रावर्त्तिषत—"सोइंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?, गोयमा! कलंबुयासंठाणसंठिए पन्नत्ते, चक्खिदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते ?, गोयमा! मसूरचंदसंठाणसंठिए पन्नत्ते,

---

१ पथ. परिभ्रष्टा. षट् पुरुषा अटवीमध्यभागे । जम्बूतरोरधस्तात् परस्पर ते विचिन्तयन्ति ॥ १ ॥ निर्मूलं स्कन्धं शाखा प्रशाखा गुच्छान् (छित्त्वा) पक्वानि पतितशटितानि (भक्षयाम) । यथैतेषा भावास्तथा लेश्या अपि ज्ञातव्या ॥ २ ॥

घाणिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! अइमुत्तसंठाणसंठिए पन्नत्ते, जिब्भिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! खुरप्पसंठाणसंठिए पन्नत्ते, फासिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! नाणासंठाणसंठिए पन्नत्ते ॥" इति, इह स्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तेः प्रायो न बाह्याभ्यन्तरभेदः, तत्त्वार्थमूलटीकायामनभ्युपगमात्, उपकरणं नाम खड्गस्थानीयाया बाह्यनिर्वृत्तेर्या खड्गधारास्थानीया स्वच्छतरपुद्गलसमूहात्मिकाऽभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तस्याः शक्तिविशेषः, इदं चोपकरणरूपं द्रव्येन्द्रियमान्तरनिर्वृत्तेः कथञ्चिदर्थान्तरं, शक्तिशक्तिमतोः कथञ्चिद्भेदात्, कथञ्चिद्भेदश्च सत्यामपि तस्यामान्तरनिर्वृत्तौ द्रव्यादिनोपकरणस्योपघातसम्भवात्, तथाहि—सत्यामपि कदम्बपुष्पाद्याकृतिरूपायामान्तरायां निर्वृत्तौ महाकठोरतरघनगर्जितादिना शक्त्युपघाते सति न परिच्छेत्तुमीशते जन्तवः शब्दादिकमिति, भावेन्द्रियमपि द्विधा—लब्धिरुपयोगश्च, तत्र लब्धिः श्रोत्रेन्द्रियादिविषयस्तदावरणक्षयोपशमः, उपयोगः स्वस्वविषये लब्ध्यनुसारेणात्मनः परिच्छेदव्यापारः, तत्र यद्यपि द्रव्यरूपं भावरूपं चेत्थमिन्द्रियमनेकप्रकारं तथाऽपीह बाह्यनिर्वृत्तिरूपमिन्द्रियं पृष्टमवगन्तव्यं, तदेवाधिकृत्य व्यवहारप्रवृत्तेः, तथाहि—बकुलादयः पञ्चेन्द्रिया इव भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानसमन्विता अनुमानतः प्रतीयन्ते तथाऽपि न ते पञ्चेन्द्रिया इति व्यवह्रियन्ते, बाह्येन्द्रियपञ्चकासम्भवात्, उक्तं च—"पंचेंदिओ उ बउलो नरो व्व सव्वविसओवलंभाओ। तहवि न भण्णइ पंचिंदिउ त्ति बज्झिंदियाभावा ॥ १ ॥" ततो द्रव्येन्द्रियमधिकृत्य निर्वचनसूत्रमाह—'गोयमे'त्यादि सुगमम् ॥ गतमिन्द्रियद्वारमधुना समुद्घातद्वारं, तत्र समुद्घाताः सप्त, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः १ कषायसमुद्घातः २ मारणसमुद्घातः ३ वैक्रियसमुद्घातः ४ तैजससमुद्घातः ५ आहारकसमुद्घातः ६ केवलिसमुद्घातश्च ७, तत्र वेदनायाः समुद्घातो वेदनासमुद्घातः,

१ पञ्चेन्द्रिय एव बकुलो नर इव सर्वविषयोपलम्भात्। तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति बाह्येन्द्रियाभावात् ॥ १ ॥

स चासातवेदनीयकर्माश्रयः १, कषायेण—कषायोदयेन समुद्घातः कषायसमुद्घातः, स च कषायचारित्रमोहनीयकर्माश्रयः २, मरणे भवो मारणः, स चासौ समुद्घातश्च मारणसमुद्घातः ३, वैक्रिये प्रारभ्यमाणे समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः, स च वैक्रियशरीरनामकर्माश्रयः ४, (तैजसेन हेतुभूतेन समुद्घातस्तैजससमुद्घातः तैजसशरीरनामकर्माश्रयः) ५, आहारके प्रारभ्यमाणे समुद्घात आहारकसमुद्घातः, स चाहारकशरीरनामकर्माश्रयः ६, केवलिनि अन्तर्मुहूर्त्तभाविपरमपदे समुद्घातः केवलिसमुद्घातः ७। अथ समुद्घात इति कः शब्दार्थः?, उच्यते—समिति—एकीभावे उत्—प्राबल्ये एकीभावेन प्राबल्येन घातः समुद्घातः, केन सह एकीभावगमनम्? इति चेद्, उच्यते, अर्थाद्वेदनादिभिः, तथाहि—यदा आत्मा वेदनादिसमुद्घातगतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवति नान्यज्ञानपरिणतः, प्राबल्येन घातः कथम्? इति चेद्, उच्यते, इह वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मपुद्गलान् कालान्तरानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदयावलिकायां प्रक्षिप्यानुभूयानुभूय निर्जरयति, आत्मप्रदेशेभ्यः शातयतीति भावः, तत्र वेदनासमुद्घातगत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—वेदनाकरालितो जीवः स्वप्रदेशाननन्तानन्तकर्मपरमाणुवेष्टितान् शरीराद्बहिरपि विक्षिपति, तैश्च प्रदेशैर्वदनजघनादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामतो विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्यान्तर्मुहूर्त्तं यावदवतिष्ठते, तस्मिंश्चान्तर्मुहूर्त्ते प्रभूतासातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, कषायसमुद्घातसमुद्धतः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—कषायोदयसमाकुलो जीवः स्वप्रदेशान् बहिर्विक्षिप्य तैर्वदनोदरादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामविस्तराभ्यां देहमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्य वर्त्तते, तथाभूतश्च प्रभूतकषायकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, एवं मरणसमुद्घातगत आयुःकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, वैक्रियसमुद्घातगतः पुनर्जीवः स्वप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरवि-

ष्कम्भबाहल्यमानमायामतः सङ्ख्येययोजनप्रमाणं दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति, तथा चोक्तम्—"वेउव्वियसमुग्घाए णं समोहणइ २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, निसिरित्ता अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ" इति, तैजसाहारकसमुद्घातौ वैक्रियसमुद्घातवदवसातव्यौ, केवलं तैजससमुद्घातगतस्तैजसशरीरनामकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, आहारकसमुद्घातगत आहारकशरीरनामकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, केवलिसमुद्घातसमुद्धतस्तु केवली सदसद्वेदनीयशुभाशुभनामोच्चनीचैर्गोत्रकर्मपुद्गलपरिशातं (करोति), केवलिसमुद्घातवर्जाः शेषाः षडपि समुद्घाताः प्रत्येकमान्तर्मौहूर्त्तिकाः, केवलिसमुद्घातः पुनरष्टसामयिकः, उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—"वेयणासमुग्घाए णं कइसमइए पण्णत्ते?, गोयमा! असंखेज्जसमइए अंतमुहुत्ते, एवं जाव आहारगसमुग्घाए॥ केवलिसमुग्घाए णं भंते! कइसमइए पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठसमइए पण्णत्ते॥" इति, तदेवमनेकसमुद्घातसम्भवे सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां तान् पृच्छति—'तेसिणं भंते' इत्यादि सुगमं, नवरं वैक्रियाहारकतैजसकेवलिसमुद्घाताभावो वैक्रियादिलब्ध्यभावात्॥ गतं समुद्घातद्वारं, सम्प्रति सञ्ज्ञिद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! किं सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो वा?, सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा—भूतभवद्भाविभावस्वभावपर्यालोचनं सा विद्यते येषां ते सञ्ज्ञिनः—विशिष्टस्मरणादिरूपमनोविज्ञानभाज इत्यर्थः, यथोक्तमनोविज्ञानविकला असञ्ज्ञिनः?; अत्र भगवान्निर्वचनमाह—गौतम! नो सञ्ज्ञिनः, किन्त्वसञ्ज्ञिनः, विशिष्टमनोलब्ध्यभावात्, हेतुवादोपदेशेनापि न सञ्ज्ञिनः, अभिसंधारणपूर्विकायाः करणशक्तेरभावात्, इहासञ्ज्ञिन इत्येव सिद्धे नो सञ्ज्ञिन इति प्रतिषेधः प्रतिषेधप्रधानो विधिरयमिति ज्ञापनार्थः, प्रतिपाद्यस्य प्रकृतिसावद्यत्वादिति। गतं सञ्ज्ञिद्वारं, वेदनाद्वारमाह—'ते णं भंते!' इत्यादि॥ 'इत्थिवेयगा' इति स्त्रियाः वेदो येषां ते स्त्रीवेदकाः, एवं पुरुषवेदका नपुंसकवेदका इत्यपि भावनीयं, तत्र

स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स्त्रीवेदः, पुंसः स्त्रियामभिलाषः पुंवेदः, उभयोरप्यभिलाषो नपुंसकवेदः, भगवानाह—गौतम! न स्त्रीवेदका न पुरुषवेदकाः, नपुंसकवेदकाः संमूर्च्छिमत्वात्, 'नारकसंमूर्च्छिमा नपुंसका' इति भगवद्वचनम् ॥ पर्याप्तिद्वारमाह—"तेसि णं भंते' इत्यादि, सुगमं, पर्याप्तिप्रतिपक्षा अपर्याप्तिस्तन्निरूपणार्थमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि पाठसिद्धं, नवरं चतस्रोऽप्यपर्याप्तयः करणापेक्षया द्रष्टव्याः, लब्ध्यपेक्षया त्वेकैव प्राणापानापर्याप्तिः, यस्मादेवमागमः—इह लब्ध्यपर्याप्तका अपि नियमादाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तावेव म्रियन्ते नार्वाक्, यत आगामिभवायुर्बद्ध्वा म्रियन्ते सर्वे एव देहिनः, तच्चाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तानामेव बन्धमायातीति ॥ सम्प्रति दृष्टिद्वारमाह—'ते णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं सम्यग्—अविपरीता दृष्टिः—जिनप्रणीतवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिर्येषां ते सम्यग्दृष्टयः, मिथ्या—विपर्यस्ता दृष्टिर्येषां भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत् मिथ्यादृष्टयः, एकान्तसम्यग्रूपमिथ्यारूपप्रतिपत्तिविकलाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, निर्वचनसूत्रं—'गोयमे'त्यादि, सुगमं, नवरं सम्यग्दृष्टित्वप्रतिषेधः सासादनसम्यक्त्वस्यापि तेषामसम्भवात्, सासादनसम्यक्त्ववतां तन्मध्ये उत्पादाभावात्, ते ह्यतिसंक्लिष्टपरिणामाः, सास्वादनसम्यक्त्वपरिणामस्तु मनाक् शुभ इति तन्मध्ये सासादनसम्यक्त्ववतामुत्पादाभावः, अत एव सदा संक्लिष्टपरिणामत्वात्तेषां सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वपरिणामोऽपि न भवति, नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सन् तन्मध्ये उत्पद्यते, "न सम्ममिच्छो कुणइ कालं" इति वचनात् ॥ गतं दृष्टिद्वारमधुना दर्शनद्वारमाह—दर्शनं नाम सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यावबोधः, तच्चतुर्धा, तद्यथा—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं च, तत्र सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि चक्षुषा दर्शनं—रूपसामान्यपरिच्छेदश्चक्षुर्दर्शनम्, अचक्षुषा—चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्, अवधिरेव दर्शनं—रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं, केवलमेव दर्शनं—सकलजगद्भाविवस्तुसामान्यपरिच्छित्तिरूपं केवलदर्शनं, तत्र किमेषां दर्शनमिति

जिज्ञासुः पृच्छति—'ते णं भंते' इत्यादि पाठसिद्धं, नवरमचक्षुर्दर्शनित्वं स्पर्शनेन्द्रियापेक्षया, शेषदर्शनप्रतिषेधः सुज्ञानः ॥ गतं दर्शनद्वारं, ज्ञानद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा'इत्यादि, अज्ञानत्वं मिथ्यादृष्टित्वात्, तदपि चाज्ञानत्वं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानापेक्षया, तथा चाह—'नियमा दुअण्णाणी'त्यादि पाठसिद्धं, नवरं तदपि मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च शेषजीववादरादिराश्यपेक्षयाऽत्यन्तमल्पीयः प्रतिपत्तव्यं, यत उक्तम्—"सर्वनिकृष्टो जीवस्य दृष्ट उपयोग एष वीरेण । सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तानां स च भवति विज्ञेयः ॥ १ ॥ तस्मात्प्रभृति ज्ञानविवृद्धिर्दृष्टा जिनेन जीवानाम् । लब्धिनिमित्तैः करणैः कायेन्द्रियवाग्मनोदृग्भिः ॥ २ ॥" योगद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि पाठसिद्धम् ॥ गतं योगद्वारमधुनोपयोगद्वारं, तत्रोपयोगो द्विविधः—साकारोऽनाकारश्च, तत्राकारः—प्रतिवस्तु प्रतिनियतो ग्रहणपरिणामः "आगारो उ विसेसो" इति वचनात्, सह आकारो यस्य येन वा स साकारो—ज्ञानपञ्चकमज्ञानत्रिकं, यथोक्ताकारविकलोऽनाकारः, स चक्षुर्दर्शनादिको दर्शनचतुष्टयात्मकः, उक्तं च—"ज्ञानाज्ञाने पञ्च त्रिविकल्पे सोऽष्टधा तु साकारः । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदृग्विषयस्त्वनाकारः ॥ १ ॥" तत्र क एषामुपयोगः ? इति जिज्ञासुः पृच्छति—'ते णं भंते !' इत्यादि निगदसिद्धं, नवरं साकारोपयोगोपयुक्ता मत्यज्ञानश्रुताज्ञानोपयोगापेक्षया, अनाकारोपयोगोपयुक्ता अचक्षुर्दर्शनोपयोगापेक्षयेति ॥ साम्प्रतमाहारद्वारमाह—'ते णं भंते इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! जीवाः किमाहारमाहारयन्ति ?, भगवानाह—गौतम ! 'द्रव्यतो' द्रव्यस्वरूपपर्यालोचनायामनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याणि, अन्यथा ग्रहणासम्भवात्, न हि सङ्ख्यातप्रदेशात्मका असङ्ख्यातप्रदेशात्मका वा स्कन्धा जीवस्य ग्रहणप्रायोग्या भवन्ति, क्षेत्रतोऽसङ्ख्यातप्रदेशावगाढानि, कालतोऽन्यतरस्थितिकानि—जघन्यस्थितिकानि मध्यमस्थितिकानि उत्कृष्टस्थितिकानि चेति भावार्थः, स्थितिरिति चाहारयोग्यस्कन्धपरिणामत्वेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम्, आह च मूलटीकाकारः—"काल-

तोऽन्यतरस्थितीनि तद्भावावस्थानेन जघन्यादिरूपां स्थितिमधिकृत्ये"ति, भावतो वर्णवन्ति गन्धवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति च, प्रतिपरमाण्वेकैकवर्णगन्धरसद्विस्पर्शभावात्, "एवं जहा पण्णवणाए" इत्यादि, ''एवम्' उक्तेन प्रकारेण यथा प्रज्ञापनायामष्टाविंशतितमे आहारपदे प्रथमोद्देशके तावद्वक्तव्यं यावत् "सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसि"मिति, तच्चैवम्—"जाइं भावतो वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति जाव पंचवण्णाइं आहारेंति ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि आहारेंति जाव पंचवण्णाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइंपि आहारेति जाव सुक्किल्लवण्णाइंपि आहारेंति, जाइं कालवण्णाइंपि आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति संखिज्जगुणकालाइं आहारेति असंखेज्जगुणकालाइं आहारेंति अणंतगुणकालाइं आहारेंति ?, गोयमा ! एगगुणकालाइंपि आहारेति जाव अणंतगुणकालाइंपि आहारेंति एवं जाव सुक्किल्लाइंपि आहारेंति, एवं गंधतोवि रसतोवि ॥ जाइं भावतो फासमंताइं आहारेति ताइं किं एगफासाइं आहारेंति दुफासाइं आहारेंति जाव अट्ठफासाइं आहारेंति ?, गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आहारेंति नो दुफासाइं आहारेंति नो तिफासाइंपि आहारेंति चउफासाइंपि आहारेंति जाव अट्ठफासाइंपि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आहारेंति जाव लुक्खाइंपि आहारेति ॥ जाइं फासतो कक्खडाइंपि आहारेति ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति ?, गोयमा ! एगगुणकक्खडाइंपि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति, एवं अट्ठवि फासा भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खाइंपि आहारेंति ॥ जाइं भंते ! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आहारेंति ?, गोयमा ! पुट्ठाइं आहारेंति नो अपुट्ठाइं आहारेंति, जाइं पुट्ठाइं आहारेंति ताइं भंते ! किं ओगाढाइं आहारेंति अणोगाढाइं आहारेति ?, गोयमा ! ओगाढाइं आहारेंति नो

अणोगाढाइं आहारेंति, जाइं भंते! ओगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणंतरोगाढाइं आहारेंति परंपरोगाढाइं आहारेंति ?, गोयमा! अणंतरोगाढाइं आहारेंति नो परंपरोगाढाइं आहारेति, ताइं भंते! किं अणूइं आहारेंति वायराइं आहारेंति ?, गोयमा! अणूइंपि आहारेंति वायराइंपि आहारेंति, जाइं भंते! अणूइं आहारेंति ताइं भंते! किं उड्ढं आहारेंति अहे आहारेंति तिरियं आहारेंति ?, गोयमा! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियंपि आहारेंति, जाइं भंते! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियंपि आहारेति ताइं किं आइं आहारेंति मज्झे आहारेंति पज्जवसाणे आहारेंति ?, गोयमा! आइंपि आहारेंति मज्झेवि आहारेंति पज्जवसाणे(वि)आहारेंति, जाइं भंते! आइंपि आहारेति जाव पज्जवसाणेवि आहारेंति ताइं किं सविसए आहारेति अविसए आहारेंति ?, गोयमा! सविसए आहारेंति नो अविसए आहारेंति, जाइं भंते! सविसए आहारेंति ताइं किं आणुपुव्विं आहारेंति अणाणुपुव्विं आहारेंति ?, गोयमा! आणुपुव्विं आहारेंति नो अणाणुपुव्विं आहारेंति, जाइं भंते! आणुपुव्विं आहारेंति ताइं किं तिदिसिं आहारेति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छद्दिसिं आहारेंति ?, गोयमा! निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं(सिय)पंचदिसिमिति ॥" अस्य व्याख्या—"जाइं भावतो वण्णमंताइं" इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगम्, भगवानाह—गौतम! 'ठाणमग्गणं पडुच्चे'ति तिष्ठन्ति विशेषा अस्मिन्निति स्थानं—सामान्यमेकवर्णं द्विवर्णं त्रिवर्णमित्यादिरूपं तस्य मार्गणम्—अन्वेषणं तत्प्रतीत्य, सामान्यचिन्तामाश्रित्येति भावार्थः, एकवर्णान्यपि द्विवर्णान्यपीत्यादि सुगमं, नवरं तेषामनन्तप्रदेशिकानां स्कन्धानामेकवर्णत्वं द्विवर्णत्वमित्यादि व्यवहारनयमतापेक्षया, निश्चयनयमतापेक्षया त्वनन्तप्रादेशिकस्कन्धोऽल्पीयानपि पञ्चवर्ण एव प्रतिपत्तव्यः, 'विहाणमग्गणं पडुच्चे'त्यादि यावद् [विधानं —विशेषः,] विविक्तम्—इतरव्यवच्छिन्नं धानं—पोषणं स्वरूपस्य यत्तत्प्रतीत्य सामान्यचिन्तामाश्रित्येति शेषः, कृष्णो नील इत्यादि प्रति-

नियतो वर्णविशेष इतियावत्, तस्य मार्गणं तत्प्रतीत्य कालवर्णान्यप्याहारयन्तीत्यादि सुगमं, नवरमेतदपि व्यवहारतः प्रतिपत्तव्यं, निश्चयतः पुनरवश्यं तानि पञ्चवर्णान्येव ॥ 'जाइं वण्णतो कालवण्णाइं' इत्यादि सुगमं यावदनन्तगुणसुक्किलाइंपि आहारयन्ति, एवं गन्धरसस्पर्शविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि ॥ 'जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं' इत्यादि, यानि भदन्त! अनन्तगुणरूक्षाणि, उपलक्षणमेतत्—एकगुणकालादीन्यप्याहारयन्ति तानि, स्पृष्टानि—आत्मप्रदेशस्पर्शविषयाण्याहारयन्ति उतास्पृष्टानि?, भगवानाह—स्पृष्टानि नो अस्पृष्टानि, तत्रात्मप्रदेशैः संस्पर्शनमात्मप्रदेशावगाढक्षेत्राद्बहिरपि संभवति ततः प्रश्नयति—'जाइं भंते' इत्यादि, यानि भदन्त! स्पृष्टान्याहारयन्ति तानि किमवगाढानि—आत्मप्रदेशैः सहैकक्षेत्रावस्थायीनि उतानवगाढानि—आत्मप्रदेशावगाहक्षेत्राद्बहिरवस्थितानि?, भगवानाह—गौतम! अवगाढान्याहारयन्ति नानवगाढानि। यानि भदन्त! अवगाढान्याहारयन्ति तानि किमनन्तरावगाढानि?, किमुक्तं भवति?—येष्वात्मप्रदेशेषु यान्यव्यवधानेनावगाढानि तैरात्मप्रदेशैस्तान्येवाहारयन्ति उत परम्परावगाढानि—एकद्वित्राद्यात्मप्रदेशैर्व्यवहितानि?, भगवानाह—गौतम! अनन्तरावगाढानि न परम्परावगाढानि। यानि भदन्त! अनन्तरावगाढान्याहारयन्ति तानि भदन्त! अनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याणि किमणूनि—स्तोकान्याहारयन्ति उत बादराणि—प्रभूतप्रदेशोपचितानि?, भगवानाह—अणून्यप्याहारयन्ति बादराण्यप्याहारयन्ति, इहाणुत्वबादरत्वे तेषामेवाहारयोग्यानां स्कन्धानां प्रदेशस्तोकत्वबाहुल्यापेक्षया प्रज्ञापनामूलटीकाकारेणापि व्याख्याते इत्यस्माभिरपि तथैवाभिहिते। यानि भदन्त! अणून्यपि आहारयन्ति तानि किमूर्ध्वप्रदेशस्थितान्याहारयन्ति अधस्तिर्यग्वा?, इहोर्ध्वाधस्तिर्यक्त्वं यावति क्षेत्रे सूक्ष्मपृथिवीकायिकोऽवगाढस्तावत्येव क्षेत्रे तदपेक्षया परिभावनीयं, भगवानाह—ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति—ऊर्ध्वप्रदेशावगाढान्यप्याहारयन्ति, एवमधोऽपि तिर्यगपि। यानि भदन्त! ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति अधोऽप्याहारयन्ति तिर्य-

गप्याहारयन्ति तानि किमादावाहारयन्ति मध्ये आहारयन्ति पर्यवसाने आहारयन्ति ?, अयमत्राभिप्रायः—सूक्ष्मपृथिवीकायिका अनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याण्यन्तर्मुहूर्तं कालं यावदुपभोगोचितानि गृह्णन्ति, ततः संशय.—किमुपभोगोचितस्य कालस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणस्यादौ—प्रथमसमये आहारयन्ति उत मध्ये—मध्यसमयेपु आहोश्वित् पर्यवसाने—पर्यवसानसमये ?, भगवानाह—गौतम! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति, किमुक्तं भवति ?—उपभोगोचितकालस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणस्यादिमध्यावसानसमयेऽप्याहारयन्तीति । यानि भदन्त! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति तानि भदन्त! किं स्वविपयानि—स्वोचिताहारयोग्यान्याहारयन्ति उताविपयानि—स्वोचिताहारायोग्यान्याहारयन्ति ?, भगवानाह—गौतम! स्वविपयाण्याहारयन्ति नो अविपयाणि । यानि भदन्त! स्वविपयाण्याहारयन्ति तानि भदन्त! किमानुपूर्व्याऽऽहारयन्ति अनानुपूर्व्या ?, आनुपूर्वी नाम यथाऽऽसन्नं, तद्विपरीताऽनानुपूर्वी, भगवानाह—गौतम! आनुपूर्व्या, सूत्रे द्वितीया तृतीयार्थे वेदितव्या प्राकृतत्वात्, यथाऽऽचाराङ्गे "अगणिं पुट्ठा"इत्यत्र, आहारयन्ति, नो अनानुपूर्व्या ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्वा, यथाऽऽसन्नं नातिक्रम्याहारयन्तीति भाव. । यानि भदन्त! आनुपूर्व्याऽऽहारयन्ति तानि भदन्त! किं 'तिदिसिं'ति तिस्रो दिशः समाहृतास्त्रिदिक् तस्मिन् व्यवस्थितान्याहारयन्ति चतुर्दिशि पञ्चदिशि षड्दिशि वा, इह लोकनिष्कुटपर्यन्ते जघन्यपदेऽपि [-जीवावगाहक्षेत्रं-] त्रिदिग्व्यवस्थितमेव प्राप्यते न द्विदिग्व्यवस्थितमेकदिग्व्यवस्थितं वा, अतस्त्रिदिश्यारभ्य प्रश्नः कृतः, भगवानाह—गौतम! 'निव्वाघाएणं छद्दिसिं'मित्यादि, व्याघातो नामालोकाकाशेन प्रतिस्खलनं व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं 'शब्दप्रथादावव्ययं पूर्वपदार्थे नित्यमव्ययीभाव' इत्यव्ययीभावः 'तेन वा तृतीयाया' इति विकल्पेनाम्भावविधानात् पक्षेऽत्राम्भावः, नियमाद्—अवश्यंतया षड्दिशि व्यवस्थितानि, षड्भ्यो दिग्भ्य आगतानीति भावः, द्रव्याण्याहारयन्ति, व्याघातं पुनः प्रतीत्य लोकनिष्कुटादौ स्यात्कदाचित्रिदिशि—तिसृभ्यो दिग्भ्य

आगतानि, कदाचित् चतसृभ्यः कदाचित्पञ्चभ्यः, काऽत्र भावना? इति चेदुच्यते—इह लोकनिष्कुटे पर्यन्तेऽधस्त्यप्रतराग्नेयकोणावस्थितो यदा सूक्ष्मपृथिवीकायिको वर्त्तते तदा तस्याधस्तादलोकेन व्याप्तत्वात् अधोदिक्पुद्गलाभावः आग्नेयकोणावस्थितत्वात् पूर्वदिक्पुद्गलाभावो दक्षिणदिक्पुद्गलाभावश्च, एवमधःपूर्वदक्षिणरूपाणां तिसृणां दिशामलोकेन व्यापनात् ता अपास्य या परिशिष्टा ऊर्ध्वाऽपरोत्तरा च दिगव्याहता वर्त्तते तत आगतान् पुद्गलानाहारयन्ति, यदा पुनः स एव पृथिवीकायिकः पश्चिमां दिशमनुसृत्य वर्त्तते तदा पूर्वा दिगभ्यधिका जाता, द्वे च दिशौ दक्षिणाधस्त्यरूपे अलोकेन व्याहते इति स चतुर्दिगागतान् पुद्गलानाहारयति, यदा पुनरूर्ध्वं द्वितीयादिप्रतरगतपश्चिमदिशमवलम्ब्य तिष्ठति तदाऽधस्त्यापि दिगभ्यधिका लभ्यते, केवला दक्षिणैवैका पर्यन्तवर्त्तिनी अलोकेन व्याहतेति पञ्चदिगागतान् पुद्गलानाहारयति। 'वण्णतो' इत्यादि वर्णतः कालनीललोहितहारिद्रशुक्लानि, गन्धतः सुरभिगन्धानि दुरभिगन्धानि वा, रसतस्तिक्तानि यावन्मधुराणि, स्पर्शतः कर्कशानि यावद्रूक्षाणि, तथा तेषामाहार्यमाणानां पुद्गलानां 'पुराणान्' अग्रेतनान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् 'विपरिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता' एतानि चत्वार्यपि पदान्येकार्थिकानि विनाशार्थप्रतिपादकानि नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपात्तानि, विनाशः किमित्याह—अन्यान् अपूर्वान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् उत्पाद्यात्मशरीरक्षेत्रावगाढान् पुद्गलान् 'सव्वप्पणयाए' सर्वात्मना—सर्वैरेवात्मप्रदेशैराहारमाहाररूपान् पुद्गलानाहारयन्ति ॥ गतमाहारद्वारं, साम्प्रतमुपपातद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि, ते भदन्त! सूक्ष्मपृथिवीकायिका जीवाः 'कुतः' केभ्यो जीवेभ्य उद्वृत्योत्पद्यन्ते?, किं नैरयिकेभ्यः? इत्यादि प्रतीतं, भगवानाह—गौतम! नो नैरयिकेभ्य इत्यादि पाठसिद्धं, नवरं देवनैरयिकेभ्य उत्पादप्रतिषेधो देवनैरयिकाणां तथाभवस्वभावतया तन्मध्ये उत्पादासम्भवात्, 'जहा वक्कंतीए' इति, यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे तथा

वक्तव्यं, तच्चैवम्—तिर्यग्योनेभ्योऽप्युत्पादः पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तेभ्यो वा केवलमसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेभ्यः, मनुष्येभ्योऽप्यकर्मभूमिजान्तरद्वीपजासङ्ख्यातवर्षायुष्ककर्मभूमिजव्यतिरिक्तेभ्यः पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तेभ्यो वेति ॥ गतमुपपातद्वारमधुना स्थितिद्वारमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसेयम् ॥ गतं स्थितिद्वारमधुना समुद्घातमधिकृत्य मरणं विचिन्तयिपुरिदमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि सुगमम्, उभयथाऽपि मरणसम्भवात् ॥ च्यवनद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथ्वीकायिका भदन्त! जीवा अनन्तरमुद्वृत्य सूक्ष्मपृथिवीकायिकभवादानन्तर्येणोद्वृत्येति भावः क्व गच्छन्ति?—कोत्पद्यन्ते?, एतेनात्मनो गमनधर्मकता पर्यायान्तरमधिकृत्योत्पत्तिधर्मकता च प्रतिपादिता, तेन ये सर्वगतमनुत्पत्तिधर्मकं चात्मानं प्रतिपन्नास्ते निरस्ता द्रष्टव्याः, तथारूपे सत्यात्मनि यथोक्तप्रश्नार्थासम्भवात्, 'किं नेरइएसु गच्छन्ति'? इत्यादि सुप्रतीतं, भगवानाह—'नो नेरइएसु गच्छन्ति' इत्यादि पाठसिद्धं 'जहा वक्कंतीए' इति, यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे च्यवनमुक्तं तथाऽत्रापि वक्तव्यं, तच्चोत्पादवद् भावनीयमिति ॥ गतं च्यवनद्वारमधुना गत्यागतिद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, ते भदन्त! जीवाः 'कतिगतिकाः?' कति गतयो येषां ते कतिगतिकाः, 'कत्यागतिकाः?' कतिभ्यो गतिभ्य आगतिर्येषां ते कत्यागतिकाः, भगवानाह—गौतम! द्व्यागतिका नरकगतेर्देवगतेश्च सूक्ष्मेपूत्पादाभावात्, द्विगतिका नरकगतौ देवगतौ च तत उद्वृत्तानामुत्पादाभावात्, 'परीत्ता' प्रत्येकशरीरिणः, असङ्ख्येया असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात् प्रज्ञप्ता मया शेपैश्च तीर्थकृद्भिः, अनेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनतामाह, हे श्रमण! हे आयुष्मन्! 'से त्तं सुहुमपुढविकाइया' त एते सूक्ष्मपृथिवीकायिका उक्ताः ॥ उक्ताः सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः, अधुना बादरपृथिवीकायिकानभिधित्सुराह—

से किं तं बायरपुढविकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सण्हबायरपुढविक्काइया य खरबायरपुढविक्काइया य (सू० १४ ॥

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—बादरपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाश्च खरबादरपृथिवीकायिकाश्च—श्लक्ष्णा नाम चूर्णितलोष्टकल्पा मृदुपृथवी तदात्मका जीवा अप्युपचारतः श्लक्ष्णाः ते च ते बादरपृथिवीकायिकाश्च श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः, अथवा श्लक्ष्णा चासौ बादरपृथिवी च सा कायः—शरीरं येषां ते श्लक्ष्णबादरपृथ्वीकायाः त एव स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात् श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः, खरा नाम पृथिवी सङ्घातविशेषं काठिन्यविशेषं वाऽऽपन्ना तदात्मका जीवा अपि खराः ते च ते बादरपृथिवीकायिकाश्च खरबादरपृथिवीकायिकाः, अथवा पूर्ववत्प्रकारान्तरेण समासः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥

से किं तं सण्हबायरपुढविक्काइया ?, २ सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—कण्हमत्तिया, भेओ जहा पण्णवणाए जाव ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ सरीरगा पं०, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, तं चेव सव्वं नवरं चत्तारि लेसाओ, अवसेसं जहा सुहुमपुढविक्काइयाणं आहारो जाव णियमा छद्दिसिं, उववातो तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेहिंतो, देवेहिं जाव सोधम्मेसाणेहिंतो, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं। ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमु-

ग्घाएणं किं समोहया मरंति असमोहता मरंति ?, गोयमा ! समोहतावि मरंति असमोहतावि मरंति । ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?–किं नेरइएसु उववज्जंति ?०, पुच्छा, नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति मणुस्सेसु उव० नो देवेसु उव०, तं चेव जाव असंखेज्जवासाउवज्जेहिं । ते णं भंते ! जीवा कतिगतिया कतिआगतिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुगतिया तिआगतिया परित्ता असंखेज्जा य समणाउसो !, से तं बायरपुढविकाइया । सेत्तं पुढविकाइया ॥ (सू० १५).

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तदेव सप्तविधत्वं दर्शयन्ति, तद्यथा—कृष्णमृत्तिका इत्यादि 'भेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए जाव तत्थ नियमा असंखिज्जा' इति, भेदो बादरपृथिवीकायिकानां द्विविधानामपि तथा भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स च तावद् यावत् "तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति पदं, स चैवम्—किण्हमत्तिया नीलमत्तिया लोहियमत्तिया हालिद्दमत्तिया सुक्किलमत्तिया पंडुमत्तिया पणगमत्तिया, सेत्तं सण्हबायरपुढविकाइया । से किं तं खरबायरपुढविक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिला य लोणूसे । तंबा य तउय सीसय रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाले । अब्भपडलब्भवालुय बायरकाये मणिविहाणा ॥ २ ॥ गोमेज्जए य रुयए अंके फलिहे य लोहियक्खे य । मरगयमसारगल्ले भुयमोयगइंदनीले य ॥ ३ ॥ चंदणगेरुयहंसे पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे । चंदप्पभवेरुलिए जलकंते सूरकंते य ॥ ४ ॥ जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा

पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिंणं वण्णादेसेणं गंधाएसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—कृष्णमृत्तिका—कृष्णमृत्तिकारूपा, एवं नीललोहितहारिद्रशुक्लभेदा अपि वाच्याः, पाण्डुमृत्तिका नाम देशविशेषे या धूलीरूपा सती पाण्डू इति प्रसिद्धा तदात्मका जीवा अप्यभेदोपचारात्पाण्डुमृत्तिकेत्युक्ताः, 'पणगमत्तिया' इति नद्यादिपूरप्लाविते देशे नद्यादि पूरेऽपगते यो भूमौ श्लक्ष्णमृदुरूपो जलमलोऽपरपर्यायपङ्कः स पनकमृत्तिका तदात्मका जीवा अप्यभेदोपचारात्पनकमृत्तिकाः, सेत्तमित्यादिनिगमनं सुगमम् ॥ 'से किं त'मित्यादि ॥ अथ के ते खरबादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—खरबादरपृथिवीकायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, चत्वारिंशद्भेदा मुख्यतः प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, तानेव चत्वारिंशद्भेदानाह, तंजहा—'पुढवी'त्यादिगाथाचतुष्टयम् । पृथिवीति 'भामा सत्यभामावत्' शुद्धपृथिवी नदीतटभित्त्यादिरूपा १, चशब्द उत्तरापेक्षया समुच्चये, शर्करा—लघूपलशकलरूपा २, वालुका—सिकता ३, उपलः—टङ्काद्युपकरणपरिकर्मणायोग्यः पाषाणः ४, शिला—घटनयोग्या देवकुलपीठाद्युपयोगी महान् पाषाणविशेषः ५, लवणं—सामुद्रादि ६, ऊषो यद्वशादूषरं क्षेत्रम् ७, अयस्ताम्रत्रपुसीसकरूप्यसुवर्णानि—प्रतीतानि १३, वज्रो—हीरकः १४, हरितालहिङ्गुलमनःशिलाः प्रतीताः १७, सासगं—पारदः १८, अञ्जनं सौवीराञ्जनादि १९, प्रवालं—विद्रुमः २०, अभ्रपटलं—प्रसिद्धम् २१, अभ्रवालुका—अभ्रपटलमिश्रा वालुका २२, 'वायरकाए' इति बादरपृथिवीकायेऽमी भेदा इति शेषः, 'मणिविहाणा' इति चशब्दस्य गम्यमानत्वात् मणिविधानानि च—मणिभेदाश्च बादरपृथिवीकायभेदत्वेन ज्ञातव्याः, तान्येव मणिविधानानि दर्शयति—'गोमेज्जए य' इत्यादि, गोमेज्जकः २३, 'चः' समुच्चये, रुचकः २४ अङ्कः २५

स्फटिकः २६ 'चः' पूर्ववत्, लोहिताक्षः २७ मरकतः २८ मसारगल्लः २९ भुजमोचकः ३० इन्द्रनीलश्च ३१ चन्दन(:) ३२ गैरिकः ३३ हंसगर्भः ३४ पुलकः ३५ सौगन्धिकश्च ३६ चन्द्रप्रभः ३७ वैडूर्यः ३८ जलकान्तः ३९ सूर्यकान्तश्च ४०, तदेवमाद्यया गाथया पृथिव्यादयश्चतुर्दश भेदा उक्ताः द्वितीयगाथयाऽष्टौ हरितालादयः तृतीयगाथया गोमेज्जकादयो दश तुर्यगाथयाऽष्टाविति, सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशत्, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकारा मणिभेदाः—पद्मरागादयस्तेऽपि खरबादरपृथिवीकायिकत्वेन वेदितव्याः। 'ते समासतो' इत्यादि, ते बादरपृथिवीकायिकाः 'समासतः' सङ्क्षेपेण द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, तत्र येऽपर्याप्तकास्ते स्वयोग्याः पर्याप्तीः साकल्येनासंप्राप्ताः अथवाऽसंप्राप्ता इति विशिष्टान् वर्णादीननुपगताः, तथाहि—वर्णादिभेदविवक्षायामेते न शक्यन्ते कृष्णादिना भेदेन व्यपदेष्टुं, किं कारणमिति—चेद्, उच्यते, इह शरीरादिपर्याप्तिषु परिपूर्णासु सतीषु बादराणां वर्णादिभेदः संप्रकटो भवति नापरिपूर्णासु, ते चापर्याप्ता उच्छ्वासपर्याप्त्या अपर्याप्ता एव म्रियन्ते, ततो न स्पष्टो वर्णादिविभाग इत्यसंप्राप्ता इत्युक्तम्, अन्ये तु व्याचक्षते—सामान्यतो वर्णादीनसंप्राप्ता इति, तच्च न युक्तं, यतः शरीरमात्रभाविनो वर्णादयः, शरीरं च शरीरपर्याप्त्या संजातमिति। 'तत्थ णं'मित्यादि, तत्र ये ते पर्याप्तकाः—परिसमाप्तसमस्तस्वयोग्यपर्याप्तयस्ते वर्णादेशेन—वर्णभेदविवक्षया एवं गन्धादेशेन रसादेशेन स्पर्शादेशेन सहस्राग्रशः—सहस्रसङ्ख्यया विधानानि—भेदाः, तद्यथा—वर्णाः कृष्णादिभेदात्पञ्च गन्धौ सुरभीतरभेदाद्द्वौ रसास्तिक्तादयः पञ्च स्पर्शा मृदुकर्कशादयोऽष्टौ, एकैकस्मिंश्च वर्णादौ तारतम्यभेदेनानेकेऽवान्तरभेदाः, तथाहि—भ्रमरकोकिलकज्जलादिषु तरतमभावात् कृष्णः कृष्णतरः कृष्णतम इत्यादिरूपतयाऽनेके कृष्णभेदाः, एवं नीलादिष्वप्यायोज्यं, तथा गन्धरसस्पर्शेष्वपि, तथा परस्परं वर्णानां संयोगतो धूसरकर्बुरत्वादयोऽनेकसङ्ख्याभेदाः, एवं गन्धादीनामपि परस्परं गन्धादिभिः

समायोगात्, ततो भवन्ति वर्णाद्यादेशैः सहस्राग्रशो भेदाः, 'संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं'ति सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखाणि—योनिद्वाराणि शतसहस्राणि, तथाहि—एकैकस्मिन् वर्णे गन्धे रसे स्पर्शे च संवृता योनिः पृथिवीकायिकानां, सा पुनस्त्रिधा—सचित्ताऽचित्ता मिश्रा च, पुनरेकैका त्रिधा—शीता उष्णा शीतोष्णा, शीतादीनामपि प्रत्येकं तारतम्यभेदादनेकभेदत्वं, केवलमेकविशिष्टवर्णादियुक्ताः सङ्ख्यातीता अपि स्वस्थाने व्यक्तिभेदेन योनिजातिमधिकृत्यैकैव योनिर्गण्यते, ततः सङ्ख्येयानि पृथ्वीकायिकानां योनिशतसहस्राणि भवन्ति, तानि च सूक्ष्मबादरगतसर्वसङ्ख्यया सप्त, 'पज्जत्तगनिस्साए' इत्यादि, पर्याप्तकनिश्रयाऽपर्याप्तका व्युत्क्रामन्ति—उत्पद्यन्ते, कियन्तः? इत्याह—यत्रैकः पर्याप्तकस्तत्र नियमात्तन्निश्रया असङ्ख्येयाः—सङ्ख्यातीता अपर्याप्तकाः। **'एएसि णं भंते! जीवाण'**-मित्यादिना शरीरावगाहनादिद्वारकलापचिन्तां करोति, सा च पूर्ववत्, तथा चाह—**'एवं जो चेव सुहुमपुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो** इति, **'नवर'** मित्यादि, नवरमिदं नानात्वं लेश्याद्वारे चतस्रो लेश्या वक्तव्याः, तेजोलेश्याया अपि सम्भवात्, तथाहि—व्यन्तराद्य ईशानान्ता देवा भवनविमानादावतिमूर्च्छयाऽऽत्मीयरत्नकुण्डलादावप्युत्पद्यन्ते, ते च तेजोलेश्यावन्तोऽपि भवन्ति, यल्लेश्यश्च म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोपजायते "जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ" इति वचनात्, ततः कियत्कालमपर्याप्तावस्थायां तेजोलेश्यावन्तोऽप्यवाप्यन्ते इति चतस्रो वक्तव्याः, आहारो नियमात् षड्दिशि, बादराणां लोकमध्य एवोपपातभावात्, उपपातो देवेभ्योऽपि, बादरेषु तदुत्पादविधानात्, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, देवेभ्योऽप्युत्पादात् त्र्यागतयो, द्विगतयः पूर्ववत्, एतेऽपि च **'परीत्ता'** प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, **'सेत्त'**मित्याद्युपसंहारवाक्यम् ॥ उक्ताः पृथ्वीकायिकाः, अधुनाऽप्कायिकानभिधित्सुरिदमाह—

से किं तं आउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमआउक्काइया य बायरआउक्काइया य, सुहुमआऊ० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरया पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, जहेव सुहुमपुढविक्काइयाणं, णवरं थिवुगसंठिता पण्णत्ता, सेसं तं चेव जाव दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से तं सुहुमंआउक्काइया ॥ (सू० १६)

अथ के तेऽप्कायिकाः ?, सूरिराह—अप्कायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्माप्कायिकाश्च बादराप्कायिकाश्च, तत्र सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनो बादरा घनोदध्यादिभाविनः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ। 'से किं तं सुहुमआउक्काइया ?' इत्यादि सूक्ष्मपृथिवीकायिकवन्निरवशेषं भावनीयं, नवरमिदं संस्थानद्वारे नानात्वं, तदेवोपदर्शयति—'ते सि णं भंते! जीवाणं सरीरया किं संठिया?' इत्यादि पाठसिद्धम्॥

से किं तं बायरआउक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ओसा हिमे जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तं चेव सव्वं णवरं थिवुगसंठिता, चत्तारि लेसाओ, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववातो तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेहिं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं सत्तवाससहस्साइं, सेसं तं चेव जहा बायरपुढविकाइया जाव दुगतिया तिआगतिया परित्ता असंखेज्जा पन्नत्ता समणाउसो!, सेत्तं बायरआऊ, सेत्तं आउक्काइया ॥ (सू० १७ ॥)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादराप्कायिकाः ?, सूरिराह—बादराप्कायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"ओसा हिमे महिया जाव तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठो द्रष्टव्यः—"करगे हरतणू सुद्धोदए सीओदए खट्टोदए खारोदए अंबिलोदए लवणोदए वरुणोदए खीरोदए खोओदए रसोदए जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—अवश्यायः—त्रेहः, हिमं—स्त्यानोदकं, महिका—गर्भमासेषु सूक्ष्मवर्ष, करको—घनोपलः, हरतनुः यो भुवमुद्भिद्य गोधूमाङ्कुरतृणाग्रादिषु बद्धो विन्दुरुपजायते, शुद्धोदकम्—अन्तरिक्षसमुद्भवं नद्यादिगतं वा, तच्च स्पर्शरसादिभेदादनेकभेदं, तदेवानेकभेदत्वं दर्शयति—शीतोदकं—नदीतडागावटवापीपुष्करिण्यादिषु शीतपरिणामम्, उष्णोदकं—स्वभावत एव कचिन्निर्झरादावुष्णपरिणामं, क्षीरोदकम्—ईषल्लवणपरिणामं यथा लाटदेशादौ केषुचिदवटेषु, खट्टोदकम्—ईषदम्लपरिणामम्, आम्लोदकम्—अतीव स्वभावत एवाम्लपरिणामं काञ्जिकवत्, लवणोदकं लवणसमुद्रे, वारुणोदकं वारुणसमुद्रे, क्षीरोदकं क्षीरसमुद्रे, क्षोदोदकमिक्षुरससमुद्रे, रसोदकं पुष्करवरसमुद्रादिषु, येऽपि चान्ये तथाप्रकारा रसस्पर्शादिभेदाद् घृतोदकादयो बादराप्कायिकास्ते सर्वे बादराप्कायिकतया प्रतिपत्तव्याः, 'ते समासओ' इत्यादि प्राग्वत् नवरं सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखाणि शतसहस्राणीत्यत्रापि सप्त वेदितव्यानि। 'तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ सरीरगा' ? इत्यादिद्वारकलापचिन्तायामपि बादरपृथिवीकायिकगमोऽनुगन्तव्यो, नवरं संस्थानद्वारे शरीरकाणि स्तिबुकसंस्थानसंस्थितानि वक्तव्यानि,

स्थितिद्वारे अजघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतः सप्त वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि ॥ उक्ता अप्कायिकाः, सम्प्रति वनस्पतिकायिकानाह—

से किं तं वणस्सइकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बायरवणस्सइकाइया य ॥ (सू० १७)। से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य तहेव णवरं अणित्थंत्थ (संठाण) संठिया, दुगतिया दुआगतिया अपरित्ता अणंता, अवसेसं जहा पुढविक्काइयाणं, से तं सुहुमवणस्सइकाइया ॥ (सू० १८)।

अथ के ते वनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—वनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाश्च बादरवनस्पतिकायिकाश्च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—सूक्ष्मवनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, 'तेसि णं भंते ! कति सरीरगा' इत्यादिद्वारकलापचिन्तनं सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद्भावनीयं, नवरं संस्थानद्वारे 'सरीरगा अणित्थंत्थसंठाणसंठिया पण्णत्ता' इति, इत्थं तिष्ठतीति इत्थंस्थं न इत्थंस्थमनित्थंस्थम्, अनियताकारमित्यर्थः, तच्च तत्संस्थानं तेन संस्थितानि—अनियतसंस्थानसंस्थितानि, गत्यागतिद्वारसूत्रपर्यन्ते 'अपरित्ता अणंता पन्नत्ता' इति वक्तव्यम्, 'अपरीत्ता' अप्रत्येकशरीरिणः अनन्तकायिका इत्यर्थः, अत एवानन्ताः प्रज्ञप्ता. हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! 'सेत्त'मित्यादि उपसंहारवाक्यम् ॥

से किं तं बायरवणस्सइकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पत्तेयसरीरबायरवणस्सतिकाइया

य साधारणसरीरबायरवणस्सइकाइया य ॥ (सू० १९)। से किं तं पत्तेयसरीरबादरवणस्सतिकाइया ?, २ दुवालसविहा पण्णत्ता, तंजहा—रुक्खा गुच्छा गुम्मा लता य वल्ली य पव्वगा चेव। तणवलयहरितओसहिजलरुहकुहणा य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ से किं तं रुक्खा ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—एगट्ठिया य बहुबीया य। से किं तं एगट्ठिया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—निंबंबजंबुजाव पुण्णागणागरुक्खे सीवण्णि तधा असोगे य, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसि णं मूलावि असंखेज्जजीविया, एवं कंदा खंधा तया साला पवाला पत्ता पत्तेयजीवा पुप्फाइं अणेगजीवाइं फला एगट्ठिया, सेत्तं एगट्ठिया। से किं तं बहुबीया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—अत्थियतेंदुयउंबरकविट्ठे आमलकफणसदाडिमणग्गोधकाउंबरीयतिलयलउयलोद्धे धवे, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसि णं मूलावि असंखेज्जजीविया जाव फला बहुबीयगा, सेत्तं बहुबीयगा, सेत्तं रुक्खा, एवं जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वं, जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, सेत्तं कुहणा—नाणाविधसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता। खंधोवि एगजीवो तालसरलनालिएरीणं ॥ १ ॥ 'जह सगलसरिसवाणं पत्तेयसरीराणं' गाहा ॥ २ ॥ 'जह वा तिलसक्कुलिया' गाहा ॥ ३ ॥ सेत्तं पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया ॥ (सू० २०)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—बादरवनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रत्येक-

शरीरबादरवनस्पतिकायिकाश्च साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाश्च, चशब्दो पूर्ववत् ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिका द्वादशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'रुक्खा'इत्यादि, वृक्षाः-चूतादयः गुच्छा—वृन्ताकीप्रभृतयः गुल्मानि—नवमालिकाप्रभृतीनि लताः—चम्पकलतादयः, इह येषां स्कन्धप्रदेशे विवक्षितोर्ध्वशाखाव्यतिरेकेणान्यत् शाखान्तरं तथाविधं परिस्थूरं न निर्गच्छति ते लता इति व्यवह्रियन्ते, ते च चम्पकादय इति, वल्लयः—कूष्माण्डीत्रपुषीप्रभृतयः पर्वगा—इक्ष्वादयः तृणानि—कुशजुअकार्जुनादीनि वलयानि—केतकीकदल्यादीनि तेषां हि त्वग् वलयाकारेण व्यवस्थितेति हरितानि—तन्दुलीयकवस्तुलप्रभृतीनि ओषधयः—फलपाकान्ताः ताश्च शाल्यादयः जले रुहन्तीति जलरुहाः—उदकावकपनकादयः कुहणा—भूमिस्फोटाभिधानास्ते चायकायप्रभृतयः, 'एवं भेदो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए' इत्यादि, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण बादरप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकानां भेदो वक्तव्यो यथा प्रज्ञापनायाम्, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते, स च किं यावद् वक्तव्यः ? इत्याह—'जह वा तिलसक्कुलिया' इत्यादि, अस्याश्च गाथाया अयं सम्बन्धः—इह यदि वृक्षादीनां मूलादयः प्रत्येकमनेकप्रत्येकशरीरजीवाधिष्ठितास्ततः कथमेकखण्डशरीराकारा उपलभ्यन्ते ?, तत्रेयमुत्तरगाथा—"जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी । पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या—यथा सकलसर्षपाणां श्लेपमिश्राणां—श्लेषद्रव्यविमिश्रितानां वलिता वर्त्तिरेकरूपा भवति, अथ च ते सकलसर्षपाः परिपूर्णशरीराः सन्तः पृथक् पृथक् स्वस्वावगाहनयाऽवतिष्ठन्ते, 'तथा' अनयैवोपमया प्रत्येकशरीरिणां जीवानां शरीरसङ्घाताः पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहना भवन्ति, इह श्लेषद्रव्यस्थानीयं रागद्वेषोपचितं तथाविधं स्वकर्म सकलसर्षपस्थानीयाः प्रत्येकशरीराः, सकलसर्षपग्रहणं वैविक्त्यप्रतिपत्त्या पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहप्रत्येकशरीरत्वे-

१ प्रतिपत्तौ बादरवनस्पतिभेदौ सू० १९ प्रत्येकवनस्पतिः सू० २०

वित्तयप्रतिपत्त्यर्थम्, अत्रैव दृष्टान्तान्तरमाह—"जह वा तिलसक्कुलिया" इत्यादिरधिकृतगाथा, वाशब्दो दृष्टान्तान्तरसूचने, यथा 'तिलसक्कुलिका' तिलप्रधाना पिष्टमयी अपूपिका बहुभिस्तिलैर्मिश्रिता सती यथा पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहतिलासिका भवति कथञ्चिदेकरूपा च 'तथा' अनयैवोपमया प्रत्येकशरीरिणां जीवानां शरीरसङ्घाताः कथञ्चिदेकरूपाः पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहनाश्च भवन्ति, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ सम्प्रति साधारणवनस्पतिकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा-आलुए मूलए सिंगबेर हिरिलि सिरिलि सिस्सिरिलि किट्टिया छिरिया छिरियविरालिया कण्हकंदे वज्जकंदे सूरणकंदे खल्लूडे किमिरासि भद्दे मोत्थापिंडे हलिद्दा लोहारी णीहु[ठिहु]थिभु अस्सकण्णी सीहकन्नी सीउंढी मूसंढी जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, तहेव जहा बायरपुढविकाइयाणं, णवरं सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं सातिरेगजोयणसहस्सं, सरीरगा अणित्थंत्थसंठिता, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं, जाव दुगतिया तिआगतिया परित्ता अणंता पण्णत्ता, सेत्तं बायरवणस्सइकाइया, सेत्तं थावरा ॥ (सू० २१)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिका अनेक-

विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'आलुए' इत्यादि, एते आलुकमूलकशृङ्गबेरहिरिलिसिरिलिसिस्सिरिलिकिट्टिकाक्षीरिकाक्षीरबिडालिकाकृष्णकन्दवज्रकन्दसूरणकन्दखल्लूट(कृमिराशि)भद्रमुस्तापिण्डहरिद्रालोहीस्तुहिस्तिभुअश्वकर्णीसिंहकर्णीसिकुंढीमुषण्ढीनामानः साधारणवनस्पतिकायिकभेदाः केचिदतिप्रसिद्धत्वात्केचिद्देशविशेषात्स्वयमवगन्तव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः—एवंप्रकारा अवकपनकसेवालादयस्तेऽपि साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः प्रतिपत्तव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि, 'ते' बादरवनस्पतिकायिकाः समासतो द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, 'जाव सिय संखेज्जा' इति यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—"तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ सिय संखिज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता" इति, एतत्प्राग्वत्, नवरं यत्रैको बादरपर्याप्तस्तत्र तन्निश्रयाऽपर्याप्ताः कदाचित्सङ्ख्येयाः कदाचिदसङ्ख्येयाः कदाचिदनन्ताः, प्रत्येकतरवः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा, साधारणास्तु नियमादनन्ता इति भावः । 'तेसि णं भंते ! कइ सरीरगा ?' इत्यादिद्वारकलापचिन्तनं बादरपृथिवीकायिकवत्, नवरं संस्थानद्वारे नानासंस्थानसंस्थितानीति वक्तव्यम् । अवगाहनाद्वारे 'उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्स'मिति, तच्च सातिरेकं योजनसहस्रमवगाहनामानमेकस्य जीवस्य बाह्यद्वीपेषु वल्ल्यादीनां समुद्रगोतीर्थेषु च पद्मनालादीनां, तदधिकोच्छ्रयमानानि पद्मानि पृथिवीकायपरिणाम इति वृद्धाः । स्थितिद्वारे उत्कर्षतो दश वर्षसहस्राणि वक्तव्यानि, गत्यागतिसूत्रानन्तरं 'अपरीत्ता अणंता' इति वक्तव्यं, तत्र 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः 'अपरीत्ताः' अप्रत्येकशरीरि-

णोऽनन्ताः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं बादरवणस्सइकाइया, सेत्तं थावरा' इति सुगमम् ॥ उक्ताः स्थावराः, सम्प्रति त्रसप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं तसा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तेउक्काइया वाउक्काइया ओराला तसा पाणा ॥ (सू० २२) ।

अथ के ते त्रसाः ?, सूरिराह—त्रसास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तेजस्कायिका वायुकायिका औदारिकत्रसाः, तत्र तेजः—अग्निः कायः—शरीरं येषां ते तेजस्कायास्त एव स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात्तेजस्कायिकाः, वायुः—पवनः स कायो येषां ते वायुकायास्त एव वायुकायिकाः, उदाराः—स्फारा उदारा एव औदारिकाः प्रत्यक्षत एव स्पष्टत्रसत्वनिबन्धनाभिसन्धिपूर्वकगतिलिङ्गतयोपलभ्यमानत्वात्, तत्र त्रसा द्वीन्द्रियादयः 'औदारिकत्रसाः' स्थूरत्रसा इत्यर्थः ॥ तत्र तेजस्कायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं तेउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य ॥ (सू० २३)

से किं तं सुहुमतेउक्काइया ?, २ जहा सुहुमपुढविक्काइया नवरं सरीरगा सूइकलावसंठिया, एगगइया दुआगइआ परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेसं तं चेव, सेत्तं सुहुमतेउक्काइया ॥ (सू० २४)

से किं तं बादरतेउक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—इंगाले जाले मुम्मुरे जाव सूरकंतमणिनिस्सिते, जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसिणं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सेसं तं चेव, सरीरगा सूइकलावसंठिता, तिन्नि लेस्सा, ठिती

जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं तिरियमणुस्सेहिंतो उववाओ, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं तेउक्काइया ॥ (सू० २५)

अथ के ते तेजस्कायिकाः ?, तेजस्कायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मतेजस्कायिकाश्च बादरतेजस्कायिकाश्च, चशब्दो पूर्ववत् ॥ अथ के ते सूक्ष्मतेजस्कायिकाः ?, सूरिराह—सूक्ष्मतेजस्कायिका इत्यादि सूत्रं सर्वं सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद् वक्तव्यं, नवरं संस्थानद्वारे शरीराणि सूचीकलापसंस्थितानि वक्तव्यानि, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य तिर्यग्गतावेवोत्पद्यन्ते, न मनुष्यगतौ, तेजोवायुभ्योऽनन्तरोद्धृतानां मनुष्यगतावुत्पादप्रतिषेधात्, तथा चोक्तम्—"सत्तमिमहिनेरइया तेऊ वाऊ अणंतरुव्वट्टा । नवि पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउया सव्वे ॥ १ ॥" गत्यागतिद्वारे द्व्यागतयः, तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च तेपूत्पादात्, एकगतयोऽनन्तरमुद्वृत्तानां तिर्यग्गतावेव गमनात्, शेषं तथैव, उपसंहारवाक्यं 'सेत्तं सुहुमतेउक्काइया' ॥ बादरतेजस्कायिकानाह—अथ के ते बादरतेजस्कायिकाः ?, सूरिराह—बादरतेजस्कायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"इंगाले जाव तत्थ नियमे"त्यादि यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठः—"इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणि निग्घाए संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिनिस्सिए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—'अङ्गारः'

१ सप्तमीमहीनैरयिका. तेजो वायु अनन्तरोद्वृत्ता. । नैव प्राप्नुवन्ति मानुष्यं तथैवासंख्यायुष. सर्वे ॥ १ ॥

विगतधूमज्वालो जाज्वल्यमानः खदिरादिः, 'ज्वाला' अनलसंबद्धा दीपशिखेत्यन्ये, 'मुर्मुरः' फुम्फुकाग्नौ भस्मामिश्रितोऽग्निकणरूपः 'अर्चिः' अनलाप्रतिबद्धा ज्वाला, 'अलातम्' उल्मुकं, 'शुद्धाग्निः' अयःपिण्डादौ, 'उल्का' चुडुली 'विद्युत्' प्रतीता, 'अशनिः' आकाशे पतन्नग्निमयः कणः, 'निर्घातः' वैक्रियाशनिप्रपातः 'संघर्षसमुत्थितः' अरण्यादिकाष्ठनिर्मथनसमुत्थः, 'सूर्यकान्तमणिनिश्रितः' सूर्यखरकिरणसंपर्के सूर्यकान्तमणेर्यः समुपजायते, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्तेजस्कायिकास्तेऽपि बादरतेजस्कायिकतया वेदितव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि प्राग्वत्, शरीरादिद्वारकलापचिन्ताऽपि सूक्ष्मतेजस्कायिकवत्, नवरं स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि रात्रिन्दिवानि, आहारो यथा बादरपृथ्वीकायिकानां तथा वक्तव्यः, उपसंहारमाह—'सेत्तं तेउक्काइया' ॥ उक्तास्तेजस्कायिकाः, सम्प्रति वायुकायिकानाह—

से किं तं वाउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य, सुहुमवाउक्काइया जहा तेउक्काइया णवरं सरीरा पडागसंठिता एगगतिया दुआगतिया परित्ता असंखिज्जा, सेत्तं सुहुमवाउक्काइया । से किं तं बादरवाउक्काइया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—पाईणवाए पडीणवाए, एवं जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । ते सि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरगा पडागसंठिता, चत्तारि समुग्घाता—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए,

आहारो णिव्वाघातेणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उववातो देवमणुयनेरइएसु णत्थि, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो !, सेत्तं बायरवाऊ, सेत्तं वाउक्काइया ॥ (सू० २६)

अथ के ते वायुकायिकाः ?, सूरिराह—वायुकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मवायुकायिकाश्च बादरवायुकायिकाश्च, चशब्दौ प्राग्वत्, तत्र सूक्ष्मवायुकायिकाः सूक्ष्मतेजस्कायिकवद्वक्तव्याः, नवरं संस्थानद्वारे तेषां शरीराणि पताकासंस्थानसंस्थितानि वक्तव्यानि, शेषं तथैव, बादरवायुकायिका अपि एवं चैव—सूक्ष्मतेजस्कायिकवदेव, नवरं भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"से किं तं बायरवाउक्काइया ?, बायरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीणवाए उड्ढवाए अहेवाए तिरियवाए विदिसिवाए वाउब्भामे वाउक्कलिया मंडलियावाए उक्कलियावाए गुंजावाए झंझावाए संवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं, पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—'पाईणवाए' इति, यः प्राच्या दिशः समागच्छति वातः स प्राचीनवातः, एवमपाचीनो दक्षिणवात उदीचीनवातश्च वक्तव्यः, ऊर्ध्वमुद्गच्छन् यो वाति वातः स ऊर्ध्ववातः, एवमधोवाततिर्यग्वातावपि परिभावनीयौ, विदिग्वातो यो विदिग्भ्यो वाति, वातो-

द्भ्रमः—अनवस्थितो वातः, वातोत्कलिका समुद्रस्येव वातस्योत्कलिका वातमण्डलीवात उत्कलिकाभिः प्रचुरतराभिः सम्मिश्रो यो वातः, मण्डलिकावातो मण्डलिकाभिर्मूलत आरभ्य प्रचुरतराभिः सम्मिश्रो यो वातः, गुञ्जावातो यो गुञ्जन्—शब्दं कुर्वन् वाति, झञ्झावातः सवृष्टिः, अशुभनिष्ठुर इत्यन्ये, संवर्त्तकवातस्तृणादिसंवर्त्तनस्वभावः, घनवातो घनपरिणामो वातो रत्नप्रभापृथिव्याद्यधोवर्त्ती, तनुवातो—विरलपरिणामो घनवातस्याधःस्थायी, शुद्धवातो मन्दस्तिमितो, बस्तिदृत्यादिगत इत्यन्ये, 'ते समासतो' इत्यादि प्राग्वत्, तथा शरीरादिद्वारकलापचिन्तायां शरीरद्वारे चत्वारि शरीराणि औदारिकवैक्रियतैजसकार्मणानि, चत्वारः समुद्घाताः—वैक्रियवेदनाकषायमारणान्तिकरूपाः, स्थितिद्वारे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं वक्तव्यमुत्कर्षतस्त्रीणि वर्षसहस्राणि, आहारो निर्व्याघातेन षड्दिशि, व्याघातं प्रतीत्य स्यात्त्रिदिशि स्याच्चतुर्दिशि स्यात्पञ्चदिशि, लोकनिष्कुटादावपि बादरवातकायस्य सम्भवात्, शेषं सूक्ष्मवातकायवत्, उपसंहारमाह—'सेत्तं वाउक्काइया' इति ॥ उक्ता वातकायिकाः, सम्प्रत्यौदारिकत्रसानाह—

से किं तं ओराला तसा पाणा ?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया ॥ (सू० २७)

अथ के ते औदारिकत्रसाः ?, सूरिराह—औदारिकत्रसाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः, तत्र द्वे स्पर्शनरसनरूपे इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः, त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणरूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः, चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षूरूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः, पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः ॥ तत्र द्वीन्द्रियप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं बेइंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसिणं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए। तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरओगाहणा पण्णत्ता ?, जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जभागं उक्कोसेणं बारसजोयणाइं छेवट्ठसंघयणा हुंडसंठिता, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, दो इंदिया, तओ समुग्घाता—वेयणा कसाया मारणंतिया, नोसन्नी असन्नी, णपुंसकवेदगा, पंच पज्जत्तीओ, पंच अपज्जत्तीओ, सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि नो सम्मामिच्छदिट्ठी, णो ओहिदंसणी णो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी नो केवलदंसणी। ते णं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते नियमा दुण्णाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य, जे अन्नाणी ते नियमा दुअण्णाणी—मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य, नो मणजोगी वइजोगी कायजोगी, सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववातो तिरियमणुस्सेसु नेरइयदेवअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, समोहतावि मरंति असमोहतावि मरंति, कहिं

गच्छंति?, नेरइयदेवअसंखेज्जवासाउअवज्जेसु गच्छंति, दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा, सेत्तं बेइंदिया ॥ (सू० २८)

'से किं त' मित्यादि, अथ के ते द्वीन्द्रियाः ?, सूरिराह—द्वीन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा' इति यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठो द्रष्टव्यः—"पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमा नेउरा सोमंगलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जालायुसा संखा संखणगा घुल्ला खुल्ला वराडा सोत्तिया मोत्तिया कल्लुयावासा एगतोवत्ता दुहतोवत्ता नंदियावत्ता संबुक्का माइवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा इति" अस्य व्याख्या—'पुलाकिमिया' नाम पायुप्रदेशोत्पन्नाः कृमयः 'कुक्षिकृमयः' कुक्षिप्रदेशोत्पन्नाः 'गण्डोयलकाः' प्रतीताः 'शङ्खाः' समुद्रोद्भवास्तेऽपि प्रतीताः 'शङ्खनकाः' त एव लघवः 'घुल्लाः' घुल्लिकाः 'खुल्लाः' लघवः शङ्खाः सामुद्रशङ्खाकाराः 'वराटाः' कपर्दाः 'मातृवाहाः' कोद्रवाकारतया ये कोद्रवा इति प्रतीताः 'सिप्पिसंपुडा' संपुटरूपाः शुक्तयः 'चन्दनकाः' अक्षाः, शेषास्तु यथासम्प्रदायं वाच्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः—एवंप्रकाराः मृतककलेवरसम्भूतकृम्यादयस्ते सर्व्वे द्वीन्द्रिया ज्ञातव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि, ते द्वीन्द्रियाः 'समासतः' सङ्क्षेपेण द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च । शरीरद्वारेऽमीषां त्रीणि शरीराणि—औदारिकं तैजसं कार्मणं च, अवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कृष्टा द्वादश योजनानि, संहननद्वारे छेदवर्त्तिसंहननिनः, अत्र संहननं मुख्यमेव द्रष्टव्यम्, अस्थिनिचयभावात्, संस्थानद्वारे हुण्डसंस्थानाः, कषायद्वारे चत्वारः कषायाः, सञ्ज्ञाद्वारे चतस्र आहारादिकाः सञ्ज्ञाः, लेश्याद्वारे आद्यास्तिस्रो लेश्याः, इन्द्रियद्वारे द्वे इन्द्रिये, तद्यथा—स्पर्शनं रसनं च, समुद्घातद्वारे त्रयः समुद्घाताः, त-

यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातश्च, सञ्ज्ञाद्वारे नो सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनः, वेदद्वारे नपुंसकवेदाः, संमूर्च्छिमत्वात्, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दृष्टिद्वारे सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा, न सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, कथम्? इति चेत् उच्यते, इह घण्टाया वादितायां महान् शब्द उपजायते, तत उत्तरकालं हीयमानोऽवसाने लालामात्रं भवति, एवममुना घण्टालालान्यायेन किञ्चित्सास्वादनसम्यक्त्वशेषाः केचिद् द्वीन्द्रियेषु मध्ये उत्पद्यन्ते, ततोऽपर्याप्तावस्थायां कियत्कालं सास्वादनसम्यक्त्वसम्भवात् सम्यग्दृष्टित्वं, शेषकालं मिथ्यादृष्टिता, यत्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं तत्र संभवति, तथाभवस्वभावतया तथारूपपरिणामायोगात्, नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सन् तत्रोत्पद्यते 'न सम्ममिच्छो कुणइ कालं' इति वचनात्, दर्शनद्वारं प्राग्वत्, ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनोऽपि, तत्र ज्ञानित्वं सास्वादनसम्यक्त्वापेक्षया, ते च ज्ञानिनो नियमाद् द्विज्ञानिनो, मतिश्रुतज्ञानमात्रभावात्, अज्ञानिनोऽपि नियमाद् द्व्यज्ञानिनो, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमात्रभावात्, योगद्वारे न मनोयोगिनो वाग्योगिनोऽपि काययोगिनोऽपि, उपयोगद्वारं पूर्ववत्, आहारो नियमात् षड्दिशि, त्रसनाड्या एवान्तर्द्वीन्द्रियादीनां भावात्, उपपातो देवनारकासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः शेषतिर्यग्मनुष्येभ्यः, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि, समवहतद्वारं प्रागिव, च्यवनद्वारे देवनारकासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेषु शेषेषु तिर्यग्मनुष्येष्वनन्तरमुद्धृत्य गमनम्, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणः, असङ्ख्येया घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाध आयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽसङ्ख्येययोजनकोटाकोटीप्रमाणाकाशसूचिगतप्रदेशराशिप्रमाणाः तावत्प्रमाणत्वात्, प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं बेइंदिया' ॥ उक्ता द्वीन्द्रियाः, अधुना त्रीन्द्रियानाह—

से किं तं तेइंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—ओवइया रोहिणीया हत्थिसोंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तहेव जहा बेइंदियाणं, नवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं, तिन्नि इंदिया, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणपण्णराइंदिया, सेसं तहेव, दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं तेइंदिया ॥ (सू० २९)

अथ के ते त्रीन्द्रियाः ?, सूरिराह—त्रीन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'भेदो जहा पण्णवणाए' भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"उवयिया रोहिणिया कुंथूपिवीलिया उद्देसगा उद्देहिया उक्कलिया तणहारा कट्ठहारा पत्तहारा मालुया पत्तहारा तणवेंटका पत्तवेंटया फलवेंटया तेम्बुरुमिंजिया तउसमिंजिया कप्पासट्ठिमिंजिया झिल्लिया झिंगिरा झिगिरिडा वाहुया, [ग्रन्थाग्रम् १०००] मुरगा सोवत्थिया सुयवेंटा इंदकाइया इंदगोवया कोत्थलवाहगा हालाहला पिसुया तसवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा ॥" इति, एते च केचिदतिप्रतीताः केचिद्देशविशेषतोऽवगन्तव्याः, नवरं 'गोम्ही' कण्हसियाली, **'जे यावण्णे तहप्पगारा'** इति येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्ते सर्वे त्रीन्द्रिया ज्ञातव्याः, **'ते समासतो'** इत्यादि समस्तमपि सूत्रं द्वीन्द्रियवत्परिभावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना त्रीणि गव्यूतानि । इन्द्रियद्वारे त्रीणि इन्द्रियाणि । स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—**'सेत्तं तेइंदिया ॥'** उक्तास्त्रीन्द्रियाः, सम्प्रति चतुरिन्द्रियप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं चउरिंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—अंधिया पुत्तिया जाव गोमयकीडा, जे

यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता तं चेव, णवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं, इंदिया चत्तारि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी, ठिती उक्कोसेणं छम्मासा, सेसं जहा तेइंदियाणं जाव असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं चउरिंदिया ॥ (सू० ३०)

अथ के ते चतुरिन्द्रियाः?, सूरिराह—चतुरिन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"अंधिया पुत्तिया मच्छिया मगसिरा कीडा पयंगा टेंकणा कुकुहा कुकुडा नंदावत्ता झिंगिरिडा किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हालिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओहंजलिया जलचारिया गंभीरा नीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा नेउरा डोला भमरा भरिलि जरला विच्छुया पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया सेइंगाला कणगा गोमयकीडगा" एते लोकतः प्रत्येतव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्ते सर्वे चतुरिन्द्रिया विज्ञेयाः, 'ते समासतो' इत्यादि सकलमपि सूत्रं द्वीन्द्रियवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना चत्वारि गव्यूतानि। इन्द्रियद्वारे स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानि चत्वारीन्द्रियाणि। स्थितिद्वारे उत्कर्षतः स्थितिः षण्मासाः, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्तं चउरिंदिया'। सम्प्रति पञ्चेन्द्रियान् प्रतिपिपादयिषुराह—

से किं तं पंचेंदिया?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—णेरतिया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा ॥ (सू० ३१)

अथ के ते पञ्चेन्द्रियाः?, सूरिराह—पञ्चेन्द्रियाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः, तत्र अयम्—

इष्टफलं कर्म निर्गतमयं येभ्यस्ते निरया—नरकावासास्तेषु भवा नैरयिकाः, अध्यात्मादेराकृतिगणत्वादिकण्प्रत्ययः । तिर्यगिति प्रायस्तिर्यग्लोके योनयस्तिर्यग्योनयस्तत्र जातास्तिर्यग्योनिजाः, यद्विवा तिर्यग्योनिका इति शब्दसंस्कारः, तत्र तिर्यगिति प्रायस्तिर्यग्लोके योनयः—उत्पत्तिस्थानानि येषां ते तिर्यग्योनिकाः । मनुरिति मनुष्यस्य सञ्ज्ञा, मनोरपत्यानि मनुष्याः, जातिशब्दोऽयं राजन्यादिशब्दवत् । दीव्यन्तीति देवाः ॥ तत्र नैरयिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं नेरइया ?, २ सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइया जाव अहे सत्तमपुढविनेरइया, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं०—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—वेउव्विए तेयए कम्मए । तेसि णं भंते ! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जो भागो उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्कोसेणं धणुसहस्सं । तेसिणं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंघयणी पण्णत्ता ?, गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारु णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुभा अमणुण्णा अमणामा ते तेसिं संघातत्ताए परिणमंति । तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंठिता पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा

पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिता पण्णत्ता, चत्तारि कसाया चत्तारि सण्णाओ तिण्णि लेसाओ पंचेंदिया चत्तारि समुग्घाता आइल्ला, सन्नीवि असन्नीवि, नपुंसकवेदा, छप्पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ, तिविधा दिट्ठी, तिन्नि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते नियमा तिन्नाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी ओहिनाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी अत्थेगतिया तिअण्णाणी, जे य दुअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य, जे तिअण्णाणी ते नियमा मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य विभंगणाणी य, तिविधे जोगे, दुविहे उवओगे, छद्दिसिं आहारो, ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णतो कालाइं जाव आहारमाहारेंति, उववाओ तिरियमणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तित्तीसं सागरोवमाइं, दुविहा मरंति, उव्वट्टणा भाणियव्वा जतो आगता, णवरि संमुच्छिमेसु पडिसिद्धो, दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो!, से तं नेरइया ॥ (सू० ३२)

अथ के ते नैरयिकाः?, सूरिराह—नैरयिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका यावत्करणात् शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाः वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकाः पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाः धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाः तमःप्रभापृथिवीनैरयिका इति परिग्रहः, अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकाः, 'ते समासतो' इत्यादिपर्याप्तापर्याप्तसूत्रं सुगमम् ॥ शरीरादिद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि,

सुगमं नवरं भवप्रत्ययादेव तेषां शरीरं वैक्रियं नौदारिकमिति वैक्रियतैजसकार्मणानि त्रीणि शरीराण्युक्तानि । अवगाहना तेषां द्विधा—भवधारणीया उत्तरवैकुर्विकी च, तत्र यया भवो धार्यते सा भवधारणीया, बहुलवचनात्करणेऽनीयप्रत्ययः, अपरा भवान्तरवैरिनारकप्रतिघातनार्थमुत्तरकालं या विचित्ररूपा वैक्रयिकी अवगाहना सा उत्तरवैकुर्विकी, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागः, स चोपपातकाले वेदितव्यः, तथाप्रयत्नभावात्, उत्कर्षतः पञ्चधनुःशतानि, इदं चोत्कर्षतः प्रमाणं सप्तमपृथिवीमधिकृत्य वेदितव्यं, प्रतिपृथिवि तूत्कर्षतः प्रमाणं सङ्ग्रहणिटीकातो भावनीयं, तत्र सविस्तरमुक्तत्वात्, उत्तरवैकुर्विकी जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागो न त्वसङ्ख्येयभागः, तथाप्रयत्नाभावात्, उत्कर्षतो धनुःसहस्रमिति, इदमप्युत्कर्षपरिमाणं सप्तमनरकपृथिवीमधिकृत्य वेदितव्यं, प्रतिपृथिवि तु सङ्ग्रहणिटीकातः परिभावनीयं, संहननद्वारे 'तेसि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! षण्णां संहननानामन्यतमेनापि संहननेन तेषां शरीराण्यसंहननानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, कस्मादसंहननानि ? इति चेद् अत आह—'नेवट्ठी' इत्यादि, नैव तेषां शरीराणामस्थीनि, नैव शिरा—धमनिनाड्यो, नापि स्नायूनि—शेषशिराः, अस्थिनिचयात्मकं च संहननमतोऽस्थ्याद्यभावादसंहननानि शरीराणि, इयमत्र भावना—इह तत्त्ववृत्त्या संहननमस्थिनिचयात्मकं, यत्तु प्रागेकेन्द्रियाणां सेवार्त्तसंहननमभ्यधायि तदौदारिकशरीरसम्बन्धमात्रमपेक्ष्यौपचारिकं, देवा अपि यदन्यत्र प्रज्ञापनादौ वज्रसंहननिन उच्यन्ते तेऽपि गौणवृत्त्या, तथाहि—इह यादृशी मनुष्यलोके चक्रवर्त्यादेर्विशिष्टवज्रर्षभनाराचसंहननिनः सकलशेषमनुष्यजनासाधारणा शक्तिः "दोसोला बत्तीसा सव्वबलेणं तु संकलनिबद्ध"मित्यादिका, ततोऽधिकतरा देवानां पर्वतोत्पाटनादिविषया शक्तिः श्रूयते न च शरीरपरिक्लेश इति तेऽपि वज्रसंहननिन इव वज्रसंहननिन उक्ता न पुनः परमार्थतस्ते संहननिनः, ततो नारकाणामस्थ्यभावात्संहननाभावः, एतेन योऽपरिणतभग-

वलिसद्धान्तसारो वावदूकः सिद्धान्तवाहुल्यमात्मनः ख्यापयन्नेवं प्रललाप—"सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहऽट्ठिनिचयो" त्ति, इति सोऽपाकीर्णो द्रष्टव्यः, साक्षादत्रैव सूत्रे अस्थिनिचयात्मकस्य संहननस्याभिधानात्, अस्थ्यभावे संहननप्रतिषेधादिति । अपरस्त्वाह्—नैरयिकाणामस्थ्यभावे कथं शरीरबन्धोपपत्तिः ?, नैष दोषः, तथाविधपुद्गलस्कन्धवत् शरीरबन्धोपपत्तेः, अत एवाह—'जे पोग्गला अणिट्ठा' इत्यादि, ये पुद्गलाः 'अनिष्टाः' मनस इच्छामतिक्रान्ताः, तत्र किञ्चित्कमनीयमपि केषाञ्चिदनिष्टं भवति तत आह—न कान्ताः अकान्ता—अकमनीयाः, अत्यन्ताशुभवर्णोपेतत्वात्, अत एव न प्रियाः, दर्शनापातकालेऽपि न प्रियबुद्धिमात्मन्युत्पादयन्तीति भावः, 'अशुभाः' अशुभरसगन्धस्पर्शात्मकत्वात्, 'अमनोज्ञाः' न मनःप्रह्लादहेतवो, विपाकतो दुःखजनकत्वात्, अमनआपाः—न जातुचिदपि भोज्यतया जन्तूनां मनांस्याप्नुवन्तीति भावः, ते तेषां 'सङ्घातत्वेन' तथारूपशरीरपरिणतिभावेन परिणमन्ति । संस्थानद्वारे तेषां शरीराणि भवधारणीयानि उत्तरवैकुर्विकाणि च हुण्डसंस्थानानि वक्तव्यानि, तथाहि—भवधारणीयानि तेषां शरीराणि भवस्वभावत एव निर्मूलविलुप्तपक्षोत्पाटितसकलग्रीवादिरोमपक्षिशरीरकवदतिबीभत्सहुण्डसंस्थानोपेतानि, यान्यप्युत्तरवैक्रियाणि तानि यद्यपि शुभानि वयं विकुर्विष्याम इत्यभिसन्धिना विकुर्वितुमारभन्ते तथाऽपि तानि तेषामत्यन्ताशुभतथाविधनामकर्मोदयतोऽतीवाशुभतराण्युपजायन्ते इति तान्यपि हुण्डसंस्थानानि । कषायद्वारं सञ्ज्ञाद्वारं च प्राग्वत्, लेश्याद्वारे आद्यास्तिस्रो लेश्याः, तत्राद्ययोर्द्वयोः पृथिव्योः कापोतलेश्या, तृतीयस्यां पृथिव्यां केषुचिन्नरकावासेषु कापोतलेश्या शेषेषु नीललेश्या, चतुर्थ्यां नीललेश्या, पञ्चम्यां केषुचिन्नरकावासेषु नीललेश्या, शेषेषु कृष्णलेश्या, षष्ठ्यां कृष्णलेश्या, सप्तम्यां परमकृष्णलेश्या, उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ—"काऊ य दोसु तइ-

१ कापोती च द्वयोस्तृतीयस्यां मिश्रा नीला चतुर्थ्यां । पञ्चम्यां मिश्रा कृष्णा ततः परमकृष्णा ॥ १ ॥

याएँ मीसिया नीलिया चउत्थीए पंचमियाए। मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥" इन्द्रियद्वारे पञ्च इन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानि । समुद्घातद्वारे चत्वारः समुद्घाताः—वेदनासमुद्घातः कपायसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातश्च । सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनश्च, तत्र ये गर्भव्युत्क्रान्तिकेभ्य उत्पन्नास्ते सञ्ज्ञिन इति व्यपदिश्यन्ते, ये तु संमूर्च्छनजेभ्यस्तेऽसञ्ज्ञिनः, ते च रत्नप्रभायामेवोत्पद्यन्ते न परतः, अनाशयाशुभक्रियाया दारुणाया अप्यनन्तरविपाकिन्या एतावन्मात्रफलत्वात्, अत एवाहुर्वृद्धाः—"[1]अस्सन्नी खलु पढमं दोच्चं व सिरीसवा तइय पक्खी । सीहा जंति चउत्थि उरगा पुण पंचमिं पुढविं ॥ १ ॥ छट्ठिं य इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं । एसो परमोवाओ वोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥ २ ॥" वेदद्वारे नपुंसकवेदाः । पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः । दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयोऽपि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च, दर्शनद्वारे त्रीणि दर्शनानि, तद्यथा—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं च । ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, येऽत्राज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एष चात्र भावार्थः—ये नारका असञ्ज्ञिनस्तेऽपर्याप्तावस्थायां द्व्यज्ञानिनः पर्याप्तावस्थायां तु त्र्यज्ञानिनः सञ्ज्ञिनस्तूभय्यामप्यवस्थायां त्र्यज्ञानिनः, असञ्ज्ञिभ्यो ह्युत्पद्यमानास्तथावोधमान्द्यादपर्याप्तावस्थायां नाव्यक्तमप्यवधिमाप्नुवन्तीति । योगोपयोगाहारद्वाराणि प्रतीतानि । उपपातो यथा व्युत्क्रान्तिपदे प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येभ्योऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यो वक्तव्यो,

---

१ असञ्ज्ञिन• खलु प्रथमा द्वितीया च सरीसृपास्तृतीयां पक्षिणः । सिंहा यान्ति चतुर्थीं उरगा• पुन• पञ्चमीं पृथ्वीम् ॥ १ ॥ षष्ठीं च स्त्रियः मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीम् । एष परम उत्पादो वोद्धव्यो नरकपृथ्वीषु ॥ २ ॥

न शेषेभ्य इति भावः। स्थितिर्जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्ता प्राग्वत्। उद्वर्त्तनाचिन्ता यथा व्युत्क्रान्तिपदे प्रज्ञापनायां कृता तथा वक्तव्या, अनन्तरमुद्वृत्य सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येष्वसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेष्वागच्छन्तीति भावः, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं नेरइया' ॥ उक्ता नैरयिकाः, सम्प्रति तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानाह—

से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य ॥ (सू० ३३)

अथ के ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च, तत्र संमूर्च्छनं संमूर्च्छा—गर्भोपपातव्यतिरेकेणैव यः प्राणिनामुत्पादस्तेन निर्वृत्ताः संमूर्च्छिमाः, 'भावादिम' इति इमप्रत्ययः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, गर्भे व्युत्क्रान्तिः—उत्पत्तिर्येषां यदिवा गर्भाद्—गर्भवशाद् व्युत्क्रान्तिः—निष्क्रमणं येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चेति विशेषणसमासः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥

से किं तं संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा ॥ (सू० ३४)। से किं तं जलयरा?, २ पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—मच्छगा कच्छभा मगरा गाहा सुसुमारा। से किं तं मच्छा?, एवं जहा पण्णवणाए जाव जे यावण्णे तहप्पगारा,

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छेवट्ठसंघयणी हुंडसंठिता, चत्तारि कसाया, सण्णाओवि ४, लेसाओ ५, इंदिया पंच, समुग्घाता तिण्णि णो सण्णी असण्णी, णपुंसकवेदा, पज्जत्तीओ अपज्जत्तीओ य पंच, दो दिट्ठिओ, दो दंसणा, दो नाणा दो अन्नाणा, दुविधे जोगे, दुविधे उवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववातो तिरियमणुस्सेहिंतो नो देवेहिंतो नो नेरइएहिंतो, तिरिएहिंतो असंखेज्जवासाउवज्जेसु, अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउअवज्जेसु मणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, मारणंतियसमुग्घातेणं दुविहावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं ?, नेरइएसुवि तिरिक्खजोणिएसुवि मणुस्सेसुवि देवेसुवि, नेरइएसु रयणप्पहाए, सेसेसु पडिसेधो, तिरिएसु सव्वेसु उववज्जंति संखेज्जवासाउएसुवि असंखेज्जवासाउएसुवि चउप्पएसु पक्खीसुवि मणुस्सेसु सव्वेसु कम्मभूमीसु नो अकम्मभूमीएसु अंतरदीवएसुवि संखिज्जवासाउएसुवि असंखिज्जवासाउएसुवि देवेसु जाव वाणमंतरा, चउगइया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता । से तं जलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खा ॥ (सू० ३५)

अथ के ते संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह–संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः

स्थलचराः खचराः, तत्र जले चरन्तीति जलचराः, एवं स्थलचरा खचरा अपि भावनीयाः ॥ अथ के ते जलचराः?, सूरिराह—जलचराः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मत्स्याः कच्छपा मकरा ग्राहाः शिशुमाराः, 'एवं भेओ भाणियव्वो जहा पण्णवणाए जाव सुसुमारा एगागारा पन्नत्ता' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण मत्स्यादीनां भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स च तावद् यावत् 'सिसुमारा' एगागारा इतिपदं, स चैवम्—"से किं तं मच्छा?, मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा जुगमच्छा भिब्भियमच्छा हेलियमच्छा मंजरियामच्छा रोहियमच्छा हलीसागारा मोगरावडा वडगरा तिमीतिमिंगिलामच्छा तंदुलमच्छा कणिक्कमच्छा सिलेच्छियामच्छा लंभणमच्छा पडागा पडागाइपडागा, जे यावण्णे तहप्पगारा, से तं मच्छा। से किं तं कच्छभा?, कच्छभा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—अट्ठिकच्छभा य मंसलकच्छभा य, से तं कच्छभा। से किं तं गाहा?, गाहा पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—दिली वेढगा मुदुगा पुलगा सीमागारा, सेत्तं गाहा। से किं तं मगरा?, मगरा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सोंडमगरा य मट्ठमगरा य, सेत्तं मगरा। से किं तं सुसुमारा?, २ एगागारा पण्णत्ता, सेत्तं सुसुमारा" इति, एते मत्स्यादिभेदा लोकतोऽवगन्तव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' उक्तप्रकारा मत्स्यादिरूपाः, ते सर्वे जलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्रष्टव्याः। 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं सुगमं, शरीरादिद्वारकदम्बकमपि चतुरिन्द्रियवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा, उत्कर्षतो योजनसहस्रम्। इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणि। सञ्ज्ञिद्वारे नो सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनः, संमूर्च्छिमतया समनस्कत्वायोगात्। उपपातो यथा व्युत्क्रान्तिपदे तथा वक्तव्य., तिर्यग्मनुष्येभ्योऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्ज्येभ्यो वाच्य इति भावः। स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी। च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्त्य चतसृष्वपि गतिषूत्पद्यन्ते, तत्र नरकेषु रत्नप्रभायामेव, तिर्यक्षु सर्वेष्वेव, मनु-

ष्येषु कर्मभूमिजेषु, देवेषु व्यन्तरभवनवासिषु, तदन्येष्वसङ्ख्यायुष्काभावात्, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुर्गतिका द्व्यागतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ उक्ताः संमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, सम्प्रति संमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं थलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पयथलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया परिसप्पसंमु० ॥ से किं तं थलयरचउप्पयसंमुच्छिम०?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया जाव जे यावण्णे तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तओ सरीगा ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीतिवाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं थलयरचउप्पदसंमु०। से किं तं थलयरपरिसप्पसंमुच्छिमा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमा। से किं तं उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—अही अयगरा आसालिया महोरगा। से किं तं अही?, अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—दव्वीकरा मउलिणो य। से किं तं दव्वीकरा?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा। से किं तं मउ-

लिणो?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—दिव्वा गोणसा जाव से तं मउलिणो, सेत्तं अही । से किं तं अयगरा?, २ एगागारा पण्णत्ता, से तं अयगरा । से किं तं आसालिया?, २ जहा पण्णवणाए, से तं आसालिया। से किं तं महोरगा?, २ जहा पण्णवणाए, से तं महोरगा। जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य तं चेव, णवरि सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्सऽसंखेज्ज० उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं, जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा, से तं उरगपरिसप्पा॥ से किं तं भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमथलयरा?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—गोहा णउला जाव जे यावन्ने तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिती उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं भुयपरिसप्पसंमुच्छिमा, से तं थलयरा ॥ से किं तं खहयरा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विततपक्खी । से किं तं चम्मपक्खी?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—वग्गुली जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, से तं चम्मपक्खी। से किं तं लोमपक्खी?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ढंका कंका जे यावन्ने तहप्पकारा, से

तं लोमपक्खी । से किं तं समुग्गपक्खी ?, २ एगागारा पण्णत्ता जहा पण्णवणाए, एवं विततपक्खी जाव जे यावन्ने तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, णाणत्तं सरीरोगाहणा जह० अंगु० असं० उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं ठिती उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं खयरसंमुच्छिमतिरिक्खजोणिया, सेतं संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ॥ (सू० ३६)

अथ के ते संमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च परिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च, तत्र चत्वारि पदानि येषां ते चतुष्पदाः—अश्वादयः ते च ते स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, उरसा भुजाभ्यां वा परिसर्पन्तीति परिसर्पाः—अहिनकुलादयस्ततः पूर्ववत्समासः, चशब्दौ स्वस्वगतानेकभेदसूचकौ, तदेवानेकविधत्वं क्रमेण प्रतिपिपादयिषुराह—अथ के ते चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'जहा पण्णवणाए' इति, यथा प्रज्ञापनायां प्रज्ञापनाख्ये प्रथमे पदे भेदास्तथा वक्तव्या यावत् 'ते समासतो दुविहा पण्णत्ता' इत्यादि, ते चैवम्—"एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया । से किं तं एगखुरा ?, एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—अस्सा अस्सतरा घोडा गद्दभा गोरखुरा कंदलगा सिरिकंदलगा आवत्ता जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं एगखुरा । से किं तं दुखुरा ?, दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—उट्टा गोणा गवया महिसा संबरा वराहा अजा एलगा रुरू सरभा चमरी कुरंगा गोक-

णमाई, सेत्तं दुखुरा । से किं तं गंडीपया ?, गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—हत्थी हत्थिपूयणा मंकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं गंडीपया । से किं तं सणप्फया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा सीयाला सुणगा कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावण्णे तहप्पकारा ॥" इति, तत्र प्रतिपदमेकः खुरो येषां ते एकखुराः—अश्वादयः, प्रतिपादं द्वौ खुरौ—शफौ येषां ते द्विखुरा—उष्ट्रादयः, तथा च तेषामेकैकस्मिन् पादे द्वौ द्वौ शफौ दृश्येते, गण्डीव पदं येषां ते गण्डीपदाः—हस्त्यादयः, सनखानि—दीर्घनखपरिकलितानि पदानि येषां ते सनखपदाः—श्वादयः, प्राकृतत्वाच्च 'सणप्फया' इति सूत्रे निर्देशः, अश्वादयस्त्वेतद्भेदाः केचिदतिप्रसिद्धत्वात्स्वयमन्ये च लोकतो वेदितव्याः, नवरं सनखपदाधिकारे द्वीपकाः—चित्रका अच्छाः—ऋक्षाः परासराः—सरभाः कोकन्तिका—लोमटिकाः चित्ता चित्तलगा आरण्यजीवविशेषाः, शेषास्तु सिंहव्याघ्रतरक्षशृगालशुनककोलशुनशशकाः प्रतीताः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं शरीरादिद्वारकलापसूत्रं च जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कृष्टा गव्यूतपृथक्त्वं स्थितिद्वारे जघन्यत. स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतश्चतुरशीति वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्तं चउप्पयथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ अथ के ते परिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, २ द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'एवं भेदो भाणियव्वो' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण यथा प्रज्ञापनायां तथा भेदो वक्तव्यो यावत् 'पज्जत्ता य अपज्जत्ता य' स चैवम्—'तंजहा—उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचेन्द्रियतिरिक्खजोणिया य भुयपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य ।" सुगमं, नवरम् उरसा परिसर्पन्तीत्युरःपरिसर्पाः—सर्पादयः, भुजाभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पा—नकुलादयः, शेषपदसमासः प्राग्वत्, "से किं तं उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरि-

१ प्रतिपत्तौ
संमूर्च्छिम-
पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यञ्चः
सू० ३६

क्खजोणिया ?, उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पन्नत्ता, तंजहा—अही अयगरा आसालिया महोरगा। से किं तं अही ?, अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—दव्वीकरा य मउलिणो य। से किं तं दव्वीकरा ?, दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, तंजहा—आसीविसा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा निस्सासविसा कण्हसप्पा सेयसप्पा काकोदरा दुब्भपुप्फा कोलाहा सेलेसिंदा, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं अही। से किं तं अयगरा ?, अयगरा एगागारा पन्नत्ता, सेत्तं अयगरा। से किं तं आसालिया ?, कहि णं भंते ! आसालिगा संमुच्छइ ?, गोयमा ! अंतो मणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु निव्वाघाएणं पन्नरससु कम्मभूमीसु, वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु चक्कवट्टिखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु वासुदेवखंधावारेसु मंडलियखंधावारेसु महामण्डलियखंधावारेसु गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु खेडनिवेसेसु कव्वड० मडंबनिवेसेसु दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु रायहाणिनिवेसेसु, एएसि णं चेव विणासेसु, एत्थ णं आसालिया संमुच्छइ, जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमित्ताए ओगाहणाए, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं, तदाणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ता संमुच्छइ, असण्णी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी अंतोमुहुत्तद्धाउया चेव कालं करेइ, सेत्तं आसालिया। से किं तं महोरगा ?, महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—अत्थेगइया अंगुलंपि अंगुलपुहुत्तियावि विहत्थिंपि विहत्थिपुहत्तियावि रयणिंपि रयणिपुहुत्तियावि कुच्छिंपि कुच्छिपुहत्तियावि धणुहंपि धणुहपुहत्तियावि गाउयंपि गाउयपुहत्तियावि जोयणंपि जोयणपुहत्तियावि जोयणसयंपि जोयणसयपुहत्तियावि, ते णं थले जाया जलेऽवि चरंति थलेऽवि चरंति, ते णत्थि इहं बाहिरएसु दीवसमुद्देसु हवंति, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं महोरगा।" इति। अस्य विषमपदव्याख्या—"दव्वीकरा य मउलिणो य' इति, दर्व्वीव दर्वी—फणा तत्करणशीला दर्वीकराः, मुकुलं—फणाविरहयोग्या

शरीरावयवविशेषाकृतिः सा विद्यते येषां ते मुकुलिनः—स्फटाकरणशक्तिविकला इत्यर्थः, अत्रापि चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, 'आसीविसा' इत्यादि, आस्यो—दंष्ट्रास्तासु विषं येषां ते आसीविषाः, उक्तं च—"आसी दाढा तग्गयविसाऽऽसीविसा मुणेयव्वा" इति, दृष्टौ विषं येषां ते दृष्टिविषाः, उग्रं विषं येषां ते उग्रविषाः, भोगः—शरीरं तत्र सर्वत्र विषं येषां ते भोगविषाः, त्वचि विषं येषां ते त्वग्विषाः, प्राकृतत्वाच्च 'तयाविसा' इतिपाठः, लाला—मुखात् स्रावस्तत्र विषं येषां ते लालाविषाः, निश्वासे विषं येषां ते निश्वासविषाः कृष्णसर्पादयो जातिभेदा लोकतः प्रत्येतव्याः। 'से किं तं आसालिगा' इत्यादि, अथ का सा आसालिगा ?, एवं शिष्येण प्रश्ने कृते सति सूत्रकृद् यदेवासालिकाप्रतिपादकं गौतमप्रश्नभगवन्निर्वचनरूपं सूत्रमस्ति तदेवागमबहुमानतः पठति—'कहि णं भंते !' इत्यादि, क्व णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! परमकल्याणयोगिन् ! आसालिगा संमूर्छेति, एषा हि गर्भजा न भवति किन्तु संमूर्च्छिमैव तत उक्तं संमूर्छेति, भगवानाह—गौतम ! अन्तः—मध्ये मनुष्यक्षेत्रस्य न बहिः, एतावता मनुष्यक्षेत्राद्बहिरस्या उत्पादो न भवतीति प्रतिपादितं, तत्रापि मनुष्यक्षेत्रे सर्वत्र न भवति किन्तु अर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु, अर्द्धं तृतीयं येषां तेऽर्द्धतृतीयाः, अवयवेन विग्रहः समुदायः समासार्थः तेषु, एतावता लवणसमुद्रे कालसमुद्रे वा न भवतीत्यावेदितं, 'निर्व्याघातेन' व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं तेन, यदि पञ्चसु भरतेषु पञ्चस्वैरावतेषु सुषमसुषमादिरूपोऽतिदुष्षमादिरूपश्च कालो व्याघातहेतुत्वाद् व्याघातो न भवति तदा पञ्चदशसु कर्मभूमिषु संमूर्च्छेति, व्याघातं प्रतीत्य, किमुक्तं भवति ?—यदि पञ्चसु भरतेषु पञ्चस्वैरावतेषु यथोक्तरूपो व्याघातो भवति ततः पञ्चसु महाविदेहेषु संमूर्च्छेति, एतावता त्रिंशत्यप्यकर्मभूमिषु नोपजायत इति प्रतिपादितं, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु पञ्चसु महाविदेहेषु सर्वत्र न संमूर्च्छेति किन्तु चक्रवर्त्तिस्कन्धावारेषु बलदेवस्कन्धावारेषु वासुदेवस्कन्धावारेषु माण्डलिकः—सामान्यराजाऽल्पर्द्धिकः,

महामाण्डलिकः स एवानेकदेशाधिपतिस्तत्स्कन्धावारेषु, ग्रामनिवेशेषु इत्यादि, ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानिति यदिवा गम्यः शास्त्रप्रसिद्धानामष्टादशानां कराणामिति ग्रामः, निगमः—प्रभूततरवणिग्वर्गावासः, पांसुप्राकारनिबद्धं खेटं, क्षुल्लप्राकारवेष्टितं कर्वटम्, अर्द्धतृतीयगव्यूतान्तर्ग्रामरहितं मडम्बं 'पट्टण'त्ति पट्टनं पत्तनं वा, उभयत्रापि प्राकृतत्वेन निर्देशस्य समानत्वात्, तत्र यन्नौभिरेव गम्यं तत्पट्टनं यत्पुनः शकटैर्घोटकैर्नौभिर्वा गम्यं तत्पत्तनं यथा भरुकच्छम्, उक्तं च—"पत्तनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च । नौभिरेव तु यद्गम्यं, पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥ १ ॥" द्रोणमुखं—प्रायेण जलनिर्गमप्रवेशम्, आकरो—हिरण्याकरादिः आश्रमः—तापसावसथोपलक्षित आश्रयः, संबाधो—यात्रासमागतप्रभूतजननिवेशः, राजधानी—राजाधिष्ठानं नगरम्, 'एएसि ण' मित्यादि, एतेषां चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादीनामेव विनाशेषूपस्थितेषु 'एत्थ णं'ति एतेषु चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादिषु स्थानेष्वासालिका संमूर्च्छति, सा च जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रयाऽवगाहनया समुत्तिष्ठतीति योगः, एतच्चोत्पादप्रथमसमये वेदितव्यम्, उत्कर्षतो द्वादश योजनानि—द्वादशयोजनप्रमाणयाऽवगाहनया 'तदनुरूपं' द्वादशयोजनप्रमाणदैर्घ्यानुरूपं 'विक्खंभबाहल्लेणं'ति विष्कम्भश्च बाहल्यं च विष्कम्भबाहल्यं, समाहारो द्वन्द्वः, तेन, विष्कम्भो—विस्तारो बाहल्यं च—स्थूलता, भूमिं 'दालित्ता णं' विदार्य समुत्तिष्ठति, चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादीनामधस्ताद् भूमेरन्तरुत्पद्यत इति भावः, सा चासञ्ज्ञिनी—अमनस्का संमूर्च्छिमत्वात्, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यक्त्वस्यापि तस्या असम्भवात्, अत एवाज्ञानिनी, अन्तर्मुहूर्त्ताद्धायुरेव कालं करोति । 'अत्थेगइया अंगुलंपी'त्यादि, अस्तीति निपातोऽत्र बहुवचनाभिधायी, ततोऽयमर्थः—सन्त्येकका: केचन महोरगा येऽङ्गुलमपि शरीरावगाहनया भवन्ति, इहाङ्गुलमुच्छ्रयाङ्गुलमवसातव्यं, शरीरप्रमाणस्य चिन्त्यमानत्वात्, सन्त्येकका येऽङ्गुलपृथक्त्विका अपि—पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरानवभ्य इति परिभाषा अङ्गुलपृथक्त्वं शरीरावगाहनमानमे-

पामस्तीत्यङ्गुलपृथक्त्विकाः, 'अतोऽनेकस्वरादि' तीकप्रत्ययः, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं द्वादशाङ्गुलप्रमाणा वितस्तिः, द्विवितस्तिप्रमाणा रत्निर्हस्तः, कुक्षिर्द्विहस्तमाना, धनुर्हस्तचतुष्टयप्रमाणं, गव्यूतं द्विधनुःसहस्रप्रमाणं, चत्वारि गव्यूतानि योजनम्, एतच्चापि वितस्त्यादिकमुच्छ्रयाङ्गुलापेक्षया प्रतिपत्तव्यं, 'ते ण'मित्यादि, 'ते' अनन्तरोदितस्वरूपा महोरगाः स्थलचरविशेषत्वात् स्थले जायन्ते स्थले च जाताः सन्तो जलेऽपि स्थल इव चरन्ति स्थलेऽपि चरन्ति, तथास्वाभाव्यात्, यद्येवं ते कस्मादिह न दृश्यन्ते? इत्याशङ्कायामाह—'ते नत्थि इहं' इत्यादि, 'ते' यथोदितस्वरूपा महोरगाः 'इह' मानुषक्षेत्रे 'नत्थि'त्ति न सन्ति, किन्तु बाह्येषु द्वीपसमुद्रेषु भवन्ति, समुद्रेष्वपि च पर्वतदेवनगर्यादिषु स्थलेषूत्पद्यन्ते न जलेषु, तत इह न दृश्यन्ते । 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये तथाप्रकारा अङ्गुलदशकादिशरीरावगाहमानास्तेऽपि महोरगा ज्ञातव्याः, उपसंहारमाह—'सेत्तं महोरगा, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः उक्तरूपाद्यादिरूपास्ते सर्वेऽपि उरःपरिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्रष्टव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं शरीरादिद्वारकदम्बकं च जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो योजनपृथक्त्वं, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव ॥ भुजपरिसर्पप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते भुजपरिसर्पसंमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—भुजपरिसर्पसंमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, 'तह चेव भेओ भाणियव्वो' इति, यथा प्रज्ञापनायां तथैव भेदो वक्तव्यः, स चैवम्—"तंजहा—गोहा नउला सरडा सल्ला सरंठा सारा खारा घरोलिया विस्संभरा मुसा मंगुसा पयलाया छीरविरालिया जाहा चउप्पाइया" एते देशविशेषतो वेदितव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' उक्तप्रकारा गोधा-

दिस्वरूपास्ते सर्वे भुजपरिसर्पा अवसातव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि सूत्रकदम्बकं प्राग्वद्भावनीयं, नवरमवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो धनुःपृथक्त्वं, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, शेषं जलचरवद्द्रष्टव्यम्, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ खचरप्रतिपादनार्थमाह—अथ के ते संमूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—संमूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'भेदो जहा पण्णवणाए' इति, भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विततपक्खी। से किं तं चम्मपक्खी?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—वग्गुली जलोया अडिला भारुंडपक्खी जीवंजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिविराली, जे यावण्णे तहप्पगारा, से त्तं चम्मपक्खी। से किं तं लोमपक्खी?, लोमपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ढङ्का कंका कुरला वायसा चक्कवागा हंसा कलहंसा पोयहंसा रायहंसा अडा सेडीवडा वेलागया कोंचा सारसा मेसरा मयूरा सेयवगा गहरा पोंडरीया कामा कामेयगा वंजुलागा तित्तिरा वट्टगा लावगा कपोया कपिंजला पारेवया चिडगा वीसा कुक्कुडा सुगा वरहिगा मयणसलागा कोकिला सण्हावरण्णगमादी, से त्तं लोमपक्खी। से किं तं समुग्गपक्खी?, समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता, ते णं नत्थि इहं, वाहिरएसु दीवसमुद्देसु हवंति, से त्तं समुग्गपक्खी। से किं तं विततपक्खी?, विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता, ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्देसु भवंति, से त्तं विततपक्खी" इति पाठसिद्धं नवरं 'चम्मपक्खी' इत्यादि, चर्मरूपौ पक्षौ चर्मपक्षौ तौ विद्येते येषां ते चर्मपक्षिणः, लोमात्मकौ पक्षौ लोमपक्षौ तौ विद्येते येषां ते लोमपक्षिणः, तथा गच्छतामपि समुद्गवत्स्थितौ पक्षौ समुद्गकपक्षौ तद्वन्तः समुद्गकपक्षिणः, विततौ—नित्यमनाकुञ्चितौ पक्षौ विततपक्षौ तद्वन्तो विततपक्षिणः 'ते समासतो' इत्यादि सूत्रकदम्बकं जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना उत्क-

र्षतो धनुःपृथक्त्वं, स्थितिरुत्कर्षतो द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि। तथा चात्र कचित्पुस्तकान्तरेऽवगाहनास्थित्योर्यथाक्रमं सङ्ग्रहणिगाथे—"जोयणसहस्सगाउयपुहत्त तत्तो य जोयणपुहत्तं। दोण्हंपि धणुपुहत्तं संमुच्छिमवियगपक्खीणं॥ १॥ संमुच्छ पुव्वकोडी चउरासीई भवे सहस्साइं। तेवण्णा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं॥ २॥" व्याख्या—संमूर्च्छिमानां जलचराणामुत्कृष्टाऽवगाहना योजनसहस्रं, चतुष्पदानां गव्यूतपृथक्त्वम्, उरःपरिसर्पाणां योजनपृथक्त्वं। 'दोण्हं तु'इत्यादि, द्वयानां संमूर्च्छिमभुजगपक्षिणां—संमूर्च्छिमभुजगपरिसर्पपक्षिरूपाणां प्रत्येकं धनुःपृथक्त्वं, तथा संमूर्च्छिमानां जलचराणामुत्कृष्टा स्थितिः पूर्वकोटी चतुष्पदानां चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि, उरःपरिसर्पाणां त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, भुजपरिसर्पाणां द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, पक्षिणां द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिमखहयरपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया'॥ उक्ताः संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनयः, सम्प्रति गर्भव्युत्क्रान्तिकान् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाह—

से किं तं गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा॥ (सू० ३७)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च। तत्र जलचरप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं जलयरा?, जलयरा पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—मच्छा कच्छभा मगरा गाहा सुंसुमारा,

सव्वेसिं भेदो भाणितव्वो तहेव जहा पण्णवणाए, जाव जे यावण्णे तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्ज० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छव्विहसंघयणी पण्णत्ता, तंजहा—वइरोसभनारायसंघयणी उसभनारायसंघयणी नारायसंघयणी अद्धनारायसंघयणी कीलियासंघयणी सेवट्टसंघयणी, छव्विहा संठिता पण्णत्ता, तंजहा—समचउरंससंठिता णग्गोधपरिमंडल० साति० खुज्ज० वामण० हुंड०, कसाया सव्वे सण्णाओ ४ लेसाओ ६ पंच इंदिया पंच समुग्घाता आदिल्ला सण्णी नो असण्णी तिविधवेदा छप्पज्जत्तीओ छअपज्जत्तीओ दिट्ठी तिविधावि तिण्णि दंसणा णाणीवि अण्णाणीवि जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी अत्थेगतिया तिन्नाणी, जे दुन्नाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी य सुतणाणी य, जे तिन्नाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुत० ओहिणाणी, एवं अण्णाणीवि, जोगे तिविहे उवओगे दुविधे आहारो छद्दिसिं उववातो नेरइएहिं जाव अहे सत्तमा तिरिक्खजोणिएसु सव्वेसु असंखेज्जवासाउयवज्जेसु मणुस्सेसु अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु देवेसु जाव सहस्सारो, ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, दुविधावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव अहे

सत्तमा तिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु सव्वेसु देवेसु जाव सहस्सारो, चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं जलयरा ॥ (सू० ३८)

'भेदो भाणियव्वो तहेव जहा पण्णवणाए' इति भेदस्तथैव मत्स्यादीनां वक्तव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स च प्रागेवोपदर्शितः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं पाठसिद्धं, शरीरादिद्वारकदम्बकसूत्रं संमूर्च्छिमजलचरवद्भावनीयं, नवरमत्र शरीरद्वारे चत्वारि शरीराणि वक्तव्यानि, गर्भव्युत्क्रान्तिकानां तेषां वैक्रियस्यापि सम्भवात्, अवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना योजनसहस्रम् । संहननचिन्तायां षडपि संहननानि, तत्स्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथाद्वयम्—"वज्जरिसहनारायं पढमं वीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनाराय कीलिया तह य छेवट्ठं ॥ १ ॥ रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा । उभयो मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि ॥ २ ॥" संस्थानचिन्तायां षडपि संस्थानानि, तान्यमूनि—समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि वामनं कुब्जं हुण्डमिति, तत्र समाः—सामुद्रिकशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयः—चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा यत्र तत्समचतुरस्रं, समासान्तोऽत्प्रत्ययः, अत एवैतदन्यत्र तुल्यमिति व्यवह्रियते, तथा न्यग्रोधवत्परिमण्डलं यस्य, यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णप्रमाणोऽधस्तु हीनः तथा यत्संस्थानं नाभेरुपरि संपूर्णमधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम्, उपरि विस्तारबहुलमिति भावः, तथाऽऽदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, ततः सह आदिना—नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रमाणलक्षणेन वर्त्तत इति सादि, उत्सेधबहुलमिति भावः, इह यद्यपि

१ वज्रर्षभनाराचं प्रथमं द्वितीयं च ऋषभनाराचम् । नाराचमर्धनाराचं कीलिका तथा च सेवार्तम् ॥ १ ॥ ऋषभश्च भवति पट्ट वज्रं पुनः कीलिका ज्ञातव्या । उभयतो मर्कटबन्धो नाराचं तत् विजानीहि ॥ २ ॥

सर्वं शरीरमादिना सह वर्त्तते तथाऽपि सादित्वविशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या विशिष्ट एव प्रमाणलक्षणोपपन्न आदिरिह लभ्यते, तत उक्तम्—उत्सेधबहुलमिति, इदमुक्तं भवति—यत्संस्थानं नाभेरधः प्रमाणोपपन्नमुपरि च हीनं तत्सादीति, अपरे तु साचीति पठन्ति, तत्र साचीति प्रवचनवेदिनः शाल्मलीतरुमाचक्षते, ततः साचीव यत्संस्थानं, यथा शाल्मलीतरोः स्कन्धकाण्डमतिपुष्टमुपरि च न तदनुरूपा महाविशालता तद्वदस्यापि संस्थानस्याधोभागः परिपूर्णो भवति उपरितनभागस्तु नेति, तथा यत्र शिरोग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतं उरउदरादि च मण्डलं तत्कुब्जं संस्थानं, यत्र पुनरुदरादि प्रमाणलक्षणोपेतं हस्तपादादिकं च हीनं तद्वामनं, यत्र सर्वेऽप्यवयवाः प्रमाणलक्षणपरिभ्रष्टास्तत् हुण्डम्, उक्तञ्च—"समचउरंसे नग्गोहमंडले साई खुज्ज वामणए । हुंडेवि य संठाणे जीवाणं छम्मुणेयव्वा ॥ १ ॥ तुल्लं वित्थडबहुलं उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च । हेट्ठिल्लकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥ २ ॥" लेश्याद्वारे षडपि लेश्याः, शुक्ललेश्याया अपि सम्भवात्, समुद्घाताः पञ्च, वैक्रियसमुद्घातस्यापि सम्भवात्, सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनो नो असञ्ज्ञिनः, वेदद्वारे त्रिविधवेदा अपि, स्त्रीपुरुषयोर्वेदयोरप्यमीषां भावात्, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयो, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन विवक्षणात्, अपर्याप्तिचिन्तायां पञ्चापर्याप्तयः, दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयोऽपि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च, दर्शनद्वारे त्रिविधदर्शना अपि, अवधिदर्शनस्यापि केषाञ्चिद्भावात्, ज्ञानद्वारे त्रिज्ञानिनोऽपि, अवधिज्ञानस्यापि केषाञ्चिद्भावात्, अज्ञानचिन्तायामज्ञानिनोऽपि, विभङ्गस्यापि केषाञ्चित्सम्भवात्, अवधिविभङ्गौ च सम्यग्मिथ्यादृष्टिभेदेन प्रतिपत्तव्यौ, उक्तञ्च—"स-

---

१ समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि कुब्जं वामनम् । हुण्डमपि च संस्थानं जीवाना षड् ज्ञातव्यानि ॥ १ ॥ तुल्यं वहुविस्तारं उत्सेधबहुलं च मडभकोष्ठं च । अधस्तनकायमडभं सर्वत्रासंस्थितं हुण्डम् ॥ २ ॥

म्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यासः" इति, उपपातद्वारे उपपातो नैरयिकेभ्यः सप्तपृथ्वीभाविभ्योऽपि, तिर्यग्योनिकेभ्योऽप्यसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः सर्वेभ्योऽपि, मनुष्येभ्योऽकर्मभूमिजान्तरद्वीपजासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जकर्मभूमिभ्यो, देवेभ्योऽपि यावत्सहस्रारात्, परतः प्रतिषेधः, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य सहस्रारात्परे ये देवास्तान् वर्जयित्वा शेषेषु सर्वेष्वपि जीवस्थानेषु गच्छन्ति, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुरागतिकाश्चतुर्गतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं जलयरा गब्भवक्कंतियपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ सम्प्रति स्थलचरप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं थलयरा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पदा य परिसप्पा य। से किं तं चउप्पया?, २ चउव्विधा पण्णत्ता, तंजहा—एगक्खुरा सो चेव भेदो जाव जे यावन्ने तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, चत्तारि सरीरा ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्ज० उक्कोसेणं छ गाउयाइं, ठिती उक्कोसेणं तिन्नि पलिओमाइं नवरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु चउत्थपुढविं गच्छंति, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखिज्जा पण्णत्ता, से तं चउप्पया। से किं तं परिसप्पा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरपरिसप्पा य भुयगपरिसप्पा य, से किं तं उरपरिसप्पा?, २ तहेव आसालियवज्जो भेदो भाणियव्वो, (तिण्णि) सरीरा, ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखे० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, ठिती जहन्नेणं

अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव पंचमं पुढविं ताव गच्छंति, तिरिक्खमणुस्सेसु सव्वेसु, देवेसु जाव सहस्सारा, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगइया परित्ता असंखेज्जा से तं उरपरिसप्पा। से किं तं भुयगपरिसप्पा?, २ भेदो तहेव, चत्तारि सरीरगा ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखे० उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, सेसेसु ठाणेसु जहा उरपरिसप्पा, णवरं दोच्चं पुढविं गच्छंति, से तं भुयपरिसप्पा पण्णत्ता, से तं थलयरा ॥ (सू० ३९)। से किं तं खहयरा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खी तहेव भेदो, ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखे० उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो, सेसं जहा जलयराणं, नवरं जाव तच्चं पुढविं गच्छंति जाव से तं खहयरगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया, से तं तिरिक्खजोणिया ॥ (सू० ४०)

स्थलचरगर्भव्युत्क्रान्तिकानां भेदोपदर्शकं सूत्रं यथा संमूर्च्छिमस्थलचराणां, नवरमत्रासालिका न वक्तव्या, सा हि संमूर्च्छिमैव न गर्भव्युत्क्रान्तिका, तथा महोरगसूत्रे "जोयणसयंपि जोयणसयपुहुत्तियावि जोयणसहस्संपि" इत्येतदधिकं वक्तव्यं, शरीरादिद्वारकदम्बकसूत्रं तु सर्वत्रापि गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचराणामिव, नवरमवगाहनास्थित्युद्वर्त्तनासु नानात्वं, तत्र चतुष्पदानामुत्कृष्टाऽवगाहना षड् गव्यूतानि, स्थितिरुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, उद्वर्त्तना चतुर्थपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, एतेषु सर्वेष्वपि जीवस्थानेष्वनन्तरमुद्वृत्त्योत्पद्यन्ते, उरःपरिसर्पाणामुत्कृष्टावगाहना योजनसहस्रं, स्थितिरुत्कर्षतः पूर्वकोटी, उद्वर्त्तना पञ्चमपृथिव्या आरभ्य यावत्सह-

स्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेष्वनन्तरमुद्वृत्त्योत्पद्यन्ते । भुजपरिसर्पाणामुत्कृष्टाऽवगाहना गव्यूतपृथक्त्वं, स्थितिरुत्कर्षतः पूर्वकोटी, उद्वर्त्तनाचिन्तायां द्वितीयपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेषूत्पादः ॥ खचरगर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियभेदो यथा संमूर्च्छिमखचराणां, शरीरादिद्वारकलापचिन्तनं गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरवत्, नवरमवगाहनास्थित्युद्वर्त्तनासु नानात्वं, तत्रोत्कर्षतोऽवगाहना धनुष्पृथक्त्वं, जघन्यतः सर्वत्राप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा, स्थितिरपि जघन्यतः सर्वत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽत्र पल्योपमासङ्ख्येयभागः, उद्वर्त्तना तृतीयपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेषूत्पादः, क्वचित्पुस्तकान्तरेऽवगाहनास्थित्योर्यथाक्रमं सङ्ग्रहणिगाथे—"जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं । गाउयपुहुत्त भुयगे धणुयपुहुत्तं च पक्खीसु ॥ १ ॥ गब्भंमि पुव्वकोडी तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं । उरभुयग पुव्वकोडी पलियअसंखेज्जभागो य ॥ २ ॥" अनयोर्व्याख्या—गर्भव्युत्क्रान्तिकानामेव जलचराणामुत्कृष्टावगाहना योजनसहस्रं, चतुष्पदानां षड् गव्यूतानि, उरःपरिसर्पाणां योजनसहस्रं, भुजपरिसर्पाणां गव्यूतपृथक्त्वं, पक्षिणां धनुष्पृथक्त्वं । तथा गर्भव्युत्क्रान्तिकानामेव जलचराणामुत्कृष्टा स्थितिः पूर्वकोटी, चतुष्पदानां त्रीणि पल्योपमानि, उरगाणां भुजगानां च पूर्वकोटी, पक्षिणां पल्योपमासङ्ख्येयभाग इति ॥ उत्पादविधिस्तु नरकेष्वस्माद्गाथाद्वयादवसेयः—"अस्सण्णी[1] खलु पढमं दोच्चं च सरीसवा तइय पक्खी । सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं पुढविं ॥ १ ॥ छट्ठिं च इत्थियाउ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं । एसो परमुववाओ बोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥ २ ॥" उक्ताः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः, सम्प्रति मनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—

---

१ असंज्ञिनः खलु प्रथमां द्वितीयां च सरीसृपास्तृतीयां पक्षिणः । सिंहा यान्ति चतुर्थीमुरगाः पुनः पञ्चमीं पृथ्वीम् ॥ १ ॥ षष्ठीं च स्त्रियः मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीं यावत् । एष परम उत्पातो बोद्धव्यो नारकपृथ्वीषु ॥ २ ॥

से किं तं मणुस्सा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य ॥ कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोयमा! अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तिन्नि सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सेतं संमुच्छिममणुस्सा। से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमया अकम्मभूमगा अंतरदीवजा, एवं माणुस्सभेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए तहा णिरवसेसं भाणियव्वं जाव छउमत्था य केवली य, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरा प०?, गोयमा! पंच सरीरया, तंजहा—ओरालिए जाव कम्मए। सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलअसंखेज्ज० उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं छच्चेव संघयणा छस्संठाणा। ते णं भंते! जीवा किं कोहकसाई जाव लोभकसाई अकसाई?, गोयमा! सव्वेवि। ते णं भंते! जीवा किं आहारसन्नोवउत्ता० लोभसन्नोवउत्ता नोसन्नोवउत्ता?, गोयमा! सव्वेवि। ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेसा य जाव अलेसा?, गोयमा! सव्वेवि। सोइंदियोवउत्ता जाव नोइंदियोवउत्तावि, सव्वे समुग्घाता, तंजहा—वेयणासमुग्घाते जाव केवलिसमुग्घाए, सन्नीवि नोसन्नी असन्नीवि, इत्थिवेयावि जाव अवेदावि, पंच पज्जत्ती, तिविहावि दिट्ठी, चत्तारि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी

अत्थेगतिया तिणाणी अत्थेगइया चउणाणी अत्थेगतिया एगणाणी, जे दुण्णाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी य, जे तिणाणी ते आभिणियोहियणाणी सुतणाणी ओहिणाणी य, अहवा आभिणिबोहियणाणी सुयनाणी मणपज्जवणाणी य, जे चउणाणी ते णियमा आभिणियोहियणाणी सुत० ओहि० मणपज्जवणाणी य, जे एगणाणी ते नियमा केवलनाणी, एवं अन्नाणीवि दुअन्नाणी तिअण्णाणी, मणजोगीवि वइकायजोगीवि अजोगीवि, दुविहउवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववातो नेरइएहिं अहे सत्तमवज्जेहिं तिरिक्खजोणिएहिंतो, उववाओ असंखेज्जवासाउयवज्जेहिं मणुएहिं अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेहिं, देवेहिं सव्वेहिं, ठिती जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, दुविधावि मरंति, उव्वट्टित्ता नेरइयादिसु जाव अणुत्तरोववाइएसु, अत्थेगतिया सिज्झंति जाव अंतं करेंति। ते णं भंते! जीवा कतिगतिया कइआगइया पण्णत्ता?, गोयमा! पंचगतिया चउआगतिया परित्ता संखिज्जा पण्णत्ता, सेत्तं मणुस्सा ॥ (सू० ४१)

अथ के ते मनुष्याः?, सूरिराह—मनुष्या द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—संमूर्च्छिममनुष्याश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याश्च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ। तत्र संमूर्च्छिममनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति' इति, अत्र यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठः—"अंतो मणुस्सखेत्ते पणयाली-

साए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा कगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोगेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए असन्नी मिच्छादिट्ठी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेंति " एतच्च निगदसिद्धम् ॥ सम्प्रति शरीरादिद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं भंते !' शरीराणि त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, अवगाहना जघन्यत उत्कर्षतश्चाङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा, संहननसंस्थानकषायलेश्याद्वाराणि यथा द्वीन्द्रियाणां, इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणि, सञ्ज्ञिद्वारवेदद्वारे अपि द्वीन्द्रियवत्, पर्याप्तिद्वारेऽपर्याप्तयः पञ्च, दृष्टिदर्शनज्ञानयोगोपयोगद्वाराणि (यथा) पृथिवीकायिकानां, आहारो यथा द्वीन्द्रियाणां, उपपातो नैरयिकदेवतेजोवाय्वसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः, स्थितिर्जघन्यत उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टमधिकं वेदितव्यं, मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता अपि म्रियन्ते असमवहताश्च, अनन्तरमुद्धृत्य नैरयिकदेवासङ्ख्येयवर्षायुष्कवर्जेषु शेषेषु स्थानेषूत्पद्यन्ते, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकास्तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा'॥ उक्ताः संमूर्च्छिममनुष्याः, अधुना गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यानाह—अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याः ?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपजाः, तत्र कर्म—कृषिवाणिज्यादि मोक्षानुष्ठानं वा कर्मप्रधाना भूमिर्येषां ते कर्मभूमाः आर्षत्वात्समासान्तोऽप्रत्ययः, कर्मभूमा एव कर्मभूमकाः, एवमकर्मा—यथोक्तकर्मविकला भूमिर्येषां तेऽ-

कर्मभूमास्त एवाकर्मभूमकाः, अन्तरशब्दो मध्यवाची, अन्तरे—लवणसमुद्रस्य मध्ये द्वीपा अन्तरद्वीपास्तद्गता अन्तरद्वीपगाः, **'एवं माणुस्सभेयो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए'** इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण मनुष्यभेदो भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स चातिबहुग्रन्थ इति तत एव परिभावनीयः, **'ते समासतो'** इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं पाठसिद्धं, शरीरादिद्वारकलापचिन्तायां शरीरद्वारे पञ्च शरीराणि, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं च, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात्, अवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतस्त्रीणि गव्यूतानि, संहननद्वारे षडपि संहननानि, संस्थानद्वारे षडपि संस्थानानि, कषायद्वारे क्रोधकषायिणोऽपि मानकषायिणोऽपि मायाकषायिणोऽपि लोभकषायिणोऽपि अकषायिणोऽपि, वीतरागमनुष्याणामकषायित्वात्, सञ्ज्ञाद्वारे आहारसञ्ज्ञोपयुक्ता भयसञ्ज्ञोपयुक्ता मैथुनसञ्ज्ञोपयुक्ता लोभसञ्ज्ञोपयुक्ताः, नोसंज्ञोपयुक्ताश्च निश्चयतो वीतरागमनुष्याः, व्यवहारतः सर्वे एव चारित्रिणो, लोकोत्तरचित्तलाभात्तस्य सञ्ज्ञादशकेनापि विप्रयुक्तत्वात्, उक्तञ्च—"निर्वाणसाधकं सर्वं, ज्ञेयं लोकोत्तराश्रयम्। सञ्ज्ञा लोकाश्रया सर्वाः, भवाङ्कुरजलं परम् ॥ १ ॥" लेश्याद्वारे कृष्णलेश्या नीललेश्याः कापोतलेश्यास्तेजोलेश्याः पद्मलेश्याः शुक्ललेश्या अलेश्याश्च, तत्रालेश्याः परमशुक्लध्यायिनोऽयोगिकेवलिनः। इन्द्रियद्वारे श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ता यावत्स्पर्शनेन्द्रियोपयुक्ता नोइन्द्रियोपयुक्ताश्च, तत्र नोइन्द्रियोपयुक्ताः केवलिनः, समुद्घातद्वारे सप्तापि समुद्घाताः, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात्, समुद्घातसङ्ग्राहिका चेमा गाथा—"[1]वेयणकसायमरणंतिए य वेउव्विए य आहारे। केवलियसमुग्घाए सत्त समुग्घा इमे भणिया ॥ १ ॥" सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽपि नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिनोऽपि, तत्र नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिनः केवलिनः। वेदद्वारे स्त्रीवेदा अपि पुरुषवेदा अपि नपुंसकवेदा

१ वेदनः कषाय मारणान्तिकश्च वैक्रयिकश्चाहारक । कैवलिकः समुद्घात. सप्त समुद्घाता इमे भणिता ॥ १ ॥

अपि अवेदाः—सूक्ष्मसम्परायादयः, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन विवक्षणात्, दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयः, तद्यथा—केचिन्मिथ्यादृष्टयः केचित्सम्यग्दृष्टयः केचित्सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, दर्शनद्वारे चतुर्विधदर्शनाः, तद्यथा—चक्षुर्दर्शना अचक्षुर्दर्शना अवधिदर्शनाः केवलदर्शनाः, ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र मिथ्यादृष्टयोऽज्ञानिनः सम्यग्दृष्टयो ज्ञानिनः, 'नाणाणि पंच तिण्णि अण्णाणाणि भयणाते' इति, ज्ञानानि पञ्च मतिज्ञानादीनि, अज्ञानानि त्रीणि मत्यज्ञानादीनि, तानि भजनया वक्तव्यानि, सा च भजना एवम्—केचिद्द्विज्ञानिनः केचित्त्रिज्ञानिनः केचिच्चतुर्ज्ञानिनः केचिदेकज्ञानिनः, तत्र ये द्विज्ञानिनस्ते नियमादाभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च, ये त्रिज्ञानिनस्ते मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, अथवाऽऽभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्च, अवधिज्ञानमन्तरेणापि मनःपर्यवज्ञानस्य सम्भवात्, **सिद्धप्राभृतादौ** तथाऽनेकशोऽभिधानात्, ये चतुर्ज्ञानिनस्ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्च, ये एकज्ञानिनस्ते केवलज्ञानिनः, केवलज्ञानसद्भावे शेषज्ञानापगमात्, "नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे"[1] इति वचनात्, ननु केवलज्ञानप्रादुर्भावे कथं शेषज्ञानापगमः?, यावता यानि शेषाणि मत्यादीनि ज्ञानानि स्वस्वावरणक्षयोपशमेन जायन्ते ततो निर्मूलस्वस्वावरणविलये तानि सुतरां भवेयुश्चारित्रपरिणामवत्, उक्तञ्च—"आवरणदेसविगमे जाइं विज्जंति मइसुयाईणि। आवरणसव्वविगमे कह ताइं न होंति जीवस्स? ॥ १ ॥"[2] उच्यते, इह यथा जात्यस्य मरकतादिमणेर्मलोपदिग्धस्य यावन्नाद्यापि समूलमलापगमस्तावद् यथा यथा देशतो मलविलयस्तथा तथा देशतोऽभिव्यक्तिरुपजायते, सा च क्वचित्कदाचित्कथञ्चिद्भवतीत्यनेकप्रकारा, तथाऽऽत्मनोऽपि सकलकालकलाकलापावलम्बिनिखिलपदार्थसार्थपरिच्छेदकरणैकपार-

१ नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने. २ आवरणदेशविगमे यदि तानि भवन्ति मतिश्रुतादीनि। सर्वावरणविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य? ॥ १ ॥

मार्थिकस्वरूपस्याप्यावरणमलपटलतिरोहितस्य यावन्नाद्यापि निखिलकर्ममलापगमस्तावद् यथा यथा देशतः कर्ममलोच्छेदस्तथा तथा तस्य विज्ञप्तिरुज्जृम्भते, सा च कचित्कदाचित्कथञ्चिदनेकप्रकारा, उक्तञ्च—"मलविद्धमणेर्व्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः । कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ॥ १ ॥" सा चानेकप्रकारता मतिश्रुतादिभेदेनावसेया, ततो यथा मरकतादिमणेरशेषमलापगमसम्भवे समस्तास्पष्टदेशव्यक्तिव्यवच्छेदेन परिस्फुटरूपैकाभिव्यक्तिरुपजायते तद्वदात्मनोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रप्रभावतो निःशेषावरणप्रहाणावशेषदेशज्ञानव्यवच्छेदेनैकरूपाऽतिपरिस्फुटा सर्ववस्तुपर्यायप्रपञ्चसाक्षात्कारिणी विज्ञप्तिरुल्लसति, उक्तञ्च—"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः । स्फुटैकरूपाऽभिव्यक्तिर्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः ॥ १ ॥" इति, येऽज्ञानिनस्ते द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वा, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च । योगद्वारे मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनोऽयोगिनश्च, तत्रायोगिनः शैलेशीमवस्थां प्रतिपन्नाः, उपयोगद्वारमाहारद्वारं च द्वीन्द्रियवत्, उपपात एतेष्वधःसप्तमनरकादिवर्जेभ्यः, उक्तञ्च—"[1]सत्तममहिनेरइया तेऊ वाऊ अणंतरुव्वट्टा । नवि पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउया सव्वे ॥ १ ॥" इति, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्तायां समवहता अपि म्रियन्ते असमवहता अपि, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्य सर्वेषु नैरयिकेषु सर्वेषु च तिर्यग्योनिषु सर्वेषु मनुष्येषु सर्वेषु देवेष्वनुत्तरोपपातिकपर्यवसानेषु गच्छन्ति, 'अत्थेगइया सिज्झंति जाव अंतं करेंति' इति, अस्तीति निपातोऽत्र बहुवचनार्थः, सन्त्येकका ये निष्ठितार्थाः भवन्ति यावत्करणात् "बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंती"ति द्रष्टव्यं, तत्राणिमाद्यैश्वर्यास्या तथाविधमनुष्यकृत्यापेक्षया निष्ठितार्था इति, अ-

१ सप्तममहीनैरयिका तेजस्कायिका वायुकायिका अनन्तरोद्वृत्ता । नैव प्राप्नुवन्ति मानुष्यं तथैवासंख्येयवर्षायुष्का. सर्वे ॥ १ ॥

सर्वविदोऽपि कैश्चित्सिद्धा इष्यन्ते ततो मा भूत्तेषु संप्रत्यय इति तदपोहायाह—'बुध्यन्ते' निरावरणत्वात्केवलावबोधेन समस्तं वस्तुजातम्, एते चासिद्धा अपि भवस्थकेवलिन एवंभूता वर्त्तन्ते तत्र मा भूदेतेष्वेव प्रतीतिरित्याह—'मुच्यन्ते' पुण्यापुण्यरूपेण कृच्छ्रेण कर्मणा, एतेऽपि चापरिनिर्वृत्ता एव परैरिष्यन्ते—'मुक्तिपदे प्राप्ता अपि तीर्थनिकारदर्शनादिहागच्छन्ती'ति वचनात्, ततो मा भूत्तद्गोचरा मन्दमतीनां धीरित्याह—'परिनिर्वान्ति' विध्यातसमस्तकर्महुतवहपरमाणवो भवन्तीति, किमुक्तं भवति?—सर्वदुःखानां शारीरमानसभेदानामन्तं—विनाशं कुर्वन्ति, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुरागतिकाः पञ्चगतिकाः, सिद्धगतावपि गमनात्, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणः 'सङ्ख्येयाः' सङ्ख्येयकोटीप्रमाणत्वात् प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं मणुस्सा' ॥ अधुना देवानाह—

से किं तं देवा?, देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया। से किं तं भवणवासी?, २ दसविधा पण्णत्ता, तंजहा—असुरा जाव थणिया, से तं भवणवासी। से किं तं वाणमंतरा?, २ देवभेदो सव्वो भाणियव्वो जाव ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तओ सरीरगा—वेउव्विए तेयए कम्मए। ओगाहणा दुविधा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागं उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, उत्तरवेउव्विया जहन्नेणं अंगुलसंखेज्जाति० उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, सरीरगा छण्हं संघयणाणं असंघयणी णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू नेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति, किंसंठिता?, गोयमा! दुविहा प-

पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते णं समचउरंससंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णं नाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, चत्तारि कसाया चत्तारि सण्णा छ लेस्साओ पंच इंदिया पंच समुग्घाता सन्नीवि असन्नीवि इत्थियेदावि पुरिसवेदावि नो नपुंसगवेदा, पज्जत्ती अपज्जत्तीओ पंच, दिट्ठी तिन्नि तिण्णि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी अण्णाणी भयणाए, दुविहे उवओगे तिविहे जोगे आहारो णियमा छद्दिसिं, ओसन्नकारणं पडुच्च वण्णतो हालिद्दसुक्किल्लाइं जाव आहारमाहारेंति, उववातो तिरियमणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, दुविधावि मरंति, उव्वट्टित्ता नो नेरइएसु गच्छंति तिरियमणुस्सेसु जहासंभवं, नो देवेसु गच्छंति, दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, सेत्तं ओराला तसा पाणा ॥ (सू० ४२)

अथ के ते देवाः ?, सूरिराह—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, 'एवं भेदो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण भेदो भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स चैवम्—“ से किं तं भवणवासी ?, भवणवासी दसविहा पन्नत्ता ” इत्यादिरूपस्तत एव सव्याख्यानः परिभावनीयः, ' ते समासतो दुविहा पण्णत्ता—पज्जत्तगा य

अपज्जत्तगा य' एषामपर्याप्तत्वमुत्पत्तिकाल एव द्रष्टव्यं न त्वपर्याप्तिनामकर्मोदयतः, उक्तश्च—"[1]नारयदेवा तिरियमणुयगब्भजा जे असंखवासाऊ। एए उ अपज्जत्ता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥" इति, शरीरादिद्वारचिन्तायां शरीरद्वारे त्रीणि शरीराणि वैक्रियं तैजसं कार्मणं च, अवगाहना भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतः सप्तहस्तप्रमाणा, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो योजनशतसहस्रं, संहननद्वारे षण्णां संहननानामन्यतमेनापि संहननेनासंहननिनः, कुतः? इत्याह—'नेवट्ठी' इत्यादि, यतो नैव तेषां देवानां शरीरेष्वस्थीनि नैव शिरा नापि स्नायूनि संहननं चास्थिनिचयात्मकमतोऽस्थ्यादीनामभावात्संहननाभावः, किन्तु 'जे पोग्गला' इत्यादि, ये पुद्गला इष्टाः—मनस इच्छामापन्नाः, तत्र किञ्चिदकान्तमपि केषाञ्चिदिष्टं भवति तत आह—'कान्ताः' कमनीयाः शुभवर्णोपेतत्वात्, यावत्करणात् 'पिया मणुन्ना मणामा' इति द्रष्टव्यं, तत्र यत एव कान्ता अत एव प्रियाः—सदैवात्मनि प्रियबुद्धिमुत्पादयन्ति, तथा 'शुभाः' शुभरसगन्धस्पर्शात्मकत्वात् 'मनोज्ञाः' विपाकेऽपि सुखजनकतया मनःप्रह्लादहेतुत्वात् 'मनआपाः' सदैव भोज्यतया जन्तूनां मनांसि आप्नुवन्ति, इत्थम्भूताः पुद्गलास्तेषां शरीरसङ्घाताय परिणमन्ति। संस्थानद्वारे भवधारणीया तनुः सर्वेषामपि समचतुरस्रसंस्थाना उत्तरवैक्रिया नानासंस्थानसंस्थिता, तस्या इच्छावशतः प्रादुर्भावात्, कषायाश्चत्वारः, सञ्ज्ञाश्चतस्रो, लेश्याः षड्, इन्द्रियाणि पञ्च, समुद्घाताः पञ्च, वेदनाकषायमारणान्तिकवैक्रियतैजससमुद्घातसम्भवात्। सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽपि असञ्ज्ञिनोऽपि, ते च नैरयिकवद्भावनीयाः, वेदद्वारे स्त्रीवेदा अपि पुरुषवेदा अपि नो नपुंसकवेदाः, पर्याप्तिद्वारं दृष्टिद्वारं दर्शनद्वारं च नैरयिकवत्। ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि चेति विकल्पोऽसञ्ज्ञिमध्यः, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञा-

---

1 नारका देवाः तिर्यङ्मनुजा गर्भव्युत्क्रान्ता येऽसङ्ख्येयवर्षायुष्काः। एते तु अपर्याप्ता उपपात एव बोद्धव्याः ॥ १ ॥

निनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, तत्र येऽज्ञानिनस्ते सन्त्येकका ये द्व्यज्ञानिनः सन्त्येकका ये त्र्यज्ञानिनः, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते नियमान्मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते नियमान्मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, अयं च द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वेति विकल्पः असञ्ज्ञिमध्याद् ये उत्पद्यन्ते तान् प्रति द्रष्टव्यः, स च नैरयिकवद्भावनीयः । उपयोगाहारद्वाराणि नैरयिकवत्, उपपातः सञ्ज्यसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गर्भजमनुष्येभ्यो न शेषेभ्यः । स्थितिर्जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्तायां समवहता अपि म्रियन्तेऽसमवहता अपि । च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्य पृथिव्यम्बुवनस्पतिकायिकगर्भव्युत्क्रान्तिकसङ्ख्यातवर्षायुष्कतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु गच्छन्ति न शेषजीवस्थानेषु, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः, तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं देवा,' सर्वोपसंहारमाह—'सेत्तं पंचेंदिया, सेत्तं ओराला तसा पाणा' सुगमम् ॥ सम्प्रति स्थावरभावस्य त्रसभावस्य च भवस्थितिकालमानप्रतिपादनार्थमाह—

थावरस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ॥ तसस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । थावरे णं भंते ! थावरत्ति कालतो केवचिरं होति ?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणिओ (अवसप्पिणीओ) कालतो खेत्ततो अणंता लोया असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असं-

खेज्जतिभागो ॥ तसे णं भंते ! तसत्ति कालतो केवचिरं होति ?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ (अवसप्पिणीओ) कालतो खेत्ततो असंखेज्जा लोगा ॥ थावरस्स णं भंते ! केवतिकालं अंतरं होति ?, जहा तससंचिट्ठणाए ॥ तसस्स णं भंते ! केवतिकालं अंतरं होति ?, अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सतिकाले ॥ एएसि णं भंते ! तसाणं थावराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा तसा थावरा अणंतगुणा, सेतं दुविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ॥ दुविहपडिवत्ती समत्ता (सू०४३)

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, एतच्च पृथिवीकायमधिकृत्यावसातव्यम्, अन्यस्य स्थावरकायस्योत्कर्षत एतावत्या भवस्थितेरभावात् ॥ त्रसकायस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, एतच्च देवनारकापेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यस्य त्रसकायस्योत्कर्षत एतावत्प्रमाणाया भवस्थितेरसम्भवात् ॥ सम्प्रत्येतयोरेव कायस्थितिकालमानमाह—स्थावरे 'णम्' इति वाक्यालङ्कारे 'स्थावर इति' स्थावर इत्यनेन रूपेण स्थावरत्वेनेति भावः, कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेवानन्तं कालं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः, किमुक्तं भवति ?—अनन्तलोकेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तेषां प्रतिसमयमेकैकापहारेण यावत्योऽनन्ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यो भवन्ति तावत्य इति, एतासामेव पुद्गलपरावर्त्ततो मानमाह—असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, असङ्ख्येयेषु पुद्गलपरावर्तेषु क्षेत्रत इति पदसांनिध्यात्क्षेत्रपुद्गलपरा-

वर्त्तेषु यावत्यः संभवन्ति अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यस्तावत्य इति भावः, इहासङ्ख्येयमसङ्ख्येयभेदात्मकमतः पुद्गलपरावर्त्तगतमसङ्ख्येयत्वं निर्द्धारयति—'ते ण'मित्यादि, ते णमिति वाक्यालङ्कारे पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, आवलिकाया असङ्ख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणा इत्यर्थः, एतच्च वनस्पतिकायस्थितिमङ्गीकृत्य वेदितव्यं, न पृथिव्यम्बुकायस्थितिव्यपेक्षया, तयोः कायस्थितेरुत्कर्षतोऽप्यसङ्ख्येयोत्सर्पिणीप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"पुढविक्काइए णं भंते! पुढविक्काइयत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणं असंखिज्जं कालं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणिअवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा, एवं आउक्काएवि" इति, या तु वनस्पतिकायस्थितिः सा यथोक्तप्रमाणा तत्रोक्ता "वणस्सइकाइए णं भंते! वणस्सइकायत्ति कालओ कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खित्तओ अणंता लोगा असंखिज्जा पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखिज्जइभागो" इति । एषोऽपि च वनस्पतिकायस्थितिकालः सांव्यवहारिकजीवानधिकृत्य प्रोच्यते, असांव्यवहारिकजीवानां तु कायस्थितिरनादिरवसेया, तथा चोक्तं विशेषणवत्याम्—"अत्थि अणंता जीवा जेहिं न पत्तो तसाइपरिणामो । तेवि अणंताणंता निगोयवासं अणुवसंति ॥ १ ॥" साऽपि तेषामसांव्यवहारिकजीवानामनादिः कायस्थितिः केषाञ्चिदनादिरपर्यवसाना, ये न जातुचिदसांव्यवहारिकराशेरुद्धृत्य सांव्यवहारिकराशौ निपतिष्यन्ति, केषाञ्चिदनादिः सपर्यवसाना, ये असांव्यवहारिकराशेरुद्धृत्य सांव्यवहारिकराशौ निपतिष्यन्ति । अथ किमसांव्यवहारिकराशेर्विनिर्गत्य सांव्यवहारिकराशावागच्छन्ति? येनैवं प्ररूपणा क्रियते, उच्यते, आगच्छन्ति, कथमवसीयते? इति चेदुच्यते—पूर्वाचार्योपदेशात्,

१ सन्त्यनन्ता जीवा यैर्न प्राप्तस्त्रसादिपरिणामः । तेऽप्यनन्तानन्ता निगोदवासमनुवसन्ति ॥ १ ॥

तथा चाह दुःषमान्धकारनिमग्नजनप्रवचनप्रदीपो भगवान् **जिनभद्रगणिः क्षमाश्रमणो विशेषणवत्याम्**—"सिंज्झंति जत्तिया किर इह संववहारजीवरासिमज्झाओ । इंति अणाइवणस्सइरासीओ तत्तिया तंमि ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन । सम्प्रति त्रसकायस्य कायस्थितिमानमाह—'**तसे णं भंते**'इत्यादि, तसे'ण'मिति पूर्ववत् 'त्रस इति' त्रस इत्यनेन पर्यायेण कालतः 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालम्, एनमेवासङ्ख्येयं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—'**असंखिज्जाओ**'इत्यादि, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोका असङ्ख्येयेषु लोकेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तेषां प्रतिसमयमेकैकापहारे यावत्योऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो भवन्ति तावत्य इति भावः, इयं चैतावती कायस्थितिर्गतित्रसं तेजस्कायिकं वायुकायिकं चाधिकृत्यावसेया न तु लब्धित्रसं, लब्धित्रसस्य कायस्थितेरुत्कर्षतोऽपि कतिपयवर्षाधिकसागरोपमसहस्रद्वयप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तं **प्रज्ञापनायाम्**—"तसकाए णं भंते ! तसकायत्ति कालतो कियच्चिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं" तथा "तेउक्काइए णं भंते ! तेउक्काइएत्ति कालतो केवच्चिरं होति ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, एवं वाउक्काइयावि" इति ॥ सम्प्रति स्थावरत्वस्यान्तरं विचिन्तयिषुराह—'**थावरस्स णं भंते ! अंतर**'मित्यादि सुगमं नवरमसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, इत्येतावत्प्रमाणमन्तरं तेजस्कायिकवायुकायिकमभ्युगमनेनावसातव्यम्, अन्यत्र गतावेतावत्प्रमाणस्यान्तरस्यासम्भवात् ॥ '**तसस्स णं भंते ! अंतर**'मित्यादि सुगमं नवरम् 'उक्कोसेणं वणस्सइकालो' इति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालो वक्तव्यः, स चै-

१ सिध्यन्ति यावन्त· किलेह सव्यवहारराशिमध्यात् । आयान्ति अनादिवनस्पतिराशेः तावन्तस्तस्मिन् ॥ १ ॥

वम्—“उक्कोसेणं अणंतमणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो” इति, एतावत्प्रमाणं चान्तरं वनस्पतिकायमध्यगमनेन प्रतिपत्तव्यम्, अन्यत्र गतावेतावतोऽन्तरस्यालभ्यमानत्वात् ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वमाह—एतेषां भदन्त! जीवानां त्रसानां स्थावराणां च मध्ये कतरे कतमेभ्योऽल्पा वा बहवो वा कतरे कतरैस्तुल्या वा?, अत्र सूत्रे विभक्तिपरिणामेन तृतीया व्याख्येया, तथा कतरे कतरेभ्यो (ऽल्पा बहुकास्तुल्या) विशेषाधिका वा?, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकास्त्रसाः, असङ्ख्यातत्वमात्रप्रमाणत्वात्, स्थावरा अनन्तगुणाः, अजघन्योत्कृष्टानन्तानन्तसङ्ख्यापरिमाणत्वात्, उपसंहारमाह—‘सेत्तं दुविहा संसारसमावन्ना जीवा’ इति ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाजीवाभिगमटीकायां द्विविधा प्रतिपत्तिः समाप्ता ॥

अथ त्रिविधाख्या द्वितीया प्रतिपत्तिः

तदेवमुक्ता द्विविधा प्रतिपत्तिः, सम्प्रति त्रिविधा प्रतिपत्तिरारभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—इत्थि पुरिसा णपुंसका ॥ (सू० ४४) । से किं तं इत्थीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियाओ मणुस्सित्थीओ देवित्थीओ । से किं तं तिरिक्खजोणिणित्थीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—जलयरीओ थलयरीओ, खहयरीओ । से किं तं जलयरीओ ?, २ पंचविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—मच्छीओ जाव सुंसुमारीओ । से किं तं थलयरीओ ?, २ दुविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पदीओ य परिसप्पीओ य । से किं तं चउप्पदीओ ?, २ चउव्विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरीओ जाव सणप्फईओ । से किं तं परिसप्पीओ ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरपरिसप्पीओ य भुजपरिसप्पीओ य । से किं तं उरगपरिसप्पीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—अहीओ अहिगरीओ महोरगाओ, सेत्तं उरपरिसप्पीओ । से किं तं भुयपरिसप्पीओ ?, २ अणेगविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—सेरडीओ सेरंधीओ गोहीओ णउलीओ सेधाओ

सण्णाओ सरडीओ सेरंधीओ भावाओ खाराओ पवण्णाइयाओ चउप्पइयाओ मूसियाओ मुगुसिओ घरोलियाओ गोव्हियाओ, जोव्हियाओ थिरचिरालियाओ, सेत्तं भुयगपरिसप्पीओ। से किं तं खहयरीओ?, २ चउव्विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खीओ, जाव सेत्तं खहयरीओ, सेत्तं तिरिक्खजोणिओ॥ से किं तं मणुस्सिओ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमियाओ अकम्मभूमियाओ अंतरदीवियाओ। से किं तं अंतरदीवियाओ?, २ अट्ठावीसतिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—एगूरूइयाओ आभासियाओ जाव सुद्धदंतीओ, सेत्तं अंतरदी०॥ से किं तं अकम्मभूमियाओ?, २ तीसविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—पंचसु हेमवएसु पंचसु एरण्णवएसु पंचसु हरिवंसेसु पंचसु रम्मगवासेसु पंचसु देवकुरासु पंचसु उत्तरकुरासु, सेत्तं अकम्मा०। से किं तं कम्मभूमिया?, २ पण्णरसविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पंचसु भरहेसु पंचसु एरवएसु पंचसु महाविदेहेसु, सेत्तं कम्मभूमगमणुस्सीओ, सेत्तं मणुस्सित्थीओ॥ से किं तं देवित्थियाओ?, २ चउव्विधा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासिदेवित्थियाओ वाणमंतरदेवित्थियाओ जोतिसियदेवित्थियाओ वेमाणियदेवित्थियाओ। से किं तं भवणवासिदेवित्थियाओ?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—असुरकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ जाव थणितकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ, से तं भवणवासिदेवित्थियाओ। से किं तं वाणमंतरदेवित्थियाओ?, २ अट्ठ-

विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—पिसायवाणमंतरदेवित्थियाओ जाव से तं वाणमंतरदेवित्थियाओ। से किं तं जोतिसियदेवित्थियाओ ?, २ पंचविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चंदविमाणजोतिसियदेवित्थियाओ सूर० गह० नक्खत्त० ताराविमाणजोतिसियदेवित्थियाओ, से त्तं जोतिसियाओ। से किं तं वेमाणियदेवित्थियाओ ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ ईसाणकप्पवेमाणियदेवित्थिगाओ, सेत्तं वेमाणित्थीओ ॥ (सू० ४५)

'तत्र' तेषु नवसु प्रतिपत्तिषु मध्ये ये आचार्या एवमाख्यातवन्तः—त्रिविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमाख्यातवन्तः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकानि, इह स्त्र्यादिवेदोदयाद् योन्यादिसङ्गताः स्त्र्यादयो गृह्यन्ते, तथा चोक्तम्—"योनिर्मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धताऽऽबलता स्तनौ । पुंस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ॥ १ ॥ मेहनं खरता दार्ढ्यं, शौण्डीर्यं श्मश्रु धृष्टता । स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुंस्त्वे प्रचक्षते ॥ २ ॥ स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम् । नपुंसकं बुधाः प्राहुर्मोहानलसुदीपितम् ॥ ३ ॥" तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति स्त्रीवक्तव्यतामाह—'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ताः स्त्रियः ?, सूरिराह—स्त्रियस्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तिर्यग्योनिस्त्रियो मनुष्यस्त्रियो देवस्त्रियश्च । 'से किं त'मित्यादि, तिर्यग्योनिस्त्रियस्त्रिविधाः, तद्यथा—जलचर्यः स्थलचर्यः खचर्यश्च । 'से किं त'मित्यादि । मनुष्यस्त्रियोऽपि त्रिविधास्तद्यथा—कर्मभूमिका अकर्मभूमिका अन्तरद्वीपिकाश्च । 'से किं त'मित्यादि, देवस्त्रियश्चतुर्विधास्तद्यथा—भवनवासिन्यो व्यन्तर्यो ज्योतिष्क्यो वैमानिक्यश्च ॥ सम्प्रति स्त्रिया भवस्थितिमानप्रतिपादनार्थमाह—

इत्थी णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा ! एगेणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं

उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं एक्केणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं एगेणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं एगेणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पन्नासं पलिओवमाइं ॥ (सू० ४६)

'इत्थी णं भंते' इत्यादि, स्त्रिया भदन्त ! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—गौतम ! 'एकेनादेशेन' आदेशशब्द इह प्रकारवाची "आदेसो त्ति पगारो" इति वचनात्, एकेन प्रकारेण, एकं प्रकारमधिकृत्येति भावार्थः, जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, एतत्तिर्यग्मनुष्यस्त्र्यपेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यत्रैतावतो जघन्यस्यासम्भवात्, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतदीशानकल्पापरिगृहीतदेव्यपेक्षम्। तथैकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम् एतत्तथैवोत्कर्षतो नव पल्योपमानि, एतदीशानकल्प एव परिगृहीतदेव्यपेक्षम् । तथा एकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, एतत्प्राग्वत्, उत्कर्षतः सप्त पल्योपमानि, एतत्सौधर्मकल्पे परिगृहीतदेवीरधिकृत्य । तथा एकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पञ्चाशत्पल्योपमानि, एतत्सौधर्मकल्प एवापरिगृहीतदेव्यपेक्षम्, उक्तश्च सङ्ग्रहण्याम्—"[1]सपरिग्गहेयराणं सोहम्मीसाण पलियसाहीयं । उक्कोस सत्त पन्ना नव पणपन्ना य देवीणं ॥ १ ॥" तदेवं सामान्यतः स्त्रीणां जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिमानमुक्तं, सम्प्रति तिर्यक्स्त्र्यादिभेदानधिकृत्याह—

तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो० जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। जलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं

१ परिगृहीतेतराणा सौधर्मेशानाना पल्योपम साधिकम् । उत्कृष्टत सप्त पञ्चाशत् नव पञ्चपञ्चाशच्च पल्योपमानि देवीनाम् ॥ १ ॥

अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। चउप्पदथलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो० जहा तिरिक्खजोणित्थीओ। उरगपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं पुव्वकोडी। एवं भुयपरिसप्प०। एवं खहयरतिरिक्खित्थीणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो॥ मणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमयमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खित्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। भरहेरवयकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागऊणगं उक्को-

सेणं तिन्नि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। हेमवएरण्णवए जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं पलिओवमं संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी । हरिवासरम्मयवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयाइं उक्को० दो पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयाइं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतिकालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी ॥ देवित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं । भवणवासिदेवित्थीणं भंते!, जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं। एवं असुरकु-

मारभवणवासिदेवित्थियाए, नागकुमारभवणवासिदेवित्थियाएवि जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं पलिओवमाइं, एवं सेसाणवि जाव थणियकुमाराणं। वाणमंतरीणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसं अद्धपलिओवमं। जोइसियदेवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अट्ठभागं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, चंदविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं तं चेव, सूरविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिमब्भहियं, गहविमाणजोतिसियदेवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणजोतिसियदेवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं साइरेगं, ताराविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं अट्ठभागं पलिओवमं उक्को० सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं। वेमाणियदेवित्थियाए जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं, सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती प०?, जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं, ईसाणदेवित्थीणं जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं ॥ (सू ४७)

'तिरिक्खजोणिइत्थियाणं भंते!' इत्यादि, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, देवकुर्वादिषु चतुष्पदस्त्रीरधिकृत्य, जलचरस्त्री-

णामुत्कर्षतः पूर्वकोटी, स्थलचरस्त्रीणां यथा औघिकी, त्रीणि पल्योपमानीत्यर्थः । खचरीणामुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, मनुष्यस्त्रीषु क्षेत्रं प्रतीत्य—क्षेत्राश्रयणेनेतिभावः, जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देवकुर्वादिषु भरतादिष्वपि एकान्तसुषमादिकाले त्रीणि पल्योपमानि, 'धर्मचरणं' चरणधर्मसेवनं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, एतच्च तद्भवस्थिताया एव परिणामवशतः प्रतिपातापेक्षया द्रष्टव्यं, चरणधर्मेण मरणमन्तरेण सर्वस्तोकतयाऽप्येतावन्मात्रकालावस्थानभावात्, तथाहि—काचित्स्त्री तथाविधक्षयोपशमभावतः सर्वविरतिं प्रतिपद्य तावन्मात्रक्षयोपशमभावादन्तर्मुहूर्त्तानन्तरं भूयोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टित्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्यते इति, अथवा धर्मचरणमिह देशचरणं प्रतिपत्तव्यं न सर्वचरणं, देशचरणप्रतिपत्तिस्तु जघन्यतोऽप्यान्तर्मुहूर्तिकी, तस्या भङ्गबहुलत्वात्, अथोभयचरणसम्भवे किमर्थमिह देशचरणं परिगृह्यते?, उच्यते, देशचरणपूर्वकं प्रायः सर्वचरणमिति ख्यापनार्थम्, अत एवोक्तं वृद्धैः—"सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होइ। चरणोवसमखयाणं सागरसंखंतरा होंति ॥ १ ॥" एवं "अप्परिवडिए" इत्यादि, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अष्टसांवत्सरिक्याश्चरणधर्मप्राप्तेरूर्ध्वं चरमान्तर्मुहूर्त्तं यावदप्रतिपतितपरिणामभावात्, पूर्वपरिमाणं चेदम्—"पुव्वस्स उ परिमाणं सयरिं खलु होंति कोडिलक्खाओ। छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासकोडीणं ॥ १ ॥ (७०५६००००००००००) सम्प्रति कर्मभूमिकादिविशेषस्त्रीणां तद्वक्तव्यतामाह—अक्षरगमनिका सुगमा, भावार्थस्त्वयम्—कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीणां क्षेत्रं कर्मभूमिकासामान्यक्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च भरतैरावतेषु सुषमसुषमालक्षणेऽरके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना चात्र प्रागिव द्रष्टव्या, एवमुत्तरसूत्रद्वयेऽपि ॥ अत्रैव विशे-

१ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेन श्रावको भवति । चारित्रमोहोपशमक्षयाणां सागराः संख्याता अन्तरं भवति ॥ १ ॥

षचिन्तां चिकीर्षुराह—सुगमं, नवरं भरतैरावतेषु त्रीणि पल्योपमानि सुषमसुषमायां, पूर्वविदेहेषु क्षेत्रतः पूर्वकोटी, तत ऊर्ध्वं तत्र तथा-
क्षेत्रस्वाभाव्यादायुषोऽसम्भवात्, अकम्मभूमिगेत्यादि, जन्म प्रतीत्येति—अकर्मभूमिषूत्पत्तिमाश्रित्य जघन्यतो देशोनं पल्योपमं, तच्चा-
ष्टभागाद्यूनमपि देशोनं भवति ततो विशेषस्थापनायाह—पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागेनोनं, एतच्च हैमवतहैरण्यवतक्षेत्रापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्र
जघन्यतः स्थितेरेतावत्प्रमाणायाः सम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च देवकुरूत्तरकुर्वपेक्षया, 'संहरणं पडुच्चे'त्यादि, संह-
रणं नाम कर्मभूमिजायाः स्त्रियोऽकर्मभूमिषु नयनं 'तत्प्रतीत्य' तदाश्रित्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, इयमत्र भावना
—इह कर्मभूमिकाऽप्यकर्मभूमिषु संहृता अकर्मभूमिकेति व्यवह्रियते, तत्क्षेत्रसम्बन्धभावात्, यथा लोके कश्चिन्मगधादिदेशात्सुरा-
ष्ट्रान् प्रति प्रस्थितो गिरिनगरेषु निवासं कल्पयितुकामः सुराष्ट्रपर्यन्तग्रामप्राप्तः सन् समुत्पद्यमानेषु तथाविधेषु प्रयोजनेषु सौराष्ट्र इति
व्यवह्रियते, तद्वदधिकृताऽपि, तत्र च संहृता सती काचिदन्तर्मुहूर्त्तं जीवति ततोऽपि वा भूयोऽपि संह्रियते काचित्पूर्वकोट्यायुष्का
यावज्जीवमपि तत्रावतिष्ठते ततो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुक्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति, आह—भरतैरावतान्यपि कर्मभूमौ वर्त्तन्ते तत्र
चैकान्तसुषमादौ त्रीण्यपि पल्योपमानि स्थितिरस्या भवति संहरणं च संभवति तत्कथं देशोना पूर्वकोटी भण्यते ? इति, अत्रोच्यते,
कर्मकालविवक्षयाऽभिधानात्, तस्य चैतावन्मात्रत्वादिति । हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीणां जन्मतो जघन्येन देशोनं पल्योपमं
पल्योपमासङ्ख्येयभागेन न्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना
प्रागिव ॥ एवं 'हरिवासरम्मए' इत्याद्यपि सूत्रत्रयं भावनीयं, नवरं हरिवर्षरम्यकयोर्जन्मतो जघन्येन द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येय-
भागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे । देवकुरूत्तरकुरुषु जन्मतो जघन्येन त्रीणि पल्योपमानि पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनानि उ-

त्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, अन्तरद्वीपेषु जन्मतो जघन्येन देशोनः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, कियता देशेनोनः पल्योपमासङ्ख्येयभाग? इति चेदत आह—पल्योपमासङ्ख्येयभागेनोनः, किमुक्तं भवति?—उत्कृष्टपल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमाणादायुषो जघन्यमायुः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं, नवरमूनताहेतुः पल्योपमासङ्ख्येयो भागोऽतीव स्तोको द्रष्टव्यः, संहरणमधिकृत्य सर्वत्रापि जघन्यत उत्कर्षतश्च तावदेव प्रमाणम् ॥ सम्प्रति देवस्त्रीवक्तव्यतामाह—अक्षरगमनिका सुगमा तात्पर्यमात्रमुच्यते—देवस्त्रीणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, तानि च भवनपतिव्यन्तरीरधिकृत्य वेदितव्यानि, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतानि चेशानदेवीरधिकृत्य प्रतिपत्तव्यानि। विशेषचिन्तायां भवनवासिदेव्यः सामान्यतो दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षतोऽर्द्धपञ्चमानि—सार्द्धानि चत्वारि पल्योपमानि, एतानि च भवनवासिविशेषासुरकुमारदेवीरधिकृत्य, अत्रापि विशेषचिन्तायामसुरकुमारदेवीनां सामान्यतो जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतोऽर्द्धपञ्चमानि पल्योपमानि, नागकुमारभवनवासिदेवस्त्रीणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोनं पल्योपमम्, एवं शेषाणां यावत्स्तनितकुमारीणां, व्यन्तरीणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतोऽर्द्धं पल्योपमं, ज्योतिषस्त्रीणां जघन्येनाष्टभागपल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धं पल्योपमं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरभ्यधिकम्, अत्रापि विशेषचिन्तायां चन्द्रविमानवासिज्योतिषस्त्रीणां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धंपल्योपमं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरधिकं, सूर्यविमानवासिज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं वर्षशतपञ्चकाभ्यधिकं, ग्रहविमानवासिज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपमं उत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं, नक्षत्रविमानज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्थभागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतः सातिरेकं चतुर्थभागमात्रं पल्योपमं, ताराविमानज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतोऽष्टभागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतस्तदेवाष्टभागमात्रं पल्योपमं सातिरेकं। सामान्यतो वैमानिकदेवस्त्रीणां जघन्यतः

पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, विशेषचिन्तायां सौधर्मकल्पवैमानिकदेवीनां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः सप्त पल्योपमानि, अत्रापीदं स्थितिपरिमाणं परिगृहीतदेवीनामवगन्तव्यं, अपरिगृहीतदेवीनां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चाशत्पल्योपमानि, ईशानकल्पवैमानिकदेवीनां जघन्यतः सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतो नव पल्योपमानि, अत्रापीदं स्थितिपरिमाणं परिगृहीतदेवीनामवगन्तव्यं, अपरिगृहीतदेवीनां जघन्यतः सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतच्च सूत्रं समस्तमपि क्वापि साक्षाद् दृश्यते क्वचिच्चैवमतिदेशः—"एवं देवीणं ठिई भाणियव्वा जहा पण्णवणाए जाव ईसाणदेवीण"मिति ॥ सम्प्रति स्त्री नैरन्तर्येण स्त्रीत्वममुञ्चन्ती कियन्तं कालमवतिष्ठते? इति जिज्ञासायां सूत्रकृत्तत्कालापेक्षया ये पञ्चादेशाः प्रवर्त्तन्ते तानुपदर्शयितुमाह—

इत्थी णं भंते! इत्थित्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं। एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियाइं। एक्केणादेसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउद्दस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एक्केणादेसेणं जह० एक्कं समयं उक्को० पलिओवमसयं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं। एक्केणादेसेणं जहण्णं एक्कं समयं उक्को० पलिओवमपुहुत्तं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं॥ तिरिक्खजोणित्थी णं भंते! तिरिक्खजोणित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियाइं, जलयरीए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। चउप्पदथलयरतिरिक्खजो० जहा ओहिता ति-

रिक्ख०, उरगपरिसप्पीभुयगपरिसप्पित्थी णं जधा जलयरीणं, खहयरि० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं ॥ मणुस्सित्थी णं भंते! कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, एवं कम्मभूमियावि भरहेरवयावि, णवरं खेत्तं पडुच्च जह० अंतो उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडीअब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। पुव्वविदेहअवरविदेहित्थी णं खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडीपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी ॥ अकम्मभूमिकमणुस्सित्थी णं भंते! अकम्मभूम० कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणं उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं। हिमवतेरण्णवते अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! हेम० कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणगं, उक्को० पलिओवमं। साहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० पलिओवमं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं। हरिवासरम्मयअकम्मभूमगमणुस्सित्थी णं भंते!, जम्मणं पडुच्च जह०

२ प्रतिपत्तौ
सामान्य-
विशेषत-
या स्त्रीत्व-
स्थितिः
सू० ४८

देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगाइं, उक्को० दो पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० दो पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइं। उत्तरकुरुदेवकुरूणं०, जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिन्नि पलिओवमाइं पलितोवमस्स असंखेज्जभागेणं ऊणगाइं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं। अंतरदीवाकम्मभूमकमणुस्सित्थी?, २ जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं। साहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं ॥ देवित्थी णं भंते! देवित्थित्ति काल०, जच्चेव संचिट्ठणा ॥ (सू० ४८)

एकेनादेशेन जघन्यत एकं समयं यावदवस्थानमुत्कर्षतो दशोत्तरं पल्योपमशतं पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकम्, एकसमयं कथम्? इति चेदुच्यते—काचिद् युवतिरुपशमश्रेण्यां वेदत्रयोपशमनादवेदकत्वमनुभूय ततः श्रेणेः प्रतिपतन्ती स्त्रीवेदोदयमेकं समयमनुभवति, ततो द्वितीये समये कालं कृत्वा देवेषूत्पद्यते तत्र च तस्याः पुंस्त्वमेव न स्त्रीत्वं, तत एवं जघन्यतः स्त्रीत्वं समयमात्रं, सम्प्रति पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकदशोत्तरपल्योपमशतभावना क्रियते—कश्चिज्जन्तुर्नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु मध्ये पञ्चषान् भवाननुभूय ईशाने कल्पे पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोत्पद्यते ततः स्वायुः-

क्षये तस्मात्स्थानाद् भूयोऽपि नारीषु तिरश्चीषु वा मध्ये पूर्वकोट्यायुष्षुरुत्पन्नस्ततो भूयो द्वितीयं वारमीशानदेवलोके पञ्चपञ्चाशत्पल्यो-
पमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोपजातस्ततः परमवश्यं वेदान्तरमवगच्छति, एवं दशोत्तरं पल्योपमशतं पूर्वको-
टिपृथक्त्वाभ्यधिकं प्राप्यते, अत्र पर आह—ननु यदि देवकुरूत्तरकुर्वादिषु पल्योपमत्रयस्थितिकासु स्त्रीषु मध्ये समुत्पद्यते ततोऽधि-
काऽपि स्त्रीवेदस्यावस्थितिर्लभ्यते, ततः किमित्येतावदेवोपदिष्टा?, तदयुक्तम्, अभिप्रायापरिज्ञानात्, तथाहि—न तावद्देवीभ्यश्च्युत्वाऽसङ्ख्ये-
यवर्षायुष्कासु स्त्रीषु मध्ये स्त्रीत्वेनोत्पद्यते, देवयोनेश्च्युतानामसङ्ख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये उत्पादप्रतिषेधात्, नाप्यसङ्ख्येयवर्षायुष्का सती
उत्कृष्टायुष्कासु देवीषु जायते, यत उक्तं प्रज्ञापनामूलटीकायाम्—"जतो असंखेज्जवासाउया उक्कोसियं ठिइं न पावेइ" इति, ततो
यथोक्तप्रमाणैव स्त्रीवेदस्योत्कृष्टाऽवस्थितिरवाप्यते। द्वितीयेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कृष्टतोऽष्टादश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वा-
भ्यधिकानि, तत्र समयभावना सर्वत्रापि प्राग्वत्, अष्टादश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि एवं—नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्व-
कोटीप्रमाणायुष्कासु मध्ये कश्चिज्जन्तुः पञ्चषान् भवाननुभूय पूर्वप्रकारेणेशानदेवलोके वारद्वयमुत्कृष्टस्थितिकासु देवीषु मध्ये समुत्प-
द्यमानो नियमतः परिगृहीतास्वेवोत्पद्यते नापरिगृहीतासु, तत एवं द्वितीयादेशवादिमतेन स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानमष्टादश पल्योपमानि
पूर्वकोटिपृथक्त्वं च। तृतीयेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतश्चतुर्दश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि चैवं—पूर्व-
प्रकारेण सौधर्मदेवलोके परिगृहीतदेवीषु सप्तपल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कासु मध्ये वारद्वयं समुत्पद्यते तत्र(त) एवं तृतीयादेशवादिमतेन
स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानं चतुर्दश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वं च। चतुर्थेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः पल्योपमशतं पूर्वको-
टिपृथक्त्वाभ्यधिकं, कथम्? इति चेदुच्यते, नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु पञ्चषान् भवाननुभूय पूर्वप्रकारेण सौधर्मदेवलोके

पञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोत्पद्यते, तत एवं चतुर्थादेशवादिमतेन पल्योपमशतं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं भवति । पञ्चमेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः पल्योपमपृथक्त्वं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं, तथैवं—नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु मध्ये सप्त भवाननुभूयाष्टमभवे देवकुर्वादिषु त्रिपल्योपमस्थितिकासु स्त्रीषु मध्ये स्त्रीत्वेन समुत्पद्यते, ततो मृत्वा सौधर्मदेवलोके जघन्यस्थितिकासु देवीषु मध्ये देवीत्वेनोपजायते, तदनन्तरं चावश्यं वेदान्तरमधिगच्छति, ततः पञ्चमादेशवादिमतेन स्त्रीवेदस्यावस्थानं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं पल्योपमपृथक्त्वं, ते ह्येवमाहुर्नानाभवप्रमाणद्वारे—यदि स्त्रीवेदस्योत्कृष्टसवस्थानं चिन्त्यते तत इत्थमेतावदेव लभ्यते, नाधिकमन्यथा चेति । अमीषां च पञ्चानामादेशानामन्यतमादेशसमीचीनतानिर्णयोऽतिशयज्ञानिभिः सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसंपन्नैर्वा कर्तुं शक्यते, ते च सूत्रकृत्प्रतिपत्तिकाले नासीरन्निति सूत्रकृन्न निर्णयं कृतवानिति । तदेवं सामान्यतः स्त्री स्त्रीत्वं नैरन्तर्येणामुञ्चन्ती यावन्तं कालमवतिष्ठते तावत्कालप्रमाणमुक्तम् ॥ इदानीं तिर्यक्स्त्रियास्तिर्यक्स्त्रीत्वमजहत्याः कालमानं विचिन्तयिषुरिदमाह—'**तिरिक्खजोणिइत्थिए णं भंते !**, इत्यादि, तिर्यक्स्त्री णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! तिर्यक्स्त्रीति कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्रान्तर्मुहूर्त्तं कस्याश्चित्तावत्प्रमाणायुष्कतया तदनन्तरं मृत्वा वेदान्तराधिगमाद्विलक्षणमनुष्यभवान्तराधिगमाद्वा, कथमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकाटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि ? इति चेदुच्यते—इह नराणां तिरश्चां चोत्कर्षतोऽष्टौ भवाः प्राप्यन्ते नाधिकाः, "नरतिरियाणं सत्तट्ठभवा" इति वचनात्, तत्र सप्त भवाः सङ्ख्येयवर्षायुषोऽष्टमस्त्वसङ्ख्येयवर्षायुरेव, तथाहि—पर्याप्तमनुष्याः पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो वा निरन्तरं यथासङ्ख्यं सप्त पर्याप्तमनुष्यभवान् सप्त पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवान् वाऽनुभूय यद्यष्टमे भवे भूयः पर्याप्तमनुष्याः पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियति-

र्येभ्यो वा समुत्पद्यन्ते ततो नियमादसङ्ख्येयवर्षायुष एव न सङ्ख्येयवर्षायुषः, असङ्ख्येयवर्षायुषश्च मृत्वा नियमतो देवलोकेपूत्पद्यन्ते, ततो नवमोऽपि मनुष्यभवः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवो वा निरन्तरं न लभ्यते, अत एव च पाश्चात्याः सप्त भवा निरन्तरं भवन्तः सङ्ख्येयवर्षायुष एवोपपद्यन्ते नैकोऽप्यसङ्ख्येयवर्षायुः, असङ्ख्येयवर्षायुर्भवानन्तरं भूयो मनुष्यभवस्य तिर्यग्भवस्य वाऽसम्भवात्, तत्र यदा उत्कर्षतस्तिर्यक्स्त्रीवेदसहिताः पाश्चात्याः सप्तापि भवा पूर्वकोट्यायुषो लभ्यन्ते अष्टमस्तु भवो देवकुर्वादिषु तदा भवन्त्युत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि तिर्यक्स्त्रीत्वस्यावस्थानम् । अत्रैव विशेषचिन्तां चिकीर्षुराह—'जलयरीए' इत्यादि, जलचर्याः स्त्रिया जलचरस्त्रीत्वेन निरन्तरं भवन्त्या जघन्यतोऽवस्थानमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, सप्तपूर्वकोट्यायुर्भवानन्तरं जलचरस्त्रीणामवश्यं जलचरस्त्रीत्वच्युतिभावात्, 'चउप्पयथलयरीए जहा ओहियाए' इति, चतुष्पदस्थलचरस्त्रिया यथा औघिक्यास्तिर्यक्स्त्रिया उक्तं तथा द्रष्टव्यं, तच्चैवम्—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्ध्वं तद्भावपरित्यागसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च प्रागिव भावनीयानि । उरःपरिसर्पस्थलचरस्त्रिया भुजपरिसर्पस्थलचरस्त्रियाश्च यथा जलचरस्त्रियास्तथा वक्तव्यं, तच्चैवं—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं तच्च पूर्ववद्भावनीयम् । खचरस्त्रिया जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिक उत्कर्षतोऽवस्थानमिति ॥ तदेवमुक्तं तिर्यक्स्त्रियाः सामान्यतो विशेषतश्च अवस्थानमानं, सम्प्रति मनुष्यस्त्रिया आह—'मणुस्सित्थियाए' इत्यादि, मनुष्यस्त्रियाः सामान्यतो यथा औघिक्यास्तिर्यक्स्त्रियाः, तच्चैवं—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च सामान्यतस्तिर्यक्स्त्रीवद्भावनीयानि । कर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः क्षेत्रं प्रतीत्य सामान्यतः कर्मक्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं तद्भावपरित्यागसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वा-

भ्यधिकानि, तत्र सप्त भवा महाविदेहेषु अष्टमो भवो भरतैरावतेष्वेकान्तसुषमादौ त्रिपल्योपमप्रमाण इति, 'धर्मचरणं प्रतीत्य' चा-
रित्रासेवनमाश्रित्य जघन्येनैकं समयं, सर्वविरतिपरिणामस्य तदावरणकर्मक्षयोपशमवैचित्र्यतः समयमेकं सम्भवात्, तत ऊर्ध्वं मर-
णतः प्रतिपातभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, समग्रचरणकालस्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रप्रमाणत्वात् । भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्य-
स्त्रियाः स्त्रीत्वं 'क्षेत्रं प्रतीत्य' भरताद्येवाश्रित्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तच्च प्राग्वद्भावनीयम्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वको-
ट्याऽभ्यधिकानि, तानि चैवं–पूर्वविदेहमनुष्यस्त्री अपरविदेहमनुष्यस्त्री वा पूर्वकोट्यायुष्का केनापि भरतादावेकान्तसुषमादौ संहृता,
सा च यद्यपि महाविदेहक्षेत्रोत्पन्ना तथाऽपि प्रागुक्तमागधपुरुषदृष्टान्तबलेन भारतैरावतीया वेति व्यपदिश्यते, ततः सा भारत्यादि-
व्यपदेशं प्राप्ता पूर्वकोटिं जीवित्वा स्वायुःक्षयतस्तत्रैव भरतादावेकान्तसुषमाप्रारम्भे समुत्पन्ना, तत एवं देशोनपूर्वकोट्यभ्यधिकं पल्यो-
पमत्रयमिति । धर्मचरणं प्रतीत्य कर्मभूमिजस्त्रिया इव भावनीयं, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटीं यावत्, पूर्वविदेहापर-
विदेहकर्मभूमिजमनुष्यस्त्रियास्तु क्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च सुप्रतीतं, प्राग्भावितत्वात्, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तत्रैव
भूय उत्पत्त्या, धर्मचरणं प्रतीत्य समागतकर्मभूमिजस्त्रिया इव वक्तव्यं, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटिं यावदिति
भावार्थः ॥ उक्ता सामान्यतो विशेषतश्च कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीवक्तव्यता, साम्प्रतमकर्मभूमकमनुष्यस्त्रीवक्तव्यतां चिकीर्षुः प्रथमतः सामा-
न्येनाह—'अकम्मभूमिगमणुस्सित्थी णं भंते !' इत्यादि, अकर्मभूमकमनुष्यस्त्री, णमिति वाक्यालङ्कारे, अकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीति
कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! 'जन्म' तत्रैव सम्भूतिलक्षणं 'प्रतीत्य' आश्रित्य जघन्येन पल्योपमं देशोनं, अष्टभागा-
द्यूनमपि देशोनं भवति ततो विशेषस्थापनायाह—पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागोनं जघन्यतः उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणं प्रतीत्य

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमन्तर्मुहूर्त्तायुःशेषायाः संहृतिभावात्, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, कथम्? इति चेदुच्यते—काचित्पूर्वविदेहमनुष्यस्त्री अपरविदेहमनुष्यस्त्री वा देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्विता देवकुर्वादौ संहृता, सा च पूर्वदृष्टान्तबलेन देवकुर्वादिका जाता, ततः सा देशोनां पूर्वकोटिं जीवित्वा मृत्वा च तत्रैव त्रिपल्योपमायुष्का समजनि, तत एवं देशोनपूर्वकोट्यधिकं पल्योपमत्रयमिति, अनेन संहरणतो जघन्योत्कृष्टावस्थानकालमानप्रदर्शनेन न्यूनान्तर्मुहूर्त्तायुःशेषाया गर्भस्त्रिया वा न संहरणमिति प्रतिपादितम्, अन्यथा जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षचिन्तायां पूर्वकोट्या देशोनता न स्यादिति। अकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीविषयामेव विशेषचिन्तां करोति—'हेमवये'त्यादि, हैमवतैरण्यवतहरिवर्षरम्यकवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरद्वीपिकाणां जन्म प्रतीत्य या यस्याः स्थितिस्ततस्तस्या अवस्थानं वाच्यं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो या यस्या उत्कृष्टा स्थितिः सा तस्या देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिका वक्तव्या, सा चैवं—हैमवतैरण्यवतयोर्मनुष्यस्त्री जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनम्, उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, अन्तर्मुहूर्त्तायुःशेषाया एव संहरणभावात्, उत्कर्षतः पल्योपमं देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकं, तच्च देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्वितायास्तत्र संहरणे तत्रैव च मृत्वोत्पन्नाया भावनीयम्। हरिवर्षरम्यकयोर्जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने द्वे पल्योपमे, उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे। संहरणं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिके द्वे पल्योपमे, भावना प्रागिव। देवकुरूत्तरकुरुषु जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासंख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि। संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि। अन्तरद्वीपेषु जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं पल्योपमासङ्ख्येयभागं यावत् उत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागम्,

एतावत्प्रमाणस्य तत्र जघन्यत उत्कर्षतश्च मनुष्याणामायुषः सम्भवात्, मरणानन्तरं च देवयोनावुत्पादात् । संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकं पल्योपमासङ्ख्येयभागं यावत्, भावनाऽत्र प्रागिव ॥ उक्ता सामस्त्येन मनुष्यस्त्रीवक्तव्यता, सम्प्रति देवस्त्रीवक्तव्यतामाह—'देवित्थीण'मित्यादि, देवीनां तथाभवस्वभावतया कायस्थितेरसम्भवात् यैव प्राक् सामान्यतो विशेषतश्च भवस्थितिरुक्ता 'सेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' तदेवावस्थानं वक्तव्यम्, अभिलापश्च 'देवित्थी णं भंते! देवित्थीति कालतो केवच्चिरं होइ?' इत्यादिरूपः सुधिया परिभावनीयः ॥ तदेवमुक्तं सामान्यतो विशेषतश्च स्त्रीत्वस्यावस्थानकालमानम्, इदानीमन्तरद्वारमाह—

इत्थीणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० अणंतं कालं, वणस्सतिकालो, एवं सव्वासिं तिरिक्खित्थीणं । मणुस्सित्थीए खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं जाव पुव्वविदेहअवरविदेहियाओ, अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्को० वणस्सतिकालो, संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं जाव अंतरदीवियाओ । देवित्थियाणं सव्वासिं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो ॥ (सू० ४९)

स्त्रिया भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, स्त्री भूत्वा स्त्रीत्वाद् भ्रष्टा सती पुनः कियता कालेन स्त्री भवतीत्यर्थः, एवं

गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कथमिति चेदुच्यते—इह काचित्स्त्री स्त्रीत्वान्मरणेन च्युत्वा भवान्तरे पुरुषवेदं नपुंसकवेदं वाऽन्तर्मुहूर्त्तमनुभूय ततो मृत्वा भूयः स्त्रीत्वेनोत्पद्यते तत एव जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं भवति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः—असङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्ताख्यो वक्तव्यः, तावता कालेनामुक्तौ सत्यां नियोगतः स्त्रीत्वयोगात्, स च वनस्पतिकाल एवं वक्तव्यः—"अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इति, एवमौघिकतिर्यक्स्त्रीणां जलचरस्थलचरखचरस्त्रीणामौघिकमनुष्यस्त्रीणां च जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यम्, अभिलापोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः। कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियाः क्षेत्रं—कर्मभूमिक्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं वनस्पतिकालप्रमाणं यावत्, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयं, सर्वजघन्यस्य समयत्वात्, उत्कर्षेणानन्तं कालं, देशोनमपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं यावत्, नातो ह्यधिकतरश्चरणलब्धिपातकालः, संपूर्णस्याप्यपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तस्य दर्शनलब्धिपातकालस्य तत्र तत्र प्रदेशे प्रतिषेधात्। एवं भरतैरावतमनुष्यस्त्रियाः पूर्वविदेहापरविदेहस्त्रियाश्च क्षेत्रतो धर्मचरणं चाश्रित्य वक्तव्यम्। अकर्मभूमकमनुष्यस्त्रिया जन्म प्रतीत्यान्तरं जघन्येन दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, कथमिति चेदुच्यते—इह काचिदकर्मभूमिका स्त्री मृत्वा जघन्यस्थितिषु देवेषूत्पन्ना, तत्र दश वर्षसहस्राण्यायुः परिपाल्य तत्क्षये च्युत्वा कर्मभूमिषु मनुष्यपुरुषत्वेन मनुष्यस्त्रीत्वेन वोत्पद्यते, देवेभ्योऽनन्तरमकर्मभूमिषूत्पादाभावात्, अन्तर्मुहूर्त्तेन मृत्वा भूयोऽप्यकर्मभूमिजस्त्रीत्वेन जायत इति भवन्ति जघन्यतो दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, अकर्मभूमिजस्त्रियाः कर्मभूमिषु संहृत्य तावता कालेन तथाविधबुद्धिपरावृत्त्या भूयस्तत्रैव नयनात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, तावता कालेन कर्मभूम्यु-

त्पत्तिवत् संहरणस्यापि नियोगतो भावात्, तथाहि—काचिदकर्मभूमिका कर्मभूमौ संहृता, सा च स्वायुःक्षयानन्तरमनन्तकालं वनस्पत्यादिषु संसृत्य भूयोऽप्यकर्मभूमौ समुत्पन्ना ततः केनापि संहृतेति यथोक्तं संहरणस्योत्कृष्टकालमानम् । एवं हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरभूमिकानामपि जन्मतः संहरणतश्च प्रत्येकं जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं वक्तव्यम्, सूत्रपाठोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः ॥ सम्प्रति देवस्त्रीणामन्तरप्रतिपादनार्थमाह—'देवित्थियाणं भंते !' इत्यादि, देवस्त्रिया भदन्त ! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कस्याश्चिद्देवस्त्रिया देवीभवाच्च्युताया गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येषूत्पद्य पर्याप्तिपरिसमाप्तिसमनन्तरं तथाऽध्यवसायमरणेन पुनर्देवीत्वेनोत्पत्तिसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स च सुप्रतीत एव । एवमसुरकुमारदेव्या आरभ्य यावदीशानदेवस्त्रियामुत्कृष्टमन्तरं वक्तव्यं, पाठोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वं वक्तव्यं, तानि च पञ्च, तद्यथा—प्रथमं सामान्येनाल्पबहुत्वं विशेषचिन्तायां द्वितीयं त्रिविधतिर्यक्स्त्रीणां तृतीयं त्रिविधमनुष्यस्त्रीणां चतुर्थं चतुर्विधदेवस्त्रीणां पञ्चमं मिश्रस्त्रीणां, तत्र प्रथममल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—

एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं मणुस्सित्थियाणं देवित्थियाणं कतरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सित्थियाओ तिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ देवित्थियाओ असंखिज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीण य कतरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाओ खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ थलयरतिरिक्ख-

जोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जलयरतिरिक्ख० संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाण य कतरा २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा ! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, हरिवासरम्मयवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, हेमवतेरण्णवासअकम्मभूमिगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखिज्जगु०, भरतेरवतवासकम्मभूमगमणुस्सि० दोवि तुल्लाओ संखिज्जगुणाओ, पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! देवित्थियाणं भवणवासीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कयरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाओ वेमाणियदेवित्थियाओ भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ वाणमंतरदेवीयाओ असंखेज्जगुणाओ जोतिसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं मणुस्सित्थीयाणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं देवित्थीणं भवणवासियाणं वाणमंतरीणं जोतिसियाणं वेमाणिणीण य कयराओ २ हिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसे० ?, गोयमा! सव्वत्थोवा अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि संखे-

ज्जगुणाओ, हरिवासरम्मगवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोऽवि संखेज्जगु०, हेमवतेरण्णवयवासअकम्मभूमग० दोऽवि संखेज्जगु०, भरहेरवतवासकम्मभूमगमणुस्सित्थीओ दोऽवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, पुव्वविदेहअवरविदेहवासकम्मभूमगमणुस्सित्थि० दोऽवि संखेज्जगु०, वेमाणियदेवित्थियाओ असंखेज्जगु०, भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगु०, खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगु०, थलयरतिरिक्खजोणित्थियाउ संखिज्जगु०, जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ॥ (सू० ५०)

सर्वस्तोका मनुष्यस्त्रियः, सङ्ख्यातकोटाकोटीप्रमाणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिकस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं तिर्यक्स्त्रीणामतिबहुतया सम्भवात्, द्वीपसमुद्राणां चासङ्ख्येयत्वात्, ताभ्योऽपि देवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवीनां प्रत्येकमसङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोकाः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः, ताभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, खचरेभ्यः स्थलचराणां स्वभावत एव प्राचुर्येण भावात्, ताभ्यो जलचरस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, लवणे कालोदे स्वयम्भूरमणे च समुद्रे मत्स्यानामतिप्राचुर्येण भावात्, स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य च शेपसमस्तद्वीपसमुद्रापेक्षयाऽतिप्रभूतत्वात् ॥ उक्तं द्वितीयमल्पबहुत्वम्, अधुना तृतीयमाह—सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकाकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियः, क्षेत्रस्याल्पत्वात्, ताभ्यो देवकुरूत्तरकुरुस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, समानप्रमाणक्षेत्रत्वात्, ताभ्यो

हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रापेक्षया हरिवर्षरम्यकक्षेत्रस्यातिप्रचुरत्वात्, स्वस्थानेऽपि द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य समानत्वात्, ताभ्योऽपि हैमवतैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्याल्पत्वेऽप्यल्पस्थितिकतया बहूनां तत्र तासां सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा., कर्मभूमितया स्वभावत एव तत्र प्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यादजितस्वामिकाल इव च स्वभावत एव तत्र प्राचुर्येण भावात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः ॥ उक्तं तृतीयमल्पबहुत्वम्, अधुना चतुर्थमाह—सर्वस्तोका वैमानिकदेवस्त्रियः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यद् द्वितीयं वर्गमूलं तस्मिन् तृतीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावत्प्र(वान् प्र)देशराशिस्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशा द्वात्रिंशत्तमभागहीनास्तावत्प्रमाणत्वात्प्रत्येकं सौधर्मेशानदेवस्त्रीणां, ताभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यत्प्रथमं वर्गमूलं तस्मिन् द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु श्रेणिषु यावान् प्रदेशराशिर्द्वात्रिंशत्तमभागहीनस्तावत्प्रमाणत्वात्, ताभ्यो व्यन्तरदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्योऽपि द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपनीते यच्छेषमवतिष्ठते तावत्प्रमाणत्वात्तासां, ताभ्यः सङ्ख्येयगुणा ज्योतिष्कदेवस्त्रियः, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयाङ्गुलप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्यो द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपसारिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणत्वात् ॥ उक्तं चतुर्थमल्पबहुत्वम्, इदानीं समस्तस्त्रीविषयं पञ्चममल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः, ताभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि हरिवर्ष-

म्यकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवतस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना प्राग्वत्, ताभ्यो वैमानिकदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तासां ताभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियोऽसङ्ख्यातगुणाः, अत्र युक्तिः प्रागेवोक्ता, ताभ्यः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तासां ताभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः, सङ्ख्येयगुणबृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो व्यन्तरदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटाकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्यो द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपहृते यावान् राशिरवतिष्ठते तावत्प्रमाणत्वात्, ताभ्योऽपि ज्योतिष्कदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, एतच्च प्रागेव भावितम् ॥ इह स्त्रीत्वानुभावः स्त्रीवेदकर्मोदय इति स्त्रीवेदकर्मणो जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिमानमाह—

इत्थिवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं सागरोवमस्स दिवड्ढो सत्तभागो[उ] पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणो उक्को० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ ॥ इत्थिवेदे णं भंते! किंपगारे पण्णत्ते?, गोयमा! फुंफुअग्गिसमाणे पण्णत्ते, सेत्तं इत्थियाओ ॥ (सू० ५१)

'स्त्रीवेदस्य' स्त्रीवेदनाम्नो णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! कर्मणः कियन्तं कालं बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येन

सागरोपमस्य सार्द्धः सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः, कथमिति चेदुच्यते—इह स्त्रीवेदादीनां कर्मणां स्वस्मात् २ उत्कृष्टस्थितिबन्धात् मिथ्यात्वसत्कया उत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणया भागे हृते यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं जघन्यस्थितिः "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तुक्कोसएण जं लद्ध"मित्यादिवचनप्रामाण्यात्, तत्र स्त्रीवेदस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या भागो ह्रियते, शून्यं शून्येन पातयेत् जाता उपरि पञ्चदश अधस्तात्सप्ततिः, अनयोश्च छेद्यच्छेदकराश्योर्दशभिरपवर्त्तना जात उपर्येकः सार्द्धः अधस्तात्सप्त आगतमेकसागरोपमस्य सार्द्धः सप्तभागः, पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः क्रियते, इयं च व्याख्या **मूलटीका**ऽनुसारेण कृता, **पञ्चसङ्ग्रह**मतेनापीदमेव जघन्यस्थितिपरिमाणं केवलं पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं (न) वक्तव्यं, तन्मतेन "सेसाणुकोसाओ मिच्छत्तठिईए जं लद्धं" इत्येतावन्मात्रस्यैव जघन्यस्थित्यानयनस्य करणस्य विद्यमानत्वात्, **कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणी**कारस्त्वित्थं जघन्यस्थित्यानयनाय करणसूत्रमाह—"वग्गुक्कोसठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेण जं लद्धं । सेसाणं तु जहण्णं पलियासंखेज्जगेणूणं ॥ १ ॥" अस्याक्षरगमनिका—इह ज्ञानावरणीयप्रकृतिसमुदायो ज्ञानावरणीयवर्ग इत्युच्यते, दर्शनावरणीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनावरणीयवर्गः, वेदनीयप्रकृतिसमुदायो वेदनीयवर्गः, दर्शनमोहनीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनमोहनीयवर्गः, चारित्रमोहनीयप्रकृतिसमुदायश्चारित्रमोहनीयवर्गः, नोकषायमोहनीयप्रकृतिसमुदायो नोकषायमोहनीयवर्गः, नामप्रकृतिसमुदायो नामवर्गः, गोत्रप्रकृतिसमुदायो गोत्रवर्गः, अन्तरायप्रकृतिसमुदायोऽन्तरायवर्गः, एतेषां (च) वर्गाणां या आत्मीया आत्मीया उत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिका तस्या मिथ्यात्वसत्कया उत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते सति यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं सत् उक्तशेषाणां निद्रादीनां प्रकृतीनां जघन्यस्थितेः परिमाणमिति, ततस्तन्मतेन स्त्रीवेदस्य ज-

वन्या स्थितिर्द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, तथाहि—नोकषायमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिर्विंशतिसागरोपम-कोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे ह्रियमाणे शून्यं शून्येन पातयेत्, लब्धौ द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ तौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ क्रियेते इति । उत्कृष्टा स्थितिः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्यः, इह स्थितिर्द्विधा—कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणा अनुभवयोग्या च, तत्रेयं कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणा द्रष्टव्या, अनुभवयोग्या पुनरबाधाहीना, (गा) च शेषाणां कर्मणां यावत्यः सागरोपमकोटीकोट्यस्तेषां तावन्ति वर्षशतान्यबाधा, स्त्रीवेदस्य चाधिकृतस्योत्कृष्टा स्थितिः पञ्चदश सागरोपमकोटीकोट्य-स्ततः पञ्चदश वर्षशतान्यबाधा, तथा चाह—"पण्णरस वाससयाइं अबाहा" इति, किमुक्तं भवति ?—स्त्रीवेदकर्म उत्कृष्टस्थितिकं बद्धं सत्स्वरूपेण पञ्चदश वर्षशतानि यावन्न जीवस्य स्वविपाकोदयमादर्शयति तावत्कालमध्ये दलिकनिषेकस्याभावात्, तथा चाह—"अ-बाहूणिया" इत्यादि, 'अबाधोना' अबाधाकालपरिहीना कर्मस्थितिरनुभवयोग्येति गम्यते, यतः 'अबाधोनः' अबाधाकालपरिहीनः कर्मनिषेकः—कर्मदलिकरचनेति ॥ साम्प्रतं स्त्रीवेदकर्मोदयजनितो यः स्त्रीवेदः स किंस्वरूपः ? इत्यावेदयन्नाह—'इत्थिवेए णं भंते !' इत्यादि, स्त्रीवेदो णमिति पूर्ववत् भदन्त ! 'किंप्रकारः' किंस्वरूपः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! फुम्फुकाग्निसमानः, फुम्फुकशब्दो देशीत्वात्करीषवचनस्ततः करीषाग्निसमानः परिगलनमदनदाहरूप इत्यर्थः, प्रज्ञप्तः, उपसंहारमाह—'सेत्तं इत्थियाओ' ॥ एवे-मुक्ताः स्त्रियः, सम्प्रति पुरुषप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं पुरिसा ?, पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियपुरिसा मणुस्सपुरिसा देवपु-रिसा ॥ से किं तं तिरिक्खजोणियपुरिसा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा,

इत्थिभेदो भाणितव्वो, जाव खहयरा, सेत्तं खहयरा सेत्तं खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा ॥ से किं तं मणुस्सपुरिसा ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा, सेत्तं मणुस्सपुरिसा ॥ से किं तं देवपुरिसा ?, देवपुरिसा चउव्विहा पण्णत्ता, इत्थीभेदो भाणितव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धा (सू० ५२)

'से किं तं पुरिसा' इत्यादि, अथ के ते पुरुषाः ?, पुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तिर्यग्योनिकपुरुषा मनुष्यपुरुषा देवपुरुषाश्च ॥ से किं तमित्यादि, अथ के ते तिर्यग्योनिकपुरुषाः ?, तिर्यग्योनिकपुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—जलचरपुरुषाः स्थलचरपुरुषाः खचरपुरुषाश्च । मनुष्यपुरुषा अपि त्रिविधास्तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च ॥ देवसूत्रमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते देवपुरुषाः ?, देवपुरुषाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो वानमन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, भवनपतयोऽसुरादिभेदेन दशविधा वक्तव्याः, वानमन्तराः पिशाचादिभेदेनाष्टविधाः, ज्योतिष्काश्चन्द्रादिभेदेन पञ्चविधाः, वैमानिकाः कल्पोपपन्नकल्पातीतभेदेन द्विविधाः, कल्पोपपन्नाः सौधर्मादिभेदेन द्वादशविधाः, कल्पातीता ग्रैवेयकानुत्तरोपपातिकभेदेन द्विविधाः, तथा चाह—"जाव अणुत्तरोववाइया" इति ॥ उक्तो भेदः, सम्प्रति स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

पुरिसस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं । तिरिक्खजोणियपुरिसाणं मणुस्साणं जा चेव इत्थीणं ठिती सा चेव भणियव्वा ॥ देवपुरिसाणवि जाव सव्वट्ठसिद्धाणं ति । ताव ठिती जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वा ॥ (सू० ५३)

'पुरिसस्स णं भंते' इत्यादि, पुरुषस्य स्वभवमजहतो भदन्त! कियन्तं कालं यावत्स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मरणभावात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तान्यनुत्तरसुरापेक्षया द्रष्टव्यानि, अन्यस्यैतावत्याः स्थितेरभावात्। तिर्यग्योनिकानामौघिकानां जलचराणां स्थलचराणां खचराणां स्त्रिया या स्थितिरुक्ता तथा वक्तव्या, मनुष्यपुरुषस्याप्यौघिकस्य कर्मभूमिकस्य सामान्यतो विशेषतो भरतैरावतकस्य पूर्वविदेहापरविदेहकस्य अकर्मभूमस्य सामान्यतो विशेषतो हैमवतैरण्यवतकस्य हरिवर्षरम्यकस्य देवकुरूत्तरकुरुकस्यान्तरद्वीपकस्य यैवात्मीये आत्मीये स्थाने स्त्रियाः स्थितिः सैव पुरुषस्यापि वक्तव्या, तद्यथा—सामानिकतिर्यग्योनिकपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, जलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, चतुष्पदस्थलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, उरःपरिसर्पस्थलचरपुरुपाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, एवं भुजपरिसर्पस्थलचरपुरुषाणां खचरपुरुषाणामपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, सामान्यतो मनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतच्च बाह्यलिङ्गप्रव्रज्याप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य वेदितव्यं, अन्यथा चरणपरिणामस्यैकसामायिकस्यापि सम्भवादेकं समयमिति ब्रूयात्, अथवा देशचरणमधिकृत्येदं वक्तव्यं, देशचरणप्रतिपत्तेर्बहुलभङ्गतया जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तसम्भवात्, तत्र सर्वचरणसम्भवेऽपि यदिदं देशचरणमधिकृत्योक्तं तद्देशचरणपूर्वकं प्रायः सर्वचरणमिति प्रतिपत्त्यर्थं, तथा चोक्तम्—"[1]सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होइ। चरणोवसमखयाणं सागर संखंतरा होंति ॥ १ ॥" इति, अत्र यदाद्यं व्याख्यानं तत्स्त्रीवेदचिन्तायामपि द्रष्टव्यं, यच्च स्त्रीवेदचिन्तायां व्याख्यातं तदत्रापीति, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी

१ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेनैव श्रावको भवति। चरणोपशमक्षयाणां सागरोपमाणि संख्यातानि अन्तरं भवन्ति ॥ १ ॥

वर्षाष्टकादूर्ध्वमुत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष एव चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, कर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, चरणप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च सुषमसुषमारके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमेकं पल्योपममुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहकस्यापरविदेहकस्य वाऽकर्म्मभूमौ संहृतस्य जघन्येनोत्कर्षत एतावदायुःप्रमाणसम्भवात्, हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना प्रागिव, हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन देशोनपल्योपमासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः परिपूर्णपल्योपमासङ्ख्येयभागः, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति ॥

देवपुरिसाणमित्यादि, देवपुरुषाणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायाम-

सुरकुमारपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत: सातिरेकमेकं सागरोपमं, नागकुमारादिपुरुषाणां सर्वेषामपि जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोने द्वे पल्योपमे, व्यन्तरपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत: पल्योपमं, ज्योतिष्कदेवपुरुषाणां जघन्यत: पल्योपमस्याष्टमो भाग उत्कर्षत: परिपूर्णं पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, सौधर्मकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यत: पल्योपममुत्कर्षत: द्वे सागरोपमे ईशान–[ग्रन्थाग्रम् २०००] कल्पदेवपुरुषाणां जघन्यत: साधिकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे सातिरेके सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषाणां च जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षत: सप्त सागरोपमाणि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यत: सातिरेके द्वे सागरोपमे उत्कर्षत: सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मलोकदेवानां जघन्यत: सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश लान्तककल्पदेवानां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश महाशुक्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षत: सप्तदश सहस्रारकल्पदेवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश आनतकल्पदेवानां जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविंशति: प्राणतकल्पदेवानां जघन्यत एकोनविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशति: आरणकल्पदेवानां जघन्यतो विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत एकविंशति: अच्युतकल्पदेवानां जघन्यत एकविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशति: अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतो द्वाविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशति: अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रयोविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्विंशति: अधस्तनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतश्चतुर्विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: पञ्चविंशति: मध्यमाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन पञ्चविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: षड्विंशति: मध्यममध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यत: षड्विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: सप्तविंशति: मध्यमोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन सप्तविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टाविंशति: उपरितनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघ-

श्रीजीवाजीवाभि० मलयगिरीयावृत्तिः ॥ ६६ ॥

२ प्रतिपत्तौ पुरुषवेदबन्धस्थितिः सू० ५२

वर्षाष्टकादूर्ध्वमुत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष एव चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, कर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, चरणप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च सुषमसुषमारके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागन्यूनमेकं पल्योपममुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहकस्यापरविदेहकस्य वाऽकर्मभूमौ संहृतस्य जघन्येनोत्कर्षेण एतावदायुःप्रमाणसम्भवात्, हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना प्राग्वत्, हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन देशोनपल्योपमासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः परिपूर्णपल्योपमासङ्ख्येयभागः, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति ॥

देवपुरिसाणमित्यादि, देवपुरुषाणां सामान्यतो जघन्यतः दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायाम-

॥ ६६ ॥

सुरकुमारपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सातिरेकमेकं सागरोपमं, नागकुमारादिपुरुषाणां सर्वेषामपि जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोने द्वे पल्योपमे, व्यन्तरपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः पल्योपमं, ज्योतिष्कदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपमस्याष्टमो भाग उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, सौधर्मकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः द्वे सागरोपमे ईशान–[ग्रन्थाग्रम् २०००] कल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः साधिकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे सातिरेके सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषाणां च जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सप्त सागरोपमाणि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः सातिरेके द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मलोकदेवानां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश लान्तककल्पदेवानां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश महाशुक्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश सहस्रारकल्पदेवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश आनतकल्पदेवानां जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविंशतिः प्राणतकल्पदेवानां जघन्यत एकोनविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशतिः आरणकल्पदेवानां जघन्यतो विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकविंशतिः अच्युतकल्पदेवानां जघन्यत एकविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशतिः अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्विंशतिः अधस्तनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतश्चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः पञ्चविंशतिः मध्यमाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन पञ्चविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः षड्विंशतिः मध्यममध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतः षड्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तविंशतिः मध्यमोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन सप्तविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टाविंशतिः उपरितनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघ-

न्येनाष्टाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनत्रिंशत् उपरितनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्येनैकोनत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रिंशत् उपरितनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षत एकत्रिंशत् सागरोपमाणि विजयवैजयन्तजयन्तापराजितविमानदेवानां जघन्येनैकत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि सर्वार्थसिद्धमहाविमानदेवानामजघन्योत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । कचिदेवं सूत्रपाठः—“देवपुरिसाण ठिई जहा पण्णवणाए ठिइपए तहा भाणियव्वा” इति, तत्र स्थितिपदेऽप्येवमेवोक्ता स्थितिरिति ॥ उक्तं पुरुषस्य भवस्थितिमानमधुना पुरुषः पुरुषत्वममुञ्चन् कियन्तं कालं निरन्तरमवतिष्ठते इति निरूपणार्थमाह—

पुरिसे णं भंते ! पुरिसे त्ति कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं । तिरिक्खजोणियपुरिसे णं भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं तं चेव, संचिट्ठणा जहा इत्थीणं जाव खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसस्स संचिट्ठणा । मणुस्सपुरिसाणं भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्ने० अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी एवं सव्वत्थ जाव पुव्वविदेहअवरविदेह, अकम्मभूमगमणुस्सपुरिसाण जहा अकम्मभूमकमणुस्सित्थीणं जाव अंतरदीवगाणं जच्चेव ठिती सच्चेव संचिट्ठणा जाव सव्वट्ठसिद्धगाणं ॥ (सू० ५४)

पुरुषो णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! पुरुष इति पुरुषभावापरित्यागेन 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम !

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तावतः कालादूर्ध्वं मृत्वा स्त्र्यादिभावगमनाद्, उत्कर्षतः सातिरेकं सागरोपमशतपृथक्त्वं, सामान्येन तिर्यङ्नरामरभवेष्वेतावन्तं कालं पुरुषेष्वेव भावसम्भवात्, सातिरेकता कतिपयमनुष्यभवैर्वेदितव्या, अत ऊर्ध्वं पुरुषनामकर्मोदयाभावतो नियमत एव स्त्र्यादिभावगमनात् । तिर्यग्योनिकपुरुषाणां यथा तिर्यग्योनिकस्त्रीणां तथा वक्तव्यं, तच्चैवम्—तिर्यग्योनिकपुरुषस्तिर्यग्योनिकपुरुषत्वमजहत् जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्र पूर्वकोटिपृथक्त्वं सप्त भवाः पूर्वकोट्यायुषः पूर्वविदेहादौ (यतः) त्रीणि पल्योपमान्यष्टमे भवे देवकुरूत्तरकुरुषु, (यतः) विशेषचिन्तायां जलचरपुरुषो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मरणभावेन तिर्यग्योन्यन्तरे गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, पूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्य भूयो भूयस्तत्रैव द्व्यादिवारोत्पत्तिसम्भवात् । चतुष्पदस्थलचरपुरुषो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि सामान्यतिर्यक्पुरुषस्येव भावनीयानि । उरःपरिसर्पस्थलचरपुरुषो भुजपरिसर्पस्थलचरपुरुषश्च जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च जलचरपुरुषस्येव भावनीयं । खचरपुरुषो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, अन्तर्मुहूर्त्तभावना सर्वत्रापि प्रागिव, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, स च सप्त वारान् पूर्वकोटिस्थितिपूत्पद्याष्टमवारमन्तरद्वीपादिखचरपुरुषेषु पल्योपमासङ्ख्येयभागस्थितिषूत्पद्यमानस्य वेदितव्यः । 'मणुस्सपुरिसाणं जहा मणुस्सित्थीण'मिति, मनुष्यपुरुषाणां यथा मनुष्यस्त्रीणां तथा वक्तव्यं, तच्चैवं—सामान्यतो मनुष्यपुरुषस्य क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्ध्वं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्र सप्त भवाः पूर्वकोट्यायुषो महाविदेहेषु अष्टमस्तु देवकुर्वादिषु, धर्मचरणं प्रतीत्य समयमेकं, द्वितीयसमये मरणभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, उत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष

एव वर्षाष्टकादूर्द्ध्वं चरणप्रतिपत्तिभावात्, विशेषचिन्तायां सामान्यतः कर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषः कर्मभूमिरूपं क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्रान्तर्मुहूर्त्तभावना प्रागिव, त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि सप्त वारान् पूर्वकोट्यायुःसमन्वितेषूत्पद्याष्टमं वारमेकान्तसुषमायां भरतैरावतयोस्त्रिपल्योपमस्थितिपूत्पद्यमानस्य वेदितव्यानि, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयं, सर्वविरतिपरिणामस्यैकसामयिकस्यापि सम्भवात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, समप्रचरणकालस्याप्येतावत एव भावात्। भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषोऽपि भरतैरावतक्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनपूर्वकोट्यभ्यधिकानि, तानि च पूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्य विदेहपुरुषस्य भरतादौ संहृत्यानीतस्य भरतादिवासयोगाद् भरतादिप्रवृत्तव्यपदेशस्य भवायुःक्षये एकान्तसुषमाप्रारम्भे समुत्पन्नस्य वेदितव्यानि, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, एतच्च द्वयमपि प्रागिव भावनीयं, पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषः क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च भूयो भूयस्तत्रैव सप्तवारानुत्पत्त्या भावनीयं, अत ऊर्द्ध्वं त्ववश्यं गत्यन्तरे योन्यन्तरे वा संक्रमभावात्, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी। तथा सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषस्तद्भावमपरित्यजन् जन्म प्रतीत्य जघन्यत एकं पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्चान्तर्मुहूर्त्तायुःशेषस्याकर्म्मभूमिषु संहृतस्य वेदितव्यं, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, तानि च देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्योत्तरकुर्वादौ संहृतस्य तत्रैव मृत्वोत्पन्नस्य वेदितव्यानि, देशोनता च पूर्वकोट्या गर्भकालेन न्यूनत्वाद्, गर्भस्थितस्य संहरणप्रतिषेधात्। हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं पल्योपममुत्कर्षतः परिपूर्णं

पल्योपमं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकमेकं पल्योपमं, अत्र भावना प्रागुक्तानुसारेण स्वयं कर्त्तव्या। हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने, उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, जघन्यत उत्कर्षतश्च तत्रैतावत आयुषः सम्भवात्, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं न्यूनान्तर्मुहूर्त्तायुषः संहरणाऽसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिके द्वे पल्योपमे, भावनाऽत्र प्राग्वत्। देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषः क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनपूर्वकोट्यधिकानि। अन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य देशोनं पल्योपमासङ्ख्येयभागमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमासङ्ख्येयभागं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिसमभ्यधिकः पल्योपमासङ्ख्येयभागः। 'देवाणं जा चेव ठिई सा चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' देवानां यैव स्थितिः प्रागभिहिता सैव 'संचिट्ठणा' इति कायस्थितिर्भणितव्या, नन्वनेकभवभावाश्रया कायस्थितिः सा कथमेकस्मिन् भवे भवति?, नैष दोषः, देवपुरुषो देवपुरुषत्वापरित्यागेन कियन्तं कालं यावन्निरन्तरं भवति? इत्येतावदेवात्र विवक्षितं, तत्र देवो मृत्वाऽऽनन्तर्येण भूयो देवो न भवति ततः 'देवाणं जा ठिई सा चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' इत्यतिदेशः कृतः॥ तदेवमुक्तं सातत्येनावस्थानमिदानीमन्तरमाह—

पुरिसस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! जह० एक्कं समयं उक्को० वणस्सतिकालो तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो एवं जाव खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसाणं॥ मणुस्सपुरिसाणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! खेत्तं

पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं अणंताओ उस्स० जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, कम्मभूमकाणं जाव विदेहो जाव धम्मचरणे एक्को समओ सेसं जहित्थीणं जाव अंतरदीवकाणं ॥ देवपुरिसाणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, भवणवासिदेवपुरिसाणं ताव जाव सहस्सारो, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो । आणतदेवपुरिसाणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! जह० वासपुहुत्तं उक्को० वणस्सतिकालो, एवं जाव गेवेज्जदेवपुरिसस्सवि । अणुत्तरोववातियदेवपुरिसस्स जह० वासपुहुत्तं उक्को० संखेज्जाइं सागरोवमाइं साइरेगाइं ॥ (सू० ५५)

'पुरिसस्सणं' इत्यादि, पुरुषस्य णमिति वाक्यालङ्कारे पूर्ववत् भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, पुरुषः पुरुषत्वात्परिभ्रष्टः सन् पुनः कियता कालेन तदवाप्नोतीत्यर्थः, तत्र भगवानाह—गौतम! जघन्येनैकं समयं—समयादनन्तरं भूयोऽपि पुरुषत्वमवाप्नोतीति भावः, इयमत्र भावना—यदा कश्चित्पुरुष उपशमश्रेणिगत उपशान्ते पुरुषवेदे समयमेकं जीवित्वा तदनन्तरं म्रियते तदाऽसौ नियमाद्देवपुरुषेपूत्पद्यते इति समयमेकमन्तरं पुरुषत्वस्य, ननु स्त्रीनपुंसकयोरपि श्रेणिलाभो भवति तत्कस्मादनयोरप्येवमेकः समयोऽन्तरं न भवति?, उच्यते, स्त्रिया नपुंसकस्य च श्रेण्यारूढाववेदकभावानन्तरं मरणेन तथाविधशुभाध्यवसायतो नियमेन देवपुरुषत्वेनोत्पादात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स चैवमभिलपनीयः—"अणंताओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालतो खेत्तओ अणंता लोगा असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइ भागो" इति ॥ तदेवं सामान्यतः पुरुषत्वस्यान्तरमभिधाय सम्प्रति तिर्यक्पुरुषविष-

यमतिदेशमाह—'जं तिरिक्खजोणित्थीणमंतर'मित्यादि, यत्तिर्यग्योनिकस्त्रीणामन्तरं प्रागभिहितं तदेव तिर्यग्योनिकपुरुषाणामप्यविशेषितं वक्तव्यं, तच्चैवम्—सामान्यतस्तिर्यक्पुरुषस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं तावत्कालस्थितिना मनुष्यादिभवेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्ताख्यः, तावता कालेनामुक्तौ सत्यां नियोगतः पुरुषत्वयोगात्, एवं विशेषचिन्तायां जलचरपुरुषस्य स्थलचरपुरुषस्य खचरपुरुषस्यापि प्रत्येकं जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं ॥ सम्प्रति मनुष्यपुरुषत्वविषयान्तरप्रतिपादनार्थमतिदेशमाह—'जं मणुस्सइत्थीणमंतरं तं मणुस्सपुरिसाण'मिति, यन्मनुष्यस्त्रीणामन्तरं प्रागभिहितं तदेव मनुष्यपुरुषाणामपि वक्तव्यं, तच्चैवम्—सामान्यतो मनुष्यपुरुषस्य जघन्यतः क्षेत्रमधिकृत्यान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च प्रागिव भावनीयं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यत एकं समयं, चरणपरिणामात्परिभ्रष्टस्य समयानन्तरं भूयोऽपि कस्यचिच्चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनापार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः, एवं भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य जन्म प्रतीत्य चरणमधिकृत्य च प्रत्येकं जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं । सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तरं दश वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, अकर्मभूमकमनुष्यपुरुषत्वेन मृतस्य जघन्यस्थितिषु देवेषूत्पद्य[ते], ततोऽपि च्युत्वा कर्मभूमिषु स्त्रीत्वेन पुरुषत्वेन वोत्पद्य कस्याप्यकर्मभूमित्वेन भूयोऽप्युत्पादात्, देवभवाच्च्युत्वाऽनन्तरमकर्म्मभूमिषु मनुष्यत्वेन तिर्यक्सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियत्वेन वा उत्पादाभावादपान्तराले कर्म्मभूमिकेषु मृत्वोत्पादाभिधानं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, अकर्म्मभूमेः कर्म्मभूमिषु संहृत्यान्तर्मुहूर्त्तानन्तरं तथाविधबुद्धिपरावर्त्तादिभावतो भूयस्तत्रैव नयनसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एतावतः कालादूर्द्ध्वमकर्मभूमिषूत्पत्तिवत् संहरणस्यापि नियोगतो भावात् । एवं हैमवतैरण्यवतादिष्वप्यकर्म्मभूमिषु जन्मतः संहरणतश्च जघन्यत

उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं यावदन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषवक्तव्यता ॥ सम्प्रति देवपुरुषाणामन्तरप्रतिपादनार्थमाह—'देवपुरिसस्स णं भंते!' इत्यादि, देवपुरुषस्य भदन्त! कालतः कियच्चिरमन्तरं भवति ?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, देवभवाच्च्युत्वा गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येषूत्पद्य पर्याप्तिसमाप्त्यनन्तरं तथाविधाध्यवसायमरणेन भूयोऽपि कस्यापि देवत्वेनोत्पादसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवमसुरकुमारादारभ्य निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावत्सहस्रारकल्पदेवपुरुषस्यान्तरं, आनतकल्पदेवस्यान्तरं जघन्येन वर्षपृथक्त्वं, कस्मादेतावदिहान्तरमिति चेदुच्यते इह यो गर्भस्थः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः स शुभाध्यवसायोपेतो मृतः सन् आनतकल्पादारतो ये देवास्तेषूत्पद्यते नानतादिषु, तावन्मात्रकालस्य तद्योग्याध्यवसायविशुद्ध्यभावात्, ततो य आनतादिभ्यश्च्युतः सन् भूयोऽप्यानतादिषूत्पत्स्यते स नियमाच्चारित्रमवाप्य, चारित्रं चाष्टमे वर्षे, तत उक्तं जघन्यतो वर्षपृथक्त्वम्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवं प्राणतारणाच्युतकल्पग्रैवेयकदेवपुरुषाणामपि प्रत्येकमन्तरं जघन्यत उत्कर्षतश्च वक्तव्यम्, अनुत्तरोपपातिककल्पातीतदेवपुरुषस्य जघन्यतोऽन्तरं वर्षपृथक्त्वमुत्कर्षतः सङ्ख्येयानि सागरोपमाणि सातिरेकाणि, तत्र सङ्ख्येयानि सागरोपमाणि तदन्यवैमानिकेषु सङ्ख्येयवारोत्पत्त्या, सातिरेकाणि मनुष्यभवैः, तत्र सामान्याभिधानेऽप्येतदपराजितान्तमवगन्तव्यं, सर्वार्थसिद्धे सकृद्देवोत्पादतस्तत्रान्तरासम्भवात्, अन्ये त्वभिदधति—भवनवासिन आरभ्य आईशानादमरस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, सनत्कुमारादारभ्यासहस्राराञ्च दिनानि, आनतकल्पादारभ्याच्युतकल्पं यावन्नव मासाः, नवसु ग्रैवेयकेषु सर्वार्थसिद्धमहाविमानवर्जेष्वनुत्तरविमानेषु च नव वर्षाणि, ग्रैवेयकान् यावत् सर्वत्राप्युत्कर्षतो वनस्पतिकालः, विजयादिषु चतुर्षु महाविमानेषु द्वे सागरोपमे, उक्तञ्च—"आईसाणादमरस्स

१ आईशानादन्तरममराणां हीनं मुहूर्त्तान्त॰ । आ सहस्रारात् अच्युतात् अनुत्तरात् दिनमासवर्षनवकम् ॥ १ ॥ स्थावरकाल उत्कृष्टः सर्वार्थे द्वितीयो नोत्पादः । द्वे सागरोपमे विजयादिषु.

अंतरं हीणयं मुहुत्तंतो । आसहसारे अच्चुयणुत्तरदिणमासवासनव ॥ १ ॥ थावरकालुक्कोसो सव्वट्ठे बीयओ न उववाओ । दो अयरा विजयादिसु" इति ॥ तदेवमुक्तमन्तरं, साम्प्रतमल्पबहुत्वं वक्तव्यं, तानि च पञ्च, तद्यथा—प्रथमं सामान्याल्पबहुत्वं, द्वितीयं त्रिविधतिर्यक्पुरुषविषयं, तृतीयं त्रिविधमनुष्यपुरुषविषयं, चतुर्थं चतुर्विधदेवपुरुषविषयं, पञ्चमं मिश्रपुरुषविषयं, तत्र प्रथमं तावदभिधित्सुराह—

अप्पाबहुयाणि जहेवित्थीणं जाव एतेसि णं भंते ! देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणियदेवपुरिसा भवणवइदेवपुरिसा असंखे० वाणमंतरदेवपुरिसा असंखे० जोतिसिया देवपुरिसा संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमकाणं अकम्मभूमकाणं अंतरदिव० देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमन्तराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं सोधम्माणं जाव सव्वट्ठसिद्धगाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा बहुगा वा जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगमणुस्सपुरिसा देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्ज० हरिवासरम्मगवासअक० दोवि संखेज्जगुणा हेमवतहेरण्णवतवासअकम्म० दोवि संखि० भरहेरवतवासकम्मभूमगमणु० दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभू० दोवि संखे० अणुत्तरोववा-

तियदेवपुरिसा असंखि० उवरिमगेविज्जदेवपुरिसा संखेज्ज० मज्झिमगेविज्जदेवपुरिसा संखेज्ज० हेट्ठिमगेविज्जदेवपुरिसा संखे० अच्चुयकप्पे देवपुरिसा संखे०, जाव आणतकप्पे देवपुरिसा संखेज्ज० सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखे० महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखे० जाव माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखे० सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असं० ईसाणकप्पे देवपुरिसा असंखे० सोधम्मे कप्पे देवपुरिसा संखे० भवणवासिदेवपुरिसा असंखे० खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा असंखे० थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० जलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा असंखे० वाणमंतरदेवपुरिसा संखे०, जोतिसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा ॥ (सू० ५६)

'पुरिसाणं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो देवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तिर्यग्योनिकपुरुषाणां यथा तिर्यग्योनिकस्त्रीणां मनुष्यपुरुषाणां यथा मनुष्यस्त्रीणामल्पबहुत्वं (तथा) वक्तव्यं । सम्प्रति देवपुरुषाणामल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोका अनुत्तरोपपातिकदेवपुरुषाः, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्य उपरितनग्रैवेयकदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिमानत्वात्, कथमेतदवसेयमिति चेदुच्यते—विमानबाहुल्यात्, तथाहि—अनुत्तरदेवानां पञ्च विमानानि, विमानशतं तूपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे, प्रतिविमानं चासङ्ख्येया देवाः, यथा चाधोऽधोवर्त्तीनि विमानानि तथा तथा देवा अपि प्राचुर्येण लभ्यन्ते, ततोऽवसी-

यते—अनुत्तरविमानवासिदेवपुरुषापेक्षया बृहत्तरक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा उपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे देवपुरुषाः (संख्येयगुणा) एवमुत्तरत्रापि भावना विधेया, तेभ्यो मध्यमग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटदेव-पुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यच्युतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यारणकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, यद्यप्यारणाच्युत-कल्पौ समश्रेणीकौ समविमानसङ्ख्याकौ च तथाऽपि कृष्णपाक्षिकास्तथास्वाभाव्यात्प्राचुर्येण दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते । अथ के ते कृष्णपाक्षिकाः ?, उच्यते; इह द्वये जीवाः, तद्यथा—कृष्णपाक्षिकाः शुक्लपाक्षिकाश्च, तत्र येषां किञ्चिदूनोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः संसारस्ते शुक्लपाक्षिकाः, इतरे दीर्घसंसारभाजिनः कृष्णपाक्षिकाः, उक्तञ्च—"जेसिमवड्ढो पुग्गलपरियट्टो सेसओ य संसारो । ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण कण्हपक्खीया ॥ १ ॥" अत एव स्तोकाः शुक्लपाक्षिकाः, अल्पसंसाराणां स्तोकानामेव सम्भवात्, बहवः कृष्णपाक्षिकाः, दीर्घसंसाराणामनन्तानन्तानां भावात्, अथ कथमेतदवसातव्यं यथा कृष्णपाक्षिकाः प्राचुर्येण दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते, उच्यते, तथास्वाभाव्यात्, तच्च तथास्वाभाव्यमेवं पूर्वाचार्यैर्युक्तिभिरुपबृंहितं—कृष्णपाक्षिकाः खलु दीर्घसंसार-भाजिन उच्यन्ते, दीर्घसंसारभाजिनश्च बहुपापोदयात्, बहुपापोदयाश्च क्रूरकर्माणः, क्रूरकर्माणश्च प्रायस्तथास्वाभाव्याद् तद्भव-सिद्धिका अपि दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते; यत उक्तम्—"पायमिह कूरकम्मा भवसिद्धीयावि दाहिणिल्लेसु । नेरइयतिरियमणुया सुराइठाणेसु गच्छंति ॥ १ ॥" ततो दक्षिणस्यां दिशि प्राचुर्येण कृष्णपाक्षिकाणां सम्भवादुपपद्यते—अच्युतकल्पदेवपुरुषापेक्षयाऽऽर-

---

१ येषामपार्धः पुद्गलपरावर्त्तः शेष एव संसारः । ते शुक्लपाक्षिकाः खलु अधिके पुनः कृष्णपाक्षिकाः ॥ १ ॥ २ प्राय इह क्रूरकर्माणो भवसिद्धिका अपि दाक्षि-णात्येषु । नैरयिकतिर्यङ्मनुजासुरादिस्थानेषु गच्छन्ति ॥ १ ॥

णकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि प्राणतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यानतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, अत्रापि प्राणतकल्पापेक्षया सङ्ख्येयगुणत्वं कृष्णपाक्षिकाणां दक्षिणस्यां दिशि प्राचुर्येण भावात्, एते च सर्वेऽप्यनुत्तरविमानवास्यादय आनतकल्पवासिपर्यन्तदेवपुरुषाः प्रत्येकं क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा द्रष्टव्याः, "[1]आणयपाणयमाई पल्लस्सासंखभागो उ" इति वचनात्, केवलमसङ्ख्येयो भागो विचित्र इति परस्परं यथोक्तं सङ्ख्येयगुणत्वं न विरुध्यते, आनतकल्पदेवपुरुषेभ्यः सहस्रारकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिक्याः श्रेणेरसङ्ख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्योऽपि महाशुक्रकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरश्रेण्यसङ्ख्येयभागाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, कथमेतत्प्रत्येयमिति चेदुच्यते—विमानबाहुल्यात्, तथाहि—षट् सहस्राणि विमानानां सहस्रारकल्पे चत्वारिंशत्सहस्राणि महाशुक्रे, अन्यच्चाधोविमानवासिनो देवा बहुबहुतराः स्तोकस्तोकतरा उपरितनोपरितनविमानवासिनस्तत उपपद्यन्ते सहस्रारकल्पदेवपुरुषेभ्यो महाशुक्रकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि लान्तककल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि ब्रह्मलोककल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भूयोबृहत्तमश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भूयस्तरबृहत्तमनभःश्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्यः सनत्कुमारकल्पदेवा असङ्ख्येयगुणाः, विमानबाहुल्यात्, तथाहि—द्वादश शतसहस्राणि सनत्कुमारकल्पे विमानानामष्टौ शतसहस्राणि माहेन्द्रकल्पे अन्यच्च दक्षिणदिग्भागवर्त्ती सनत्कुमारकल्पो माहेन्द्रकल्पश्चोत्तरदिग्वर्त्ती दक्षिणस्यां च दिशि बहवः

1 आनतप्राणतादयः पल्योपमस्यासङ्ख्यो भागस्तु

समुत्पद्यन्ते कृष्णपाक्षिकाः, तत उपपद्यन्ते माहेन्द्रकल्पात्सनत्कुमारकल्पे देवा असङ्ख्येयगुणाः, एते च सर्वेऽपि सहस्रारकल्पवासिदे-वादयः सनत्कुमारकल्पवासिदेवपर्यन्ताः प्रत्येकं स्वस्थाने चिन्त्यमाना घनीकृतलोकैकश्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणा द्रष्टव्याः, केवलं श्रेण्यसङ्ख्येयभागोऽसङ्ख्येयभेदभिन्नस्तत इत्थमसङ्ख्येयगुणतयाऽल्पबहुत्वमभिधीयमानं न विरोधभाक्, सनत्कुमार-कल्पदेवपुरुषेभ्य ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसम्बन्धिनि द्वितीये वर्गमूले तृतीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्सङ्ख्याकासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यः सौधर्मकल्पवासिदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, विमानबाहुल्यात्, तथाहि—अष्टाविंशतिः शतसहस्राणि विमानानामीशानकल्पे द्वात्रिंशच्छतसहस्राणि सौधर्म्मकल्पे, अपि च दक्षिणदिग्वर्त्ती सौधर्म्मकल्प ईशानकल्पश्चोत्तरदिग्वर्त्ती, दक्षिणस्यां च दिशि बहवः कृष्णपाक्षिका उत्पद्यन्ते, तत ईशानकल्पवासिदेवपुरुषेभ्यः सौधर्मकल्पवासिदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, नन्वियं युक्तिः सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोरप्युक्ता, परं तत्र माहेन्द्रकल्पापेक्षया सनत्कुमारकल्पे देवा असङ्ख्येयगुणा उक्ता इह तु सौधर्मे कल्पे सङ्ख्येयगुणास्तदेतत्कथम्?, उच्यते, तथावस्तुस्वाभाव्यात्, एतच्चावसीयते प्रज्ञापनादौ सर्वत्र तथाभणनात्, तेभ्योऽपि भवनवासि-देवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः सम्बन्धिनि प्रथमे वर्गमूले द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिरुपजायते तावत्सङ्ख्याकासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो व्यन्तरदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यः सङ्ख्येयगुणा ज्योतिष्कदेवपुरुषाः, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वया-

ङ्गुलप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥ सम्प्रति पञ्चममल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषाः, क्षेत्रस्य स्तोकत्वात्, तेभ्योऽपि देवकुरूत्तरकुरुमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्य बहुत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्यातिबहुत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य समानत्वात्, तेभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्याल्पत्वेऽप्यल्पस्थितिकतया प्राचुर्येण लभ्यमानत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, अजितस्वामिकाले उत्कृष्टपदे (इव) स्वभावत एव भरतैरावतेषु [च] मनुष्यपुरुषाणामतिप्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने च द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य तुल्यत्वात्, तेभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यादजितस्वामिकाले इव स्वभावत एव मनुष्यपुरुषाणां प्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽनुत्तरोपपातिकदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तदनन्तरमुपरितनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा मध्यमग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा अधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा अच्युतकल्पदेवपुरुषा आरणकल्पदेवपुरुषाः प्राणतकल्पदेवपुरुषा आनतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, भावना प्रागिव, तदनन्तरं सहस्रारकल्पदेवपुरुषा लान्तककल्पदेवपुरुषा ब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषा माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाः सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषा ईशानकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषेभ्यो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भावना सर्वत्रापि प्रागिव, तेभ्यः खचरतिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्,

तेभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्रापि प्रागिव, तेभ्योऽपि वानमन्तरदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो ज्योतिष्कदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिः प्रागेवोक्ता ॥

पुरिसवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवतियं कालं बंधट्ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अट्ठ संवच्छराणि, उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दसवाससयाइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ ॥ पुरिसवेदे णं भंते! किंपकारे पण्णत्ते?, गोयमा! वणदवग्गिजालसमाणे पण्णत्ते, सेत्तं पुरिसा ॥ (सू० ५७)

पुरुषवेदस्थितिर्जघन्यतोऽष्टौ संवत्सराणि, एतन्न्यूनस्य तन्निबन्धनविशिष्टाध्यवसायाभावतो जघन्यत्वेनासम्भवात्, उत्कर्षतो दश सागरोपमकोटीकोटयः, दश वर्षशतान्यबाधा, अबाधोना कर्म्मस्थितिः कर्मनिषेकः, अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ तथा पुरुषवेदो भदन्त! किंप्रकारः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! दवाग्निज्वालासमानः, प्रारम्भे तीव्रमदनदाह इति भावः, प्रज्ञप्तः ॥ व्याख्यातः पुरुषाधिकारः, सम्प्रति नपुंसकाधिकारप्रस्तावः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

से किं तं णपुंसका?, णपुंसका तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—नेरइयनपुंसका तिरिक्खजोणियनपुंसका मणुस्सजोणियणपुंसका ॥ से किं तं नेरइयनपुंसका?, नेरइयनपुंसका सत्तविधा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसका सक्करप्पभापुढविनेरइयनपुंसका जाव अधेसत्तमपुढविनेरइयणपुं-

सका, से तं नेरइयनपुंसका ॥ से किं तं तिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा– एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका, बेइंदि० तेइंदि० चउ० पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका ?, २ पञ्चविधा पण्णत्ता, तं० पु० आ० ते० वा० व० से तं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ से किं तं बेइंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता०, से तं बेइंदियतिरिक्खजोणिया, एवं तेइंदियावि, चउरिंदियावि ॥ से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा–जलयरा थलयरा खहयरा । से किं तं जलयरा ?, २ सो चेव पुव्वुत्तभेदो आसालियवज्जितो भाणियव्वो, से तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ सो किं तं मणुस्सनपुंसका ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा–कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवका, भेदो जाव भा० ॥ (सू० ५८)

'से किं तं नपुंसगा' इत्यादि, अथ के ते नपुंसका ?, नपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नैरयिकनपुंसकास्तिर्यग्योनिकनपुंसका मनुष्यनपुंसकाश्च ॥ नैरयिकनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते नैरयिकनपुंसकाः ?, पृथ्वीभेदेन सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकनपुंसकाः शर्कराप्रभापृथ्वीनैरयिकनपुंसकाः यावदधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, उपसंहारमाह—'से तं नेरइयनपुंसका' ॥ सम्प्रति तिर्यग्योनिकनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम्, भगवानाह–तिर्यग्योनिकनपुंसकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यावत्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः ॥

२प्रतिपत्तौ पुरुषवेद स्थिति-प्रकारौ सू० ५७ नपुंसक-भेदाः सू० ५८

एकेन्द्रियनपुंसकप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकास्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका वायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः, उपसंहारमाह—'सेत्तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका' ॥ द्वीन्द्रियनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'बेइंदिए'त्यादि, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका भदन्त ! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! अनेकविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—"पुलाकिमिया" इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावच्चतुरिन्द्रियभेदपरिसमाप्तिः ॥ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका भदन्त ! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च, एवं च प्राग्वत्सप्रभेदा वक्तव्याः, उपसंहारमाह—'से तं पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगा' । 'से किं तं'मित्यादि, अथ के ते मनुष्यनपुंसकाः ?, मनुष्यनपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च, एतेऽपि प्राग्वत्सप्रभेदा वक्तव्याः ॥ उक्तो भेदः, सम्प्रति स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

णपुंसकस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जह० अंतो० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ॥ नेरइयनपुंसगस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जह० दसवाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, सव्वेसिं ठिती भाणियव्वा जाव अधेसत्तमापुढविनेरइया । तिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिती प०, गोयमा !, जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी । एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसक० जह० अंतो० उक्को० बावीसं वाससह-

स्साइं, पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?, जह० अंतो० उक्को० बावीसं वाससहस्साइं, सव्वेसिं एगिंदियणपुंसकाणं ठिती भाणियव्वा, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियणपुंसकाणं ठिती भाणितव्वा। पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, एवं जलयरतिरिक्खचउप्पदथलयरउरगपरिसप्पभुयगपरिसप्पखहयरतिरिक्ख० सव्वेसिं जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। मणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमगभरहेरवयपुव्वविदेहअवरविदेहमणुस्सणपुंसकस्सवि तहेव, अकम्मभूमगमणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० अंतोमु० साहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, एवं जाव अंतरदीवकाणं॥ णपुंसए णं भंते! णपुंसए त्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्को० तरुकालो। णेरइयणपुंसए णं भंते!, २ गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, एवं पुढवीए ठिती भाणियव्वा। तिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते! ति०?, २ गोयमा! जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं एगिंदियणपुंसकस्स णं, वणस्सतिकाइयस्सवि एवमेव,

सेसाणं जह० अंतो० उक्को० असंखिज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ कालतो, खेत्तओ असंखेज्जा लोया । बेइंदियतेइंदियचउरिंदियनपुंसकाण य जह० अंतो० उक्को० संखेज्जं कालं । पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते!?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिपुहुत्तं । एवं जलयरतिरिक्खचउप्पदथलचरउरगपरिसप्पभुयगपरिसप्पमहोरगाणवि । मणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । एवं कम्मभूमगभरहेरवयपुव्वविदेहअवरविदेहेसुवि भाणियव्वं। अकम्मभूमकमणुस्सणपुंसए णं भंते! जम्मणं (पडुच्च) जह० अंतो० उक्को० मुहुत्तपुहुत्तं, साहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। एवं सव्वेसिं जाव अंतरदीवगाणं ॥ णपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं। णेरइयणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, जह० अंतो० उक्को० तरुकालो, रयणप्पभापुढवीनेरइयणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० तरुकालो, एवं सव्वेसिं जाव अधेसत्तमा । तिरिक्खजोणियणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं। एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं, पुढविआउतेउवाऊणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सइकालो ।

वणस्सतिकाइयाणं जह० अंतो० उक्को० असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया, सेसाणं बेइंदियादीणं जाव खहयराणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो। मणुस्सणपुंसकस्स खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एगं समयं उक्को० अणंतं कालं जावअवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं कम्मभूमकस्सावि भरतेरवतस्स पुव्वविदेहअवरविदेहकस्सवि। अकम्मभूमकमणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं०?, जम्मणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो एवं जाव अंतरदीवगत्ति॥ (सू० ५९)

'नपुंसगस्स णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरमन्तर्मुहूर्त्तं तिर्यग्मनुष्यापेक्षया द्रष्टव्यं, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सप्तमपृथिवीनारकापेक्षया॥ तदेवं सामान्यतः स्थितिरुक्ता, सम्प्रति विशेपतस्तां विचिचिन्तयिपुः प्रथमतः सामान्यतो विशेषतश्च नैरयिकनपुंसकविषयामाह—'नेरइयनपुंसगस्स ण'मित्यादि, सामान्यतो नैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायां रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत एकं सागरोपमं शर्करापृथिवीनैरयिकनपुंकसस्य जघन्यत एकं सागरोपममुत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्त पङ्कप्रभापृथवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश धूमप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश तमःप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वावि-

शतिः अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, क्वचिदतिदेशसूत्रं 'जहा पण्णवणाए ठिइपदे तहे' त्यादि, तत्राप्येवमेवातिदेशव्याख्याऽपि कर्त्तव्या। सामान्यतस्तिर्यग्योनिकनपुंसकस्य स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, सामान्यत एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि, विशेषचिन्तायां पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि अप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सप्त वर्षसहस्राणि तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि रात्रिन्दिवानि वातकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि वर्षसहस्राणि वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो दश वर्षसहस्राणि। द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि। त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि। चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः षण्मासाः। सामान्यतः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, विशेषचिन्तायां जलचरस्य स्थलचरस्य खचरस्यापि पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी॥ सामान्यतो मनुष्यनपुंसकस्यापि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, कर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, 'धर्मचरणं' बाह्यवेषपरिकरितप्रव्रज्याप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्ध्वं मरणादिभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, संवत्सराष्टकादूर्द्ध्वं प्रतिपद्याजन्मपालनात्, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य च क्षेत्रं धर्म्मचरणं च प्रतीत्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैवमेव वक्तव्यम्। अकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य

जन्म प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेणाप्यन्तर्मुहूर्त्तम्, अकर्म्मभूमौ हि मनुष्या नपुंसकाः संमूर्च्छिमा एव भवन्ति, न गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, युगलधर्मिणां नपुंसकत्वाभावात्, संमूर्च्छिमाश्च जघन्यत उत्कर्षतो वाऽन्तर्मुहूर्त्तायुषः, केवलं जघन्यादुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तं बृहत्तरमवसेयं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, संहरणादूर्ध्वमामरणान्तमवस्थानसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनता च पूर्वकोट्या गर्भान्निर्गतस्य संहरणसम्भवात्, एवं विशेषचिन्तायां हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य अन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसकस्य च जन्म संहरणं च प्रतीत्यैवमेव वक्तव्यम् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—'णपुंसगे णं भंते!' इत्यादि, नपुंसको भदन्त! नपुंसक इत्यादि, सामान्यतस्तद्वेदापरित्यागेन कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो वनस्पतिकालं, तत्रैकसमयता उपशमश्रेणिसमाप्तौ सत्यामवेदकत्वे सति उपशमश्रेणीतः प्रतिपततो नपुंसकवेदोदयसमयानन्तरं कस्यचिन्मरणात्, तथा मृतस्य चावश्यं देवोत्पादे पुंवेदोदयभावात्, वनस्पतिकालः—आवलिकासङ्ख्येयभागगतसमयराशिप्रमाणासङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणः। नैरयिकनपुंसककायस्थितिचिन्तायां यदेव सामान्यतो विशेषतश्च स्थितिमानं जघन्यत उत्कर्षतश्चोक्तं तदेवावसातव्यं, भवस्थितिव्यतिरेकेण तत्रान्यस्याः कायस्थितेरसम्भवात्। सामान्यतस्तिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितिचिन्तायां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, विशेषचिन्तायामेकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितावपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं भावना प्राग्वत्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालो यथोदितरूपः, तत्रापि विशेषचिन्तायां पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयकालोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीप्रमाणः, तथा चाह—"उक्कोसेणमसंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पि-

णीओसप्पिणीओ कालतो, खेत्ततो असंखिज्जा लोगा" एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिककायस्थितिष्वपि वक्तव्यं, वनस्पतिकायि-
ककायस्थितौ तथा वक्तव्यं यथा सामान्यत एकेन्द्रियकायस्थितौ । द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्क-
र्षतः सङ्ख्येयः कालः, स च सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि प्रतिपत्तव्यः । एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थित्योरपि वक्त-
व्यम् । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च निरन्तरं सप्तभवान् पूर्वकोट्यायुषो
नपुंसकत्वेनानुभवतो वेदितव्यं, तत ऊर्ध्वं त्ववश्यं वेदान्तरे विलक्षणभवान्तरे वा संक्रमात्, एवं जलचरस्थलचरखचरसामान्यतो मनु-
ष्यनपुंसककायस्थितिष्वपि वेदितव्यं, कर्मभूमकमनुष्यनपुंसककायस्थितौ क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतः पूर्वकोटीपृथक्त्वं
भावना प्रागिव, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी; अत्रापि भावना पूर्ववत् । एवं भरतैरावतकर्म्मभूम-
कमनुष्यनपुंसककायस्थितौ पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसककायस्थितौ च वाच्यं, सामान्यतोऽकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसककाय-
स्थितिचिन्तायां जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावत्यपि कालेऽसकृदुत्पादात्, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तपृथक्त्वं, तत ऊर्द्ध्वं तत्र तथोत्पादा-
भावात्, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्ध्वं मरणादिभावात् उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी । एवं हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्य-
कवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसककायस्थितिष्वपि वक्तव्यम् ॥ तदेवमुक्ता कायस्थितिः, साम्प्रतमन्तरमभिधित्सुरिदमाह—
'नपुंसगस्स ण'मित्यादि, नपुंसकस्य णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?, नपुंसको भूत्वा नपुंसकत्वात्प-
रिभ्रष्टः पुनः कियता कालेन नपुंसको भवतीत्यर्थः, भगवानाह—गौतम! जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता पुरुषादिकालेन व्यवधानात्,
उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, पुरुषादिकालस्यैतावत एव सम्भवात्, तथा चात्र सङ्ग्रहणिगाथा—"इत्थिनपुंसा संचि-

ट्ठणेसु पुरिसंतरे य समओ उ। पुरिसनपुंसा संचिट्ठणंतरे सागर पुहुत्तं ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—संचिट्ठणा नाम सातत्येनावस्थानं, तत्र स्त्रिया नपुंसकस्य च सातत्येनावस्थाने पुरुपान्तरे च जघन्यत एकः समय. तथा यथा प्रागभिहितम्—"इत्थीए णं भंते! इत्थीत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! एगेणं आदेसेणं जह० एगं समयं" इत्यादि, तथा—नपुंसगे णं भंते! नपुंसगत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जह० एकं समयं" इत्यादि, तथा—"पुरिसस्स णं भंते! अंतरं कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं एकं समयं" इत्यादि। तथा पुरुपस्य नपुंसकस्य यथाक्रमं संचिट्ठणा—सातत्येनावस्थानमन्तरं चोत्कर्पतः 'सागरपृथक्त्वं' पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् सागरोपमशतपृथक्त्वं, तथा च प्रागभिहितम्—"पुरिसे णं भंते! पुरिसेत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं" नपुंसकान्तरोत्कर्षप्रतिपादकं चेदमेवाधिकृतं तत्सूत्रमिति। तथा सामान्यतो नैरयिकनपुंसकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सप्तमनरकपृथिव्या उद्धृत्य तन्दुलमत्स्यादिभवेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः सप्तमनरकपृथिवीगमनस्य श्रवणात्, उत्कर्पतो वनस्पतिकालः, नरकभवादुद्धृत्य पारम्पर्येण निगोदेषु मध्ये गत्वाऽनन्तं कालमवस्थानात्, एवं विशेषचिन्तायां प्रतिपृथिव्यपि वक्तव्यं। तथा सामान्यचिन्तायां तिर्यग्योनिकनपुंसकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं, सातिरेकत्वभावना प्रागिव, विशेपचिन्तायां सामान्यत एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्यान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं तावता द्वीन्द्रियादिकालेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे, सङ्ख्येयवर्पाणि त्रसकायस्थितिकालस्य एकेन्द्रियत्वव्यवधायकस्योत्कर्षतोऽप्येतावत एव सम्भवात्। पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः। एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानामपि वक्तव्यं। वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्य-

तोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं यावत्, स चासङ्ख्येयः कालोऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, किमुक्तं भवति ?—असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशानां प्रतिसमयमेकैकापहारे यावत्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो भवन्ति तावन्त इत्यर्थः, वनस्पति-भवात्प्रच्युतस्यान्यत्रोत्कर्षत एतावन्तं कालमवस्थानसम्भवात्, तदनन्तरं संसारिणो नियमेन भूयो वनस्पतिकायिकत्वेनोत्पादसम्भवात् । द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानां जलचरस्थलचरखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानां सामान्यतो मनुष्यनपुंसकस्य च जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालो यथोक्तस्वरूपः प्रतिपत्तव्यः, कर्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्यान्तरं क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयं यावत्, लब्धिपातस्य सर्वजघन्यस्यैकसामयिकत्वात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेवानन्तं कालं निर्धारयति—"अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूण"मिति, एवं भरतैरावतपूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकानामपि क्षेत्रं धर्मचरणं च प्रतीत्य जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं प्रत्येकं वक्तव्यम् । अकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता गत्यन्तरादिकालेन व्यवधानभावात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्चैवं—कोऽपि कर्मभूमकमनुष्यनपुंसकः केनाप्यकर्मभूमौ संहृतः, स च मागधपुरुषस्थानापन्नत्वादकर्मभूमक इति व्यपदिश्यते, ततः कियत्कालानन्तरं तथाविधबुद्धिपरावर्त्तनभावतो भूयोऽपि कर्मभूमौ संहृतः, तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं भूत्वा पुनरप्यकर्मभूमावानीतः, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः । एवं विशेषचिन्तायां हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकदेवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकानामन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसकस्य च जन्म संहरणं च प्रतीत्य जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यम् ॥ तदेवमुक्तमन्तरमधुनाऽल्पबहुत्वमाह—

एतेसि णं भंते! णेरइयणपुंसकाणं तिरिक्खजोणियनपुंसकाणं मणुस्सणपुंसकाण य कयरे कयरे-हिन्तो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वथोवा मणुस्सणपुंसका नेरइयनपुंसगा असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा॥ एतेसि णं भंते! रयणप्पहापुढविणेरइयणपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइयणपुंसका छट्ठपुढविणेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढविणेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविकाइय जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराण य कतरे२हिन्तो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वथोवा खहयरतिरिक्खजोणियणपुंसका, थलयरतिरिक्खजोणियनपुंसका संखेज्ज० जलयरतिरिक्खजोणियनपुंसका संखेज्ज० चतुरिंदियतिरि० विसेसाहिया तेइंदियति० विसेसाहिया बेइंदियति० विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खा असंखेज्जगुणा पुढविक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया, एवं आउवाउवणस्सतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिणपुंसकाणं अकम्मभूमिणपुंसकाणं अंत-

२प्रतिपत्तौ नपुंसकानामल्पबहुत्वं सू० ६०

रदीवकाण य कतरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगा दोवि संखेज्जगुणा एवं जाव पुव्वविदेहअवरविदेहकम्म० दोवि संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! णेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसकाणं जाव अधेसत्तमापुढविणेरइयणपुंसकाणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइय० वेइंदियतेइंदियचतुरिंदियपंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिकाणं अकम्मभूमिकाणं अंतरदीवकाण य कतरे २ हिंतो अप्पा ४, गोयमा ! सव्वत्थोवा अधेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसका छट्ठपुढविनेरइयनपुंसका असंखेज्ज० जाव दोच्चपुढविणेरइयणपुं० असंखे० अंतरदीवगमणुस्सणपुंसका असंखेज्जगुणा, देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमिक० दोवि संखेज्जगुणा जाव पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा, रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसका असंखे० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका असं० थलयर० संखिज्ज० जलयर० संखिज्जगुणा चतुरिंदियतिरिक्खजोणिय० विसेसाहिया तेइंदिय० विसे० बेइंदिय० विसे० तेउक्काइयएगिंदिय० असं० पुढविकाइयएगिंदिय० विसेसाहिया

आउक्काइय० विसे० वाउक्काइय० विसेसा० वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ (सू० ६०)

'एएसि णं'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका मनुष्यनपुंसकाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ तद्गतप्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् ॥ सम्प्रति नैरयिकनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं'मित्यादि, सर्वस्तोका अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, अभ्यन्तरश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि षष्ठपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पञ्चमपृथ्वीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि चतुर्थपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, सर्वेषामप्येतेषां पूर्वपूर्वनैरयिकपरिमाणहेतुश्रेण्यसङ्ख्येयभागापेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणासङ्ख्येयगुणश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकेभ्योऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ तद्गतप्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, प्रतिपृथिवि च पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्भाविनो नैरयिकाः सर्वस्तोकाः, तेभ्यो दक्षिणदिग्भाविनोऽसङ्ख्येयगुणाः, पूर्वपूर्वपृथिवीगतदक्षिणदिग्भाविभ्योऽप्युत्तरस्यामुत्तरस्यां पृथिव्यामसङ्ख्येयगुणाः पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्भाविनः, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"दिसाणुवाएणं सव्व-

२ प्रतिपत्तौ नपुंसकानामल्पबहुत्वं सू० ६०

थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणेहिंतो अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो छट्ठाए तमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविनेरइएहिंतो पंचमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा,दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढवीनेरइएहितो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा"। सम्प्रति तिर्यग्योनिकनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं'मित्यादि, सर्वस्तोकाः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरप्रतरासंङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगतनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि जलचरतिर्यग्योनिकनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्योऽपि चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, असङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणाकाशप्रदेशराशिप्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यस्त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततरश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततमश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्यस्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अस-

ङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मबादरभेदभिन्नानां तेषामसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणत्वात्, तेभ्यः पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततरासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्योऽपि वायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततमासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् ॥ अधुना मनुष्यनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपजमनुष्यनपुंसकाः, एते च संमूर्च्छनजा द्रष्टव्याः, गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यनपुंसकानां तत्रासम्भवात्, संहृतास्तु कर्म्मभूमिजास्तत्र भवेयुरपि, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुरुवकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, तद्गतगर्भजमनुष्याणामन्तरद्वीपजगर्भजमनुष्येभ्यः सङ्ख्येयगुणत्वात्, गर्भजमनुष्योच्चाराद्याश्रयेण च संमूर्च्छिममनुष्याणामुत्पादात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, एवं तेभ्यो हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः तेभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवतवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतवर्षकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, युक्तिः सर्वत्रापि तथैवानुसर्त्तव्या ॥ सम्प्रति नैरयिकतिर्यग्मनुष्यविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, तेभ्यः षष्ठपञ्चमचतुर्थतृतीयद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकेभ्योऽन्तरद्वीपजमनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, एतदसङ्ख्येयगुणत्वं संमूर्च्छनजमनुष्यापेक्षं, तेषां नपुंसकत्वादेतावतां च तत्र संमूर्च्छनसम्भवात्,

तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थानचिन्तायां तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकेभ्योऽस्यां प्रत्यक्षत उपलभ्यमानायां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका जलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, जलचरपञ्चेन्द्रियनपुंसकेभ्यश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकेभ्यस्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः पृथिव्यम्बुवायुतिर्यग्यो-निकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, वाय्वेकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकेभ्यो वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, युक्तिः सर्वत्रापि प्रागुक्तानुसारेण स्वयं भावनीया ॥ सम्प्रति नपुंसकवेदकर्म्मणो बन्धस्थितिं नपुंसकवेदस्य प्रकारं चाह—

णपुंसकवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पन्नत्ता?, गोयमा! जह० सागरोवमस्स दोन्नि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगा उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोण्णि य वाससहस्साइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्माणिसेगो। णपुंसकवेदे णं भंते! किंपगारे पण्णत्ते?, गोयमा! महाणगरदाहसमाणे पण्णत्ते समणाउसो!, से तं णपुंसका ॥ (सू० ६१)

'नपुंसकवेयस्स णं भंते! कम्मस्स' इत्यादि, प्राग्वद्भावनीयं, नवरं महानगरदाहसमानमिति सर्वावस्थासु सर्वप्रकारं, मदनदाह(:समान)

इत्यर्थः ॥ सम्प्रत्यष्टावल्पबहुत्वानि वक्तव्यानि, तद्यथा—प्रथमं सामान्येन तिर्यक्स्त्रीपुरुषनपुंसकप्रतिबद्धम्, एवमेव मनुष्यप्रतिबद्धं द्वितीयं, देवस्त्रीपुरुषनारकनपुंसकप्रतिबद्धं तृतीयं, सकलसम्मिश्रं चतुर्थं, जलचर्यादिविभागतः पञ्चमं, कर्म्मभूमिजादिमनुष्यस्त्र्यादिविभागतः षष्ठं, भवनवास्यादिदेव्यादिविभागतः सप्तमं, जलचर्यादिविजातीयव्यक्तिव्यापकमष्टमं, तत्र प्रथममभिधित्सुराह—

एतेसि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसकाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा पुरिसा इत्थीओ संखि० णपुंसका अणंत०। एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणिइत्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणियपुरिसा तिरिक्खजोणिइत्थीओ असंखे० तिरिक्खजो० णपुंसगा अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सणपुंसकाण य कयरे २हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्व० मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखे० मणुस्सणपुंसका असंखेज्जगुणा ॥ एतेसिणं भंते! देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइयणपुंसका देवपुरिसा असं० देवित्थीओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजो० णपुंसकाणं मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सनपुंसकाणं देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कतरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखे० मणुस्सणपुंसका असं० णेरइयणपुंसका असं० तिरि-

क्खजोणियपुरिसा असं० तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्ज० देवपुरिसा असं० देवित्थियाओ संखि० तिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजो० णपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजो० णपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइय० बेइंदियतिरिक्खजोणिणपुंसकाणं तेइंदिय० चउरिंदिय० पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं कतरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्ज० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० जलयरतिरिक्खजो० पुरिसा संखि० जलयरतिरिक्खजोणित्थीयाओ संखेज्जगु० खहयरपंचिंदियतिरिक्खजो० णपुंसका असंखे० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणि० नपुंसगा संखि० जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका संखे० चउरिंदियतिरि० विसेसाहिया तेइंदियणपुंसका विसेसाहिया बेइंदियनपुंसका विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका असं० पुढवि० णपुंसका० विसेसाहिया आउ० विसेसाहिया वाउ० विसेसा० वणप्फति० एगिन्दियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमकाणं

अकम्मभूमकाणं अंतरदीवकाणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमाणं अकम्म० अंतरदीविकाण य कयरे २ हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! अंतरदीवगा मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा[ण] य एते णं दुन्नि य तुल्लावि सव्वत्थोवा देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा एते णं दोन्निवि तुल्ला संखे० हरिवासरम्मवासअकम्मभूमकमणुस्सित्थियाउ मणुस्सपुरिसा य एते[सि] णं दोन्निवि तुल्ला संखे० हेमवतहेरण्णवतअकम्मभूमकमणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा[ण] य दोन्नि तुल्ला संखे० भरहेरवतकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० भरहेरवतकम्ममणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० । पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० । अंतरदीवगमणुस्सणपुंसका असंखे० देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमकमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा [ए] तहेव जाव पुव्वविदेहकम्मभूमकमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा ॥ एतासि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासीणीणं वाणमन्तरीणीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणं जाव वेमाणियाणं सोधम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववातियाणं णेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढविनेरइय० कतरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववातियदेवपुरिसा उवरिमगेवेज्जदेवपुरिसा संखेज्जगुणा तं चेव जाव आणते कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

२प्रतिपत्तौ नपुंसके बन्ध-स्थितिः प्रकारश्च सू० ६१ वेदानामल्पबहुत्वं सू० ६२

अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा, छट्टीए पुढवीए नेरइय० असंखेज्जगुणा सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा पंचमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा चउत्थीए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा तचाए पुढवीए नेरइय० असंखेज्जगुणा माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा दोचाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा, इसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, सोधम्मे(कप्पे) देवपुरिसा संखेज्ज० सोधम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखे० भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभापुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोतिसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा जोतिसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणा ॥ एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविक्काइयएगिंदियति० जो० णपुंसकाणं आउक्काइयएगिंदिय० जो० णपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियति० जो० णपुंसकाणं बेइंदियति० जो० णपुंसकाणं तेइंदियति० जो० णपुंसकाणं चउरिंदियति० जो० नपुंसकाणं पंचेंदियति०

जो० णपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमियाणं अकम्म० अंतरदीवयाणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिकाणं अकम्मभूमिकाणं अंतरदीवकाणं देवित्थीणं भवणवासिणीणं वाणमंतरीणीणं जोतिसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाणं सोधम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववातियाणं नेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! अंतरदीवअकम्मभूमकमणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य, एते णं दोवि तुल्ला सव्वत्थोवा, देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सइत्थीओ पुरिसा य एते णं दोवि तुल्ला संखे० एवं हरिवासरम्मगवास० एवं हेमवतहेरण्णवयभरहेरवयकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० भरहेरवतकम्म० मणुस्सित्थीओ दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमकमणुस्सपुरिसा दोवि संखे०, पुव्वविदेहअवरविदेहकम्म० मणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० अणुत्तरोववातियदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा उवरिमगेवेज्जा देवपुरिसा संखे० जाव आणते कप्पे देवपुरिसा संखे० अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असंखे० छट्ठीए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखे० महासुक्के कप्पे देव० असं० पंचमाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० लंतए कप्पे देवपु० असं० चउत्थीए पुढवीए नेरइ-

२ प्रतिपत्तौ नपुंसके बन्धस्थितिः प्रकारश्च सू० ६१ वेदानामल्पबहुत्वं सू० ६२

यनपुंसका असं० बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असं० तच्चाए पुढवीए नेरइयण० असं० माहिंदे कप्पे देवपु० असंखे० सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असं० दोच्चाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका असंखे० देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका दोवि संखे० एवं जाव विदेहत्ति, ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असं० ईसाणकप्पे देवित्थियाओ संखे० सोधम्मे कप्पे देवपुरिसा संखे० सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्ज० भवणवासिदेवपुरिसा असंखे० भवणवासिदेवित्थियाओ संखिज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असं० खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० जलयरतिरिक्खपुरिसा संखे० जलयरतिरिक्खजोणित्थियाउ संखे०, वाणमंतरदेवपुरिसा संखे० वाणमंतरदेवित्थियाओ संखे० जोतिसियदेवपुरिसा संखे० जोतिसियदेवित्थियाओ संखे० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसा संखे० थलयरणपुंसका संखे० जलयरणपुंसका संखे० चतुरिंदियणपुंसका विसेसाहिया तेइंदिय० विसेसा० बेइंदिय० विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका असं० पुढवी० विसेसा० आऊ० विसेसा० वाऊ० विसेसा० वणप्फतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजो० णपुंसका अणंतगुणा ॥ (सू० ६२)

'एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणियइत्थीणं' इत्यादि, सर्वस्तोकास्तिर्यक्पुरुषाः, तेभ्यस्तिर्यक्स्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्नपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रति द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते !'** इत्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यो मनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः सप्तविंशतिगुणत्वात्, ताभ्यो मनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः श्रेण्यसङ्ख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् ॥ सम्प्रति तृतीयमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते ! देवित्थीण'**मित्यादि, सर्वस्तोका नैरयिकनपुंसका अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ स्वप्रथमवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवपुरुषा असङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणायां सूचौ यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात् ॥ सम्प्रति सकलसन्मिश्रं चतुर्थमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं'**मित्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषास्तेभ्यो मनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो मनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अत्र युक्तिः प्रागुक्ता, तेभ्यो नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यो देवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः प्रभूततरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणा निगोदजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रति जलचर्यादिविभागतः पञ्चममल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते !'** इत्यादि, सर्वस्तोकाः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकपुरुषाः, तेभ्यः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यः स्थल-

चरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यस्तत्स्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असंख्येयगुणाः, तेभ्यः स्थलचरजलचरतिर्यग्योनिकनपुंसका यथाक्रमं सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रिया यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततस्तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः पृथिव्यम्बुवायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततो वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः ॥ सम्प्रति कर्म्मभूमिजादिमनुष्यस्त्र्यादिविभागतः षष्ठमल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते !' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकमनुष्यस्त्रियोऽन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषाश्च, एते च द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तत्रत्यस्त्रीपुंसानां युगलधर्मोपेतत्वात्, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषाश्च सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्र प्रागेवोक्ता, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, एवं हरिवर्षरम्यकपुरुषस्त्रियो हैमवतहैरण्यवतमनुष्यपुरुषस्त्रियश्च यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ततो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्या द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने परस्परं तुल्याः, तेभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ततो हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका

द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः ॥ सम्प्रति भवनवास्यादिदेव्यादिविभागतः सप्तममल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासिणीण'मित्यादि, सर्वस्तोका अनुत्तरोपपातिका देवपुरुषाः, तत उपरितनग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकाधस्तनग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकसहस्रारमहाशुक्रकल्पदेवपुरुषपञ्चमपृथिवीनैरयिकनपुंसकलान्तककल्पदेवपुरुषचतुर्थपृथिवीनैरयिकनपुंसकब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषतृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकमाहेन्द्रसनत्कुमारकल्पदेवपुरुषद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्य ईशानकल्पदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ततः सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि सौधर्म्मकल्पदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, तेभ्यो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो भवनवासिदेव्यः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ताभ्यो रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वानमन्तरदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वानमन्तरदेव्यः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो ज्योतिष्काः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो ज्योतिष्कदेवस्त्रियः संख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात् ॥ सम्प्रति विजातीयव्यक्तिव्यापकमष्टममल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपका मनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषाश्च, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि तुल्याः, युगलधर्मोपेतत्वात्, एवं देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकहरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकहैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रीपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि

२ प्रतिपत्तौ स्त्रीपुरुषनपुंसकानामल्पबहुत्वं गतिषु सू० ६२

सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुलयाः, ताभ्योऽनुत्तरोपपातिकोपरितनग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकाधस्तनग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽधः-सप्तमषष्ठपृथिवीनैरयिक(न०) सहस्रारकल्पदेवपुरुषमहाशुक्रकल्पदेवपुरुषपञ्चमपृथिवीनैरयिक(न०) लान्तककल्पदेवपुरुषचतुर्थपृथवी-नैरयिकनपुंसकब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषतृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकमाहेन्द्रकल्पसनत्कुमारकल्पदेवपुरुषद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकान्तर-द्वीपकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, ततो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकहरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकहैमवतहैरण्यवताकर्मभूमक-भरतैरावतकर्म्मभूमकपूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्वस्थानेषु तु द्वये परस्परं तुल्याः, तत ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानकल्पदेवस्त्रियः सौधर्मकल्पदेवपुरुषाः सौधर्म्मकल्पदेवस्त्रियो यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकन-पुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः खचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः स्थलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः स्थलचरतिर्यग्योनिक-स्त्रियो जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषा जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियो वानमन्तरा देवपुरुषा वानमन्तरदेवस्त्रियो ज्योतिष्कदेवपुरुषा ज्योतिष्क-देवस्त्रियो यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः स्थलचरजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्यो-निकनपुंसकाः क्रमेण सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततस्तेजःकायिकैके-न्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः पृथिव्यब्वायुकायिकतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेपाधिकाः, ततो वनस्पति-

कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् ॥ सम्प्रति स्त्रीपुरुषनपुंसकानां भवस्थितिमानं कायस्थितिमानं च क्रमेणाभिधातुकाम आह—

इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! एगेणं आएसेणं जहा पुव्विं भणियं, एवं पुरिसस्सवि नपुंसकस्सवि, संचिट्ठणा पुनरवि तिण्हंपि जहापुव्विं भणिया, अंतरंपि तिण्हंपि जहापुव्विं भणियं तहा नेयव्वं ॥ (सू० ६३)

'इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?, इत्यादि, एतत्सर्वं प्रागुक्तवद्भावनीयम्, अपुनरुक्तता च प्राक् स्त्र्यादीनां पृथक् स्वस्वाधिकारे स्थित्यादि प्रतिपादितमिदानीं तु समुदायेनेति ॥ सम्प्रति स्त्रीपुरुषनपुंसकानामल्पबहुत्वमाह—(एयासि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?, सव्वथोवा पुरिसा इत्थीओ संखेज्जगुणा नपुंसका अणंतगुणा) 'एयासि णं भंते! इत्थीण'मित्यादि, सर्वस्तोकाः पुरुषाः स्त्र्यादिभ्यो हीनसङ्ख्याकत्वात्, तेभ्यः स्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो नपुंसका अनन्तगुणाः, एकेन्द्रियाणामनन्तानन्तसङ्ख्योपेतत्वात् । इह पुरुषेभ्यः स्त्रियः सङ्ख्येयगुणा इत्युक्तं, तत्र काः स्त्रियः स्वजातिपुरुषापेक्षया कतिगुणा इति प्रश्नावकाशमाशङ्क्य तन्निरूपणार्थमाह—

तिरिक्खजोणित्थियाओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिगुणाउ तिरूवाधियाओ मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसेहिंतो सत्तावीसतिगुणाओ सत्तावीसयरूवाहियाओ देवित्थियाओ देवपुरिसेहिंतो बत्तीसइगुणाओ बत्तीसइरूवाहियाओ सेत्तं तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता

२ प्रतिपत्तौ वेदानां- स्थित्यादिः सू० ६३ अल्पबहुत्वं सू० ६४

॥ तिविहेसु होइ भेयो ठिई य संचिट्ठणंतरऽप्पबहुं । वेदाण य बंधठिई वेओ तह किंपगारो उ ॥ १ ॥ से तं तिविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ॥ (सू० ६४)

'तिरिक्खजोणित्थीओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो' इत्यादि, तिर्यग्योनिकस्त्रियस्तिर्यग्योनिकपुरुषेभ्यस्त्रिगुणास्त्रिरूपाधिकाः, मनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषेभ्यः सप्तविंशतिगुणाः सप्तविंशतिरूपाधिकाः, देवपुरुषेभ्यो देवस्त्रियो द्वात्रिंशद्गुणा द्वात्रिंशद्रूपाधिकाः, उक्तं च वृद्धाचार्यैरपि—"तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥ १ ॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवाणं । देवीओ पण्णत्ता जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥ २ ॥" प्रतिपत्त्युपसंहारमाह—**'सेत्तं तिविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता'** इति ॥ सम्प्रत्यधिकृतप्रतिपत्त्यर्थाधिकारसंग्रहगाथामाह—**'तिविहेसु होइ भेओ'** इत्यादि, त्रिविधेषु वेदेषु वक्तव्येषु भवति प्रथमोऽधिकारो भेदः ततः स्थितिः तदनन्तरं **'संचिट्ठणं'**ति सातत्येनावस्थानं तदनन्तरमन्तरं ततोऽल्पबहुत्वं ततो वेदानां बन्धस्थितिः तदनन्तरं किंप्रकारो वेद इति ॥

इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाजीवाभिगमटीकायां द्वितीया प्रतिपत्तिः समाप्ता ॥ २ ॥

इति वेदत्रैविध्यनिरूपिका द्वितीया प्रतिपत्तिः ॥

तदेवमुक्ता द्वितीया प्रतिपत्तिः, सम्प्रति तृतीयप्रतिपत्त्यवसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—नेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा ॥ (सू० ६५)। से किं तं नेरइया ?, २ सत्तविधा पण्णत्ता, तंजहा—पढमापुढविनेरइया दोच्चापुढविनेरइया तच्चापुढविनेर० चउत्थापुढवीनेर० पंचमापु० नेरइ० छट्ठापु० नेर० सत्तमापु० नेरइया ॥ (सू० ६६)। पढमा णं भंते! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?, गोयमा! णामेणं घम्मा गोत्तेणं रयणप्पभा। दोच्चा णं भंते! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?, गोयमा! णामेणं वंसा गोत्तेणं सक्करप्पभा, एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, णामाणि इमाणि से लातव्वा(णि), (सेला तईया) अंजणा चउत्थी रिट्ठा पंचमी मघा छट्ठी माघवती सत्तमा, (जाव) तमतमागोत्तेणं पण्णत्ता। (सू० ६७)। इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी केवतिया बाहल्लेणं पण्णत्ता ?, गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी असिउत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा—आसीतं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥ १ ॥ (सू० ६८)

'तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विहा' इत्यादि, 'तत्र' तेषु दशसु प्रतिपत्तिमत्सु मध्ये ये ते आचार्या एवमाख्यातवन्तश्चतुर्विधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमाख्यातवन्तस्तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते

३ प्रतिपत्तौ चतुर्धा जीवाः सप्तधा नारकाः पृथ्वीनां नामगोत्रे बाहल्यं च सू० ६५-६६-६७ ६८

नैरयिका: ?, सूरिराह–नैरयिका: सप्तविधा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा–प्रथमायां पृथिव्यां नैरयिका: प्रथमपृथिवीनैरयिका इत्यर्थ:, एवं सर्वत्र भावनीयम् ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि नामगोत्रं वक्तव्यं, तत्र नामगोत्रयोरयं विशेष:–अनादिकालसिद्धमन्वर्थरहितं नाम सान्वर्थं तु नाम गोत्रमिति, तत्र नामगोत्रप्रतिपादनार्थमाह—**'इमा णं (पढमा णं) भंते!'** इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी 'किंनामा' किमनादिकालप्रसिद्धान्वर्थरहितनामा? 'किंगोत्रा?' किमन्वर्थयुक्तनामा?, भगवानाह–गौतम! नाम्ना घर्म्मेति प्रज्ञप्ता गोत्रेण रत्नप्रभा, तथा चान्वर्थमुपदर्शयन्ति पूर्वसूरय:–रत्नानां प्रभा–बाहुल्यं यत्र सा रत्नप्रभा रत्नबहुलेति भाव:, एवं शेषसूत्राण्यपि प्रतिपृथिवि प्रश्ननिर्वचनरूपाणि भावनीयानि, नवरं शर्कराप्रभादीनामियमन्वर्थभावना–शर्कराणां प्रभा–बाहुल्यं यत्र सा शर्कराप्रभा, एवं वालुका प्रभा पङ्कप्रभा इत्यपि भावनीयं, तथा धूमस्येव प्रभा यस्या: सा धूमप्रभा, तथा तमस: प्रभा–बाहुल्यं यत्र सा तम:प्रभा, तमस्तमस्य–प्रकृष्टतमस: प्रभा–बाहुल्यं यत्र सा तमस्तमप्रभा, अत्र केपुचित्पुस्तकेषु सङ्ग्रहणिगाथे—"घम्मा वंसा सेला अंजण रिट्ठा मघा य माघवती। सत्तण्हं पुढवीणं एए नामा उ नायव्वा ॥ १ ॥ रयणा सक्कर वालुय पंका धूमा तमा [य] तमतमा य। सत्तण्हं पुढवीणं एए गोत्ता मुणेयव्वा ॥ २ ॥" अधुना प्रतिपृथिवि बाहुल्यमभिधित्सुराह—**'इमा णं भंते!'** इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी कियद्बाहुल्येन प्रज्ञप्ता?, अत्र गोत्रेण प्रश्नो नाम्नो गोत्रं प्रधानतरं प्रधानेन च प्रश्नाद्युपपन्नमिति न्यायप्रदर्शनार्थ:, उक्तञ्च—"न हीना वाक् सदा सता"मिति, भगवानाह—'अशीत्युत्तरम्' अशीतियोजनसहस्राभ्यधिकं योजनशतसहस्रं बाहुल्येन प्रज्ञप्ता। एवं सर्वाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं च होइ वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठोत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥ १ ॥"

इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी कतिविधा पण्णत्ता?, गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—खरकंडे पंकबहुले कंडे आवबहुले कंडे ॥ इमीसे णं भंते! रय० पुढ० खरकंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! सोलसविधे पण्णत्ते, तंजहा—रयणकंडे १ वइरे २ वेरुलिए ३ लोहितक्खे ४ मसारगल्ले ५ हंसगब्भे ६ पुलए ७ सोयंधिए ८ जोतिरसे ९ अंजणे १० अंजणपुलए ११ रयते १२ जातरूवे १३ अंके १४ फलिहे १५ रिट्ठे १६ कंडे ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए रयणकंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एगागारे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे। इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए पंकबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एकागारे पण्णत्ते। एवं आवबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एकागारे पण्णत्ते। सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवी कतिविधा पण्णत्ता?, गोयमा! एकागारा पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमा ॥ (सू० ६९)

'इमा णं भंते' इत्यादि इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी 'कतिविधा' कतिप्रकारा कतिविभागा प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! 'त्रिविधा' त्रिविभागा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'खरकाण्ड'मित्यादि, काण्डं नाम विशिष्टो भूभागः, खरं—कठिनं, पङ्कबहुलं ततोऽब्बहुलं चान्वर्थतः प्रतिपत्तव्यं, क्रमश्चैतेपामेवमेव, तद्यथा—प्रथमं खरकाण्डं तदनन्तरं पङ्कबहुलं ततोऽब्बहुलमिति ॥ 'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डं कतिविधं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! 'षोडशविधं' षोडशविभागं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'रयणे' इति, पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् रत्नकाण्डं तच्च प्रथमं, द्वितीयं वज्रकाण्डं, तृतीयं वैडूर्यकाण्डं, चतुर्थं लोहितकाण्डं,

पञ्चमं मसारगल्लकाण्डं, षष्ठं हंसगर्भकाण्डं, सप्तमं पुलककाण्डम्, अष्टमं सौगन्धिककाण्डं, नवमं ज्योतीरसकाण्डं, दशममञ्जनकाण्डम्, एकादशमञ्जनपुलककाण्डं, द्वादशं रजतकाण्डं, त्रयोदशं जातरूपकाण्डं, चतुर्दशमङ्ककाण्डं, पञ्चदशं स्फटिककाण्डं षोडशं रिष्टरत्नकाण्डं, तत्र रत्नानि—कर्केतनादीनि तत्प्रधानं काण्डं रत्नकाण्डं, वज्ररत्नप्रधानं काण्डं वज्रकाण्डम्, एवं शेषाण्यपि, एकैकं च काण्डं योजनसहस्रबाहल्यम् ॥ 'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां रत्नकाण्डं 'कतिविधं' कतिप्रकारं कतिविभागमिति भावः प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—एकाकारं प्रज्ञप्तं। एवं शेषकाण्डविषयाण्यपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि क्रमेण भावनीयानि। एवं पङ्कबहुलाब्बहुलविषयाण्यपि। 'दोच्चा णं भंते' इत्यादि, द्वितीयादिपृथिवीविषयाणि सूत्राणि पाठसिद्धानि ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि नरकावाससङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, इमा गाहा अणुगंतव्वा—तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दसेव तिण्णि य हवंति। पंचूणसयसहस्सं पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥ १ ॥ जाव अहेसत्तमाए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अपतिट्ठाणे ॥ (सू० ७०) । अत्थि णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदधीति वा घणवातेति वा तणुवातेति वा ओवासंतरेति वा?, हंता अत्थि, एवं जाव अहे सत्तमाए ॥ (सू० ७१)

'इमीसे णं भंते' इत्यादि, सुगमं, नवरमियमत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"तीसा य पण्णवीसा पणरस दस चेव सयसहस्साइं। तिण्णेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ १ ॥" अधःसप्तम्यां च पृथिव्यां कालादयो महानरका अप्रतिष्ठानाभिधस्य नरकस्य पूर्वादिक्रमेण, उक्तञ्च—"पुव्वेण होइ कालो अवरेणं अप्पइट्ठ महकालो। रोरू दाहिणपासे उत्तरपासे महारोरू ॥ १ ॥" रत्नप्रभादिषु च तमःप्रभापर्यन्तासु षट्सु पृथिवीषु प्रत्येकं नरकावासा द्विविधाः, तद्यथा—आवलिकाप्रविष्टाः प्रकीर्णकरूपाश्च, तत्र रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रयोदश प्रस्तटाः, प्रस्तटा नाम वेश्मभूमिकाकल्पा., तत्र प्रथमप्रस्तटे पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु प्रत्येकमेकोनपञ्चाशत् नरकावासाः, चतसृषु विदिक्षु प्रत्येकमष्टचत्वारिंशत्, मध्ये च सीमन्तकाख्यो नरकेन्द्रक, सर्वसङ्ख्यया प्रथमप्रस्तटे नरकावासानामावलिकाप्रविष्टानामेकोननवत्यधिकानि त्रीणि शतानि ३८९, शेषेषु च द्वादशसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं यथोत्तरं दिक्षु विदिक्षु चैकैकनरकावासहानिभावाद् अष्टकाष्टकहीना नरकावासा द्रष्टव्याः, ततः सर्वसङ्ख्यया रत्नप्रभायां पृथिव्यामावलिकाप्रविष्टा नरकावासाश्चतुश्चत्वारिंशच्छतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि ४४३३, शेषास्त्वेकोनत्रिंशल्लक्षाणि पञ्चनवतिसहस्राणि पञ्च शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि २९९५५६७ प्रकीर्णकाः, तथा चोक्तम्—"सत्तट्ठी पंचसया पणनउइसहस्स लक्खगुणतीसं। रयणाए सेढिगया चोयालसया उ तित्तीसं ॥ १ ॥" उभयमीलने त्रिंशल्लक्षा नरकावासानां भवन्ति ३०००००० । शर्कराप्रभायामेकादश प्रस्तटाः, "नरकपटलान्यधोऽधो द्वन्द्वहीनानी"ति वचनात्, तत्र प्रथमे प्रस्तटे चतसृषु दिक्षु षट्त्रिंशद् आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः, विदिक्षु पञ्चत्रिंशत्, मध्ये चैको नरकेन्द्रकः, सर्वसङ्ख्यया द्वे शते पञ्चाशीत्यधिके २८५, शेषेषु तु दशसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, प्रतिदिक्प्रतिविदिक्षु(क् च) एकैकनरकावासहानेः, ततस्तत्र सर्वसङ्ख्ययाऽऽवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः षड्विंशतिशतानि पञ्चनवत्यधिकानि २६९५, शेषाश्चतुर्विंश-

तिलक्षाः सप्तनवतिः सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि २४९७३०५ पुष्पावकीर्णकाः, उक्तञ्च—"सत्ताणउइ सहस्सा चउवीसं लक्ख तिसय पंचऽहिया । बीयाए सेढिगया छव्वीससया उ पणनउया ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चविंशतिर्लक्षा नरकावासानाम् २५००००० । वालुकाप्रभायां नव प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे एकैकस्यां दिशि आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः पञ्चविंशतिः विदिशि चतुर्विंशतिः मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया सप्तनवतं शतं १९७, शेषेषु चाष्टसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकहानिः, तत्र च कारणं प्रागेवोक्तं, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासाश्चतुर्दश शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि १४८५, शेपास्तु पुष्पावकीर्णकाश्चतुर्दश लक्षा अष्टनवतिः सहस्राणि पञ्च शतानि पञ्चदशाधिकानि १४९८५१५, उक्तञ्च—"पंचसया पन्नारा अडनवइसहस्स लक्ख चोद्दस य । तइयाए सेढिगया पणसीया चोद्दससया उ ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चदश लक्षा नरकावासानाम् १५००००० । पङ्कप्रभायां सप्त प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे प्रत्येकं दिशि षोडश षोडश आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः विदिशि पञ्चदश पञ्चदश मध्ये चैको नरकेन्द्रकः सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशतिशतं १२५, शेषेषु षट्सु प्रस्तटेषु पूर्ववत् प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासाः सप्त शतानि सप्तोत्तराणि ७०७, शेषास्तु पुष्पावकीर्णका नव लक्षा नवनवतिः सहस्राणि द्वे शते त्रिनवत्यधिके ९९९२९३, उक्तञ्च—"तेणउया दोण्णि सया नवनउइसहस्स नव य लक्खा य । पंकाए सेढिगया सत्त सया हुंति सत्तहिया ॥ १ ॥" उभयमीलने नरकावासानां दश लक्षाः १०००००० । धूमप्रभायां पञ्च प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे एकैकस्यां दिशि नव नव आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः, विदिशि अष्टौ अष्टौ मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया एकोनसप्ततिः ६९, शेषेषु चतुर्षु प्रस्तटेषु पूर्ववत्प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासा द्वे शते पञ्चषष्ट्य-

धिके २६५, शेषाः पुष्पावकीर्णका द्वे लक्षे नवनवतिः सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि २९९७३५, उक्तञ्च—"सत्तसया पणतीसा नवनवइ [य] सहस्स दो य लक्खा य । धूमाए सेढिगया पणसट्ठा दो सया होंति ॥ १ ॥" सर्वसङ्ख्यया तिस्रो लक्षाः ३००००० नरकावासानाम् । तमःप्रभायां त्रयः प्रस्तटाः, तत्र प्रथमे प्रस्तटे प्रत्येकं दिशि चत्वारश्चत्वार आवलिकाप्रविष्टा नरकावासा विदिशि त्रयस्त्रयो मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया एकोनत्रिंशत् २९, शेषयोस्तु प्रस्तटयोः प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्ययाऽऽवलिकाप्रविष्टा नरकावासास्त्रिषष्टिः ६३, शेषास्तु नवनवतिः सहस्राणि नव शतानि द्वात्रिंशदधिकानि पुष्पावकीर्णकाः ९९९३२, उक्तञ्च—"नवनउई य सहस्सा नव चेव सया हवंति बत्तीसा । पुढवीए छट्ठीए पइण्णगाणेस संखेवो ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चोनं नरकावासानां लक्षम् ९९९९५ ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि घनोदध्याद्यस्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—'अत्थि णं भंते !' इत्यादि, अस्ति भदन्त ! अस्याः प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधो घनः—स्त्यानीभूतोदक उदधिर्घनोदधिरिति वा घनः—पिण्डीभूतो वातः घनवात इति वा तनुवात इति वा अवकाशान्तरमिति वा ?, अवकाशान्तरं नाम शुद्धमाकाशं, भगवानाह—हन्त ! अस्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वाच्यं यावदधःसप्तम्याः ॥

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे । इमीसे णं भंते! रय० पु० पंकबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! चतुरसीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं प-

पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रय० पु० आवबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असीति-जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते। इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रय० पु० घणवाए केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवातेऽवि ओवासंतरेऽवि। सक्करप्प० भंते! पु० घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। सक्करप्प० पु० घणवाते केवइए बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! असंखे० जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवातेवि, ओवासंतरेवि जहा सक्करप्प० पु० एवं जाव अधेसत्तमा॥ (सू० ७२)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सम्बन्धि यत्प्रथमं खरं—खराभिधानं काण्डं तत् कियद्बाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनसहस्राणि॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नं—रत्नाभिधानं काण्डं तत् कियद्बाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकं योजनसहस्रं। एवं शेषाण्यपि काण्डानि वक्तव्यानि यावद् रिष्टं—रिष्टाभिधानं काण्डम्। एवं पङ्कबहुलाऽब्बहुलकाण्डसूत्रे अपि व्याख्येये, पङ्कबहुलं काण्डं चतुरशीतिर्योजनसहस्राणि बाहल्येन, अब्बहुलं काण्डमशीतिर्योजनसहस्राणि, सर्वसङ्ख्यया रत्नप्रभाया बाहल्यमशीतिसहस्राधिकं लक्षं, तस्या अधो घनोदधिः विंशतिर्योजनसहस्राणि बाहल्येन, तस्याप्यधो घनवातोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि बाहल्येन, तस्याप्यधोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि

तनुवातो वाहल्येन, तस्याप्यधोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि वाहल्येनावकाशान्तरम् । एवं शेषाणामपि पृथिवीनां घनोदध्यादयः प्रत्येकं तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तम्याः ॥

इमीसेणं भंते! रयणप्प० पु० असीउत्तरजोयण(सय)सहस्सबाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो कालनीललोहितहालिद्दसुक्किल्लाइं गंधतो सुरभिगंधाइं दुब्भिगंधाइं रसतो तित्तकडुयकसायअंबिलमहुराइं फासतो कक्खडमउयगरुयलहुसीतउसिणणिद्धलुक्खाइं संठाणतो परिमंडलवट्टतंसचउरंसआययसंठाणपरिणयाइं अन्नमन्नबद्धाइं ॥ अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णओगाढाइं अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?, हंता अत्थि। इमीसेणं भंते! रयणप्प भाए पु० खरकंडस्स सोलसजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव परिणयाइं?, हंता अत्थि। इमीसे णं रयणप्प० पु० रयणनामगस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्ज० तं चेव जाव हंता अत्थि, एवं जाव रिट्ठस्स, इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० पंकबहुलस्स कंडस्स चउरासीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्ते तं चेव, एवं आवबहुलस्सवि असीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणोदधिस्स वीसं जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेण तहेव। एवं घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स तहेव, ओवासंतरस्सवि तं चेव ॥ सक्करप्पभाए णं भंते! पु० बत्तीसुत्तरजोयणसतस-

हस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएण छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो जाव घडत्ताए चिट्ठंति?, हंता अत्थि, एवं घणोदहिस्स वीसजोयणसहस्सबाहल्लस्स घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स, एवं जाव ओवासंतरस्स, जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ७३)

'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यामशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायां क्षेत्रच्छेदेन–बुद्ध्या प्रतरकाण्डविभागेन छिद्यमानायाम्, अस्तीति निपातोऽत्र बहुलवचनार्थगर्भः, सन्ति द्रव्याणि वर्णतः कालानि नीलानि लोहितानि हारिद्राणि शुक्लानि, गन्धतः सुरभिगन्धीनि दुरभिगन्धीनि च, रसतस्तिक्तरसानि कटुकानि कषायाणि अम्लानि मधुराणि, स्पर्शतः कर्कशानि मृदूनि गुरुकाणि लघूनि शीतानि उष्णानि स्निग्धानि रूक्षाणि, संस्थानतः परिमण्डलानि वृत्तानि त्र्यस्राणि चतुरस्राणि आयतानि, कथम्भूतान्येतानि सर्वाण्यपि ? इत्यत आह—'अन्नमन्नपुट्ठाइं' इत्यादि, अन्योऽन्यं–परस्परं स्पृष्टानि–स्पर्शमात्रोपेतानि, तथाऽन्योऽन्यं–परस्परमवगाढानि यत्रैकं द्रव्यमवगाढं तत्रान्यदपि देशतः कचित्सर्वतोऽवगाढमित्यर्थः, तथाऽन्योऽन्यं–परस्परं स्नेहेन प्रतिबद्धानि येनैकस्मिन् चाल्यमाने गृह्यमाणे वाऽपरमपि चलनादिधर्मोपेतं भवति, एवम् 'अन्नोन्नघडत्ताए चिट्ठंति' इति, अन्योऽन्यं–परस्परं घटन्ते–संबध्नन्तीति अन्योऽन्यघटास्तद्भावोऽन्योऽन्यघटता तया–परस्परसंबद्धतया तिष्ठन्ति, भगवानाह—'हंता अत्थि' 'हन्त !' इति प्रत्यवधारणे सन्त्येवेत्यर्थः । एवमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डस्य षोडशयोजनसहस्रप्रमाणबाहल्यस्य, तदनन्तरं रत्नकाण्डस्य योजनसहस्रबाहल्यस्य, ततो वज्रकाण्डस्य यावद्रिष्ठकाण्डस्य, तदनन्तरमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां पङ्कबहुलकाण्डस्य चतुरशीतियोजनसहस्रबाहल्यस्य, तदनन्तरमबूबहुलकाण्डस्याशीतियोजनसहस्रबाहल्यस्य, तदनन्तरमस्या एव रत्नप्रभाया घ-

नोदधेर्योजनविंशतिसहस्रप्रमाणवाहल्यस्य, ततोऽसङ्ख्यातयोजनसहस्रप्रमाणवाहल्यस्य घनवातस्य, तत एतावत्प्रमाणवाहल्यस्य तनुवातस्य, ततोऽवकाशान्तरस्य तावत्प्रमाणस्य। ततः शर्कराप्रभायाः पृथिव्या द्वात्रिंशत्सहस्रोत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यपरिमाणायाः, तस्या एवाधस्ताद्यथोक्तप्रमाणवाहल्यानां घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणाम्, एवं यावदधःसप्तम्याः पृथिव्या अष्टसहस्राधिकयोजनशतसहस्रपरिमाणवाहल्यायाः, ततस्तस्या एवाधःसप्तमपृथिव्या अधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणां प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि यथोक्तद्रव्यविषयाणि भावनीयानि ॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

इमा णं भंते! रयणप्प० पु० किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० खरकंडे किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रयणप० पु० रयणकंडे किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते। एवं जाव रिट्ठे। एवं पंकबहुलेवि, एवं आवबहुलेवि घणोदधीवि घणवाएवि तणुवाएवि ओवासंतरेवि, सव्वे झल्लरिसंठिते पण्णत्ते। सक्करप्पभा णं भंते! पुढवी किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता, सक्करप्पभापुढवीए घणोदधी किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते, एवं जाव ओवासंतरे, जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं जाव अहेसत्तमाएवि ॥ (सू० ७४)

'इमा णं भंते' इत्यादि, 'इयं' प्रत्यक्षत उपलभ्यमाना णमिति वाक्यालङ्कृतौ रत्नप्रभापृथिवी किमिव संस्थिता किंसंस्थिता प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! झल्लरीव संस्थिता झल्लरीसंस्थिता प्रज्ञप्ता, विस्तीर्णवलयाकारत्वात्। एवमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डं, तत्रापि

रत्नकाण्डं, ततो वज्रकाण्डं, ततो यावद् रिष्टकाण्डं, तदनन्तरं पङ्कबहुलकाण्डं, ततो जलकाण्डं, तदनन्तरमस्या एव रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणि यावदधःसप्तमीपृथिवी, तस्याश्चाधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणि झल्लरीसंस्थानानि वक्तव्यानि ॥ ननु चैताः सप्तापि पृथिव्यः सर्वासु दिक्षु किमलोकस्पर्शिन्य उत न? इति, उच्यते, नेति ब्रूमः, यद्येवं ततः—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीए पुरत्थिमिल्लातो उवरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते?, गोयमा! दुवालसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं दाहिणिल्लातो पच्चत्थिमिल्लातो उत्तरिल्लातो। सक्करप्प० पु० पुरत्थिमिल्लातो चरिमंतातो केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते?, गोयमा! तिभागूणेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं चउद्दिसिंपि। वालुयप्प० पु० पुरत्थिमिल्लातो पुच्छा, गोयमा! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं चउद्दिसिंपि, एवं सव्वासिं चउसुवि दिसासु पुच्छितव्वं। पंकप्प० चोद्दसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। पंचमाए तिभागूणेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। छट्ठीए सतिभागेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। सत्तमीए सोलसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं जाव उत्तरिल्लातो ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० पुरत्थिमिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—घणोदधिवलए

घणवायवलए तणुवायवलए। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० दाहिणिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविधे पण्णत्ते, तंजहा,—एवं जाव उत्तरिल्ले, एवं सव्वासिं जाव अधेसत्तमाए उत्तरिल्ले ॥ (सू० ७९)

'इमी से णं भंते' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'पुरत्थिमिल्लाओ' इति पूर्वदिग्भाविनश्चरमान्तात् 'केवइयाए' इति कियत्याऽबाधया—अपान्तरालरूपया लोकान्तोऽलोकावधिपरिच्छिन्नः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—द्वादश योजनानि, द्वादशयोजनप्रमाणयेत्यर्थः, अबाधया लोकान्तः प्रज्ञप्तः, किमुक्तं भवति?—रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पूर्वस्यां दिशि चरमपर्यन्तात्परतोऽलोकादर्वाग् अपान्तरालं द्वादश योजनानि, एवं दक्षिणस्यामपरस्यामुत्तरस्यां चापान्तरालं वक्तव्यं, दिग्ग्रहणं चोपलक्षणं तेन सर्वासु विदिक्ष्वपि यथोक्तमपान्तरालमवसातव्यं, शेषाणां तु पृथिवीनां सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमपर्यन्तादलोकः क्रमेणाधोऽधस्त्रिभागोनेन योजनेनाधिकैर्द्वादशभिर्योजनैरवगन्तव्यः, तद्यथा—शर्कराप्रभायाः पृथिव्याः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमपर्यन्तादलोकादर्वागपान्तरालं त्रिभागोनानि त्रयोदश योजनानि, वालुकाप्रभायाः सत्रिभागानि त्रयोदश योजनानि, पङ्कप्रभायाः परिपूर्णानि चतुर्दश योजनानि, धूमप्रभायास्त्रिभागोनानि पञ्चदश योजनानि, तमःप्रभायाः सत्रिभागानि पञ्चदश योजनानि, अधःसप्तमपृथिव्याः परिपूर्णानि षोडश योजनानि, सूत्राक्षराणि पूर्ववद्योजनीयानि ॥ अथामूनि रत्नप्रभादीनां द्वादशयोजनप्रमाणादीनि अपान्तरालानि किमाकाशरूपाणि उत घनोदध्यादिव्याप्तानि?, उच्यते, घनोदध्यादिव्याप्तानि, तत्र कस्मिन्नपान्तराले कियान् घनोदध्यादिः? इति प्रतिपादनार्थमाह—'इमी से णं भंते' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पूर्वदिग्भावी 'चरमान्तः' अपान्तराललक्षणः 'कतिविधः' कतिप्रकारः

कतिविभाग इत्यर्थः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'घनोदधिवलयः' वलयाकारघनोदधिरूप इत्यर्थः, एवं घनवातवलयस्तनुवातवलयश्च, इयमत्र भावना—सर्वासां पृथिवीनामधो यत्प्राग् बाहल्येन घनोदध्यादीनां परिमाणमुक्तं तन्मध्यभागे द्रष्टव्यं, ते हि मध्यभागे यथोक्तप्रमाणबाहल्यास्ततः प्रदेशहान्या प्रदेशहान्या हीयमानाः स्वस्वपृथिवीपर्यन्तेषु तनुतरा भूत्वा स्वां स्वां पृथिवीं वलयाकारेण वेष्टयित्वा स्थिताः, अत एवामूनि वलयान्युच्यन्ते, तेषां च वलयानामुच्चैस्त्वं सर्वत्र स्वस्वपृथिव्यनुसारेण परिभावनीयं, तिर्यग्बाहल्यं पुनरग्रे वक्ष्यते, इदानीं तु विभागमात्रमेवापान्तरालस्य प्रतिपादयितुमिष्टमिति तदेवोक्तं, एवमस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः शेषासु दिक्षु, एवं शेषाणामपि पृथिवीनां चतसृष्वपि दिक्षु प्रत्येकं २ विभागसूत्रं भणितव्यम् ॥ सम्प्रति घनोदधिवलयस्य तिर्यग्बाहल्यमानमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! छ जोयणाणि बाहल्लेणं पण्णत्ते । सक्करप्प० पु० घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! सतिभागाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । वालुयप्पभाए पुच्छा गोयमा ! तिभागूणाइं सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं प० । एवं एतेणं अभिलावेणं पंकप्पभाए सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । धूमप्पभाए सतिभागाइं सत्त जोयणाइं पण्णत्ते । तमप्पभाए तिभागूणाइं अट्ठ जोयणाइं । तमतमप्पभाए अट्ठ जोयणाइं ॥ इमीसे णं रयणप्प० पु० घणवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! अद्धपंचमाइं जोयणाइं बाहल्लेणं । सक्करप्पभाए पुच्छा, गोयमा ! कोसूणाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं,

एवं एतेणं अभिलावेणं वालुयप्पभाए पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं, पंकप्पभाए सक्कोसाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं। धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइं जोयणाइं बाहल्लेणं पन्नत्ताइं, तमप्पभाए कोसूणाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, अहेसत्तमाए छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० तणुवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! छक्कोसेणं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं एतेणं अभिलावेणं सक्करप्पभाए सतिभागे छक्कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। वालुयप्पभाए तिभागूणे सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। पंकप्पभाए पुढवीए सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए सतिभागे सत्तकोसे। तमप्पभाए तिभागूणे अट्ठकोसे बाहल्लेणं पन्नत्ते। अधेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणोदधिवलयस्स छज्जोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि द्व्वाइं वण्णतो काल जाव हंता अत्थि। सक्करप्पभाए णं भंते! पु० घणोदधिवलयस्स सतिभागछजोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि, एवं जाव अधेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणवातवलयस्स अद्धपंचमजोयणबाहल्लस्स खेत्तछेदेणं छि० जाव हंता अत्थि, एवं जाव अहेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। एवं तणुवायवलयस्सवि जाव अधेसत्तमा जं जस्स बाहल्लं ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते

पण्णत्ते ॥ जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं सव्वतो संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति, एवं जाव अधेसत्तमाए पु० घणोदधिवलए, णवरं अप्पणप्पणं पुढविं संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति। इमीसे णं रयणप्प० पु० घणवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारे तहेव जाव जे णं इमीसे णं रयणप्प० पु० घणोदधिवलयं सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ एवं जाव अहेसत्तमाए घणवातवलए। इमीसे णं रयणप्प० पु० तणुवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव जेणं इमीसे रयणप्प० पु० घणवातवलयं सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठइ, एवं जाव अधेसत्तमाए तणुवातवलए ॥ इमा णं भंते! रयणप्प० पु० केवतिआयामविक्खंभेणं? पं० गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते! रयणप्प० पु० अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता?, हंता गोयमा! इमा णं रयण० पु० अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७६)

'इमीसे ण' मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमान्ते घनोदधिवलयः कियद्बाहल्येन—तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! षड् योजनानि बाहल्येन—तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः, तत ऊर्ध्वं प्रतिपृथिवि योजनस्य त्रिभागो वक्तव्यः, तद्यथा—शर्कराप्रभायाः सत्रिभागानि षड् योजनानि वालुकाप्रभायास्त्रिभागोनानि सप्त योजनानि पङ्कप्रभायाः परि-

पूर्णानि सप्त योजनानि धूमप्रभायाः सत्रिभागानि सप्त योजनानि तमःप्रभायास्त्रिभागोनान्यष्टौ योजनानि अधःसप्तमपृथिव्याः परिपूर्णान्यष्टौ योजनानि, सूत्राक्षराणि तु सर्वत्र पूर्ववद्योजनीयानि ॥ सम्प्रति घनवातवलयस्य तिर्यग्बाहल्यपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या घनवातवलयस्तिर्यग्बाहल्येनार्द्धपञ्चमानि—सार्द्धानि चत्वारि योजनानि प्रज्ञप्तः, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिपृथिवि गव्यूतं वर्द्धनीयं, तथा चाह—द्वितीयस्याः पृथिव्याः क्रोशोनानि पञ्च योजनानि, तृतीयस्याः पृथिव्याः परिपूर्णानि पञ्च योजनानि, चतुर्थ्याः पृथिव्याः सक्रोशानि पञ्च योजनानि, पञ्चम्याः पृथिव्या अर्द्धषष्ठानि—सार्द्धानि पञ्च योजनानि, षष्ठ्याः पृथिव्याः क्रोशोनानि षड् योजनानि, सप्तम्याः पृथिव्याः परिपूर्णानि षड् योजनानि ॥ सम्प्रति तनुवातवलयस्य तिर्यग्बाहल्यपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्तनुवातवलयः 'कियत्' किंप्रमाणं 'बाहल्येन' तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—षट्क्रोशबाहल्येन प्रज्ञप्तः, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिपृथिवि क्रोशस्य त्रिभागो वर्द्धनीयः, तथा चाह—द्वितीयस्याः पृथिव्याः सत्रिभागान् षट् क्रोशान् बाहल्येन प्रज्ञप्तः, तृतीयस्याः पृथिव्यास्त्रिभागोनान् सप्त क्रोशान् चतुर्थ्याः पृथिव्याः परिपूर्णान् सप्त क्रोशान् पञ्चम्याः पृथिव्याः सत्रिभागान् सप्त क्रोशान् षष्ठ्याः पृथिव्यास्त्रिभागोनान् अष्टौ क्रोशान्, अधःसप्तम्याः परिपूर्णान् अष्टौ क्रोशान्, उक्तञ्च—"छच्चेव अद्धपंचमजोयणसड्ढं च होइ रयणाए । उदही घणतणुवाया (उ)जहासंखेण निद्दिट्ठा ॥ १ ॥ सतिभागगाउगाउयं च तिभागो गाउयस्स बोद्धव्वो । आइधुवे पक्खेवो अहो अहो जाव सत्तमिया ॥ २ ॥" एतेषां च त्रयाणामपि घनोदध्यादिविभागानामेकत्र मीलने प्रतिपृथिवि यथोक्तमपान्तरालमानं भवति ॥ सम्प्रत्येतेष्वेव घनोदध्यादिवलयेषु क्षेत्रच्छेदेन कृष्णवर्णाद्युपेतद्रव्यास्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, पूर्ववद्भावनीयं,

वाहल्यपरिमाणमपि घनोदध्यादीनां प्रतिपृथिवि प्रागुक्तमुपयुज्य वक्तव्यम् ॥ सम्प्रति घनोदध्यादिसंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या घनोदधिवलयः किमिव संस्थितः किंसंस्थितः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! 'वृत्तः' चक्रवालतया परिवर्त्तुलो वलयस्य—मध्यशुषिरस्य वृत्तविशेषस्याकारः—आकृतिर्वलयाकारः स इव संस्थानं वलयाकारसंस्थानं तेन संस्थितो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः ॥ कथमेवमवगम्यते वलयाकारसंस्थानसंस्थित इति?, तत आह—'जेण' मित्यादि, येन कारणेनेमां रत्नप्रभां पृथिवीं 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च 'संपरिक्षिप्य' सामस्त्येन वेष्टयित्वा 'तिष्ठति' वर्त्तते तेन कारणेन वलयाकारसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । एवं घनवातवलयसूत्रं तनुवातवलयसूत्रं च परिभावनीयं, नवरं घनवातवलयो घनोदधिवलयं संपरिक्षिप्येति वक्तव्यः, तनुवातवलयो घनवातवलयं संपरिक्षिप्येति । एवं शेषास्वपि पृथिवीषु प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सूत्राणि भावनीयानि ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी कियद् 'आयामविष्कम्भेन' समाहारो द्वन्द्वः, आयामविष्कम्भाभ्यां प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेन, किमुक्तं भवति?—असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामेन, असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेन च, आयामविष्कम्भयोस्तु परस्परमल्पबहुत्वचिन्तने तुल्यत्वं, तथाऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि 'परिक्षेपेण' परिधिना प्रज्ञप्ता, एवमेकैका पृथिवी तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी अन्ते मध्ये च सर्वत्र समा 'बाहल्येन' पिण्डभावेन प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतमेत्यादि सुगमम् । एवं क्रमेणैकैका पृथिवी तावद्वक्तव्या यावत्सप्तमी ॥

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा? सव्वजीवा उववण्णा?, गोयमा!

इमीसे णं रय० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवा उववण्णा, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते! रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा? सव्वजीवेहिं विजढा?, गोयमा! इमा णं रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवविजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा? सव्वपोग्गला पविट्ठा? गोयमा! इमीसे णं रयण० पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा? सव्वपोग्गला विजढा?, गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पु० सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७७)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सामान्येन उपपन्नपूर्वा इति—उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, तथा सर्वजीवाः 'उपपन्नाः' उत्पन्ना युगपद्?, भगवानाह—गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सांव्यवहारिकजीवराश्यन्तर्गताः प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सामान्येन 'उपपन्नपूर्वाः' उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वजीवाः 'उपपन्ना' उत्पन्ना युगपत्, सकलजीवानामेककालं रत्नप्रभापृथिवीत्वेनोत्पादे सकलदेवनारकादिभेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, एवमेकैकस्याः पृथिव्यास्तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याः ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं च भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी 'सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा' इति सर्वजीवैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, तथा सर्वजीवैर्युगपद् 'विजढा' परित्यक्ता?, भगवानाह—गौतम!

इयं रत्नप्रभा पृथिवी प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सर्वजीवैः सांव्यवहारिकैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, न तु युगपत्परित्यक्ता, सर्वजीवैः एककालपरित्यागस्यासम्भवात् तथानिमित्ताभावात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथ्वी ॥ 'इमीसे णं' मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गला लोकोदरविवरवर्त्तिनः कालक्रमेण 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, तथा सर्वे पुद्गलाः 'प्रविष्टाः' एककालं तद्भावेन परिणताः?, भगवानाह—गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गलाः लोकवर्त्तिनः 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, संसारस्यानादित्वात्, न पुनरेककालं सर्वपुद्गलाः 'प्रविष्टाः' तद्भावेन परिणताः, सर्वपुद्गलानां तद्भावेन परिणतौ रत्नप्रभाव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रापि पुद्गलाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात् । एवं सर्वासु पृथिवीषु क्रमेण वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां पृथिव्यामिति ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण 'विजढपुव्वा' इति परित्यक्तपूर्वा तथैव सर्वैः पुद्गलैरेककालं परित्यक्ता?, भगवानाह—गौतम! इयं रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वपुद्गलैरेककालं परित्यक्ता, सर्वपुद्गलैरेककालपरित्यागे तस्याः सर्वथा स्वरूपाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यतः शाश्वतत्वात्, एतच्चानन्तरमेव वक्ष्यति । एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वाच्या यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया?, गोयमा! सिय सासता सिय असासया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया?, गोयमा! दव्वट्ठयाए सासता, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति—तं चेव जाव सिय असासता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते! रयणप्पभापु० कालतो

केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! न कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति ॥ भुविं च भवइ य भविस्सति य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिता णिच्चा एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७८)

'इमा णं भंते !' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी किं शाश्वती अशाश्वती ?, भगवानाह—गौतम ! स्यात्—कथञ्चित्कस्यापि नयस्याभिप्रायेणेत्यर्थः शाश्वती, स्यात्—कथञ्चिदशाश्वती ॥ एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति—'से केणट्ठेण'मित्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स च प्रश्ने, केन 'अर्थेन' कारणेन भदन्त ! एवमुच्यते यथा स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीति ?, भगवानाह—गौतम ! 'दव्वट्ठयाए' इत्यादि, द्रव्यार्थतया शाश्वतीति, तत्र द्रव्यं सर्वत्रापि सामान्यमुच्यते, द्रवति—गच्छति तान् तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमितिव्युत्पत्तेर्द्रव्यमेवार्थः—तात्त्विकः पदार्थो यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः—द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादको नयविशेषस्तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादकनयाभिप्रायेणेतियावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमतपर्यालोचनायामेवंविधस्य रत्नप्रभायाः पृथिव्या आकारस्य सदा भावात्, 'वर्णपर्यायैः' कृष्णादिभिः 'गन्धपर्यायैः' सुरभ्यादिभिः 'रसपर्यायैः' तिक्तादिभिः 'स्पर्शपर्यायैः' कठिनत्वादिभिः 'अशाश्वती' अनित्या, तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालानन्तरं वाऽन्यथाभवनात्, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात्, न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वानित्यत्वे, द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वापत्तेः, तथाहि—शक्यते वक्तुं परपरिकल्पितं द्रव्यमसत्, पर्यायव्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिपर्यायशून्यवन्ध्यासुतवत्, तथा परपरिकल्पिताः पर्याया असन्तः, द्रव्यव्यतिरिक्तत्वात्, वन्ध्यासुतगतबालत्वादिपर्यायवत्, उक्तञ्च—"द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः । क्व कदा केन किंरूपा ?,

दृष्टा मानेन केन वा ? ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, विस्तरार्थिना च धर्मसङ्ग्रहणिटीका निरूपणीया । 'से तेणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारमाह, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स चात्र वाक्योपन्यासे अथ 'एतेन' अनन्तरोदितेन कारणेन गौतम! एवमुच्यते—स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथिवी, इह यद् यावत्सम्भवास्पदं तत्तावन्तं कालं शश्वद्भवति तदा तदपि शाश्वतमुच्यते यथा तत्रान्तरेषु 'आकप्पट्ठाई पुढवी सासया' इत्यादि, ततः संशयः—किमेषा रत्नप्रभा पृथवी सकलकालावस्थायितया शाश्वती उतान्यथा यथा तत्रान्तरीयैरुच्यत इति ?, ततस्तदपनोदार्थं पृच्छति—'इमा णं भंते' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी कालतः 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम! न कदाचिन्नासीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, अत्रापि स एव हेतुः, सदा भावादिति, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति भावः, अपर्यवसितत्वात् । तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'भुविं चे'त्यादि, अभूत् भवति भविष्यति च, एवं त्रिकालभावित्वेन 'ध्रुवा' ध्रुवत्वादेव 'नियता' नियतावस्थाना, धर्मास्तिकायादिवत्, नियतत्वादेव च शाश्वती, शश्वद्भावः प्रलयाभावात्, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पद्मपौण्डरीकह्रद इवान्यतरपुद्गलविचटनेऽप्यन्यतरपुद्गलोपचयभावात्, अक्षया अक्षयत्वादेव च अव्यया, मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव 'अवस्थिता' स्वप्रमाणावस्थिता, सूर्यमण्डलादिवत्, एवं सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या जीवस्वरूपवत्, यदिवा ध्रुवादयः शब्दा इन्द्रशक्रादिवत्पर्यायशब्दा नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपन्यस्ता इत्यदोषः, एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवीषु(वि)विभागतोऽन्तरं विचिन्तयिषुरिदमाह—

[इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! असिउत्तरं जोयणसतसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । इमी से णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लातो चरिमंताओ खरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरमंताओ रयणस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लातो चरिमंतातो वइरस्स कण्डस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, ?, गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे प० ॥ इमीसे णं रयण० पु० उवरिल्लाओ चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं भंते ! केवतियं अबाधाए अंतरे प०?, गोयमा ! दो जोयणसहस्साइं इमीसे णं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठस्स उवरिल्ले पन्नरस जोयणसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरिमंते सोलस जोयणसहस्साइं ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० उवरिल्लाओ चरिमंताओ पंकबहुलस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं अबाधाए केवतियं अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । हेट्ठिल्ले चरिमंते एक्कं जोयणसयसहस्सं आवबहुलस्स उवरि एक्कं जोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले

॥ ९९ ॥

चरिमंते असीउत्तरं जोयणसयसहस्सं। घणोदहि उवरिल्ले असिउत्तरजोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं । इमीसे णं भंते! रयण० पुढ० घणवातस्स उवरिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं । हेट्ठिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं । इमीसे णं भंते! रयण० पु० तणुवातस्स उवरिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे हेट्ठिल्लेवि असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं, एवं ओवासंतरेवि ॥ दोच्चाए णं भंते! पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! बत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । सक्करप्प० पु० उवरि घणोदधिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाधाए । घणवातस्स असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पण्णत्ताइं। एवं जाव उवासंतरस्सवि जावऽधेसत्तमाए, णवरं जीसे जं बाहल्लं तेण घणोदधी संबंधेतव्वो बुद्धीए । सक्करप्पभाए अणुसारेणं घणोदहिसहिताणं इमं पमाणं ॥ तच्चाए णं भंते! अडयालीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं। पंकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। धूमप्पभाए पु० अट्ठतीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं । तमाए पु० छत्तीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं। अधेसत्तमाए पु० अट्ठावीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं जाव अधेसत्तमाए। एस णं भंते!

पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो उवासंतरस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ (सू० ७९)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्य प्रथमस्य खरकाण्डस्य विभागस्य 'उवरिल्लात्' इति उपरितनाच्चरमान्तात्परतो योऽधस्तनः 'चरमान्तः' चरमपर्यन्तः 'एस ण'मिति एतत्, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, अन्तरं 'कियत्' कियद्योजनप्रमाणम् 'अबाधया' अन्तरत्वव्याघातरूपया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! 'एकं योजनसहस्रम्' एकं योजनसहस्रप्रमाणमन्तरं प्रज्ञप्तम् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो यो वज्रकाण्डस्योपरितनश्चरमान्त एतदन्तरं 'कियत्' किंप्रमाणमबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकं योजनसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, रत्नकाण्डाधस्तनचरमान्तस्य वज्रकाण्डोपरितनचरमान्तस्य च परस्परसंलग्नतया उभयत्रापि तुल्यप्रमाणत्वभावात् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्ताद् वज्रकाण्डस्य योऽधस्तनश्चरमान्तः एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! द्वे योजनसहस्रे अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, एवं काण्डे काण्डे द्वौ द्वावालापकौ वक्तव्यौ, काण्डस्य चाधस्तने चरमान्ते चिन्त्यमाने योजनसहस्रपरिवृद्धिः कर्त्तव्या यावद् रिष्टस्य काण्डस्याधस्तने चरमान्ते चिन्त्यमाने षोडश योजनसहस्राणि अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यम् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो यः पङ्कबहुलस्य काण्डस्योपरितनश्चरमान्तः एतत् 'कियत्' किंप्रमाणमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनसहस्राणि अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्। 'इमीसे ण'मित्यादि, तस्यैव पङ्कबहुलस्य काण्डस्याधस्तनश्चरमान्त एकं यो-

जनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं । 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्य भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतोऽब्बहुलस्य काण्डस्य य उपरितनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं । 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतोऽब्बहुलस्य काण्डस्य योऽधस्तनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! अशीत्युत्तरं योजनशतसहस्रम् । घनोदधेरुपरितने चरमान्ते पृष्टे एतदेव निर्वचनमशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रम्, अधस्तने पृष्टे इदं निर्वचनं—द्वे योजनशतसहस्रे अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । घनवातस्योपरितने चरमान्ते पृष्टे इदमेव निर्वचनं, घनोदध्यधस्तनचरमान्तस्य घनवातोपरितनचरमान्तस्य च परस्परं संलग्नत्वात् । घनवातस्याधस्तने चरमान्ते पृष्टे एतन्निर्वचनम्—असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । एवं तनुवातस्योपरितने चरमान्ते अधस्तने चरमान्ते अवकाशान्तरस्याप्युपरितनेऽधस्तने च चरमान्ते इत्थमेव निर्वचनं वक्तव्यम्, असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति, सूत्रपाठस्तु प्रत्येकं सर्वत्रापि पूर्वानुसारेण स्वयं परिभावनीयः सुगमत्वात् ॥ 'दोच्चाए णं' इत्यादि, द्वितीयस्या भदन्त! पृथिव्या उपरितनाच्चरमान्तात्परतो योऽधस्तनश्चरमान्त एतत् 'कियत्' किंप्रमाणमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! 'द्वात्रिंशदुत्तरं' द्वात्रिंशत्सहस्राधिकं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । घनोदधेरुपरितने चरमान्ते पृष्टे एतदेव निर्वचनं द्वात्रिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रम्, अधस्तने चरमान्ते पृष्टे इदं निर्वचनं—द्विपञ्चाशदुत्तरं योजनशतसहस्रम् । एतदेव घनवातस्योपरितनचरमान्तपृच्छायामपि, घनवातस्याधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम्, असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यमिति भावः ॥ 'तच्चाए णं

भंते!' इत्यादि, तृतीयस्या भदन्त! पृथिव्या उपरितनाच्चरमान्ताद् अधस्तनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अवाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! अष्टाविंशत्युत्तरं शत(सहस्र)म्—अष्टाविंशतिसहस्राधिकं योजनशतसहस्रमवाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्। एतदेव घनोदधेरुपरितनचरमान्तपृच्छायामपि निर्वचनम्। अधस्तनचरमान्तपृच्छायामष्टाचत्वारिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रमवाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यम्। एतदेव घनवातस्योपरितनचरमान्तपृच्छायामपि। अधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम्। एवं चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमपृथिवीविषयाणि सूत्राण्यपि भावनीयानि ॥

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला विसेसाहिया संखेज्जगुणा? वित्थरेणं किं तुल्ला विसेसहीणा संखेज्जगुणहीणा?, गोयमा! इमा णं रयण० पु० दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं नो तुल्ला विसेसाहिया नो संखेज्जगुणा, वित्थारेणं नो तुल्ला विसेसहीणा णो संखेज्जगुणहीणा। दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला? एवं चेव भाणितव्वं। एवं तच्चा चउत्थी पंचमी छट्ठी। छट्ठी णं भंते! पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला विसेसाहिया संखेज्जगुणा?, एवं चेव भाणियव्वं। सेवं भंते! २। नेरइयउद्देसओ पढमो ॥ (सू० ८०)

'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी द्वितीयां पृथिवीं शर्कराप्रभां 'प्रणिधाय' आश्रित्य 'बाहल्येन' पिण्डभावेन किं तुल्या विशेषाधिका सङ्ख्येयगुणा?, बाहल्यमधिकृत्येदं प्रश्नत्रयम्, ननु एका अशीत्युत्तरयोजनलक्षमाना अपरा द्वात्रिंशदु-

त्तरयोजनलक्षमानेत्युक्तं ततस्तदर्थावगमे सत्युक्तलक्षणं प्रश्नत्रयमयुक्तं, विशेषाधिकेति स्वयमेवार्थपरिज्ञानात्, सत्यमेतत्, केवलं प्रश्न-
श्नोऽयं तदन्यमोहापोहार्थः, एतदपि कथमवसीयते ? इति चेत्स्वावबोधाय प्रश्नान्तरोपन्यासात्, तथा चाह—विस्तरेण—विष्कम्भेन
किं ? तुल्या विशेषहीना सङ्ख्येयगुणहीना ? इति, भगवानाह—गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी द्वितीयां शर्कराप्रभापृथिवीं प्रणिधाय बाहल्येन
न [च] तुल्या किन्तु विशेषाधिका नापि सङ्ख्येयगुणा, कथमेतदेवम् ? इति चेदुच्यते—इह रत्नप्रभा पृथिवी अशीत्युत्तरयोजनलक्षमाना,
शर्कराप्रभा द्वात्रिंशदुत्तरयोजनलक्षमाना, तदत्रान्तरमष्टाचत्वारिंशद् योजनसहस्राणि ततो विशेषाधिका घटते न तुल्या नापि सङ्ख्ये-
यगुणा, विस्तरेण न तुल्या किन्तु विशेषहीना नापि सङ्ख्येयगुणहीना, प्रदेशादिवृद्ध्या प्रवर्द्धमाने तावति क्षेत्रे शर्कराप्रभाया एवं [च]
वृद्धिसम्भवात्, एवं सर्वत्र भावनीयम् ॥ [तृतीयप्रतिपत्तौ समाप्तः प्रथमोद्देशकः, साम्प्रतं द्वितीयः प्रारभ्यते, तस्य चेदमादिसूत्रम्—]
सम्प्रति कस्यां पृथिव्यां कस्मिन् प्रदेशे नरकावासाः ? इत्येतत्प्रतिपादनार्थं प्रथमं तावदिदमाह—

कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा॥ इमीसे णं रयणप्प० पु० असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवतियं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवतिए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! इमीसे णं रयण० पु० असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अडसत्तरी जोयणसयसहस्सा, एत्थ णं रयणप्पभाए पु० नेरइयाणं तीसं निरयावाससयसहस्साइं भवंतित्तिमक्खाया॥

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णरएसु वेयणा, एवं एएणं अभिलावेणं उवजुंजिऊण भाणियव्वं ठाणप्पयाणुसारेणं, जत्थ जं बाहल्लं जत्थ जत्तिया वा नरयावाससयसहस्सा जाव अहेसत्तमाए पुढवीए, अहेसत्तमाए मज्झिमं केवतिए कति अणुत्तरा महइ महालता महाणिरया पण्णत्ता एवं पुच्छितव्वं वागरेयव्वंपि तहेव ॥ (सू० ८१)

'कइ णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः? इति, विशेषाभिधानार्थमेतदभिहितम्, उक्तञ्च—"पुव्वभणियंपि जं पुण भन्नई तत्थ कारणं अत्थि । पडिसेहो य अणुण्णा कारण(हेउ)विसेसोवलंभो वा ॥ १ ॥" भगवानाह—गौतम! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभा यावत्तमस्तमप्रभा ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरि 'कियत्' किंप्रमाणमवगाह्य—उपरितनभागात् कियद् अतिक्रम्येत्यर्थः अधस्तात् 'कियत्' किंप्रमाणं वर्जयित्वा मध्ये 'कियति' किंप्रमाणे कियन्ति नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्याया उपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधस्तादेकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा 'मध्ये' मध्यभागे 'अट्टसत्तत्युत्तरे' अष्टसप्ततिसहस्राधिके योजनशतसहस्रे 'अत्र' एतस्मिन् रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां योग्यानि त्रिंशन्नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, अनेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनता प्रवेदिता ॥ 'ते णं नरगा' इत्यादि, ते नरका 'अन्तः' मध्यभागे 'वृत्ताः' वृत्ताकाराः 'बहिः' बहिर्भागे 'चतुरस्राः' चतुरस्राकाराः, इदं च पीठोपरिवर्त्तिनं मध्यभागमधिकृत्य प्रोच्यते, सकलपीठाद्यपेक्षया तु आवलिकाप्रविष्टा वृत्तत्र्यस्रच-

१ पूर्वभणितमपि यत् पुनर्भण्यते तत्र कारणमस्ति । प्रतिषेधोऽनुज्ञा कारणविशेषोपलम्भश्च ॥ १ ॥

तुरस्रसंस्थाना: पुष्पावकीर्णास्तु नानासंस्थाना: प्रतिपत्तव्या:, एतच्चाग्रे स्वयमेव वक्ष्यति, "अहे खुरप्पसंठाणसंठिया" इति, 'अध:' भूमितले क्षुरप्रस्येव—प्रहरणविशेषस्य(इव) यत् संस्थानम्—आकारविशेषस्तीक्ष्णतालक्षणस्तेन संस्थिता: क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिता:, तथाहि—तेषु नरकावासेषु भूमितले मसृणत्वाभावत: शर्करिले पादेषु न्यस्यमानेषु शर्करामात्रसंस्पर्शेऽपि क्षुरप्रेणेव पादा: कृत्यन्ते, तथा "निच्चंधयार-तमसा" नित्यान्धकारा: उद्द्योताभावतो यत्तमस्तेन—तमसा नित्यं—सर्वकालमन्धकारो येषु ते नित्यान्धकारा:, तत्रापवरकादिष्वपि तमोऽन्धकारोऽस्ति केवलं स बहि: सूर्यप्रकाशे मन्दतमो भवति नरकेषु तु तीर्थकरजन्मदीक्षादिकालव्यतिरेकेणान्यदा सर्वकालमप्युद्द्योतलेशस्याप्यभावतो जात्यन्धस्येव मेघच्छन्नकालार्द्धरात्र इवातीव बहलतरो भवति, तत उक्तं तमसानित्यान्धकारा:, तमश्च तत्र सदाऽवस्थितमुद्द्योतकारिणामभावात्, तथा चाह—"ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा" व्यपगत:—परिभ्रष्टो ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्ररूपाणाम् उपलक्षणमेतत्तारारूपाणां च ज्योतिष्काणां पन्था—मार्गो यत्र ते व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्कपथा:, तथा "मेयवसा-पूयरुहिरमंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला" इति स्वभावत: संपन्नैर्मेदोवसापूतिरुधिरमांसैर्यश्चिक्खिल्ल:—कर्दमस्तेन लिप्तम्—उपदिग्धम् अनुलेपनेन—सकृल्लिप्तस्य पुन: पुनरुपलेपनेन तलं—भूमिका येषां ते मेदोवशापूतिरुधिरमांसचिक्खिल्ललिप्तानुलेपनतला अत एवाशुचय:—अपवित्रा, बीभत्सा दर्शनेऽप्यतिजुगुप्सोत्पत्ते: परमदुरभिगन्धा:—मृतगवादिकडेवरेभ्योऽप्यतीवानिष्टदुरभिगन्धा:, "का-ऊअगणिवन्नाभा" इति लोहे धम्यमाने यादृक् कपोतो—बहुकृष्णरूपोऽग्नेर्वर्ण:, किमुक्तं भवति?—यादृशी बहुकृष्णवर्णरूपाऽग्निज्वाला विनिर्गच्छतीति, तादृशी आभा—वर्णस्वरूपं येषां ते कपोताग्निवर्णाभा:, तथा कर्कश:—अतिदुस्सहोऽसिपत्रस्येव स्पर्शो येषां ते कर्कशस्पर्शा:, अत एव 'दुरहियासा' इति दु:खेनाध्यास्यन्ते—सह्यन्ते इति दुरध्यासा अशुभा दर्शनतो नरका:, तथा गन्ध-

रसस्पर्शशब्दैरशुभा—अतीवासातरूपा नरकेषु वेदना । एवं सर्वास्वपि पृथिवीष्वालापको वक्तव्यः, स चैवम्—“सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता मज्झे चेव केवइए केवइया णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! सक्करप्पभाए णं पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहित्ता हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे तीसुत्तरजोयणसयसहस्से एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पणवीसा नरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरएसु वेयणा । वालुयप्पभाए णं भंते! पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठं एगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पण्णरस निरयावाससयसहस्सा भवन्तीति मक्खायं, ते णं नरगा जाव असुभा नरगेसु वेयणा । पंकप्पभाए णं भंते! पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! पंकप्पभाए णं पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभा पुढविणेरइयाणं दस निरयावाससयसहस्सा निरयावासा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा जाव असुभा नरगेसु वेयणा। धूमप्पभाए णं भंते! पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! धूमप्पभाए णं पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसह-

स्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं तिन्नि नेरइयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरगेसु वेयणा इति, [ग्रन्थाग्रम् ३०००]। तमप्पभाए णं भंते! पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि केवतियं ओगाहेत्ता हेट्ठा केवतियं वज्जेत्ता मज्झे केवतिए केवतिया नरगावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! तमप्पभाए णं पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा एगं जोयणसयसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं तमापुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे नरगावाससयसहस्से भवन्तीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरगेसु वेयणा। अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहेत्ता हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता मज्झे केवइए केवइया अणुत्तरा महइमहालया महानरगावासा पण्णत्ता?, गोयमा! अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठावि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए मज्झे अप्पइट्ठाणे, ते णं महानरगा अंतो वट्टा जाव असुभा महानरगेसु वेयणा" इति। इदं च सकलमपि सूत्रं सुगमं, तत्र बाहल्यपरिमाणनरकावासयोग्यमध्यभागपरिमाणनरकावाससङ्ख्यानामिमाः सङ्ग्रहणिगाथाः—"आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हेट्ठिमया ॥ १ ॥ अट्ठुत्तरं च तीसं छव्वीसं चेव सयसहस्सं तु। अट्ठारस सोलसगं चोद्दसमहियं तु छट्ठीए ॥ २ ॥ अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमहे वज्जिऊण तो भणिया।

मज्झे तिसु सहस्सेसु होंति निरया तमतमाए ॥ ३ ॥ तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दस चेव सयसहस्साइं । तिन्नि य पंचूणेगं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ ४ ॥" पाठसिद्धाः ॥ सम्प्रति नरकावाससंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका किंसंठिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आवलियपविट्ठा य आवलियबाहिरा य, तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टा तंसा चउरंसा, तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, तंजहा—अयकोट्ठसंठिता पिट्ठपयणगसंठिता कंडूसंठिता लोहीसंठिता कडाहसंठिता थालीसंठिता पिहडगसंठिता किमियडसंठिता किन्नपुडगसंठिआ उडवसंठिया मुरवसंठिता मुयंगसंठिया नंदिमुयंगसंठिया आलिंगकसंठिता सुघोससंठिया दद्दरयसंठिता पणवसंठिया पडहसंठिया भेरिसंठिआ झल्लरीसंठिया कुतुंबकसंठिया नालिसंठिया, एवं जाव तमाए ॥ अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए णरका किंसंठिता पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टे य तंसा य ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! तिण्णि जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, तंजहा—हेट्ठा घणा सहस्सं मज्झे झुसिरा सहस्सं उप्पिं संकुइया सहस्सं, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसेणं भंते ! रयणप्प० पु० नरगा केवतियं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता,

तंजहा—संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एवं जाव तमाए, अहेसत्तमाए णं भंते! पुच्छा, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता (सू० ८२)

'इमीसे णं भंते'! इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः किमिव संस्थिताः किंसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! नरका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आवलिकाप्रविष्टाश्च आवलिकाबाह्याश्च, चशब्दावुभयेषामप्यशुभतातुल्यतासूचकौ, आवलिकाप्रविष्टा नामाष्टासु दिक्षु समश्रेण्यवस्थिताः, आवलिकासु—श्रेणिषु प्रविष्टा—व्यवस्थिता आवलिकाप्रविष्टाः, ते संस्थानमधिकृत्य त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वृत्तास्त्र्यस्राश्चतुरस्राः, तत्र ये ते आवलिकाबाह्यास्ते नानासंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अयःकोष्ठो—लोहमयः कोष्ठस्तद्वत्संस्थिता अयःकोष्ठसंस्थिताः, 'पिट्ठपयणगसंठिया' इति यत्र सुरासंधानाय पिष्टं पच्यते तत्पिष्टपचनकं तद्व-

त्संस्थिताः 'पिट्ठपयणगसंठिया' अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"अयकोट्ठपिट्ठपयणगकंडूलोहीकडाहसंठाणा । थाली पिहडग किण्ह(ग) उडए मुरवे मुयंगे य ॥ १ ॥ नंदिमुइंगे आलिंग सुघोसे दद्दरे य पणवे य । पडहगझल्लरिभेरीकुत्तुंबगनाडिसंठाणा ॥ २ ॥" कण्डुः—पाकस्थानं लोहीकटाहौ प्रतीतौ तद्वत्संस्थानाः स्थाली—उषा पिहडं—यत्र प्रभूतजनयोग्यं धान्यं पच्यते उटजः—तापसाश्रमो मुरजो—मर्दलविशेषः नन्दीमृदङ्गो—द्वादशविधतूर्यान्तर्गतो मृदङ्गः, स च द्विधा, तद्यथा—मुकुन्दो मर्दलश्च, तत्रोपरि सङ्कुचितोऽधो विस्तीर्णो मकुन्दः उपर्यधश्च समो मर्दलः आलिङ्गो—मृन्मयो मुरजः सुघोषो—देवलोकप्रसिद्धो घण्टाविशेष आतोद्यविशेषो वा दर्दरो—वाद्यविशेषः पणवो—भाण्डानां पटहः पटहः—प्रतीतः, भेरी—ढक्का, झल्लरी—चर्मावनद्धा विस्तीर्णवलयाकारा, कुस्तुम्बकः—संप्रदायगम्यः, नाडी—घटिका, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु तावद्वक्तव्यं यावत्षष्ठ्यां, सूत्रपाठोऽप्येवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए नरका किंसंठिया पन्नत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—आवलिकापविट्ठा य आवलियावाहिरा य" इत्यादि ॥ अधःसप्तमीविषयं सूत्रं साक्षादुपदर्शयति—'अहेसत्तमाए णं भंते !' इत्यादि, अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां नरकाः 'किंसंस्थिताः' किमिव संस्थिताः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'वट्टे य तंसा य' इति, अधःसप्तम्यां हि पृथिव्यां नरका आवलिकाप्रविष्टा एव न आवलिकाबाह्याः, आवलिकाप्रविष्टा अपि पञ्च, नाधिकाः, तत्र मध्येऽप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रो वृत्तः, सर्वेषामपि नरकेन्द्राणां वृत्तत्वात्, शेषास्तु चत्वारः पूर्वादिषु दिक्षु, ते च त्र्यस्राः, तत उक्तं वृत्तश्च त्र्यस्राश्च ॥ सम्प्रति नरकावासानां बाहल्यप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कियद्बाहल्येन—बहलस्य भावो बाहल्यं—पिण्डभाव उत्सेध इत्यर्थः तेन प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! त्रीणि योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तने पादपीठे घना—निचिताः

सहस्रं—योजनसहस्रं, मध्ये—पीठस्योपरि मध्यभागे सुषिराः सहस्रं—योजनसहस्रं, तत 'उप्पिं'ति उपरि सङ्कुचिताः शिखराकृत्या सङ्कोचमुपगता योजनसहस्रं, तत एवं सर्वसङ्ख्यया नरकावासानां त्रीणि योजनसहस्राणि बाहल्यतो भवन्ति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां, तथा चोक्तमन्यत्रापि—हेट्ठा घणा सहस्सं उप्पिं संकोचतो सहस्सं तु । मज्झे सहस्स सुसिरा तिन्नि सहस्सूसिया नरया ॥ १ ॥" सम्प्रति नरकावासानामायामविष्कम्भप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः किंप्रमाणमायामविष्कम्भेन, समाहारो द्वन्द्वस्तेनायामविष्कम्भाभ्यामित्यर्थः, कियत् 'परिक्षेपेण' परिरयेण प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृताश्च असङ्ख्येयविस्तृताश्च, सङ्ख्येययोजनप्रमाणं विस्तृतं—विस्तरो येषां ते सङ्ख्येयविस्तृताः, एवमसङ्ख्येयं विस्तृतं येषां ते असङ्ख्येयविस्तृताः, चशब्दौ स्वगतानेकसङ्ख्याभेदप्रकाशनपरौ, तत्र ये ते सङ्ख्येयविस्तृतास्ते सङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेन सङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण, तत्र ये तेऽसङ्ख्येयविस्तृतास्तेऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेन असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावत्षष्ठी पृथिवी, सूत्रपाठस्त्वेवम्—सक्करप्पभाए णं भन्ते! पुढवीए नरगा केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिरयेणं पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संखेज्जवित्थडा य, असंखेज्जवित्थडा य" इत्यादि ॥ 'अहेसत्तमाए णं भंते!' इत्यादि, अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां नरकाः कियदायामविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृत एकः, स चाप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रकोऽवसातव्यः, असङ्ख्येयविस्तृताः शेषाश्चत्वारः, तत्र योऽसौ सङ्ख्येयविस्तृतोऽप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रकः स एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशत्यधिके त्रयः

क्रोशा अष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदश अङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्, इदं च परिक्षेपपरिमाणं गणितभावनया जम्बूद्वीपपरिक्षेपपरिमाणवद्भावनीयं, तत्र ये ते शेषाश्चत्वारोऽसङ्ख्येयविस्तृतास्तेऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेनासङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि ॥ सम्प्रति नरकावासानां वर्णप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! काला कालावभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका केरिसका गंधेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! से जहाणामए अहिमडेति वा गोमडेति वा सुणगमडेति वा मज्जारमडेति वा मणुस्समडेति वा महिसमडेति वा मूसगमडेति वा आसमडेति वा हत्थिमडेति वा सीहमडेति वा वग्घमडेति वा विगमडेति वा दीवियमडेति वा मयकुहियचिरविणट्ठकुणिमवावण्णदुब्भिगंधे असुइविलीणविगयबीभत्थदरिसणिज्जे किमिजालाउलसंसत्ते, भवेयारूवे सिया ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरका चेव अकंततरका चेव जाव अमणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० णरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! से जहानामए असिपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा कलंबचीरियापत्तेइ वा सत्तग्गेइ वा कुंतग्गेइ वा तोमरग्गेति वा नारायग्गेति वा सूलग्गेति वा लउ-

लग्गेति वा भिंडिमालग्गेति वा सूचिकलावेति वा कवियच्छूति वा विंचुयकंटएति वा इंगालेति वा जालेति वा मुम्मुरेति वा, अच्चिति वा अलाएति वा सुद्धागणीइ वा, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव जाव अमणामतरका चेव फासे णं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ (सू० ८३)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कीदृशा वर्णेन प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! कालाः, तत्र कोऽपि निष्प्रतिभतया मन्दकालोऽप्याशङ्क्येत ततस्तदाशङ्काव्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह—'कालावभासाः' कालः—कृष्णोऽवभासः—प्रतिभाविनिर्गमो येभ्यस्ते कालावभासाः, कृष्णप्रभापटलोपचिता इति भावः, अत एव 'गम्भीररोमहर्षाः' गम्भीरः—अतीवोत्कटो रोमहर्षो—रोमोद्धर्षो भयवशाद् येभ्यस्ते गम्भीररोमहर्षाः, किमुक्तं भवति?—एवं नाम ते कृष्णावभासा यद्दर्शनमात्रेणापि नारकजन्तूनां भयसम्पादनेन अनर्गलं रोमहर्षमुत्पादयन्तीति, अत एव भीमा—भयानका भीमत्वादेव उत्त्रासनकाः, उत्त्रास्यन्ते नारका जन्तव एभिरिति उत्त्रासना उत्त्रासना एव उत्त्रासनकाः, किं वहुना?—'वर्णेन' वर्णमधिकृत्य परमकृष्णाः प्रज्ञप्ताः, यत ऊर्ध्वं न किमपि भयानकं कृष्णमस्तीति भावः, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ गन्धमधिकृत्याह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! तद्यथा नाम—'अहिमृत इति वा' अहिमृतो नाम मृताहिदेहः, एवं सर्वत्र भावनीयं, गोमृत इति वा अश्वमृत इति वा मार्जारमृत इति वा हस्तिमृत इति वा सिंहमृत इति वा व्याघ्रमृत इति वा द्वीपः—चित्रकः, सर्वत्र अहिश्चासौ मृतश्च अहिमृत इत्येवं विशेषणसमासः, इह मृतकं सद्यःसंपन्नं न विगन्धि भवति तत आह—'मयकुहियविणट्ठ-

कुणिमवावण्णे'त्यादि, मृतः सन् कुथितः—पूतिभावमुपगतो मृतकुथितः, स चोच्छूनावस्थामात्रगतोऽपि भवति, न च स तथा विगन्धस्तत आह—विनष्टः—उच्छूनावस्थां प्राप्य स्फुटित इति भावः, सोऽपि तथा दुरभिगन्धो न भवति तत आह—'कुणिमवावण्ण'त्ति व्यापन्नं—विशरारुभूतं कुणिमं—मांसं यस्य स तथा, ततो विशेषणसमासः, 'दुरभिगन्धः' इति दुरभिः—सर्वेषामाभिमुख्येन दुष्टो गन्धो यस्यासौ दुरभिगन्धः, अशुचिश्च विलीनो—मनसः कलिमलपरिणामहेतुः 'विगय' इति विगतं प्रनष्टं यदभिमुखतया प्राणिनां गतं—गमनं यस्मिन्, तथा बीभत्सया—निन्दया दर्शनीयो बीभत्सादर्शनीयः ततो विशेषणसमासः अशुचिविगतबीभत्सादर्शनीयः 'किमिजालाउलसंसत्ते' इति संसक्तः सन् कृमिजालाकुलो जातः कृमिजालाकुलसंसक्तः, मयूरव्यंसकादित्वात्समासः संसक्तशब्दस्य च परनिपातः, एतावत्युक्ते गौतम आह—'भवे एयारूवे सिया?' इति, स्याद् भवेद्—भवेयुरेतद्रूपाः—यथोक्तविशेषणविशिष्टा अहिमृतादिरूपा गन्धेनाधिकृता नरकाः, सूत्रे च बहुवचनेऽप्येकवचनं प्राकृतत्वात्, भगवानाह—गौतम! 'नायमर्थः समर्थो' नायमर्थ उपपन्नो, यतोऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरका इतो—यथोक्तविशेषणविशिष्टाहिमृतादेरनिष्टतरा एव, तत्र किञ्चिद्रम्यमपि कस्याप्यनिष्टतरं भवति तत आह—अकान्ततरा एव—स्वरूपतोऽप्यकमनीयतरा एव, अभव्या एवेति भावः, तत्राकान्तमपि कस्यापि प्रियं भवति यथा गर्त्ताशूकरस्याशुचिः, तत आह—अप्रियतरा एव न कस्यापि प्रिया इति भावः, अत एवामनोज्ञतरा एव, अमनआपतरा एव गन्धमधिकृत्य प्रज्ञप्ताः, तत्र मनोज्ञं—मनोऽनुकूलमात्रं यत्पुनः स्वविषये मनोऽत्यन्तमासक्तं करोति तन्मनआपम्, एकार्थिका वा एते सर्वे शब्दाः शक्रेन्द्रपुरन्दरादिवत् नानादेशजविनेयजनानुग्रहार्थमुपात्ताः, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ स्पर्शमधिकृत्याह—'इमीसे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! तद्यथा नाम—'असिपत्रमिति वा' असिः—खड्गं तस्य पत्रमसिपत्रं क्षुरप्रमिति वा

कदम्बचीरिकापत्रमिति वा, कदम्बचीरिका—तृणविशेष:, स च दर्भादप्यतीव छेदक:, शक्ति:—प्रहरणविशेषस्तदग्रमिति वा, कुन्ताग्रमिति वा, तोमराग्रमिति वा, भिण्डिमाल:—प्रहरणविशेषस्तदग्रमिति वा, सूचीकलाप इति वा, वृश्चिकदंश इति वा, कपिकच्छूरिति वा, कपिकच्छू:—कण्डूविजनको वल्लीविशेष:, अङ्गार इति वा, अङ्गारो—निर्धूमाग्नि:, ज्वालेति वा, ज्वाला—अनलसंबद्धा, मुर्मुर इति वा, मुर्मुर:—फुम्फुकादौ मसृणोऽग्नि:, अर्चिरिति वा, अर्चि:—अनलविच्छिन्ना ज्वाला, अलातम्—उल्मुकं, शुद्धाग्नि:—अयस्पिण्डाद्यनुगतोऽग्निर्विद्युदादिर्वा, इतिशब्द: सर्वत्रापि उपमाभूतवस्तुस्वरूपपरिसमाप्तिद्योतक:, वाशब्द: परस्परसमुच्चये, इह कस्यापि नरकस्य स्पर्श: शरीरावयवच्छेदकोऽपरस्य भेदकोऽन्यस्य व्यथाजनकोऽपरस्य दाहक इत्यादि तत: साम्यप्रतिपत्त्यर्थमसिपत्रादीनां नानाविधानामुपमानानामुपादानं, 'भवे एयारूवे सिया?' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नरकावासानां महत्त्वमभिधित्सुराह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केमहालिया पण्णत्ता?, गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूवसंठाणसंठिते वट्टे रथचक्कवालसंठाणसंठिते वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिते एक्कं जोयणसतसहस्सं आयामविक्खंभेणं जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे जाव इणामेव इणामेवत्तिकट्टु इमं केवलकप्पं जंबूदीवं २ तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरिताए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए [छेगाए] दिव्वाए दिव्वगतीए वीतिवयमाणे २ जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा

तिआहं वा उक्कोसेणं छम्मासेणं वीतिवएज्जा, अत्थेगतिए वीइवएज्जा अत्थेगतिए नो वीतिवएज्जा, एमहालता णं गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए; णवरं अधेसत्तमाए अत्थेगतियं नरगं वीइवइज्जा, अत्थेगइए नरगे नो वीतिवएज्जा ॥ (सू० ८४)

'इमीसे ण'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः **'किंमहान्तः'** किंप्रमाणा महान्तः प्रज्ञप्ताः ?, पूर्वं ह्यसङ्ख्येयविस्तृता इति कथितं, तच्चासङ्ख्येयत्वं नावगम्यत इति भूयः प्रश्नः, अत एवात्र निर्वचनं भगवानुपमयाऽभिधत्ते, गौतम! अयमिति यत्र संस्थिता वयं णमिति वाक्यालङ्कारे अष्टयोजनोच्छ्रितया रत्नमय्या जम्ब्वा उपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां—धातकीखण्डलवणादीनां सर्वाभ्यन्तरः—आदिभूतः **'सर्वक्षुल्लकः'** सर्वेभ्यो द्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको—ह्रस्वः सर्वक्षुल्लकः, तथाहि—सर्वे लवणादयः समुद्राः सर्वे धातकीखण्डादयो द्वीपा अस्माज्जम्बूद्वीपादारभ्य प्रवचनोक्तेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणायामविष्कम्भपरिधयः ततोऽयं शेषसर्वद्वीपसमुद्रापेक्षया सर्वलघुरिति, तथा वृत्तो यतः **'तैलापूपसंस्थानसंस्थितः'** तैलेन पक्वोऽपूपस्तैलापूपः, तैलेन हि पक्वोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतेन पक्व इति तैलविशेषणं, तस्येव संस्थानं तैलापूपसंस्थानं तेन संस्थितस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतः पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः, अनेकधोपमानोपमेयभावो नानादेशजविनेयप्रतिपत्त्यर्थः, एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशे त्रयः क्रोशा अष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदश अङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, परिक्षेपपरिमाणगणितभावना क्षेत्रसमासटीकातो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीकातो वा वेदितव्या । 'देवे ण'मित्यादि, देवश्च णमिति वाक्याल-

ङ्कारे, 'महर्द्धिकः' महती ऋद्धिर्विमानपरिवारादिका यस्य स महर्द्धिकः, महती द्युतिः शरीराभरणविषया यस्य स महाद्युतिकः, महद् बलं-शारीरः प्राणो यस्य स महाबलः, महद् यशः-ख्यातिर्यस्य स महायशाः, तथा 'महेसक्खे' इति महेश इति महान् ईश्वर इत्याख्या यस्य स महेशाख्यः, अथवा ईशनमीशो भावे घञ्प्रत्यय ऐश्वर्यमित्यर्थः, 'ईशं ऐश्वर्ये' इति वचनात्, तत ईशम्-ऐश्वर्यमात्मनः ख्याति-अन्तर्भूतण्यर्थतया ख्यापयति-प्रथयति ईशाख्यः, महांश्चासावीशाख्यश्च महेशाख्यः, कचित् 'महासोक्खे' इति पाठः, तत्र महत् सौख्यं यस्य प्रभूतसद्वेदोदयवशात्स महासौख्यः, अन्ये पठन्ति—'महासक्खे' इति तत्रायं शब्दसंस्कारो-महाश्वाक्षः, इयं चात्र पूर्वाचार्यप्रदर्शिता व्युत्पत्तिः-आशुगमनादश्वो-मनः अक्षाणि-इन्द्रियाणि स्वविषयव्यापकत्वात् अश्वश्चाक्षाणि च अश्वाक्षाणि महान्ति अश्वाक्षाणि यस्यासौ महाश्वाक्षः, तथा 'महाणुभागे' इति अनुभागो-विशिष्टवैक्रियादिकरणविषयाऽचिन्त्या शक्तिः 'भागोऽचिंता सत्ती' इति वचनात्, महान् अनुभागो यस्य स महानुभागः, अमूनि महर्द्धिक इत्यादीनि विशेषणानि तत्सामर्थ्यातिशयप्रतिपादकानि यावदिति चप्पुटिकात्रयकरणकालावधिप्रदर्शनपरम् 'इणामेव इणामेवेतिकट्टु' एवमेव मुधिकया एवमेव 'मोरकुला मुहा य मुहियत्ति नायव्वा' इति वचनाद् अवज्ञयेति भावः, उक्तञ्च मूलटीकायाम् "इणामेव इणामेवेति कट्टु एवमेव मुधिकयाऽवज्ञयेति" 'इतिकृत्वे'ति हस्तदर्शितचप्पुटिकात्रयकरणसूचकं केवलकल्पं-परिपूर्णं जम्बूद्वीपं त्रिभिरप्सरोनिपातैः, अप्सरोनिपातो नाम चप्पुटिका, तत्र तिसृभिश्चप्पुटिकाभिरिति द्रष्टव्यं, चप्पुटिकाश्च कालोपलक्षणं, ततो यावता कालेन तिस्रश्चप्पुटिकाः पूर्यन्ते तावत्कालमध्य इत्यर्थः, त्रिसप्तकृत्वः-एकविंशतिवारान् अनुपरिवर्त्त्य-सामस्त्येन परिभ्रम्य 'हव्वं' शीघ्रमागच्छेत्, स इत्थम्भूतगमनशक्तियोग्यो देवः तया देवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया प्रशस्तविहायोगतिनामोदयात्प्रशस्तया शीघ्रसंचरणात्त्वरितया त्वरा संजाताऽस्यामिति

त्वरिता तया त्वरितया शीघ्रतरमेव तया प्रदेशान्तराक्रमणमिति, चपलेव चपला तया, क्रोधाविष्टस्येव श्रमासंवेदनात् चण्डेव चण्डा तया, निरन्तरं शीघ्रत्वगुणयोगात् शीघ्रा तया शीघ्रया, परमोत्कृष्टवेगपरिणामोपेता जवना तया, अन्ये तु जितया विपक्षजेतृत्वेनेति व्याचक्षते, 'छेकया' निपुणया, वातोद्धूतस्य दिगन्तव्यापिनो रजस इव या गतिः सा उद्धूता तया, अन्ये त्वाहुः—उद्धतया दर्पातिशयेनेति, 'दिव्यया' दिवि—देवलोके भवा दिव्या तया देवगत्या व्यतिव्रजन् जघन्यतः 'एकाहं वा' एकमहर्यावत्, एवं द्व्यहं त्र्यहमुत्कर्षतः षण्मासान् यावद् व्यतिव्रजेत्, तत्रास्त्येतद् यदुत एककान् कांश्चन नरकान् 'व्यतिव्रजेत्' उल्लङ्घ्य परतो गच्छेत्, तथाऽस्त्येतद् यदुत इत्थंभूतयापि गत्या षण्मासानपि यावन्निरन्तरं गच्छन् एककान् कांश्चन नरकान् 'न व्यतिव्रजेत्' नोल्लङ्घ्य परतो गच्छेत्, अतिप्रभूताऽऽयामतया तेषामन्तस्य प्राप्तुमशक्यत्वात्, एतावन्तो महान्तो गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः प्रज्ञप्ताः, एवमेकैकस्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां, नवरमधःसप्तम्यामेवं वक्तव्यम्—"अत्थेगइयं नरगं वीइवएज्जा अत्थेगइए नरगे नो वीइवएज्जा" अप्रतिष्ठानाभिधस्यैकस्य नरकस्य लक्षयोजनायामविष्कम्भतयाऽन्तस्य प्राप्तुं शक्यत्वात् शेषाणां च चतुर्णामतिप्रभूतासङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वेनान्तस्य प्राप्तुमशक्यत्वात् ॥ सम्प्रति किंमया नरका इति निरूपणार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किंमया पण्णत्ता?, गोयमा! सव्ववइरामया पण्णत्ता, तत्थ णं नरएसु बहवे जीवा य पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति, सासता णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ८५)

'इमीसे णं भंते !' इत्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः 'किंमयाः' किंविकाराः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! 'सव्ववइरामया' इति सर्वात्मना वज्रमयाः प्रज्ञप्ताः, वज्रशब्दस्य सूत्रे दीर्घान्तता प्राकृतत्वात्, 'तत्र च' तेषु नरकेषु णमिति वाक्यालङ्कारे वहवो जीवाश्च खरबादरपृथिवीकायिकरूपाः पुद्गलाश्च 'अपक्रामन्ति' च्यवन्ते 'व्युत्क्रामन्ति' उत्पद्यन्ते, एतदेव शब्दद्वयं यथाक्रमं पर्यायद्वयेन व्याचष्टे—'चयंति उववज्जंति' च्यवन्ते उत्पद्यन्ते, किमुक्तं भवति ?—एके जीवाः पुद्गलाश्च यथायोगं गच्छन्ति अपरे त्वागच्छन्ति, यस्तु प्रतिनियतसंस्थानादिरूप आकारः स तदवस्थ एवेति, अत एवाह—शाश्वता णमिति पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थतया तथाविधप्रतिनियतसंस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः पुनरशाश्वताः, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥ साम्प्रतमुपपातं विचिचिन्तयिषुराह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया कतोहिंतो उववज्जंति किं असण्णीहिंतो उववज्जंति सरीसिवेहिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति चउप्पएहिंतो उववज्जंति उरगेहिंतो उववज्जंति इत्थियाहिंतो उववज्जंति मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?, गोयमा ! असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतोवि उववज्जंति[1],—असण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसिवा ततिय पक्खी । सीहा जंति चउत्थीं उरगा पुण पंचमीं जंति ॥ १ ॥ छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं जंति । जाव अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइया णो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव णो इत्थियाहिंतो उवव-

---

१ (सेसासु इमाए गाहाए अणुगंतव्वा, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाथा घोसेयव्वा).

ज्जंति मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतिया एक्कसमएणं केव-तिया उववज्जंति?, गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखिज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीए णेरतिया समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवतिकालेणं अवहिता सिता?, गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए स-मए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति नो चेव णं अवहिता सिता जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतियाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्को-सेणं सत्त धणूइं तिण्णि य रयणीओ छच्च अंगुलाइं, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जह० अंगु-लस्स संखेज्जतिभागं उक्को० पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ, दोच्चाए भवधारणिज्जे जह-ण्णओ अंगुलासंखेज्जभागं उक्को० पण्णरस धणू अड्ढाइज्जातो रयणीओ उत्तरवेउव्विया जह० अंगुलस्स संखेज्जभागं उक्को० एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी, तच्चाए भवधारणिज्जे एक्कतीसं धणू एक्का रयणी, उत्तरवेउव्विया बासट्ठिं धणूइं दोण्णि रयणीओ, चउत्थीए भवधारणिज्जे बासट्ठ ध-णूइं दोण्णि य रयणीओ, उत्तरवेउव्विया पणवीसं धणुसयं, पंचमीए भवधारणिज्जे पणवीसं ध-

णुसयं, उत्तरवे० अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, छट्ठीए भवधारणिज्जा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया पंचधणुसयाइं, सत्तमाए भवधारणिज्जा पंचधणुसयाइं उत्तरवेउव्विए धणुसहस्सं ॥ (सू० ८६)

'इमीसे ण'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाः कुत उत्पद्यन्ते?, किमसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते सरीसृपेभ्य उत्पद्यन्ते पक्षिभ्य उत्पद्यन्ते चतुष्पदेभ्य उत्पद्यन्ते उरगेभ्य उत्पद्यन्ते स्त्रीभ्य उत्पद्यन्ते मत्स्यमनुष्येभ्य उत्पद्यन्ते?, भगवानाह—गौतम! असञ्ज्ञिभ्योऽप्युत्पद्यन्ते यावन्मत्स्यमनुष्येभ्योऽप्युत्पद्यन्ते, **'सेसासु इमाए गाहाए अणुगंतव्वा'** इति, **'शेषासु'** शर्कराप्रभादिषु पृथिवीष्वनया गाथया, जातावेकवचनं गाथाद्विकेनेत्यर्थः, उत्पद्यमाना अनुगन्तव्याः, तदेव गाथाद्विकमाह—**'अस्सण्णी खलु पढम'**मित्यादि, असञ्ज्ञिनः—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियाः खलु प्रथमां नरकपृथिवीं गच्छन्ति, खलुशब्दोऽवधारणे, तथा अवधारणमेवम्—असञ्ज्ञिनः प्रथमामेव यावद् गच्छन्ति न परत इति, नतु त एव प्रथमामिति गर्भजसरीसृपादीनामपि उत्तरपृथिवीषट्कगामिनां तत्र गमनात्, एवमुत्तरत्राप्यवधारणं भावनीयम्। **'दोच्चं च सरीसिवा'** इति द्वितीयामेव शर्कराप्रभाख्यां पृथिवीं यावद्गच्छन्ति सरीसृपाः—गोधानकुलादयो गर्भव्युत्क्रान्ता न परतः, तृतीयामेव गर्भजाः पक्षिणो गृध्रादयः, चतुर्थीमेव सिंहाः, पञ्चमीमेव गर्भजा उरगाः, षष्ठीमेव स्त्रियः स्त्रीरत्नाद्या महाक्रूराध्यवसायिन्यः, सप्तमीं यावद् गर्भजा मत्स्या मनुजा अतिक्रूराध्यवसायिनो महापापकारिणः, आलापकश्च प्रतिपृथिवि एवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! नो असन्नीहिंतो उववज्जंति सरीसिवेहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति। वालुयप्पभाए णं भंते!

पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति ?, गोयमा! नो असण्णीहिंतो उववज्जंति नो सरीसिवेहिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति" एवमुत्तरोत्तरपृथिव्यां पूर्वपूर्वप्रतिषेधसहितोत्तरप्रतिषेधस्तावद्वक्तव्यो यावदधःसप्तम्यां स्त्रीभ्योऽपि प्रतिषेधः, तत्सूत्रं चैवम्—"अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?, गोयमा! नो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव नो इत्थीहिंतो उववज्जंति, मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति" ॥ सम्प्रत्येकस्मिन् समये कियन्तोऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नारका उत्पद्यन्ते ? इति निरूपणार्थमाह । (इमीसे णं) 'रयणप्पभापुढविए नेरइया णं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! एकसमयेन कियन्त उत्पद्यन्ते ?, भगवानाह—गौतम! जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति प्रतिसमयमेकैकनारकापहारे सकलनारकापहारकालमानं विचिचिन्तयिषुरिदमाह—'रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! समये समये एकैकसङ्ख्यया अपह्रियमाणाः २ कियता कालेन सर्वात्मनाऽपह्रियन्ते ?, भगवानाह—गौतम! 'ते णं असंखेज्जा समए २ अवहीरमाणा' इत्यादि, ते रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका असङ्ख्येयास्ततः समये समये एकैकसङ्ख्यया अपह्रियमाणा असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्रियन्ते, इदं च नारकपरिमाणप्रतिपत्त्यर्थं कल्पनामात्रं, 'नो चेव णं अवहिया सिया' इति न पुनरपहृताः स्युः, किमुक्तं भवति ?—न पुनरेवं कदाचनाप्यपहृता अभवन् नाप्यपह्रियन्ते नाप्यपहरिष्यन्त इति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति शरीरपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभापुढवी' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! 'किंमहती' किंप्रमाणा महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?, 'जहा पण्णवणाए ओगाहणसंठाणपदे'

इति, यथा प्रज्ञापनायामवगाहनासंस्थानाख्यपदे तथा वक्तव्या, सा चैवं—द्विविधा रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां शरीरावगाहना—भवधारणीया उत्तरवैक्रिया च, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् परिपूर्णान्यङ्गुलानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तावेका वितस्तिः, शर्कराप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तावेका वितस्तिः, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षत एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, वालुकाप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षत एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सार्द्धानि द्वाषष्टिधनूंषि, पङ्कप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सार्द्धानि द्वाषष्टिधनूंषि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चविंशं धनुःशतं, धूमप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चविंशं धनुःशतं, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, तमःप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चधनुःशतानि, तमस्तमःप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्च धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग, उत्कर्षतो धनुःसहस्रमिति । यदि पुनः प्रतिप्रस्तटे चिन्ता क्रियते तदैवमवगन्तव्या—तत्र जघन्या भवधारणीया सर्वत्राप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागः, उत्तरवैक्रिया तु अङ्गुलसङ्ख्येयभागः, उक्तं च मूलटीकाकारेणान्यत्र—"उत्तरवैक्रिया तु तथाविधप्रयत्नाभावादाद्यसमयेऽप्यङ्गुलसङ्ख्येयभागमात्रैवे"ति, उत्कृष्टा तु भवधारणीयाया रत्नप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे त्रयो हस्ता अत ऊर्ध्वं क्रमेण प्रतिप्रस्तटं सार्द्धानि षट्पञ्चाशदङ्गुलानि प्रक्षिप्यन्ते, तत एवं परिमाणं भवति, द्वितीये प्रस्तटे धनुरेकमेको हस्तः सार्द्धानि चाष्टावङ्गुलानि, तृतीये धनुरेकं

त्रयो हस्ताः सप्तदशाङ्कुलानि, चतुर्थे द्वे धनुषी द्वौ हस्तौ सार्द्धमेकमङ्कुलं, पञ्चमे त्रीणि धनूंषि दशाङ्कुलानि, षष्ठे त्रीणि धनूंषि द्वौ हस्तौ सार्द्धान्यष्टादशाङ्कुलानि, सप्तमे चत्वारि धनूंषि एको हस्तस्त्रीणि चाङ्कुलानि, अष्टमे चत्वारि धनूंषि त्रयो हस्ताः सार्द्धान्येकादशाङ्कुलानि, नवमे पञ्च धनूंषि एको हस्तो विंशतिरङ्कुलानि, दशमे षड् धनूंषि सार्द्धानि चत्वार्यङ्कुलानि, एकादशे षड् धनूंषि द्वौ हस्तौ त्रयोदशाङ्कुलानि, द्वादशे सप्त धनूंषि सार्द्धान्येकविंशतिरङ्कुलानि, त्रयोदशे सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् च परिपूर्णान्यङ्कुलानि, उक्तञ्च—"रयणाए पढमपयरे हत्थतियं देह उस्सए भणियं । छप्पन्नंगुलसड्ढा पयरे पयरे हवइ वुड्ढी ॥ १ ॥"

प्र.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
ध.	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
ह.	३	१	३	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अं.	०	८॥	१७	१॥	१०	१८॥	३	११॥	२०	४॥	१३	२१॥	६

शर्कराप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् चाङ्कुलानि, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं त्रयो हस्तास्त्रीणि चाङ्कुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटेऽष्ट धनूंषि द्वौ हस्तौ नव चाङ्कुलानि, तृतीये नव धनूंषि एको हस्तो द्वादश चाङ्कुलानि, चतुर्थे दश धनूंषि पञ्चदशाङ्कुलानि, पञ्चमे दश धनूंषि त्रयो हस्ता अष्टादशाङ्कुलानि, षष्ठे एकादश धनूंषि द्वौ हस्तावेकविंशतिरङ्कुलानि, सप्तमे द्वादश धनूंषि द्वौ हस्तौ, अष्टमे त्रयोदश धनूंषि एको हस्तस्त्रीणि चाङ्कुलानि, नवमे चतुर्दश धनूंषि षट् चाङ्कुलानि, दशमे चतुर्दश धनूंषि त्रयो हस्ता नव चाङ्कुलानि, एकादशे पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तौ एका वितस्तिः, उक्तञ्च—"सो चेव य बीयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । हत्थ तिय तिन्नि अङ्कुल पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥ १ ॥ एक्कारसमे पयरे पन्नरस धणूणि दोण्णि रयणीओ । बारस य अंगुलाइं देहपमाणं तु विन्नेयं ॥ २ ॥" अत्र 'सो चेव य बीयाए' इति य एव प्रथमपृथिव्यां त्रयोदशे प्रस्तटे उत्सेधो भणितो

यथा सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः पट् चाङ्गुलानीति स एव द्वितीयस्यां शर्कराप्रभायां पृथिव्यां प्रथमे प्रस्तटे उत्सेधो भवति, शेषं सुगमम् ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	प्र.
७	८	९	१०	१०	११	१२	१३	१४	१४	१५	ध.
३	२	१	०	३	२	२	१	०	३	२	ह.
६	९	१	१५	१८	२१	०	३	६	९	१२	अं.

वालुकाप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तौ द्वादश चाङ्गुलानि, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं सप्त हस्ताः सार्द्धानि चैकोनविंशतिरङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटे सप्तदश धनूंषि द्वौ हस्तौ सार्द्धानि सप्ताङ्गुलानि, तृतीये एकोनविंशतिर्धनूंषि द्वौ हस्तौ त्रीण्यङ्गुलानि, चतुर्थे एकविंशतिर्धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि च द्वाविंशतिरङ्गुलानि, पञ्चमे त्रयोविंशतिर्धनूंषि एको हस्तोऽष्टादश चाङ्गुलानि, पष्ठे पञ्चविंशतिर्धनूंपि एको हस्तः सार्द्धानि त्रयोदशाङ्गुलानि, सप्तमे सप्तविंशतिर्धनूंषि एको हस्तो नव चाङ्गुलानि, अष्टमे एकोनत्रिंशद् धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि चत्वार्यङ्गुलानि, नवमे एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, उक्तञ्च—"सो चेव य तइयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । सत्त य रयणी अंगुल गुणवीसं सड्ढ वुड्ढी य ॥ १ ॥ पयरे पयरे य तहा नवमे पयरंमि होइ उस्सेहो । धणुयाणि एगतीसं एक्का रयणी य नायव्वा ॥ २ ॥" अत्रापि 'सो चेव य तइयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो' इति य एव द्वितीयस्यां शर्कराप्रभायामेकादशे प्रस्तटे उत्सेधः स एव तृतीयस्यां वालुकाप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे भवति, शेषं सुगमं । पङ्कप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे एकत्रिंशद्धनूंपि एको हस्तः, तत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं पञ्च धनूंषि विंशतिरङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटे षट्त्रिंशद्धनूंषि एको हस्तो विंशतिरङ्गुलानि, तृतीये एकचत्वारिंशद्धनूंषि द्वौ हस्तौ पोडशाङ्गुलानि, चतुर्थे षट्चत्वारिंशद्धनूंषि त्रयो हस्ता द्वादशाङ्गुलानि, पञ्चमे द्विपञ्चाशद्धनूंषि अष्टावङ्गुलानि, षष्ठे सप्तपञ्चाशद्धनूंषि

एको हस्तस्त्रयोविंशत्यङ्गुलानि, सप्तमे द्वाषष्टिः धनूंषि द्वौ हस्तौ, उक्तञ्च—"सो चेव चउत्थीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो। पञ्च धणु वीस अंगुल पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥ १ ॥ जा सत्तमए पयरे नेरइयाणं तु होइ उस्सेहो। बासट्ठी धणुयाइं दोण्णि य रयणी य बोद्धव्वा ॥ १ ॥" अत्रापि 'सो चेवे'त्यस्यार्थः पूर्वानुसारेण भावनीयः। धूमप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे द्वाषष्टिर्धनूंषि द्वौ हस्तौ, तत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं पञ्चदश धनूंषि सार्द्धहस्तद्वयाधिकानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तेनेदं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटेऽष्टसप्ततिर्धनूंषि एका वितस्तिः, तृतीये त्रिनवतिर्धनूंषि त्रयो हस्ताः, चतुर्थे नवोत्तरं धनुःशतमेको हस्त एका वितस्तिः, पञ्चमे पञ्चविंशं धनुःशतं, उक्तञ्च—"सो चेव पंचमीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो। पनरस धणूणि दो हत्थ सड्ढ पयरेसु वुड्ढी य ॥ १ ॥ तह पंचमए पयरे उस्सेहो धणुसयं तु पणवीसं।" 'सो चेव य' इत्यस्यार्थोऽत्रापि पूर्ववत्। तमःप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे पञ्चविंशं धनुःशतं ततः परतरे तु प्रस्तटद्वये क्रमेण प्रत्येकं सार्द्धानि द्वाषष्टिर्धनूंषि प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये सार्द्धसप्ताशीत्यधिकं धनुःशतं, तृतीयेऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, उक्तञ्च—"सो चेव य छट्ठीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो। बासट्ठि धणु य सड्ढा पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥१॥ (सड्ढा य सत्तसीइ बीए पयरंमि होइ धणुयसयं) छट्ठीएँ तइयपयरे दो सय पण्णासया होंति ॥ २ ॥" सप्तमपृथिव्यां पञ्च धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया तु सर्वत्रापि भवधारणीयापेक्षया द्विगुणप्रमाणाऽवसातव्या ॥ सम्प्रति संहननप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरइयाणं सरीरया किंसंघयणी पण्णत्ता?, गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणा, णेवट्ठी णेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण०

३ प्रतिपत्तौ उद्देशः २ उपपातः संख्याऽवगाहनामानं सू० ८६

पु० नेरतियाणं सरीरा किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिता पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० णेरतियाणं सरीरगा केरिसता वण्णेणं पण्णत्ता?, गोयमा! काला कालोभासा जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते रयण० पु० नेरइयाणं सरीरया केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?, गोयमा! से जहानामए अहिमडे इ वा तं चेव जाव अहेसत्तमा ॥ इमीसे णं रयण० पु० नेरइयाणं सरीरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता?, गोयमा! फुडितच्छविविच्छविया खरफरुसझामझुसिरा फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ८७)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! 'किंसंहननिनः' केन संहननेन संहननवन्तः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! 'छण्हं संघयणाण' मित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि 'किंसंस्थितानि' केन संस्थानेन संस्थानवन्ति प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां शरीराणि द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भवधारणीयानि उत्तरवैक्रियाणि च, तत्र यानि भवधारणीयानि तानि तथाभवस्वाभाव्यादवश्यं हुण्डनामकर्मोदयतो हुण्डसंस्थानानि, यान्यपि चोत्तरवैक्रियरूपाणि तान्यपि यद्यपि शुभमहं वैक्रियं करिष्यामीति चिन्तयति तथाऽपि तथाभवस्वाभाव्यतो हुण्डसंस्थाननामकर्मोदयत उत्पाटितसकलरोमपिच्छकपोतपक्षिण इव हु-

ण्डसंस्थानानि भवन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति नारकाणां शरीरेषु वर्णप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि वर्णेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! 'काला कालोभासा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमपृथिव्याम् ॥ अधुना गन्धप्रतिपादनार्थमाह—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि गन्धेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! 'से जहानामए अहिमडे इ वा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति स्पर्शप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! स्फटितच्छविविच्छवयः, इहैकत्र छविशब्दस्त्वग्वाची अपरत्र छायावाची, ततोऽयमर्थः—स्फटितया—राजिशतसङ्कुलया त्वचा विच्छवयो—विगतच्छायाः स्फटितच्छविविच्छवयः, तथा खरम्(राणि)—अतिशयेन परुषाणि खरपरुषाणि ध्यामानि—दग्धच्छायानि शुषिराणि—शुषिरशतकलितानि, ततः पदत्रयस्यापि पदद्वयपदद्वयमीलनेन विशेषणसमासः, सुपक्वेष्टकाध्यामतुल्यानीतिभावः, स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि, एवं प्रतिपृथिवि तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रत्युच्छ्वासप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरतियाणं केरिसया पोग्गला ऊसासत्ताए परिणमंति?, गोयमा! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं ऊसासत्ताए परिणमंति, एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं आहारस्सवि सत्तसुवि ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरतियाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! एक्का काउलेसा पण्णत्ता, एवं सक्करप्पभाएऽवि, वालुयप्पभाए पुच्छा, दो

लेसाओ पण्णत्ताओ तं०—नीललेसा कापोतलेसा य, तत्थ जे काउलेसा ते बहुतरा जे णीललेस्सा पण्णत्ता ते थोवा, पंकप्पभाए पुच्छा, एक्का नीललेसा पण्णत्ता, धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ, तंजहा—किण्हलेस्सा य नीललेस्सा य, ते बहुतरका जे नीललेस्सा, ते थोवतरका जे किण्हलेसा, तमाए पुच्छा, गोयमा! एक्का किण्हलेस्सा, अधेसत्तमाए एक्का परमकिण्हलेस्सा ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरइया किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी?, गोयमा! सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि सम्मामिच्छदिट्ठीवि, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० णेरतिया किं नाणी अण्णाणी?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते णियमा तिणाणी, तंजहा—आभिणिबोधितणाणी सुयणाणी अवधिणाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी अत्थेगइया तिअन्नाणी, जे दुअन्नाणी ते णियमा मतिअन्नाणी य सुयअण्णाणी य, जे तिअन्नाणी ते नियमा मतिअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणीवि, सेसा णं णाणीवि अण्णाणीवि तिण्णि जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण० किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी?, तिण्णिवि, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभापु० नेरइया किं सागारोवउत्ता अणा-

---

१ टीकाकृद्भिः अत्र 'सक्करपभापुढवीनेरइया किं नाणी अन्नाणी?, गोयमा! नाणीवि अन्नाणीवि, जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी आभि० सुय० ओहि०, जे अन्नाणी ते नियमा तिअन्नाणी मतिअन्नाणी सुअअ० विभंगनाणी, एवं' इति पाठ इतः प्राक् वाचनान्तरगतोऽनुसृत·

गारोवउत्ता?, गोयमा! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ [इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० नेरइया ओहिणा केवतियं खेत्तं जाणंति पासंति?, गोयमा! जहण्णेणं अद्धुट्ठगाउताइं उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं । सक्करप्पभापु० जह० तिन्नि गाउयाइं उक्को० अद्धुट्ठाइं, एवं अद्धद्धगाउयं परिहायति जाव अधेसत्तमाए जह० अद्धगाउयं उक्कोसेणं गाउयं] ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरतियाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्विय-समुग्घाए, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ८८)

'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कीदृशाः पुद्गला उच्छ्वासतया परिणमन्ति?, भगवानाह—गौतम! ये पुद्गला अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोज्ञा अमनआपाः, अमीषां पदानां व्याख्यानं प्राग्वत्, ते तेषां रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणामुच्छ्वासतया परिणमन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ साम्प्रतमाहारप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कीदृशाः पुद्गला आहारतया परिणमन्ति?, भगवानाह—गौतम! ये पुद्गला अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोज्ञा अमनआपास्ते तेषामाहारतया परिणमन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् । इह पुस्तकेषु बहुधाऽन्यथापाठो दृश्यते, अत एव वाचनाभेदोऽपि समग्रो दर्शयितुं न शक्यते, केवलं बहुषु पुस्तकेषु योऽविसंवादी पाठस्तत्प्रतिपत्त्यर्थं सुगमान्यप्यक्षराणि संस्कारमात्रेण विविच्यन्तेऽन्यथा सर्वमेतदुत्तानार्थं सूत्रमिति ॥ सम्प्रति लेश्याप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि,

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! कापोतलेश्या प्रज्ञप्ता, एवं शर्कराप्रभानैरयिकाणामपि, नवरं तेषां कापोतलेश्या सङ्क्लिष्टतरा वेदितव्या, वालुकाप्रभानैरयिकाणां द्वे लेश्ये, तद्यथा—नीललेश्या च कापोतलेश्या च, तत्र ते बहुतरा ये कापोतलेश्याः, उपरितनप्रस्तटवर्त्तिनां नारकाणां कापोतलेश्याकत्वात् तेषां चातिभूयस्कत्वात्, ते स्तोकतरा ये नीललेश्याकाः, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाणामेका नीललेश्या, सा च तृतीयपृथिवीगतनीललेश्याऽपेक्षयाऽविशुद्धतरा, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां द्वे लेश्ये, तद्यथा—कृष्णलेश्या च नीललेश्या च, तत्र ते बहुतरा ये नीललेश्याकाः, ते स्तोकतरा ये कृष्णलेश्याकाः, भावनाऽत्रापि प्राग्वत्, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकाणां कृष्णलेश्या, सा च पञ्चमपृथिवीगतकृष्णलेश्याऽपेक्षयाऽविशुद्धतरा, अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकाणामेका परमकृष्णलेश्या, उक्तं च **व्याख्याप्रज्ञप्तौ**—"काऊ दोसु तइयाएँ मीसिया नीलिया चउत्थीए । पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥" सम्प्रति सम्यग्दृष्टित्वादिविशेषप्रतिपादनार्थमाह—'**रयणे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो वा?, भगवानाह—गौतम! सम्यग्दृष्टयोऽपि मिथ्यादृष्टयोऽपि सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽपि, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वाच्यं यावत्तमस्तमायाम् ॥ सम्प्रति ज्ञान्यज्ञानिचिन्तां कुर्वन्नाह—'**रयणे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि, सम्यग्दृशां ज्ञानित्वान्मिथ्यादृशामज्ञानित्वात्, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञानिनः, अपर्याप्तावस्थायामपि तेषामवधिज्ञानसम्भवात्, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्यस्तेषामुत्पादात्, त्रिज्ञानित्वमेव भावयति, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनः, येऽज्ञानिनस्ते '**अत्थेगइया**' इति अस्तीतिनिपातोऽत्र बहुवचनगर्भः सन्त्येकका द्व्यज्ञानिनः सन्त्येकका त्र्यज्ञानिनः, तत्र येऽसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य उत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तावस्थायां विभङ्गा-

सम्भवाद् द्व्यज्ञानिनः, शेषकालं तु तेषामपि त्र्यज्ञानिता, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य उत्पन्नानां तु सर्वकालमपि त्र्यज्ञानितैव, अपर्याप्तावस्थायामपि तेषां विभङ्गभावात्, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च। 'सक्करप्पभापुढवी'त्यादि, शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनोऽपि, तत्रापि सम्यग्दृशां मिथ्यादृशां च भावात्, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिवोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, येऽज्ञानिनस्ते नियमात्त्र्यज्ञानिनः, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य एव तत्रोत्पादात्, त्र्यज्ञानित्वमेव दर्शय[ती]ति, तद्यथा—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु वक्तव्यं, तत्रापि सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य एवोत्पादात् ॥ सम्प्रति योगप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनः?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधा अपि, एवं प्रतिपृथिवि तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ अधुना साकारानाकारोपयोगचिन्तां कुर्वन्नाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताः?, भगवानाह—साकारोपयुक्ता अपि अनाकारोपयुक्ता अपि, एवं तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ अधुना समुद्घातचिन्तां करोति—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! चत्वारः समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातश्च, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति क्षुत्पिपासे चिन्तयति—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभा० पु० नेरतिया केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! एगमेगस्स णं रयणप्पभापुढविनेरतियस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदधी वा सव्वपोग्गले वा

आसगंसि पक्खिवेज्जा णो चेव णं से रयणप्प० पु० णेरतिए तित्ते वा सिता वितण्हे वा सिता, एरिसया णं गोयमा! रयणप्पभाए णेरतिया खुधप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, एवं जाव अधेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० नेरतिया किं एकत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तंपि पभू विउव्वित्तए?, गोयमा! एगत्तंपि पभू पुहुत्तंपि पभू विउव्वित्तए, एगत्तं विउव्वेमाणा एगं महं मोग्गररूवं वा एवं मुसुंढिकरवत्तअसिसत्तीहलगतामुसलचक्कणारायकुंततोमरसूललउडभिंडमाला य जाव भिंडमालरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा मोग्गररूवाणि वा जाव भिंडमालरूवाणि वा ताइं संखेज्जाइं णो असंखेज्जाइं संबद्धाइं नो असंबद्धाइं सरिसाइं नो असरिसाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहणमाणा अभिहणमाणा वेयणं उदीरेंति उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं, एवं जाव धूमप्पभाए पुढवीए। छट्ठसत्तमासु णं पुढवीसु नेरइया बहू महंताइं लोहियकुंथूरूवाइं वइरामइतुंडाइं गोमयकीडसमाणाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा खायमाणा खायमाणा सयपोरागकिमिया विव चालेमाणा २ अंतो अंतो अणुप्पविसमाणा २ वेदणं उदीरंति उज्जलं जाव दुरहियासं॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० नेरइया किं सीतवेदणं वेइंति उसिणवेदणं वेइंति सीउसिणवेदणं वेदेंति?, गोयमा! णो सीयं वेदणं वेदेंति उसिणं वेदणं

वेदेंति नो सीतोसिणं, [ते अप्पयरा उण्हजोणिया वेदेंति,] एवं जाव वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीयंपि वेदणं वेदेंति, उसिणंपि वेयणं वेयंति, नो सीओसिणवेयणं वेयंति, ते बहुतरगा जे उसिणं वेदणं वेदेंति, ते थोवयरगा जे सीतं वेदणं वेइंति। धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीतंपि वेदणं वेदेंति उसिणंपि वेदणं वेदेंति णो सीतो०, ते बहुतरगा जे सीयवेदणं वेदेंति ते थोवयरका जे उसिणवेदणं वेदेंति। तमाए पुच्छा, गोयमा! सीयं वेदणं वेदेंति नो उसिणं (वेदणं) वेदेंति नो सीतोसिणं वेदणं वेदेंति, एवं अहेसत्तमाए णवरं परमसीयं ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरइया केरिसयं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति?, गोयमा! ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तसिता णिच्चं छुहिया णिच्चं उव्विग्गा निच्चं उपप्पुआ णिच्चं वहिया निच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं निरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति, एवं जाव अधेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पतिट्ठाणे, तत्थ इमे पंच महापुरिसा अणुत्तरेहिं दंडसमादाणेहिं कालमासे कालं किच्चा अप्पतिट्ठाणे णरए णेरति(य)त्ताए उववण्णा, तंजहा—रामे १, जमदग्गिपुत्ते, दढाउ २, लच्छतिपुत्ते, वसु ३, उवरिचरे, सुभूमे कोरव्वे ४, बंभ ५, दत्ते चुलणिसुते ६, ते णं तत्थ नेरतिया जाया काला कालो० जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, तंजहा—ते णं तत्थ वेदणं वेदेंति उज्जलं विउलं जाव दुरहि-

यासं ॥ उसिण वेदणिज्जेसु णं भंते! णेरतिएसु णेरतिया केरिसयं उसिणवेदणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति? गोयमा! से जहाणामए कम्मारदारए सिता तरुणे बलवं जुगवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपादपासपिट्ठंतरोरु [संघाय] परिणए लंघणपवणजवणवग्गणपमद्दणसमत्थे तलजमलजुयलबहुफलिहणिभबाहू घणणिचितवलियवट्टखंधे चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठियसमाहयणिचितगत्तगत्ते उरस्सबलसमण्णागए छेए दक्खे पट्ठे कुसले णिउणे मेहावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं उदगवारसमाणं गहाय तं ताविय ताविय कोट्टित कोट्टित उब्भिदिय उब्भिदिय चुण्णिय चुण्णिय जाव एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं संहणेज्जा, से णं तं सीतं सीतीभूतं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से णं तं उम्मिसियणिमिसियंतरेणं पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा णो चेव णं संचाएति अविरायं वा अविलीणं वा अविद्धत्थं वा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए ॥ से जहा वा मत्तमातंगे [पाए] कुंजरे सट्ठिहायणे पढमसरयकालसमतंसि वा चरमनिदाघकालसमयंसि वा उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए आउरे सुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एक्कं महं पुक्खरिणिं पासेज्जा चाउक्कोणं समतीरं अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीतलजलं संछण्णपमत्ताभिसमुणालं बहुउप्पलकुमुद-

णलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय (महापुंडरीय) सयपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियं छप्पयपरिभुज्ज-माणकमलं अच्छविमलसलिलपुण्णं परिहत्थभमंतमच्छकच्छभं अणेगसउणगणमिहुणयविरइ-यसद्दुन्नइयमहुरसरनाइयं तं पासइ, तं पासित्ता तं ओगाहइ, ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा तिण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि पविणिज्जा जरंपि पवि० दाहंपि पवि० णिद्दाएज्ज वा पयला-एज्ज वा सतिं वा रतिं वा धितिं वा मतिं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूए संकसमाणे संकस-माणे सायासोक्खबहुले यावि विहरिज्जा, एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणि-ज्जेहिंतो णरएहिंतो कुंभारागणी इ वा णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं मणुस्सलोयंसि भवंति (गोलियालिंगाणि वा सोंडियालिंगाणि वा भिंडियालिंगाणि वा) अयागराणि वा तंबाग-राणि वा तउयागरा० सीसाग० रुप्पागरा० सुवन्नागराणि वा हिरण्णागरा० कुंभारागणी इ वा मुसागणी वा इट्टयागणी वा कवेल्लुयागणी वा लोहारंबरिसे इ वा जंतवाडचुल्ली वा हंडियलि-त्थाणि वा सोंडियलि० णलागणी ति वा, तिलागणी वा तुसागणी ति वा, तत्ताइं समज्जोती-भूयाइं फुल्लकिंसुयसमाणाइं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं पमुचमाणाइं इंगालसहस्साइं पविक्खरमाणाइं अंतो २ हुहुयमाणाइं चिट्ठंति ताइं पासइ, ताइं पासित्ता ताइं ओगाहइ ताइं ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा तण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि पविणेज्जा

जरंपि पविणेज्ज्ञा दाहंपि पविणेज्ज्ञा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा सतिं वा रतिं वा धिइं वा मतिं वा उवलभेज्ज्ञा, सीए सीयभूयए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्ज्ञा, भवेयारूवे सिया ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु नेरतिया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव उसिणवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति॥ सीयवेदणिज्जेसु णं भंते णिरएसु णेरतिया केरिसयं सीयवेदणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?, गोयमा ! से जहाणामए कम्मारदारए सिया तरुणे जुगवं बलवं जाव सिप्पोवगते एगं महं अयपिंडं दगवारसमाणं गहाय ताविय ताविय कोट्टिय कोट्टिय जह० एक्काहं वा दुआहं वा तियाहं वा उक्कोसे णं मासं हणेज्ज्ञा, से णं तं उसिणं उसिणभूतं अयोमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए सीयवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्ज्ञा, से तं [उमिसियनिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामीतिकट्टु पविरायमेव पासेज्ज्ञा, तं चेव णं जाव णो चेव णं संचाएज्ज्ञा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए, से णं से जहाणामए मत्तमायंगे तहेव जाव सोक्खबहुले यावि विहरेज्ज्ञा] एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए सीतवेदणेहिंतो णरएहिंतो नेरतिए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं इहं माणुस्सलोए हवंति, तंजहा—हिमाणि वा हिमपुंजाणि वा हिमपडलाणि वा हिमपडलपुंजाणि वा तुसाराणि वा तुसारपुंजाणि वा हिमकुंडाणि वा हिमकुंडपुंजाणि वा सीताणि वा ताइं पासति पासित्ता ताइं ओगाहति ओगाहित्ता से णं तत्थ

सीतंपि पविणेज्जा तण्हंपि प० खुहंपि प० जरंपि प० दाहंपि प० निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा जाव उसिणे उसिणभूए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, गोयमा! सीयवेयणिज्जेसु नरएसु नेरतिया एत्तो अणिट्ठयरियं चेव सीतवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥ (सू० ८९)

'**रयणे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशीं क्षुधं पिपासां (च) प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमानाः '**विहरन्ति**' अवतिष्ठन्ति?, भगवानाह—गौतम! '**एगमेगस्स ण**'मित्यादि, एकैकस्य रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकस्य '**असब्भाव(प्र)स्थापनया**' असद्भावकल्पनया ये केचन पुद्गला उदधयश्चेति शेषः तान् '**आस्यके**' मुखे सर्वपुद्गलान् सर्वोदधीन् प्रक्षिपेत्, तथाऽपि '**नो चेव ण**'मित्यादि, नैव रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकः **तृसो वा** वितृष्णो वा स्यात् लेशतः अत्र प्रबलभस्मकव्याध्युपेतः पुरुषो दृष्टान्तः। '**एरिसिया ण**'मित्यादि, ईदृशीं णमिति वाक्यालङ्कृतौ गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः क्षुधं पिपासां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी॥ सम्प्रति वैक्रियशक्तिं विचिचिन्तयिषुरिदमाह—'**रयणप्पभे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! प्रत्येकं किम् '**एकत्वम्**' एकं रूपं विकुर्वितुं प्रभवः उत '**पृथक्त्वं**' पृथक्त्वशब्दो बहुवाची, आह च **कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणिचूर्णिकारोऽपि**—"पुहुत्तशब्दो बहुत्तवाई" इति, प्रभूतानि रूपाणि विकुर्वितुं प्रभवः?, '**विकुर्व विक्रियायाम्**' इत्यागमप्रसिद्धो धातुरस्ति यस्य विकुर्वाण इति प्रयोगस्ततो विकुर्वितुमित्युक्तं, भगवानाह—एकत्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं पृथक्त्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं, तत्रैकं रूपं विकुर्वतो मुद्गररूपं वा मुद्गरः—प्रतीतः मुषण्ढिरूपं वा मुषण्ढिः—प्रहरणविशेषः, करपत्ररूपं वा असिरूपं वा शक्तिरूपं वा हलरूपं वा गदारूपं वा मुशलरूपं वा चक्ररूपं वा नाराचरूपं वा कुन्तरूपं वा तोमररूपं वा शूलरूपं वा लकुटरूपं वा भिण्डमालरूपं वा विकुर्वन्ति, करपत्रादयः

प्रतीताः, भिण्डमालः–शस्त्रजातिविशेषः, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा क्वचित्पुस्तकेषु——“मुग्गरमुसुंढिकरकयअसिसत्ति हलं गयामुसलचक्का । नारायकुंततोमरसूललउडभिंडिमाला य ॥१॥” गतार्था, नवरं ‘करकय’त्ति क्रकचं करपत्रमित्यर्थः, पृथक्त्वं विकुर्वन्तो मुद्गररूपाणि वा यावत् भिण्डमालरूपाणि वा, तान्यपि सदृशानि, (समानरूपाणि) ‘नोऽसदृशानि’(अ) समानरूपाणि, तथा ‘सङ्ख्येयानि’ परिमितानि न ‘असङ्ख्येयानि’ सङ्ख्यातीतानि, विसदृशकरणेऽसङ्ख्येयकरणे वा शक्त्यभावात्, तथा ‘संबद्धानि’ स्वात्मनः शरीरसंलग्नानि ‘नासंबद्धानि’ न स्वशरीरात्पृथग्भूतानि, स्वशरीरात्पृथग्भूतकरणे शक्त्यभावात्, विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वाऽन्योऽन्यस्य कायमभिघ्नन्तो वेदनामुदीरयन्ति, किंविशिष्टामित्याह——‘उज्ज्वलां’ दुःखरूपतया जाज्वल्यमानां सुखलेशेनाप्यकलङ्कितामिति भावः, ‘विपुलां’ सकलशरीरव्यापितया विस्तीर्णां ‘प्रगाढां’ प्रकर्षेण मर्मप्रदेशव्यापितयाऽतीवसमवगाढां कर्कशामिव कर्कशां, किमुक्तं भवति?—यथा कर्कशः पाषाणसंघर्षः शरीरस्य खण्डानि त्रोटयति एवमात्मप्रदेशान् त्रोटयन्तीव या वेदनोपजायते सा कर्कशा तां, कटुकामिव कटुकां पित्तप्रकोपपरिकलितवपुषो रोहिणीं—कटुद्रव्यमिवोपभुज्यमानमतिशयेनाप्रीतिजनिकामिति भावः, तथा ‘परुषां’ मनसोऽतीव रौक्ष्यजनिकां ‘निष्ठुराम्’ अशक्यप्रतीकारतया दुर्भेदां ‘चण्डां’ रुद्रां रौद्राध्यवसायहेतुत्वात् ‘तीव्राम्’ अतिशायिनीं ‘दुःखां’ दुःखरूपां ‘दुर्गां’ दुर्लङ्घ्यामत एव दुरधिसह्याम्, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावत्पञ्चम्याम् । ‘छट्ठसत्तमीसु ण’मित्यादि, षष्ठसप्तम्योः पुनः पृथिव्योर्नैरयिकाः बहूनि महान्ति गोमयकीटप्रमाणत्वात्, ‘लोहितकुन्थुरूपाणि’ आरक्तकुन्थुरूपाणि वज्रमयतुण्डानि, गोमयकीटसमानानि विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वा ‘अन्योऽन्यस्य’ परस्परस्य ‘कायं’ शरीरं समतुरङ्गा इवाचरन्तः समतुरङ्गायमाणाः, अश्वा इवान्योऽन्यमारुहन्त इत्यर्थः, ‘खायमाणा खायमाणा’ भक्षयन्तो भक्षयन्तोऽन्तरन्तः ‘अनुप्रवेशयन्तः’ अनुप्रविशन्तः ‘सयपोरागकिमिया इव’ शतपर्वकृमय

इव इक्षुपर्वक्रमय इव 'चालेमाणा चालेमाणा' शरीरस्य मध्यभागेन संचरन्तः संचरन्तो वेदनामुदीरयन्त्युज्ज्वलामित्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति क्षेत्रस्वभावजां वेदनां प्रतिपादयति—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं शीतां वेदनां वेदयन्ते उष्णां वेदनां वेदयन्ते शीतोष्णां वा?, भगवानाह—गौतम! न शीतां वेदनां वेदयन्ते किन्तु उष्णां वेदनां वेदयन्ते, ते हि शीतयोनिका योनिस्थानानां केवलहिमानीप्रख्यशीतप्रदेशात्मकत्वात्, योनिस्थानव्यतिरेकेण चान्यत् सर्वमपि भूम्यादि खादिराङ्गारादपि महाप्रतप्तमतस्ते उष्णवेदनामनुभवन्ति, नापि शीतोष्णां वेदनां वेदयन्ते, शीतोष्णस्वभावतया वेदनाया नरकेषु मूलतोऽप्यसम्भवात्, एवं शर्कराप्रभावालुकाप्रभानैरयिका अपि वक्तव्याः, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छायाम् भगवानाह—गौतम! शीतामपि वेदनां वेदयन्ते नरकावासभेदेनोष्णामपि वेदनां वेदयन्ते नरकावासभेदेनैव, न तु शीतोष्णां, तत्र ते वहुतरा ये उष्णां वेदनां वेदयन्ते, प्रभूततराणां शीतयोनित्वात्, ते स्तोकतरा ये शीतां वेदनां वेदयन्ते, अल्पतराणामुष्णयोनित्वात्, एवं धूमप्रभायामपि वक्तव्यं, नवरं ते वहुतरा ये शीतवेदनां वेदयन्ते, वहूनामुष्णयोनित्वात्, ते स्तोकतरा ये उष्णवेदनां वेदयन्ते, अल्पतराणां शीतयोनित्वात्, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छायां भगवानाह—गौतम! शीतां वेदनां वेदयन्ते नोष्णां नापि शीतोष्णां, तत्रत्यानां सर्वेपामुष्णयोनित्वात्, योनिस्थानव्यतिरेकेण चान्यस्य सर्वस्यापि नरकभूम्यादेर्महाहिमानीप्रख्यत्वात्, एवं तमस्तमाप्रभापृथिवीनैरयिका अपि वक्तव्या, नवरं परमां शीतवेदनां वेदयन्ते इति वक्तव्यं, तमःप्रभापृथिवीतः तमस्तमप्रभापृथिव्यां शीतवेदनाया अतिप्रबलत्वात् ॥ सम्प्रति भवानुभवप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं नरकभवं प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमानाः 'विहरन्ति' अवतिष्ठन्ते?, भगवानाह—गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका 'नित्यं' सर्वकालं क्षेत्रस्वभावजमहानिविडान्धकारदर्शनतो भीताः, सर्वत उपजातशङ्कत्वात्,

तथा 'नित्यं' सर्वकालं स्वत एवाग्रेऽपि 'त्रस्ताः' परमाधार्मिकदेवपरस्परोदीरितदुःखसंपातभयात्त्रासमुपपन्नाः, तथा 'नित्यं' सर्वकालं परमाधार्मिकैः परस्परं वा 'त्रासिताः' त्रासं ग्राहिताः, तथा 'नित्यमुद्विग्नाः' यथोक्तरूपदुःखानुभवतस्तद्गतावासपराङ्मुखचित्ताः, तथा 'नित्यं' सर्वकालम् 'उपप्लुताः' उपप्लवेनोपेता न तु मनागपि रतिमासादयन्ति, एवं 'नित्यं' सर्वकालं परममशुभम् 'अतुलम्' अशुभत्वेनानन्यसदृशम् 'अनुबद्धम्' अशुभत्वेन निरन्तरमुपचितं निरयभवं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, अस्यां चाधःसप्तम्यां क्रूरकर्माणः पुरुषा उत्पद्यन्ते नान्ये, तथा चास्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थं पञ्च पुरुषान् उपन्यस्यति—'अहेसत्तमाए ण'मित्यादि, अधःसप्तम्यां पृथिव्यामप्रतिष्ठाने नरके 'इमे' अनन्तरं वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्च महापुरुषाः 'अनुत्तरैः' सर्वोत्तमप्रकर्षप्राप्तैः 'दण्डसमादानैः' समादीयते कर्म्म एभिरिति समादानानि—कर्म्मोपादानहेतवः दण्डा एव—मनोदण्डादयः प्राणव्यपरोपणाध्यवसायरूपाः समादानानि दण्डसमादानानि तैः कालमासे कालं कृत्वोत्पन्नाः, तद्यथा—रामो जामदग्निसुतः पर्शुराम इत्यर्थः, दाढादालः छातीसुतः, वसू राजा उपरिचरः, स हि देवताऽधिष्ठिताकाशस्फटिकसिंहासनोपविष्टः सन्नाकाशस्फटिकमयस्य सिंहासनस्यादर्शनतो लोकेष्वेवं प्रसिद्धिमगमत्—सत्यवादी किलैष वसुराजा न प्राणात्ययेऽप्यलीकं भाषते ततः सत्त्वावर्जितदेवताकृतप्रातिहार्य एवमुपर्याकाशे चरतीति, स चान्यदा हिंस्रवेदार्थप्ररूपकस्य पर्वतस्य पक्षमभिगृह्य सम्यग्दृष्टेर्नारदस्य पक्षमनभिगृह्णन्नलीकवादित्वात्प्रकुपितदेवताचपेटाहतः सिंहासनात्परिभ्रष्टो रौद्रध्यानमभिरूढः सप्तमपृथिव्यामप्रतिष्ठाननरकमयासीत्, सुभूमोऽष्टमश्चक्रवर्त्ती कौरव्यः कौरव्यगोत्रो ब्रह्मदत्तश्चुलनीसुतः 'ते णं तत्थ वेयणं वेयंती' त्यादि, 'ते' परशुरामादयस्तत्र—अप्रतिष्ठाने नरके वेदनां वेदयन्ते उज्ज्वलां यावद् दुरध्यासामिति प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नरकेपूष्णवेदनायाः स्वरूपमभिधित्सुराह—'उसिणवेदणिज्जेसु णं

भंते !' इत्यादि, उष्णवेदनेषु णमिति पूर्ववत् भदन्त ! नरकेषु नैरयिकाः कीदृशीमुष्णवेदनां प्रत्यनुभवन्तः—प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति ?, भगवानाह—गौतम ! स 'यथानामकः' अनिर्दिष्टनामकः कश्चित् 'कम्मारदारकः' लोहकारदारकः स्यात्, किंविशिष्टः ? इत्याह—'तरुणः' प्रवर्द्धमानवयाः, आह—दारकः प्रवर्द्धमानवया एव भवति तत. किमनेन विशेषणेन ?, न, आसन्नमृत्योः प्रवर्द्धमानवयस्त्वाभावात्, न ह्यासन्नमृत्युः प्रवर्द्धमानवया भवति, न च तस्य विशिष्टसामर्थ्यसम्भवः, आसन्नमृत्युत्वादेव, विशिष्टसामर्थ्यप्रतिपादनार्थश्चैष आरम्भस्ततोऽर्थवद्विशेषणम्, अन्ये तु व्याचक्षते—इह यद्द्रव्यं विशिष्टवर्णादिगुणोपेतमभिनवं च तत्तरुणमिति लोके प्रसिद्धं, यथा तरुणमिदमश्वत्थपत्रमिति, ततः स कर्मारदारकस्तरुण इति किमुक्तं भवति ?—अभिनवो विशिष्टवर्णादिगुणोपेतश्चेति, बलं—सामर्थ्यं तदस्यास्तीति बलवान्, तथा युगं—सुषमदुष्षमादिकालः स स्वेन रूपेण यस्यास्ति न दोषदुष्टः स युगवान्, किमुक्तं भवति ?—कालोपद्रवोऽपि सामर्थ्यविघ्नहेतुः स चास्य नास्तीति प्रतिपत्त्यर्थमेतद्विशेषणं, युवा—यौवनस्थः, युवावस्थायां हि बलातिशय इत्येतदुपादानम्, 'अप्पायंके' इति अल्पशब्दोऽभाववाची अल्पः—सर्वथाऽविद्यमान आतङ्को—ज्वरादिर्यस्यासावल्पातङ्कः, 'थिरग्गहत्थे' स्थिरौ अग्रहस्तौ यस्य स स्थिराग्रहस्तः, 'दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणए' इति दृढानि—अतिनिविडचयापन्नानि पाणिपादपार्श्वपृष्ठान्तरोरूणि परिणतानि यस्य स दृढपाणिपादपार्श्वपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, सुखादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथा घनम्—अतिशयेन निचितौ—निविडतरचयमापन्नौ वलिताविव वलितौ वृत्तौ स्कन्धौ यस्य स घननिचितवलितवृत्तस्कन्धः, 'चम्मेट्ठगदुघणमुट्ठियसमाहयनिचियगायगत्ते' चर्मेष्टकेन द्रुघणेन मुष्टिकया च—मुष्ट्या च समाहत्य ये निचितीकृतगात्रास्ते चर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतनिचितगात्रास्तेषामिव गात्रं यस्य स चर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतनिचितगात्रगात्रः, 'उरस्सबलसमन्नागए' इति उरसि

भवमुरस्यं तच्च तद्बलं च उरस्यबलं तत्र समन्वागतः—समनुप्राप्त उरस्यबलसमन्वागतः, आन्तरोत्साहवीर्ययुक्त इति भावः, 'तलजमलजुयलबाहू' इति, तलौ—तालवृक्षौ तयोर्यमलयुगलं—समश्रेणीकं युगलं तलयमलयुगलं, तद्वदतिसरलौ पीवरौ च बाहू यस्य स तलयमलयुगलबाहुः, 'लंघणपवणजवणपमद्दणसमत्थे' इति, लङ्घने—अतिक्रमणे प्लवने—मनाक् पृथुतरविक्रमगतिगमने जवने—अतिशीघ्रगतौ प्रमर्दने—कठिनस्यापि वस्तुनश्चूर्णनकरणे समर्थः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः, क्वचित् 'लंघणपवणजवणवायामणसमत्थे' इति पाठस्तत्र व्यायामने—व्यायामकरणे इति व्याख्येयं, 'छेकः' द्वासप्ततिकलापण्डितः 'दक्षः' कार्याणामविलम्बितकारी, 'प्रष्ठः' वाग्मी 'कुशलः' सम्यक्क्रियापरिज्ञानवान् 'मेधावी' परस्पराव्याहतपूर्वापरानुसन्धानदक्षः, अत एव 'निपुणसिप्पोवगए' इति निपुणं यथा भवति एवं शिल्पं—क्रियासु कौशलमुपगतः—प्राप्तो निपुणशिल्पोपगतः, एकं महान्तमयस्पिण्डम् 'उदकवारकसमानं' लघुपानीयघटसमानं गृहीत्वा 'तम्' अयस्पिण्डं तापयित्वा तापयित्वा ततो घनेन कुट्टयित्वा कुट्टयित्वा यावदेकाहं वा द्व्यहं वा यावदुत्कर्षतोऽर्द्धमासं संहन्यात्, ततो णमिति वाक्यालङ्कारे 'तम्' अयस्पिण्डं शीतं, स च शीतो वह्निमेनाग्मात्रेणापि स्यादत आह—'शीतीभूतं' सर्वात्मना शीतत्वेन परिणतं अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वा 'असब्भावस्थापनया' असद्भावकल्पनया नैतद्भूत् न भवति भविष्यति वा केवलमसद्भूतमिदं कल्प्यत इति, उष्णवेदनेषु नरकेषु प्रक्षिपेत्, प्रक्षिप्य च स पुरुषो णमिति वाक्यालङ्कारे 'उम्मिसियनिमिसियंतरेण' उन्मिषितनिमिषितान्तरेण यावताऽन्तरेण—यावता व्यवधानेन उन्मेषनिमेषौ क्रियेते तावदन्तरप्रमाणेन कालेनातिक्रान्तेन पुनरपि प्रत्युद्धरिष्यामीतिकृत्वा यावद् द्रष्टुं प्रवर्त्तते तावत् 'प्रवितरमेव' प्रस्फुटितमेव, यदिवा 'प्रविलीनमेव' नवनीतमिव सर्वथा गलितमेव, यदिवा 'प्रविध्वस्तमेव' सर्वथा भस्मसाद्भूतमेव पश्येत्, न पुनः शक्नुयाद् अचिरात्तं अप्रस्फुटितं अविलीनं

वा अविध्वस्तं वा पुनरपि प्रत्युद्धर्तुम्, एवंरूपा नाम तत्रोष्णवेदना ॥ अस्यैवार्थस्य स्पष्टतरभावनार्थं दृष्टान्तान्तरमाह—'से जहानामए' इत्यादि, 'से' सकलजनप्रसिद्धो यथेति दृष्टान्तत्वोपदर्शने वाशब्दो विकल्पने, अयं वा दृष्टान्तो विवक्षितार्थप्रतिपत्तये बोद्धव्य इति विकल्पनभावना, 'मत्तः' मदकलितः 'मातङ्गः' हस्ती, इह मातङ्गोऽन्त्यजोऽपि संभवति ततस्तदाशङ्काव्युदासार्थं नानादेशजविनेयजनानुग्रहाय (वा) पर्यायद्वयमाह—'द्विपः' द्वाभ्यां मुखेन करेण चेत्यर्थः पिबतीति द्विपः, 'मूलविभुजादय' इति कप्रत्ययः, कौ जीर्यतीति कुञ्जरः, यदिवा कुञ्जे—वनगहने रमति—रतिमाबध्नातीति कुञ्जरः 'कचिदि'ति डप्रत्ययः, षष्टिहायनः—संवत्सरा यस्य स षष्टिहायनः 'प्रथमशरत्कालसमये' कार्त्तिकमाससमये, इह प्राय ऋतवः सूर्यर्त्तवो गृह्यन्ते ते चाषाढादयो द्विद्विमासप्रमाणाः, प्रवचने च क्रमेणैवंनामानः, तद्यथा—प्रथमः प्रावृट् द्वितीयो वर्षारात्रः तृतीयः शरत् चतुर्थो हेमन्तः पञ्चमो वसन्तः षष्ठो ग्रीष्मः, तथा चाह पादलिप्तसूरिः—"पाउस वासारत्तो, सरओ हेमंत वसन्त गिम्हो य। एए खलु छप्पि रिऊ, जिणवरदिट्ठा मए सिट्ठा ॥१॥" ततः प्रथमशरत्कालसमयः कार्त्तिकसमय इति विवृत्तम्, आह च मूलटीकाकृत्—"प्रथमशरत्—कार्त्तिकमासः" तस्मिन् वाशब्दो विकल्पने 'चरमनिदाघकालसमये वा' चरमनिदाघकालसमयो—ज्येष्ठमासपर्यन्तस्तस्मिन्, वाशब्दो विकल्पने, 'उष्णाभिहतः' सूर्यखरकिरणप्रतापाभिभूतः, अत एवोष्णैः सूर्यकिरणैः सर्वतः प्रतप्ताङ्गतया शोषभावतस्तृषाभिहतः, तत्रापि पानीयगवेषणार्थमितस्ततः स्वेच्छया परिभ्रमतः कथञ्चिद्दवाग्निप्रत्यासत्तौ गमनतो दवाग्निज्वालाभिहतः अत एव 'आतुरः' कचिदपि स्वास्थ्यमलभमानः सन् आकुलः, सर्वाङ्गपरितापसम्भवेन गलतालुशोषभावात् शुषितः, कचित् 'झिज्झिए' इति पाठस्तत्र 'क्षितः' क्षीणशरीर इति व्याख्येयम्, असाधारणतृड्वेदनासमुच्छलनात्पिपासितः, अत एव दुर्बलः शारीरमानसावष्टम्भरहितत्वात्, 'क्लान्तः' ग्लानिमुपगतः

'क्लमू ग्लानौ' इति वचनात्, एकां महतीं **'पुष्करिणीं'** पुष्कराण्यस्यां विद्यन्ते इति पुष्करिणी तां, किंविशिष्टामित्याह—**'चतुष्कोणां'** चत्वारः कोणा—अश्रयो यस्याः सा तथा तां, समं—विषमोन्नतिवर्जितं सुखावतारं तीरं—तटं यस्याः सा समतीरा ताम्, आनुपूर्व्येण—नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण न त्वेकहेलयैव क्वचिद्गर्त्तारूपा क्वचिदुन्नतिरूपा इति भावः, सुष्ठु—अतिशयेन यो जातो वप्रः—केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरम्—अलब्धस्ताघं शीतलं जलं यस्यां सा आनुपूर्व्यसुजातवप्रगम्भीरशीतलजला ताम्, **'संछण्णपत्तभिसमुणाल'**मिति संछन्नानि—जलेनान्तरितानि पत्रबिसमृणालानि यस्यां सा संछन्नपत्रबिसमृणाला ताम्, इह बिसमृणालसाहचर्यात् पत्राणि—पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि, बिसानि—कन्दाः मृणालानि—पद्मनालाः, तथा बहुभिरुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रैः केसरैः—केसरप्रधानैः फुल्लैः—विकसितैरुपचिता बहूत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रकेसरफुल्लोपचिता तां, तथा षट्पदैः—भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि यस्याः सा षट्पदपरिभुज्यमानकमला तां, तथाऽच्छेन—स्वरूपतः स्फटिकवच्छुद्धेन विमलेन—आगन्तुकमलरहितेन सलिलेन पूर्णा अच्छविमलसलिलपूर्णा तां, तथा **पडिहत्था**—अतिरेकता (तः) अतिप्रभूता इत्यर्थः भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यस्यां सा पडिहत्थभ्रमन्मत्स्यकच्छपा, तथा अनेकैः शकुनिगणमिथुनकैः गणशब्दस्य प्राकृतत्वादस्थानेऽप्युपनिपातः, शकुनिमिथुनकैर्विचरितैः—इतस्ततः स्वेच्छया प्रवृत्तैः शब्दोन्नतिकम्—उन्नतशब्दं मधुरस्वरं नादितं यस्यां सा अनेकशकुनिगणमिथुनकविचरितशब्दोन्नतिकमधुरस्वरनादिता, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तां दृष्ट्वाऽवगाहेत, अवगाह्य च **'उष्णमपि'** परिदाहमपि शरीरस्य तत्र **'प्रविनयेत्'** प्रकर्षेण सर्वात्मना स्फोटयेत्, तथा क्षुधामपि प्रविनयेत् प्रत्यासन्नतटवर्त्तिशल्लक्यादिकिसलयभक्षणात्, तृषमपि प्रविनयेत् जलपानात्, ज्वरमपि परिसंतापसमुत्थं प्रवि-

नयेत् परिदाघक्षुत्पिपासाऽपगमात्, एवं सकलक्षुदादिदोषापगमतः सुखासिकाभावेन निद्रायेत प्रचलायेत, तत्र अनिद्रावान् निद्रावान् भवतीति च्व्यर्थविवक्षायां निद्रादिभ्यो धर्मिणि क्यचिति कर्म्मणि क्यप्प्रत्ययः, एवं प्रचलाशब्दादपि निद्रादेराकृतिगणत्वात्, निद्राप्रचलयोस्त्वयं विशेषः—सुखप्रबोधा स्वापावस्था निद्रा, ऊर्द्धस्थितस्यापि या पुनश्चैतन्यमस्फुटीकुर्वती समुपजायते निद्रा सा प्रचला, एवं च क्षणमात्रनिद्रालाभतोऽतिस्वस्थीभूतः 'स्मृतिं वा' पूर्वानुभूतस्मरणं 'रतिं वा' तदवस्थाऽऽसक्तिरूपां 'धृतिं वा' चित्तस्वास्थ्यं 'मतिं वा' सम्यगीहापोहरूपाम् 'उपलभेत' प्राप्नुयात्, ततः 'शीतः' बाह्यशरीरप्रदेशशीतीभावात्, 'शीतीभूतः' शरीरान्तरपि निर्वृतीभूतः सन् 'संकसमाणे' इति सम्—एकीभावेन कसन्—गच्छन् 'सातसौख्यबहुलश्चापि' सातम्—आह्लादस्तत्प्रधानं सौख्यं सातसौख्यं न त्वभिमानमात्रजनितमाह्लादविरहितं सातसौख्येन बहुलो—व्याप्तः सातसौख्यबहुलश्चापि 'विहरेत्' स्वेच्छया परिभ्रमेत्, 'एवमेव' अनेनैवानन्तरोदितदृष्टान्तप्रकारेण हे गौतम! 'असद्भावप्रस्थापनया' असद्भावकल्पनया नेदं वक्ष्यमाणमभूत् केवलं नरकगतोष्णवेदनायाथात्म्यप्रतिपत्तयेऽसत्कल्प्यत इति भावः, उष्णवेदनेभ्यो नरकेभ्यो नैरयिकोऽनन्तरमुद्वर्त्तितो विनिर्गतः सन् 'यानि' इमानि प्रत्यक्षत उपलभ्यमानानि 'इह' मनुष्यलोके स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—"गोलियालिंगाणि वा, सोंडियालिंगाणि वा, भिंडियालिंगाणि वा, एते अग्नेराश्रयविशेषाः, अन्ये तु देशभेदनीत्या पिष्टपाचनकाम्यादिभेदेनैतेषां स्वरूपं कथयन्ति, तदप्यविरुद्धमेवेति, तैलाग्निरिति वा तुषाग्निरिति वा बुसाग्निरिति वा नडाग्निरिति वा, नडः—तृणविशेषः, 'अयागराणीति वा' आर्षत्वान्नपुंसकनिर्देशः अयआकरा इति वा, येषु निरन्तरं महामूषास्वयोदलं प्रक्षिप्याऽय उत्पाट्यते ते अयआकराः, एवं ताम्राकरा इति वा त्रप्वाकरा इति वा सीसकाकरा इति वा रूप्याकरा इति वा सुवर्णाकरा इति वा हिरण्याकरा इति वा, सुवर्णहिरण्ययोरत्र विशेषो वर्णा-

दिकृतो वेदितव्यः, इष्टकापाक इति वा कुम्भकारापाक इति वा कवेल्लुकापाक इति वा लोहकाराम्बरीष इति वा, अम्बरीषः—कोष्ठकः, यन्त्रवाडचुल्ली इवेति, यन्त्रम्—इक्षुपीडनयन्त्रं तत्प्रधानः पाटको यन्त्रपाटकः तत्र चुल्ली यत्रेक्षुरसः पच्यते, इत्थम्भूतानि यानि मनुष्यलोके स्थानानि 'तप्तानि' वह्निसंपर्कतस्तप्तीभूतानि, तानि च कानिचिद् अयआकरप्रभृतीनि कदाचिदुष्णस्पर्शमात्राण्यपि संभवन्ति ततो विशेषप्रतिपादनार्थमाह—'समजोईभूयाइ' प्राकृतत्वात्समशब्दस्य पूर्वनिपातः, 'ज्योतिःसमभूतानि' साक्षादग्निवर्णानि जातानीति भावः, एतदेवोपमया स्पष्टयति—'फुल्लकिंशुकसमानानि' प्रफुल्लपलाशकुसुमकल्पानि 'उक्कासहस्साइं' इति ये मूलाग्नितो विश्रुट्य विश्रुट्याग्निकणाः प्रसर्पन्ति ते उल्का इत्युच्यन्ते तासां सहस्राणि उल्कासहस्राणि मुञ्चन्ति ज्वालासहस्राणि विनिर्मुञ्चन्ति अङ्गारसहस्राणि प्रविक्षरन्ति 'अन्तरन्तर्हूहूयमानानि' अतिशयेन जाज्वल्यमानानि, क्वचित् 'अंतो अंतो सुहुयहुयासणा' इति पाठः, 'अन्तरन्तः सुहुतहुताशनानि' सुष्ठु हुतो हुताशनो येषु तानि तथा तिष्ठन्ति तानि पश्येत् दृष्ट्वा चावगाहेत, अवगाह्य च 'उष्णमपि' नरकोष्णवेदनाजनितं बहिःशरीरस्य परितापमपि प्रविनयेत्, नरकगताद्रुष्णस्पर्शोदयआकरादिपूष्णस्पर्शस्यातीव मन्दत्वात्, एवं च सुखासिकाभावतस्तृषामपि क्षुधमपि दाहमपि अन्तःशरीरसमुत्थं प्रविनयेत्, तथा च सति तृडादिदोषापगमतो निद्रायेत वा प्रचलायेत वा स्मृतिं वा रतिं वा धृतिं वा उपलभेत, ततः शीतः शीतीभूतः सन् 'संकसन् संकसन्' संक्रामन् संक्रामन् सातसौख्यबहुलो विहरेत्, अमीषां पदानामर्थः प्राग्वद्भावनीयः । एतावत्युक्ते भगवान् गौतमः पृच्छति—'भवे एयारूवे सिया ?' 'स्यात्' संभाव्यते एतद् यथा भवेद् उष्णवेदनीयेषु नरकेषु एतद्रूपा उष्णवेदना ?, भगवानाह—गौतम ! नायमर्थः समर्थो यदुष्णवेदनीयेषु नरकेषु नैरयिका इति, अनन्तरं प्रतिपादितस्वरूपाया उष्णवेदनायाः अनिष्टतरिकामेव अप्रियतरिकामेव अमनोज्ञत-

रिकामेव अमनआपतरिकामेव वेदनां 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति ॥ सम्प्रति शीतवेदनीयेषु नरकेषु शीतवेदनास्वरूपं प्रतिपादयति—'सीयवेयणिज्जेसु ण'मित्यादि, शीतवेदनीयेषु भदन्त ! निरयेषु नैरयिकाः कीदृशीं शीतवेदनां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ?, स यथानामकः कर्म्मकरदारकः स्यात् तरुण इत्यादिविशेषणकदम्बकं प्राग्वत्तावद् यावत्संहन्यात् नवरमुत्कर्षतो मासमित्यत्र ब्रूयात्, ततः 'सः' कर्म्मकरदारकः 'तम्' अयस्पिण्डमुष्णं स चोष्णो बाह्यप्रदेशमात्रापेक्षयाऽपि स्यादत आह—'उष्णीभूतं' सर्वात्मनाऽग्निवर्णीभूतमिति भावः, अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वाऽसद्भावप्रस्थापनया शीतवेदनीयेषु नरकेषु प्रक्षिपेत्, ततः 'स' पुरुषः 'तम्' अयस्पिण्डमित्यादि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावद्विहरति, तच्चैवम्—'से णं तं उम्मिसियनिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा नो चेव णं संचाएइ अविरायं अविलीणं अविद्धत्थं पुणरवि पच्चुद्धरित्तए से जहानामए मत्तमायंगे जाव सायासोक्खबहुलेयावि विहरइत्ति' 'एवामेवे'त्यादि, अनेनैवाधिकृतदृष्टान्तोक्तेन प्रकारेण गौतम ! असद्भावप्रस्थापनया शीतवेदनीयेभ्यो नरकेभ्योऽनन्तरमुद्वृत्तः सन् यानीमानि मनुष्यलोके स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—हिमानि वा हिमपुञ्जानि वा, सूत्रे नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, हिमपटलानि वा हिमकूटानि वा, एतान्येव पदानि नानादेशजविनेयानुग्रहाय पर्यायैर्व्याचष्टे—'सीयाणि वा सीयपुंजाणि वा' इत्यादि, तानि पश्येत्, दृष्ट्वा तान्यवगाहेत, अवगाह्य 'शीतमपि' नरकजनितं शीतलमपि प्रविनयेत्, ततः सुखासिकाभावतस्तृषमपि क्षुधमपि ज्वरमपि नरकवेदनीयनरकसंपर्कसमुत्थं जाड्यमपि प्रविनयेत्, ततः शीतत्वादिदोषापगमतोऽनुत्तरं स्वास्थ्यं लभमानो निद्रायेत वा प्रचलायेत वा स्मृतिं वा रतिं वा धृतिं वा लभेत, ततो नरकगतजाड्यापगमाद् उष्णः, स च बहिःप्रदेशमात्रतोऽपि स्यात्तत आह—'उष्णीभूतः' अन्तरपि नरकगतजा-

ड्यापगमात् जातोत्साह इत्यर्थः, स एवंभूतः सन् यथास्वसुखं (संकसन्) संक्रामन् सातसौख्यबहुलो विहरेत्, एवमुक्ते गौतम आह—'भवेयारूवे सिया?' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नैरयिकाणां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतियाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणवि उक्कोसेणवि ठिती भाणितव्वा जाव अधेसत्तमाए ॥ (सू० ९०) ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए णेरतिया अणंतरं उव्वट्टिय कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं नेरतिएसु उववज्जंति? किं तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति?, एवं उव्वट्टणा भाणितव्वा जहा वक्कंतीए तहा इहवि जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ९१)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सागरोपमं, एवं शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यत एकं सागरोपममुत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि, वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्त, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः, तमस्तमःप्रभायां जघन्यतो द्वाविंशतिसागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, कचित् 'जहा पण्णवणाए ठिइपदे' इत्यतिदेशः सोऽप्येवमेवार्थतो भावनीयः, तदेवं प्रतिपृथिवि स्थितिपरिमाणमुक्तं, यदा तु प्रतिप्रस्तटं स्थितिपरिमाणं चिन्त्यते तदैवमवगन्तव्यम्—रत्नप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्राणि १०००० उत्कृष्टा नवतिः ९००००,

द्वितीये प्रस्तटे एषैव शतगुणिता जघन्या उत्कृष्टा च वेदितव्या, तद्यथा—जघन्या दशवर्षलक्षा १०००००० उत्कृष्टा नवतिवर्षलक्षाः ९००००००, तृतीये प्रस्तटे जघन्यतो नवतिवर्षलक्षा उत्कृष्टा पूर्वकोटी, चतुर्थे जघन्या पूर्वकोटी उत्कृष्टा सागरोपमस्य दशमो भागः, पञ्चमे जघन्या सागरोपमस्यैको दशभाग उत्कृष्टा द्वौ दशभागौ, षष्ठे जघन्या सागरोपमस्य द्वौ दशभागावुत्कृष्टा त्रयः, सप्तमे जघन्या त्रयः सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टाश्चत्वारः, अष्टमे जघन्या चत्वारः सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा पञ्च, नवमे जघन्या पञ्च सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा षट्, दशमे जघन्या षट् सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा सप्त, एकादशे जघन्या सप्त उत्कृष्टाऽष्टौ, द्वादशे जघन्याऽष्टौ उत्कृष्टा नव, त्रयोदशे जघन्या नव सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा दश, परिपूर्णमेकं सागरोपममिति भावः । शर्कराप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या एकं सागरोपमं उत्कृष्टा एकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्यैकादशभागौ, द्वितीये प्रस्तटे जघन्या एकं सागरोपमं द्वौ सागरोपमस्यैकादशभागौ उत्कृष्टा एकं सागरोपमं चत्वारः सागरोपमस्यैकादशभागाः, तृतीये जघन्या एकं सागरोपमं चत्वारः सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा एकं सागरोपमं षट् सागरोपमस्यैकादशभागाः, चतुर्थे जघन्या एकं सागरोपमं षट् सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा एकं सागरोपमम् अष्टौ सागरोपमस्यैकादशभागाः, पञ्चमे जघन्या एकं सागरोपमं अष्टौ सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा एकं सागरोपमं दश सागरोपमस्यैकादश भागाः, षष्ठे जघन्या एकं सागरोपमं दश सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे एकः सागरोपमस्यैकादशभागः, सप्तमे जघन्या द्वे सागरोपमे एकः सागरोपमस्यैकादशभाग उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे त्रयः सागरोपमस्यैकादशभागाः, अष्टमे जघन्या द्वे सागरोपमे त्रयः सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे पञ्च सागरोपमस्यैकादशभागाः, नवमे जघन्या द्वे सागरोपमे पञ्च सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे साग-

रोपमे सप्त सागरोपमस्यैकादशभागाः, दशमे जघन्या द्वे सागरोपमे सप्त सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे नव सागरोपमस्यैकादशभागाः, एकादशे जघन्या द्वे सागरोपमे नव सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टानि परिपूर्णानि त्रीणि सागरोपमाणि । वालुकाप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कृष्टा त्रीणि सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य नवभागाः, द्वितीये जघन्या त्रीणि सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा त्रीणि सागरोपमाणि अष्टौ सागरोपमस्य नवभागाः, तृतीये जघन्या त्रीणि सागरोपमाणि अष्टौ सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा चत्वारः सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य नवभागाः, चतुर्थे जघन्या चत्वारि सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा चत्वारि सागरोपमाणि सप्त सागरोपमस्य नवभागाः, पञ्चमे जघन्या चत्वारि सागरोपमाणि सप्त सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा पञ्च सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य नवभागौ, षष्ठे जघन्येन पञ्च सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य नवभागौ उत्कृष्टा पञ्च सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य नवभागाः, सप्तमे जघन्या पञ्च सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा षट् सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य नवभागः, अष्टमे जघन्या षट् सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य नवभागः उत्कृष्टा षट् सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य नवभागाः, नवमे जघन्या षट् सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि सप्त सागरोपमाणि, एषोऽत्र तात्पर्यार्थः—सागरोपमत्रयस्योपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेण चत्वारः सागरोपमस्य नवभागा वर्द्धयितव्यास्ततो यथोक्तपरिमाणं भवति । पङ्कप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिः सप्त सागरोपमाणि उत्कृष्टा सप्त सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः, द्वितीये जघन्या सप्त सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा सप्त सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य सप्तभागाः, तृतीये जघन्या सप्त सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टाऽष्टौ सागरोप-

माणि द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ, चतुर्थे जघन्याऽष्टौ सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ उत्कृष्टाऽष्टौ सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य सप्तभागाः, पञ्चमे जघन्याऽष्टौ सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा नव सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य सप्तभागः, षष्ठे जघन्या नव सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य सप्तभागः उत्कृष्टा नव सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः सप्तमे जघन्या नव सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि दश सागरोपमाणि, अत्रापीयं भावना—सागरोपमसप्तकस्योपरि त्रयस्त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः प्रतिप्रस्तटं क्रमेण वर्द्धयितव्यास्ततो भवति यथोक्तं परिमाणमिति। धूमप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिर्दश सागरोपमाणि उत्कृष्टा एकादश सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य पञ्चभागौ, द्वितीये जघन्या एकादश सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य पञ्चभागौ उत्कृष्टा द्वादश सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य पञ्चभागाः, तृतीये जघन्या द्वादश सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य पञ्चभागाः उत्कृष्टा चतुर्दश सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः, चतुर्थे जघन्या चतुर्दश सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः उत्कृष्टा पञ्चदश सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य पञ्चभागाः, पञ्चमे जघन्या पञ्चदश सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य पञ्चभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि सप्तदश सागरोपमाणि, एष चात्र भावार्थः—सागरोपमदशकस्योपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेणैकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्य पञ्चभागाविति वर्द्धयितव्यं ततो यथोक्तं परिमाणं भवति। तमःप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कृष्टाऽष्टादश सागरोपमाणि द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागौ, द्वितीये जघन्याऽष्टादश सागरोपमाणि द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागौ उत्कृष्टा विंशतिः सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य त्रिभागः, तृतीये जघन्या विंशतिः सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य त्रिभागः उत्कृष्टा द्वाविंशतिः सागरोपमाणि, अत्राप्येष तात्पर्यार्थः—सप्तदश साग-

राणामुपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेणैकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागाविति वर्द्धयितव्यं, ततो यथोक्तं परिमाणं भवति । सप्तम्यां तु पृथिव्यामेक एव प्रस्तट इति तत्र पूर्वोक्तमेव परिमाणं द्रष्टव्यम् ॥ सम्प्रति नैरयिकाणामुद्वर्त्तनामाह—'रयणप्पभापुढवि'इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! अनन्तरमुद्धृत्य क्व गच्छन्ति?, एतदेव व्याचष्टे—कोत्पद्यन्ते इत्यादि, यथा प्रज्ञापनायां [यथा] व्युत्क्रान्तिपदे तथा वक्तव्यं यावत्तमस्तमायां, तच्चातिप्रभूतमिति तत एवावधार्यम्, एष च सङ्क्षेपार्थः रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका यावत्तमःप्रभापृथिवीनैरयिका अनन्तरमुद्धृत्ता नैरयिकदेवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियासङ्ख्येयवर्षायुष्कवर्जेषु शेषेषु तिर्यङ्मनुष्येषूत्पद्यन्ते, सप्तमपृथिवीनैरयिकास्तु गर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेष्वेव न शेषेषु ॥ सम्प्रति नरकेषु पृथिव्यादिस्पर्शस्वरूपमाह—

इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरतिया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए, इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं जाव वणप्फतिफासं अधेसत्तमाए पुढवीए । इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु?, हंता! गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु, दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं पुच्छा, हंता गोयमा! दोच्चा णं पुढवी जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु, एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिता पुढवी अहेसत्तमं पुढविं पणिहाय सव्वक्खुड्डिया

सव्वंतेसु (सू० ९२) इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० तीसाए नरयावाससयसहस्सेसु इक्कमिक्कंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वा?, हंता गोयमा! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए णवरं जत्थ जत्तिया णरका। [इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० निरयपरिसामंतेसु जे पुढविक्काइया जाव वणप्फतिकाइया ते णं भंते! जीवा महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महाआसवतरा चेव महावेयणतरा चेव?, हंता गोयमा! इमीसे णं [भंते!] रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु तं चेव जाव महावेदणतरका चेव, एवं जाव अधेसत्तमा] (सू० ९३)। पुढवीं ओगाहित्ता, नरगा संठाणमेव बाहल्लं। विक्खंभपरिक्खेवे वण्णो गंधो य फासो य ॥ १ ॥ तेसिं महालयाए उवमा देवेण होइ कायव्वा। जीवा य पोग्गला वक्कमंति तह सासया निरया ॥ २ ॥ उववायपरीमाणं अवहारुच्चत्तमेव संघयणं। संठाणवण्णगंधा फासा ऊसासमाहारे ॥ ३ ॥ लेसा दिट्ठी नाणे जोगुवओगे तहा समुग्घाया। तत्तो खुहापिवासा विउव्वणा वेयणा य भए ॥ ४ ॥ उववाओ पुरिसाणं ओवम्मं वेयणाएँ दुविहाए। उव्वट्टणपुढवी उ, उववाओ सव्वजीवाणं ॥ ५ ॥ एयाओ संगहणिगाहाओ ॥ (सू० ९४) ॥ बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं पृथिवीस्पर्शं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'अणिट्ठं

अकंतं अप्पियं अमणुन्नं अमणामं' अस्यार्थः प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावत्तमस्तमायाम्, एवमप्तेजोवायुवनस्पतिस्पर्शसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं तेजःस्पर्शः—उष्णरूपतापरिणतनरककुड्यादिस्पर्शः परोदीरितवैक्रियरूपो वा वेदितव्यो न तु साक्षाद् बादराग्निकायस्पर्शः, तत्रासम्भवात् ॥ '**इमीसे ण**'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति नरकावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् नरकावासे '**सर्वे प्राणाः**' द्वीन्द्रिया '**सर्वे भूताः**' वनस्पतिकायिकाः '**सर्वे सत्त्वाः**' पृथिव्यादयः '**सर्वे जीवाः**' पञ्चेन्द्रियाः, उक्तञ्च—"प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता, भूताश्च तरवः स्मृताः । जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः ॥ १ ॥" पृथिवीकायिकतया अप्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पतिकायिकतया नैरयिकतया उत्पन्नाः उत्पन्नपूर्वाः?, भगवानाह—'**हंते**'त्यादि, हन्तेति प्रत्यवधारणे गौतम! '**असकृत्**' अनेकवारम्, अथवा '**अनन्तकृत्वः**' अनन्तान् वारान्, संसारस्यानादित्वात्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, नवरं यत्र यावन्तो नरकास्तत्र तावन्त उपयुज्य वक्तव्याः । क्वचिदिदमपि सूत्रं दृश्यते—"**इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु णं जे वायरपुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया ते णं भंते! जीवा! महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महासवतरा चेव महावेयणतरा चेव, हंता गोयमा! जाव महावेयणतरा चेव, एवं जाव अहेसत्तमा ॥**" अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां **नरकपरिसमन्तेषु**—नरकावासपर्यन्तवर्त्तिषु प्रदेशेषु बादरपृथिवीकायिकाः '**जाव वणप्फइकाइय**'त्ति बादराप्कायिका बादरवायुकायिका बादरवनस्पतिकायिकास्ते भदन्त! जीवाः '**महाकम्मतरा चेव**' महत्—प्रभूतमसातवेदनीयं कर्म्म येषां ते महाकर्म्माणः, अतिशयेन महाकर्म्माणो महाकर्म्मतराः, '**चेवे**' त्यवधारणे, महाकर्म्मतरा एव कुतः? इत्याह—'**महाकिरियतरा चेव**' महती क्रिया—प्राणातिपातादिकाऽऽसीत् प्राग् जन्मनि तद्भवेषु तदध्यवसायानिवृत्त्या येषां ते महाक्रियाः, अतिशयेन महाक्रिया

महाक्रियतराः, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासा विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायाद्धेतावत्र प्रथमा, ततोऽयमर्थः—यतो महाक्रियतरा एव ततो महाकर्म्मतरा एव, महाक्रियतरत्वमपि कुतः ? इत्याह—'महाश्रवतरा एव' महान्त आश्रवाः—पापोपादानहेतव आरम्भादयो येषामासीरन् ते महाश्रवाः, अतिशयेन महाश्रवा महाश्रवतराः, 'चेवे'ति पूर्ववत्, तदेवं यतो महाकर्म्मतरा एव ततो महावेदनतरा एव, नरकेषु क्षेत्रस्वभावजाया अपि वेदनाया अतिदुःसहत्वात्, भगवानाह—हंता गौतम ! 'ते णं जीवा महाकम्मतरा चेवे'त्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रत्युद्देशकार्थसङ्ग्रहणिगाथाः प्राह—आसामक्षरमात्रगमनिका—प्रथमं 'पुढवीओ' इति पृथिव्योऽभिधेयास्तद्यथा—"कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?" इत्यादि । तदनन्तरम् 'ओगाहित्ता नरगा' इति, यस्यां पृथिव्यां यदवगाह्य यादृशाश्च नरकास्तदभिधेयं, यथा—"इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता" इत्यादि । ततो नरकाणां संस्थानं ततो बाहल्यं तदनन्तरं विष्कम्भपरिक्षेपौ ततो वर्णस्ततो गन्धस्तदन्तरं स्पर्शस्ततस्तेषां नरकाणां महत्तायामुपमा देवेन भवति कर्त्तव्या, ततो जीवाः पुद्गलाश्च तेषु नरकेषु व्युत्क्रामन्तीति, तथा शाश्वताशाश्वता नरका इति वक्तव्यं, तत उपपातो वक्तव्यः, तद्यथा—"इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए कतो उववज्जंति ?" इत्यादि, तत एकसमयेनोत्पद्यमानानां परिमाणं ततोऽपहारस्तत उच्चत्वं तदनन्तरं संहननं ततः संस्थानं ततो वर्णस्तदनन्तरं गन्धस्ततः स्पर्शस्तत उच्छ्वासवक्तव्यता तदनन्तरमाहारस्ततो लेश्या ततो दृष्टिस्तदनन्तरं ज्ञानं ततो योगस्ततोऽप्युपयोगस्तदनन्तरं समुद्घातस्ततः क्षुत्पिपासे ततो विकुर्वणा, तद्यथा—"रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पहू विउव्वित्तए" इत्यादि, ततो वेदना ततो भयं तदनन्तरं पञ्चानां पुरुषाणामधःसप्तम्यामुपपातस्तत औपम्यं वेदनाया द्विविधायाः, उष्णवेदनायाः शीतवेदना-

याश्चेत्यर्थः, ततः स्थितिर्वक्तव्या तदनन्तरमुद्वर्त्तना ततः स्पर्शः पृथिव्यादिस्पर्शो वक्तव्यः, ततः सर्वजीवानामुपपातः, तद्यथा—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया" इत्यादि ॥ तृतीयप्रतिपत्तौ समाप्तो द्वितीयो नरकोद्देशकः ॥ सम्प्रति तृतीय आरभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरतिया केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए [एवं नेयव्वं] ॥ एत्थ किर अतिवयंती नरवसभा केसवा जलचरा य। मंडलिया रायाणो जे य महारंभकोडुंबी ॥ १ ॥ भिन्नमुहुत्तो नरएसु होति तिरियमणुएसु चत्तारि । देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणा भणिया ॥ २ ॥ जे पोग्गला अणिट्ठा नियमा सो तेसि होइ आहारो। संठाणं तु जहण्णं नियमा हुंडं तु नायव्वं ॥ ३ ॥ असुभा विउव्वणा खलु नेरइयाणं तु होइ सव्वेसिं। वेउव्वियं सरीरं असंघयण हुंडसंठाणं ॥ ४ ॥ अस्साओ उववण्णो अस्साओ चेव चयइ निरयभवं । सव्वपुढवीसु जीवो सव्वेसु ठिइविसेसेसुं ॥५॥ उववाएण व सायं नेरइओ देवकम्मुणा वावि । अज्झवसाणनिमित्तं अहवा कम्माणुभावेणं ॥ ६ ॥ नेरइयाणुप्पाओ उक्कोसं पंचजोयणसयाइं। दुक्खेणभिद्दुयाणं वेयणसयसंपगाढाणं ॥ ७ ॥ अच्छिनिमीलियमेत्तं नत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं । नरए नेरइयाणं अहोनिसं पच्चमाणाणं ॥ ८ ॥ तेयाकम्मसरीरा सुहुमसरीरा य जे अपज्जत्ता । जीवेण मुक्कमेत्ता

वर्षंति सहस्ससो भेयं ॥ ९ ॥ अतिसीतं अतिउण्हं अतितण्हा अतिखुहा अतिभयं वा । निरए नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥ १० ॥ एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ । उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा ॥ ११ ॥ नारयउद्देसओ तइओ ॥ से तं नेरतिया ॥ (सू० ९५)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं 'पुद्गलपरिणामं' आहारादिपुद्गलविपाकं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! अनिष्टमित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, एवं वेदनालेश्यानामगोत्रारतिभयशोकक्षुत्पिपासाव्याधिउच्छ्वासानुतापक्रोधमानमायालोभाहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञासूत्राणि वक्तव्यानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य । अरई भए य सोगे खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य । चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे ॥ २ ॥" सम्प्रति सप्तमनरकपृथिव्यां ये गच्छन्ति तान् प्रतिपादयति—इह परिग्रहसञ्ज्ञापरिणामवक्तव्यतायां चरमसूत्रं सप्तमनरकपृथ्वीविषयं तदनन्तरं चेयं गाथा ततः 'एत्थे' त्यनन्तरमुक्ताऽधःसप्तमी पृथिवी परामृश्यते, 'अत्र' अधःसप्तमनरकपृथिव्यां 'किल' इत्याप्तवादसूचने आप्तवचनमेतदिति भावः, 'अतिव्रजन्ति' अतिशयेन—बाहुल्येन गच्छन्ति नरवृषभाः 'केशवाः' वासुदेवाः 'जलचराश्च' तन्दुलमत्स्यप्रभृतयः 'माण्डलिकाः' वसुप्रभृतय इव 'राजानः' चक्रवर्त्तिनः सुभूमादय इव ये च महारम्भाः कुटुम्बिनः—कालसौकरिकादय इव ॥ सम्प्रति नरकेषु प्रस्ताव-

त्तिर्यगादिषु चोत्तरवैक्रियावस्थानकालमानमाह—भिन्नः—खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तः अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, नरकेपूत्कर्षतो विकुर्वणास्थितिकालः, तिर्यग्मनुष्येषु चत्वार्यन्तर्मुहूर्त्तानि, देवेष्वर्द्धमास उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालः भणितः एष उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालो भणितस्तीर्थकरगणधरैः ॥ सम्प्रति नरकेष्वाहारादिस्वरूपमाह—ये पुद्गला अनिष्टा नियमात्स तेषां भवत्याहारः, 'संस्थानं तु' संस्थानं पुनस्तेषां हुण्डं हुण्डमपि जघन्यमतिनिकृष्टमनिष्टं वेदितव्यं, एतच्च भवधारणीयशरीरमधिकृत्य वेदितव्यम्, उत्तरवैक्रियसंस्थानस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, इयं च प्रागुक्तार्थसङ्ग्रहगाथा ततो न पुनरुक्तदोषः ॥ सम्प्रति विकुर्वणास्वरूपमाह—सर्वेषां नैरयिकाणां विकुर्वणा 'खलु' निश्चितमशुभा भवति, यद्यपि शुभं विकुर्विष्याम इति ते चिन्तयन्ति तथाऽपि तथाविधप्रतिकूलकर्मोदयतस्तेषामशुभैव विकुर्वणा भवति, तदपि च वैक्रियं—उत्तरवैक्रियशरीरमसंहननम्, अस्थ्यभावात्, उपलक्षणमेतत् भवधारणीयं च वैक्रियशरीरमसंहननं, तथा हुण्डसंस्थानं तत् उत्तरवैक्रियशरीरं, हुण्डसंस्थाननाम्न एव भवप्रत्ययत उदयभावात् ॥ कश्चित् जीवः 'सर्वास्वपि पृथिवीषु' रत्नप्रभादिषु तमस्तमापर्यन्तासु सर्वेष्वपि च 'स्थितिविशेषेषु' जघन्यादिरूपेषु 'असातः' असातोदयकलित उपपन्नः, उत्पत्तिकालेऽपि प्राग्भवमरणकालानुभूतमहादुःखानुवृत्तिभावात्, उत्पत्त्यनन्तरमपि 'असात एव' असातोदयकलित एव सकलमपि निरयभवं 'त्यजति' क्षपयति, न तु जातुचिदपि सुखलेशमप्यास्वादयति ॥ आह—किं तत्र कदाचित्सातोदयोऽपि भवति येनेदमुच्यते?, उच्यते, भवति, तथा चाह—'उववाएण' इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, उपपातकाले 'सातं' सातवेदनीयकर्मोदयं कश्चिद्वेदयते, यः प्राग्भवे दाघच्छेदादिव्यतिरेकेण मरणमुपगतोऽनतिसङ्क्लिष्टाध्यवसायी समुत्पद्यते, तदानीं हि न तस्य प्राग्भवानुबद्धमाधिरूपं दुःखं नापि क्षेत्रस्वभावजं नापि परमाधार्म्मिककृतं नापि परस्परोदीरितं तत एवंविधदुःखाभावादसौ सातं कश्चित् वेदयते इत्युच्यते, 'देवकम्मुणा वावि' इति देवकर्म्मणा

वयंति सहस्ससो भेयं ॥ ९ ॥ अतिसीतं अतिउण्हं अतितण्हा अतिखुहा अतिभयं वा । निरए नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥ १० ॥ एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ । उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा ॥ ११ ॥ नारयउद्देसओ तइओ ॥ से तं नेरतिया ॥ (सू० ९५)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं 'पुद्गलपरिणामं' आहारादिपुद्गलविपाकं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! अनिष्टमित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, एवं वेदनालेश्यानामगोत्रारतिभयशोकक्षुत्पिपासाव्याधिउच्छ्वासानुतापक्रोधमानमायालोभाहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञासूत्राणि वक्तव्यानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य । अरई भए य सोगे खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य । चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे ॥ २ ॥" सम्प्रति सप्तमनरकपृथिव्यां ये गच्छन्ति तान् प्रतिपादयति—इह परिग्रहसञ्ज्ञापरिणामवक्तव्यतायां चरमसूत्रं सप्तमनरकपृथ्वीविषयं तदनन्तरं चेयं गाथा ततः 'एत्थे' त्यनन्तरमुक्ताऽधःसप्तमी पृथिवी परामृश्यते, 'अत्र' अधःसप्तमनरकपृथिव्यां 'किल' इत्याप्तवादसूचने आप्तवचनमेतदिति भावः, 'अतिव्रजन्ति' अतिशयेन—बाहुल्येन गच्छन्ति नरवृषभाः 'केशवाः' वासुदेवाः 'जलचराश्च' तन्दुलमत्स्यप्रभृतयः 'माण्डलिकाः' वसुप्रभृतय इव 'राजानः' चक्रवर्त्तिनः सुभूमादय इव ये च महारम्भाः कुटुम्बिनः—कालसौकरिकादय इव ॥ सम्प्रति नरकेषु प्रस्तावा-

तिर्यगादिषु चोत्तरवैक्रियावस्थानकालमानमाह—भिन्नः—खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तः अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, नरकेषूत्कर्षतो विकुर्वणास्थितिकालः, तिर्यङ्मनुष्येषु चत्वार्यन्तर्मुहूर्त्तानि, देवेष्वर्द्धमास उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालः भणितः एष उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालो भणितस्तीर्थकरगणधरैः ॥ सम्प्रति नरकेष्वाहारादिस्वरूपमाह—ये पुद्गला अनिष्टा नियमात्स तेषां भवत्याहारः, '**संस्थानं तु**' संस्थानं पुनस्तेषां हुण्डं हुण्डमपि जघन्यमतिनिकृष्टमनिष्टं वेदितव्यं, एतच्च भवधारणीयशरीरमधिकृत्य वेदितव्यम्, उत्तरवैक्रियसंस्थानस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, इयं च प्रागुक्तार्थसङ्ग्रहगाथा ततो न पुनरुक्तदोषः ॥ सम्प्रति विकुर्वणास्वरूपमाह—सर्वेषां नैरयिकाणां विकुर्वणा '**खलु**' निश्चितमशुभा भवति, यद्यपि शुभं विकुर्विष्याम इति ते चिन्तयन्ति तथाऽपि तथाविधप्रतिकूलकर्मोदयतस्तेषामशुभैव विकुर्वणा भवति, तदपि च वैक्रियं—उत्तरवैक्रियशरीरमसंहननम्, अस्थ्यभावात्, उपलक्षणमेतत् भवधारणीयं च वैक्रियशरीरमसंहननं, तथा हुण्डसंस्थानं तत् उत्तरवैक्रियशरीरं, हुण्डसंस्थाननाम्न एव भवप्रत्ययत उदयभावात् ॥ कश्चित् जीवः '**सर्वास्वपि पृथिवीषु**' रत्नप्रभादिषु तमस्तमापर्यन्तासु सर्वेष्वपि च '**स्थितिविशेषेषु**' जघन्यादिरूपेषु '**असातः**' असातोदयकलित उपपन्नः, उत्पत्तिकालेऽपि प्राग्भवमरणकालानुभूतमहादुःखानुवृत्तिभावात्, उत्पत्त्यनन्तरमपि '**असात एव**' असातोदयकलित एव सकलमपि निरयभवं '**त्यजति**' क्षपयति, न तु जातुचिदपि सुखलेशमप्यास्वादयति ॥ आह—किं तत्र कदाचित्सातोदयोऽपि भवति येनेदमुच्यते ?, उच्यते, भवति, तथा चाह—'**उववाएण**' इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, उपपातकाले '**सातं**' सातवेदनीयकर्मोदयं कश्चिद्वेदयते, यः प्राग्भवे दाघच्छेदादिव्यतिरेकेण मरणमुपगतोऽनतिसङ्क्लिष्टाध्यवसायी समुत्पद्यते, तदानीं हि न तस्य प्राग्भवानुबद्धमाधिरूपं दुःखं नापि क्षेत्रस्वभावजं नापि परमाधार्मिककृतं नापि परस्परोदीरितं तत एवंविधदुःखाभावादसौ सातं कश्चित् वेदयते इत्युच्यते, '**देवकम्मुणा वावि**' इति देवकर्म्मणा

पूर्वसाङ्गतिकदेवप्रयुक्तया क्रियया, तथाहि—गच्छति पूर्वसाङ्गतिको देवः पूर्वपरिचितस्य नैरयिकस्य वेदनोपशमनार्थं यथा **बलदेवः** कृष्णवासुदेवस्य, स च वेदनोपशमो देवकृतो मनाक्कालमात्र एव भवति, तत ऊर्ध्वं नियमात्क्षेत्रस्वभावजाऽन्योऽन्या वा वेदना प्रवर्त्तते, तथास्वाभाव्यात्, **'अज्झवसाणनिमित्त'** मिति अध्यवसाननिमित्तं सम्यक्त्वोत्पादकाले तत ऊर्ध्वं कदाचित्तथाविधविशिष्टशुभाध्यवसायप्रत्ययं कश्चिद् नैरयिको बाह्यक्षेत्रस्वभावजवेदनासद्भावेऽपि सातोदयमेवानुभवति, सम्यक्त्वोत्पादकाले हि जात्यन्धस्य चक्षुर्लाभ इव महान् प्रमोद उपजायते, तदुत्तरकालमपि कदाचित्तीर्थकरगुणानुमोदनाद्यनुगतां विशिष्टां भावनां भावयतः, ततो बाह्यक्षेत्रस्वभावजवेदनासद्भावेऽप्यन्तः सातोदयो विजृम्भमाणो न विरुध्यते, **'अहवा कम्माणुभावेण'**मिति अथवा **'कर्म्मानुभावेन'** बाह्यतीर्थकरजन्मदीक्षाज्ञानापवर्गकल्याणसंभूतिलक्षणबाह्यनिमित्तमधिकृत्य तथाविधस्य च सातवेदनीयस्य कर्म्मणोऽनुभावेन—विपाकोदयेन कश्चित्सातं वेदयते, न चैतद्व्याख्यानमनार्षं यत उक्तं **वसुदेवचरिते,** इह नैरयिकाः कुम्भ्यादिषु पच्यमानाः कुन्तादिभिर्भिद्यमाना वा भयोत्रस्तास्तथाविधप्रयत्नवशादूर्द्ध्वमुत्प्लवन्ते, ततस्तदुत्पातपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—नैरयिकाणां दुःखेनाभिद्रुतानां—सर्वात्मना व्याप्तानां **'वेदनाशतसंप्रगाढानां'** वेदनाशतानि—अपरिमिता वेदनाः संप्रगाढानि—अवगाढानि येषां ते वेदनाशतसंप्रगाढाः सुखादिदर्शनात् निष्ठान्तस्य परनिपातः, तेषां हेतुहेतुमद्भावश्चात्र, यतो वेदनाशतसंप्रगाढास्ततो दुःखेनाभिद्रुताः, तेषां जघन्यत उत्पातो गव्यूतमात्रम्, एतच्च संप्रदायादवसीयते, तथा च दृश्यते कचिदेवमपि पाठः—"नेरइयाणुप्पाओ गाउय उक्कोस• पंचजोयणसयाइं" इति, उत्कर्षतः पञ्च योजनशतानि इति। दुःखेनाभिहतानामित्युक्तं ततो दुःखमेव निरूपयति—नरके नैरयिकाणामुष्णवेदनया शीतवेदनया वाऽहर्निशं पच्यमानानां न **'अक्षिनिमीलनमात्रमपि'** अक्षिनिकोचकालमात्रमपि अस्ति सुखं, किन्तु दुःखमेव केवलं **'प्रतिबद्धम्'**

अनुबद्धं सदाऽनुगतमिति भावः ॥ अथ यत्तेषां वैक्रियशरीरं तत्तेषां मरणकाले कथं भवति ? इति तन्निरूपणार्थमाह—तैजसकार्म्मणशरीराणि यानि 'सूक्ष्मशरीराणि' (च) सूक्ष्मनामकर्म्मोदयवतां पर्याप्तानामपर्याप्तानां चौदारिकशरीराणि वैक्रियाहारकशरीराणि च तेषामपि प्रायो मांसचक्षुरग्राह्यतया सूक्ष्मत्वात् तथा यानि 'अपर्याप्तानि' अपर्याप्तशरीराणि तानि जीवेन मुक्तमात्राणि सन्ति सहस्रशो भेदं व्रजन्ति विसकलितास्तत्परमाणुसङ्घाता भवन्तीत्यर्थः ॥ एतासामेव गाथानां संग्राहिकां गाथामाह—'एत्थ' इति पदोपलक्षिता प्रथमा द्वितीया 'भिन्नमुहुत्तो' इति तृतीया 'पोग्गला' इति 'जे पोग्गला अणिट्ठा' इत्यादि चतुर्थी 'असुभा' इति (जे) 'असुभा विउव्वणा खलु' इत्यादि, एवं शेषपदान्यपि भावनीयानि ॥ तृतीयप्रतिपत्तौ तृतीयो नरकोद्देशकः समाप्तः ॥ तदेवमुक्तो नारकाधिकारः, सम्प्रति तिर्यगधिकारो वक्तव्यः, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

से किं तं तिरिक्खजोणिया?, तिरिक्खजोणिया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—एगिंदियतिरिक्खजोणिया बेइंदियतिरिक्खजोणिया तेइंदियतिरिक्खजोणिया चउरिंदियतिरिक्खजोणिया पंचिंदियतिरिक्खजोणियाय। से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणिया?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया। से किं तं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया बादरपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया य। से किं तं सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरि०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तसुहुम० अपज्जत्तसुहुम० से तं सुहुमा।

से किं तं बादरपुढविकाइय०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तबादरपु० अपज्जत्तबादरपु०, से तं बायरपुढविकाइयएगिंदिय०। से तं पुढवीकाइयएगिंदिया। से किं तं आउकाइयएगिंदिय०?, २ दुविहा पण्णत्ता, एवं जहेव पुढविकाइयाणं तहेव, वाउकायभेदो एवं जाव वणस्सतिकाइया से तं वणस्सइकाएगिंदियतिरिक्ख०। से किं तं बेइंदियतिरिक्ख०?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तकबेइंदियति० अपज्जत्तबेइंदियति०, से तं बेइंदियतिरि० एवं जाव चउरिंदिया। से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया थलयरपंचेंदियतिरिक्खजो० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से किं तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य। से किं तं संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिता?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगसंमुच्छिम० अपज्जत्तगसंमुच्छिम० जलयरा, से तं संमुच्छिम० पंचिंदियतिरिक्ख०। से किं तं गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगगब्भवक्कंतिय० अपज्जत्तगब्भ० से तं गब्भवक्कंतियजलयर०, से तं जलयरपंचेंदियतिरि०। से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पयथलयरपंचेंदिय० परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता।

से किं तं चउप्पदथलयरपंचिंदिय०? चउप्पय० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमचउप्पयथ-
लयरपंचेंदिय० गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता य, जहेव जलयराणं तहेव
चउक्कतो भेदो, सेत्तं चउप्पदथलयरपंचेंदिय०। से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्ख०?,
२ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता भुयगपरिसप्पथलय-
रपंचेंदियतिरिक्खजोणिता। से किं तं उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, उरगपरि०
दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—जहेव जलयराणं तहेव चउक्कतो भेदो, एवं भुयगपरिसप्पाणवि भाणि-
तव्वं, से तं भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता, से तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजो-
णिता। से किं तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, खह० २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छि-
मखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता य। से किं तं
संमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, संमु० २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगसंमु-
च्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया अपज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य,
एवं गब्भवक्कंतियावि जाव पज्जत्तगगब्भवक्कंतियावि जाव अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियावि खहयरपंचें-
दियतिरिक्खजोणियाणं भंते! कतिविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे जोणिसंगहे

पण्णत्ते, तंजहा—अंडया पोयया संमुच्छिमा, अंडया तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसगा, पोतया तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसया, तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसका ॥ (सू० ९६)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते तिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—तिर्यग्योनिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रिया इत्यादि सूत्रं प्रायः सुगमं केवलं भूयान् पुस्तकेषु वाचनाभेद इति यथाऽवस्थितवाचनाक्रमप्रदर्शनार्थमक्षरसंस्कारमात्रं क्रियते—एकेन्द्रिया यावत्पञ्चेन्द्रियाः। अथ के त एकेन्द्रियाः?, एकेन्द्रियाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिका यावद्वनस्पतिकायिकाः। अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, पृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मपृथिवीकायिकाश्च वादरपृथिवीकायिकाश्च। अथ के ते सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः?, सूक्ष्मपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च। अथ के ते वादरपृथिवीकायिकाः?, वादरपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं तावद्वक्तव्यं यावद्वनस्पतिकायिकाः। अथ के ते द्वीन्द्रियाः?, द्वीन्द्रिया द्विविधाः प्रज्ञप्ताः—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया अपि वक्तव्याः। अथ के ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च। अथ के ते जलचराः?, जलचरा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संमूर्च्छिमा गर्भव्युत्क्रान्तिकाश्च। अथ के ते संमूर्च्छिमा.?, संमूर्च्छिमा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च। अथ

१ अण्डजव्यतिरिक्ता सर्वेऽपि जरायुजा अजरायुजा वा गर्भव्युत्क्रान्तिका पञ्चेन्द्रिया अत्रैवान्तर्भावनीया इति न चतुर्विधा, समाधास्यति चैवमग्रे, केवलमत्र जरायुजतया पक्षिणामप्रसिद्धे न समाधेरादति.

के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः ?, गर्भव्युत्क्रान्तिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं चतुष्पदा उरःपरिसर्प्पा भुजपरिसर्पाः पक्षिणश्च प्रत्येकं चतुष्प्रकारा वक्तव्याः ॥ सम्प्रति पक्षिणां प्रकारान्तरेण भेदप्रतिपादनार्थमाह—'पक्खि णं (खहयरपंचिंदियतिरि०) भंते !' इत्यादि, पक्षिणां भदन्त ! 'कतिविधः' कतिप्रकारः 'योनिसङ्ग्रहः' योन्या सङ्ग्रहणं योनिसङ्ग्रहो योन्युपलक्षितं ग्रहणमित्यर्थः (प्रज्ञप्तः ?), भगवानाह—गौतम ! त्रिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अण्डजा—मयूरादयः पोतजा—वागुल्यादयः संमूर्च्छिमाः खञ्जरीटादयः, अण्डजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, पोतजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, तत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, संमूर्च्छिमानामवश्यं नपुंसकवेदोदयभावात् ॥

एतेसि णं भंते ! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी ?, गोयमा ! सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि सम्मामिच्छदिट्ठीवि ॥ ते णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! णाणीवि अण्णाणीवि तिण्णि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ॥ ते णं भंते ! जीवा किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी ?, गोयमा ! तिविधावि ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गोयमा ! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि ॥ ते णं भंते ! जीवा कओ उववज्जंति किं नेरतिएहिंतो उव० तिरिक्खजोणिएहिंतो उव० ?, पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगअंतरदीवगवज्जेहिंतो उववज्जंति ॥ तेसि णं भंते ! जीवाणं

केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! पंच समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए जाव तेयासमुग्घाए ॥ ते णं भंते! जीवा मारणांतियसमुग्घाएणं किं समोहता मरंति असमोहता मरंति?, गोयमा! समोहतावि म० असमोहयावि मरंति ॥ ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?—किं नेरतिएसु उववज्जंति? तिरिक्ख० पुच्छा, गोयमा! एवं उव्वट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहेव ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति जातीकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! बारस जातीकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा ॥ भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! कतिविधे जोणीसंगहे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तंजहा—अंडगा पोयगा संमुच्छिमा, एवं जहा खहयराणं तहेव, णाणत्तं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता दोच्चं पुढविं गच्छंति, णव जातीकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं, सेसं तहेव ॥ उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! पुच्छा, जहेव भुयगपरिसप्पाणं तहेव, णवरं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता जाव पंचमिं पुढविं गच्छंति, दस जातीकुलकोडी ॥ चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्ख० पुच्छा, गोयमा! दुविधे पण्णत्ते, तंजहा—

जराउया (पोयया) य संमुच्छिमा य, (से किं तं) जराउया (पोयया)?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसका, तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसया । तेसि णं भंते! जीवाणं कति लेस्साओ पण्णत्ताओ?, सेसं जहा पक्खीणं, णाणत्तं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, उव्वट्टित्ता चउत्थिं पुढविं गच्छंति, दस जातीकुलकोडी ॥ जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, जहा भुयगपरिसप्पाणं णवरं उव्वट्टित्ता जाव अधेसत्तमं पुढविं अद्धतेरस जातीकुलकोडीजोणीपमुह० जाव प० ॥ चउरिंदियाणं भंते! कति जातीकुलकोडीजोणीपमुहसंतसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! नव जाईकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा [जाव] समक्खाया। तेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा! अट्ठजाईकुल जावमक्खाया। बेइंदियाणं भंते! कइ जाई०?, पुच्छा, गोयमा! सत्त जाईकुलकोडीजोणीपमुह० ॥ (सू० ९७)

"एएसि णं'मित्यादि, 'एतेषां' पक्षिणां भदन्त! जीवानां कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, तेषां द्रव्यतो भावतो वा सर्वा लेश्याः, परिणामसम्भवात् ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! पक्षिणो जीवाः किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधा अपि ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! द्वयेऽपि, ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽपीत्यर्थः, तत्र ये ज्ञानिनस्ते द्विज्ञानिनस्त्रिज्ञानिनो वा येऽप्यज्ञानिनस्तेऽपि द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वा ॥ 'ते णं'मित्यादि, ते भदन्त! जीवाः किं मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययो-

गिनः ?, भगवानाह—गौतम ! त्रयोऽपि ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त ! जीवाः किं साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताः ?, भगवानाह—द्वयेऽपि, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताश्चेत्यर्थः ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! पक्षिणो जीवाः कुत उत्पद्यन्ते ? नैरयिकेभ्य इत्यादि यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे तथा द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त! पक्षिणां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त! जीवानां कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! पञ्च समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातस्तैजससमुद्घातश्च ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवा मारणान्तिकसमुद्घातेन किं समवहता म्रियन्ते असमवहता म्रियन्ते ?, भगवानाह—गौतम! समवहता अपि म्रियन्ते असमवहता अपि म्रियन्ते ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवा अनन्तरमुद्वृत्त्य क गच्छन्ति ?, एतदेव व्याचष्टे—'एवं उव्वट्टणा' इत्यादि, यथा द्विविधप्रतिपत्तौ तथा द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त ! जीवानां 'कति' किंप्रमाणानि जातिकुलकोटीनां योनिप्रमुखाणि—योनिप्रवाहानि शतसहस्राणि योनिप्रमुखशतसहस्राणि जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भवन्ति ?, भगवानाह—द्वादश जातिकुलकोटीयोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तत्र जातिकुलयोनीनामिदं परिस्थूरमुदाहरणं पूर्वाचार्यैरुपादर्शि—जातिरिति किल तिर्यग्जातिस्तस्याः कुलानि—कृमिकीटवृश्चिकादीनि, इमानि च कुलानि योनिप्रमुखाणि, तथाहि—एकस्यामेव योनौ अनेकानि कुलानि भवन्ति, तथाहि—छगणयोनौ कृमिकुलं कीटकुलं वृश्चिककुलमित्यादि, अथवा जातिकुलमित्येकं पदं, जातिकुलयोन्योश्च परस्परं विशेषः एकस्यामेव योनावनेकजातिकुलसम्भवात्, तद्यथा—एकस्यामेव छग-

१ व्युत्क्रान्तिपदवत्तत्र भणितत्वात् वृत्तौ यथायथं, मूले तु प्रज्ञापनाया व्युत्क्रान्तिपद एव यथायथ सूत्रमिति वक्तीएत्ति सूत्रं.

णयोनौ कृमिजातिकुलं कीटजातिकुलं वृश्चिकजातिकुलमित्यादि, एवं चैकस्यामेव योनाववान्तरजातिभेदभावादनेकानि योनिप्रवाहाणि
जातिकुलानि संभवन्तीत्युपपद्यते, खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानां द्वादश जातिकुलकोटिशतसहस्राणि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"जोणी-
संगहलेस्सादिट्ठी नाणे य जोग उवओगे । उववायठिईसमुग्घाय चयणं जाई कुलविही उ ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—प्रथमं योनि-
सङ्ग्रहद्वारं ततो लेश्याद्वारं ततो दृष्टिद्वारमित्यादि ॥ **'भुयगाणं भंते!'** इत्यादि, भुजगानां भदन्त! कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः?,
इत्यादि पक्षिवत् सर्वं—निरवशेषं वक्तव्यं, नवरं स्थितिच्यवनकुलकोटिषु नानात्वं, तद्यथा—स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी,
च्यवनम्—उद्वर्त्तना, तत्र नरकगतिचिन्तायामधो यावद्द्वितीया पृथिवी उपरि यावत्सहस्रारः कल्पस्तावदुत्पद्यते, नव तेषां जातिकुलको-
टियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । एवमुरःपरिसर्पाणामपि वक्तव्यं, नवरं तत्र च्यवनद्वारेऽधश्चिन्तायां यावत्पञ्चमी पृथिवीति
वक्तव्यं, कुलकोटिचिन्तायां दश जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ **'चउप्पयाण'**मित्यादि, चतुष्पदानां भदन्त!
कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पोतजाः संमूर्च्छिमाश्च, इह येऽण्डजव्यति-
रिक्ता गर्भव्युत्क्रान्तास्ते सर्वे जरायुजा अजरायुजा वा पोतजा इति [पूर्वमपि विवक्षिताः परमत्र तु सर्वेऽपि गर्भव्युत्क्रान्तिकाः पोत-
जतया] विवक्षितमतोऽत्र द्विविधो यथोक्तस्वरूपो योनिसङ्ग्रह उक्तः, अन्यथा गवादीनां जरायुजत्वात् (सर्पादीनामण्डजत्वात्) तृती-
योऽपि जरायु(अण्डज)लक्षणो योनिसङ्ग्रहो वक्तव्यः स्यादिति, तत्र ये ते पोतजास्ते त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च,
तत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, शेषद्वारकलापः पूर्ववत्, नवरं स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, च्यवनद्वारे-
ऽधश्चिन्तायां यावच्चतुर्थी पृथिवी ऊर्ध्वं यावत्सहस्रारः, जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राण्यत्रापि दश ॥ **'जलचराणा'**मित्यादि, जल-

चराणां भदन्त! कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अण्डजाः पोतजाः संमूर्छिमाश्च, अण्डजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, पोतजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, ये ते संमूर्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, शेषद्वारकलापचिन्ता प्राग्वत्, नवरं स्थितिच्यवनजातिकुलकोटिषु नानात्वं, स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनद्वारेऽप्यभिन्नायां यावत्सप्तमी ऊर्ध्वं यावत्सहस्रारः, कुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि अर्धत्रयोदश सार्धानि द्वादशेत्यर्थः ॥ 'चउरिंदियाण'मित्यादि, चतुरिन्द्रियाणां भदन्त! कति जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—नव जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, एवं त्रीन्द्रियाणामष्टौ जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि, द्वीन्द्रियाणां सप्त जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । इह जातिकुलकोट्यो योनिजातीया अपि भिन्नजातीयाभिमतसमानतो गन्धाङ्गानि भिन्नजातीयत्वात् प्ररूपयति—

कइ णं भंते! गंधा पण्णत्ता? कइ णं भंते! गंधसया पण्णत्ता?, गोयमा! सत्त गंधा सत्त गंधसया पण्णत्ता ॥ कइ णं भंते! पुप्फजाई कुलकोडीजोणिपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! सोलसपुप्फजातीकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता, तंजहा—चत्तारि जलयराणं चत्तारि थलयराणं चत्तारि महारुक्खियाणं चत्तारि महागुम्मियाणं ॥ कति णं भंते! वल्लीओ कति वल्लीसता पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि वल्लीओ चत्तारि वल्लीसता पण्णत्ता ॥ कति णं भंते! लताओ कति लतासता पण्णत्ता?, गोयमा! अट्ठ लयाओ अट्ठ लतासता पण्णत्ता ॥ कति णं भंते! हरितकाया हरितकाय...

भंते! हरियकाया हरियकायसया पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता, फलसहस्सं च बिंटबद्धाणं फलसहस्सं च णालबद्धाणं, ते सव्वे हरितकायमेव समोयरंति, ते एवं समणुगम्ममाणा २ एवं समणुगाहिज्जमाणा २ एवं समणुपेहिज्जमाणा २ एवं समणुचिंतिज्जमाणा २ एएसु चेव दोसु काएसु समोयरंति, तंजहा—तसकाए चेव थावरकाए चेव, एवमेव सपुव्वावरेणं आजीवियदिट्ठंतेणं चउरासीति जातिकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खाया ॥ (सू० ९८)

'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! गन्धाङ्गानि, क्वचिद् गन्धा इति पाठस्तत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् गन्धा इति गन्धाङ्गानीति द्रष्टव्यं प्रज्ञप्तानि ?, तथा कति गन्धाङ्गशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम! सप्त गन्धाङ्गानि सप्त गन्धाङ्गशतानि प्रज्ञप्तानि, इह सप्त गन्धाङ्गानि परिस्थूरजातिभेदादमूनि, तद्यथा—मूलं त्वक् काष्ठं निर्यासः पत्रं पुष्पं फलं च, तत्र मूलं मुस्तावालुकोशीरादि, त्वक् सुवर्णछल्लीत्वचाप्रभृति, काष्ठं चन्दनागुरुप्रभृति, निर्यासः कर्पूरादिः, पत्रं जातिपत्रतमालपत्रादि, पुष्पं प्रियङ्गुनागरपुष्पादि, फलं जातिफलकर्कोलकैलालवङ्गप्रभृति, एते च वर्णमधिकृत्य प्रत्येकं कृष्णादिभेदात्पञ्चपञ्चभेदा इति वर्णपञ्चकेन गुण्यन्ते जाताः पञ्चत्रिंशत्, गन्धचिन्तायामेते सुरभिगन्धय एवेत्येकेन गुणिताः पञ्चत्रिंशत् जाताः पञ्चत्रिंशदेव **'एकेन गुणितं तदेव भवती'**ति न्यायात्, तत्राप्येकैकस्मिन् वर्णभेदे रसपञ्चकं द्रव्यभेदेन विविक्तं प्राप्यते इति सा पञ्चत्रिंशत् रसपञ्चकेन गुण्यते जाताः पञ्चसप्ततिशतं, स्पर्शाश्च यद्यप्यष्टौ भवन्ति तथाऽपि गन्धाङ्गेषु यथोक्तरूपेषु प्रशस्या व्यवहारतश्चत्वार एव मृदुलघुशीतोष्णरूपास्ततः पञ्चसप्ततं शतं स्पर्शचतु-

ष्टयेन गुण्यते जातानि सप्त शतानि, उक्तञ्च—“मूलतयकट्ठनिज्जासपत्तपुप्फफलमेय गंधंगा । वण्णादुत्तरभेया गंधंगसया मुणेयव्वा ॥ १ ॥” अस्य व्याख्यानरूपं गाथाद्वयम्—“मुत्थासुवण्णछल्ली अगुरू वाला तमालपत्तं च । तह य पियंगू जाईफलं च जाईएँ गंधगा ॥ १ ॥ गुणणाए सत्त सया पंचहिं वण्णेहि सुरभिगंधेणं । रसपणएणं तह फासेहि य चउहिं मित्ते(पसत्थे)हि ॥ २ ॥” अत्र ‘जाईए गंधंगा’ इति जात्या जातिभेदेनामूनि गन्धाङ्गानि, शेषं भावितम् ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त ! पुष्पजातिकुलकोटिशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! षोडश पुष्पजातिकुलकोटिशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चत्वारि ‘जलजानां’ पद्मानां जातिभेदेन, तथा चत्वारि ‘स्थलजानां’ कोरण्टकादीनां जातिभेदेन, चत्वारि महागुल्मिकादीनां जात्यादीनां, चत्वारि ‘महावृक्षाणां’ मधुकादीनामिति ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त ! वल्लयः ? कति वल्लिशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! चतस्रो वल्लयस्त्रपुष्यादिमूलभेदेन, ताश्च मूलटीकाकृता वैविक्त्येन न व्याख्याता इति संप्रदायादवसेयाः, चत्वारि वल्लिशतान्येवावान्तरजातिभेदेन ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त ! लताः कति लताशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! अष्टौ लता या मूलभेदेन ता अपि संप्रदायादवसातव्याः, मूलटीकाकारेणाव्याख्यानात्, अष्टौ लताशतानि प्रज्ञप्तानि, अवान्तरजातिभेदेन ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त ! हरितकायाः कति हरितकायशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! त्रयो हरितकायाः प्रज्ञप्ताः—जलजाः स्थलजा उभयजाः, एकैकस्मिन् शतमवान्तरभेदानामिति, त्रीणि हरितकायशतानि । ‘फलसहस्सं चे’त्यादि, फलसहस्रं च ‘वृन्तवन्धानां’ वृन्ताकप्रभृतीनां फलसहस्रं च नालबद्धानां, ‘तेऽवि सव्वे’ इत्यादि, तेऽपि सर्वे भेदा अपिशब्दादन्येऽपि तथाविधाः ‘हरितकायमेव समवतरन्ति’ हरितकायेऽन्तर्भवन्ति हरितकायोऽपि वनस्पतौ वनस्पतिरपि स्थावरेषु स्थावरा अपि जीवेषु, तत एवं समनुगम्यमाना २ स्तथा जात्यन्तर्भा-

वेन स्वत एव सूत्रतः, तथा समनुग्राह्यमाणाः समनुग्राह्यमाणाः परेण सूत्रत एव, तथा समनुप्रेक्ष्यमाणाः समनुप्रेक्ष्यमाणा अनुप्रेक्षया अर्थालोचनरूपया, तथा समनुचिन्त्यमानाः समनुचिन्त्यमानास्तथा तथा तन्त्रयुक्तिभिः, एतयोरेव द्वयोः काययोः समवतरन्ति, तद्यथा—त्रसकाये च स्थावरकाये च, **'एवामेव'** इत्यादि, **'एवमेव'** उक्तेनैव प्रकारेण **'सपुव्वावरेणं'** पूर्वं चापरं च पूर्वापरं सह पूर्वापरं येन स सपूर्वापरः उक्तप्रकारस्तेन, उक्तविषयपौर्वापर्यालोचनयेति भावार्थः, **'आजीवगदिट्ठंतेणं'**ति आ—सकलजगदभिव्याप्त्या जीवानां यो दृष्टान्तः—परिच्छेदः स आजीवदृष्टान्तस्तेन सकलजीवदर्शनेनेत्यर्थः, आह च **मूलटीकाकारः**—"आजीवदृष्टान्तेन सकलजीवनिदर्शनेने"ति, चतुरशीतिजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मयाऽन्यैश्च ऋषभादिभिरिति, अत्र चतुरशीतिसङ्ख्योपादानमुपलक्षणं, तेनान्यान्यपि जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि वेदितव्यानि, तथाहि—पक्षिणां द्वादश जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भुजगपरिसर्पाणां नव उरगपरिसर्पाणां दश चतुष्पदानां दश जलचराणामर्द्धत्रयोदशानि चतुरिन्द्रियाणां नव त्रीन्द्रियाणामष्टौ द्वीन्द्रियाणां सप्त पुष्पजातीनां षोडश, एतेषां चैकत्र मीलने त्रिनवतिजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि सार्द्धानि भवन्ति, ततश्चतुरशीतिसङ्ख्योपादानमुपलक्षणमवसेयं, न चैतद् व्याख्यानं स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं **चूर्णौ**—'आजीवगदिट्ठंतेणं'ति अशेषजीवनिदर्शनेन चउरासीजातिकुलकोडि योनिप्रमुखशतसहस्सा एतत्प्रमुखा अन्येऽपि विद्यन्ते इति ॥ कुलकोटिविचारणे विशेषाधिकाराद्विमानान्यप्यधिकृत्य विशेषप्रश्नमाह—

अत्थि णं भंते! विमाणाइं सोत्थीयाणि सोत्थियावत्ताइं सोत्थियपभाइं सोत्थियकन्ताइं सो-

---

१ टीकाकृदभिप्रायेण अच्चियाइं अच्चियावत्ताइं इत्यादि पाठसंभव

त्थियवन्नाइं सोत्थियलेसाइं सोत्थियज्झयाइं सोत्थिसिंगाराइं सोत्थिकूडाइं सोत्थिसिट्ठाइं सोत्थुत्तरवडिंसगाइं?, हंता अत्थि। ते णं भंते! विमाणा केमहालता प०? गोयमा! जावतिए णं सूरिए उदेति जावइएणं च सूरिए अत्थमति एवतिया तिण्णोवासंतराइं अत्थेगतियस्स देवस्स एगे विक्कमे सिता, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगतीए वीतीवयमाणे २ जाव एकाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासा वितीवएज्जा, अत्थेगतिया विमाणं वितीवइज्जा अत्थेगतिया विमाणं नो वीतीवएज्जा, एमहालता णं गोयमा! ते विमाणा पण्णत्ता, अत्थि णं भंते! विमाणाइं अच्चीणि अच्चिरावत्ताइं तहेव जाव अच्चुत्तरवडिंसगातिं?, हंता अत्थि, ते विमाणा केमहालता पण्णत्ता?, गोयमा! एवं जहा सोत्थी(याई)णि णवरं एवतियाइं पंच उवासंतराइं अत्थेगतियस्स देवस्स एगे विक्कमे सिता सेसं तं चेव ॥ अत्थि णं भंते! विमाणाइं कामाइं कामावत्ताइं जाव कामुत्तरवडिंसयाइं?, हंता अत्थि, ते णं भंते! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?, गोयमा! जहा सोत्थीणि णवरं सत्त उवासंतराइं विक्कमे सेसं तहेव ॥ अत्थि णं भंते! विमाणाइं विजयाइं वेजयंताइं जयंताइं अपराजिताइं?, हंता अत्थि, ते णं भंते! विमाणा के०?, गोयमा! जाव-

१ सोत्थियाइ इत्यादि टीकाकृदभिप्रायेण पाठोऽत्र.

तिए सूरिए उदेइ एवइयाइं नव ओवासंतराइं, सेसं तं चेव, नो चेव णं ते विमाणे वीईवएज्जा ए-महालया णं विमाणा पण्णत्ता, समणाउसो ! ॥ (सू० ९९) तिरिक्खजोणियउद्देसओ पढमो ॥

'**अत्थि णं भंते**' इत्यादि, अस्तीति निपातो बह्वर्थे '**सन्ति**' विद्यन्ते णमिति वाक्यालङ्कारे '**विमानानि**' विशेषतः पुण्यप्राणिभिर्मन्यन्ते—तद्गतसौख्यानुभवनेनानुभूयन्ते इति विमानानि, तान्येव नामग्राहमाह—अर्चींषि—अर्चिर्नामानि, एवमर्चिरावर्त्तानि अर्चिःप्रभाणि अर्चिःकान्तानि अर्चिर्वर्णानि अर्चिर्लेश्यानि अर्चिर्ध्वजानि अर्चिःश्रृङ्गा(राणि) अर्चिःसृ(शि)ष्टानि अर्चिःकूटानि अर्चिरुत्तरावतंसकानि सर्वसङ्ख्यया एकादश नामानि, भगवानाह—'**हंता अत्थि**' हंतेति प्रत्यवधारणे अस्तीति निपातो बह्वर्थे सन्त्येवैतानि विमानानीति भावः । '**केमहालया ण**'मित्यादि, किंमहान्ति कियत्प्रमाणमहत्त्वानि णमिति पूर्ववत् भदन्त ! तानि विमानानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! '**जाव य उएइ सूरो**' इत्यादि, जम्बूद्वीपे सर्वोत्कृष्टे दिवसे सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानः सूर्यो यावति क्षेत्रे उदेति यावति च क्षेत्रे सूर्योऽस्तमुपयाति, एतावन्ति त्रीणि अवकाशान्तराणि, उदयास्तमितप्रमितमधिकृतं क्षेत्रं त्रिगुणमित्यर्थः, अस्त्येतद्—बुद्ध्या परिभावनीयमेतद् यथैकस्य विवक्षितस्य देवस्यैको विक्रमः स्यात्, तत्र जम्बूद्वीपे सर्वोत्कृष्टे दिवसे सूर्य उदेति सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकस्य च योजनस्यैकविंशतिः षष्टिभागा एतावति क्षेत्रे, उक्तञ्च—"सीयालीससहस्सा, दोण्णि सया जोयणाण तेवट्ठी । इगवीस सट्ठिभागा कक्कडमाइंमि पेच्छ नरा ॥ १ ॥" ४७२६३$\frac{२१}{६०}$, एतावत्येव क्षेत्रे तस्मिन् सर्वोत्कृष्टे दिवसेऽस्तमुपयाति, तत एतत्क्षेत्रं द्विगुणीकृतमुदयास्तापान्तरालप्रमाणं भवति, तच्चैतावत्—चतुर्नवतिः सहस्राणि पञ्च शतानि षड्विंशत्यधिकानि योजनानामेकस्य च योजनस्य [च] द्वाचत्वारिंशत्षष्टिभागाः ९४५२६$\frac{४२}{६०}$ एतावत्त्रिगुणीकृतं यथोक्तविमानपरिमाणक-

रणाय देवस्यैको विक्रमः परिकल्प्यते, स चैवंप्रमाणः—द्वे लक्षे त्र्यशीतिः सहस्राणि पञ्च शतानि अशीत्यधिकानि योजनानाम् एकस्य च योजनस्य षष्टिभागाः षट् २८३५८०$\frac{६}{६०}$ इति ॥ 'से णं देवे' इत्यादि, 'सः'विवक्षितो देवः 'तया' सकलदेवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया त्वरितया चपलया चण्डया शीघ्रया उद्धतया जवनया छेकया दिव्यया देवगत्या, अमीषां पदानामर्थः प्राग्वद्भावनीयः, व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् जघन्यत एकाहं वा द्व्यहं वा यावदुत्कर्षतः षण्मासान् यावद् 'व्यतिव्रजेत्' गच्छेत्, तत्रैवं गमने अ [ग्रन्थाग्रम् ४०००] स्त्येतद् यथैकं किञ्चन विमानं पूर्वोक्तानां विमानानां मध्ये 'व्यतिव्रजेत्' अतिक्रामेत्, तस्य पारं लभेतेति भावः, तथाऽस्त्येतद् यथैककं विमानं न व्यतिव्रजेत्, न तस्य पारं लभेत, उभयत्रापि जातावेकवचनं, ततोऽयं भावार्थः—उक्तप्रमाणेनापि क्रमेण यथोक्तरूपयाऽपि च गत्या षण्मासानपि यावदधिकृतो देवो गच्छति तथापि केषाञ्चिद्विमानानां पारं लभते केषाञ्चित्पारं न लभते इति, एतावन्महान्ति तानि विमानानि प्रज्ञप्तानि हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! विमानानि स्वस्तिकानि स्वस्तिकावर्त्तानि स्वस्तिकप्रभाणि स्वस्तिककान्तानि स्वस्तिकवर्णानि स्वस्तिकलेश्यानि स्वस्तिकध्वजानि स्वस्तिकशृङ्गाराणि स्वस्तिकशिष्टानि स्वस्तिककूटानि स्वस्तिकोत्तरावतंसकानि?, 'हंता अत्थि' इत्यादि, समस्तं प्राग्वत्, नवरमत्र 'एवइयाइं पंच ओवासंतराइं' इति कण्ठ्यं, उदयास्तापान्तरालक्षेत्रं पञ्चगुणं क्रियत इति भावः ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! विमानानि कामानि कामावर्तानि कामप्रभाणि कामकान्तानि कामवर्णानि कामलेश्यानि कामध्वजानि कामशृङ्गाराणि कामशिष्टानि कामकूटानि कामोत्तरावतंसकानि?, 'हंता अत्थि' इत्यादि सर्वं पूर्ववत् नवरमत्रोदयास्तापान्तरालक्षेत्रं सप्तगुणं कर्त्तव्यं, शेषं तथैव ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानि विमानानि?, 'हंता अत्थी'त्यादि प्राग्वत्, नवरमत्र 'एवइयाइं

नव ओवासंतराइं' इति वक्तव्यं शेषं तथैव, उक्तञ्च—"जावइ उदेइ सूरो जावइ सो अत्थमेइ अवरेणं । तियपणसत्तनवगुणं काउं पत्तेय पत्तेयं ॥ १ ॥ सीयालीस सहस्सा दो य सया जोयणाण तेवट्ठा । इगवीस सट्ठिभागा कक्खडमाइंमि पेच्छ नरा ॥ २ ॥ एयं दुगुणं काउं गुणिज्जए तिपणसत्तमाईहिं । आगयफलं च जं तं कमपरिमाणं वियाणाहि ॥ ३ ॥ चत्तारिवि सकमेहिं चंडादिगईहिं जंति छम्मासं । तहवि य न जंति पारं केसिंचि सुरा विमाणाणं ॥ ४ ॥" अस्यां तृतीयप्रतिपत्तौ तिर्यग्योन्यधिकारे प्रथमोद्देशकः ॥

उक्तः प्रथमोद्देशकः, इदानी द्वितीयस्यावसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

कतिविहा णं भंते! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया। से किं तं पुढविकाइया?, पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइया बादरपुढविकाइया य। से किं तं सुहुमपुढविकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, सेत्तं सुहुमपुढविकाइया। से किं तं बादरपुढविकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, एवं जहा पण्णवणापदे, सण्हा सत्तविधा पण्णत्ता, खरा अणेगविहा पन्नत्ता, जाव असंखेज्जा, से त्तं बादर पुढविकाइया। सेत्तं पुढविक्काइया। एवं चेव जहा पण्णवणापदे तहेव निरवसेसं भाणितव्वं जाव वणप्फतिकाइया, एवं जाव जत्थेको तत्थ सिता संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिता अणंता, सेत्तं बादरवणप्फतिकाइया, से तं वणस्सइकाइया। से किं तं तसकाइया?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया तेइंदिया च-

उरिंदिया पंचेंदिया । से किं तं बेइंदिया?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, एवं जं चेव पण्णवणापदे तं चेव निरयसेसं भाणितव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवा, सेतं अणुत्तरोववाइया, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, से तं तसकाइया ॥ (सू० १००)

'कइविहा ण'मित्यादि, कतिविधा भदन्त! संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! षड्विधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पृथिवीकायिका अप्कायिका यावत्त्रसकायिकाः। अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, इत्यादि प्रज्ञापनागतं प्रथमं प्रज्ञापनापदं निरवशेषं वक्तव्यं यावदन्तिमं 'से तं देवा' इति पदम् ॥ सम्प्रति विशेषाभिधानाय भूयोऽपि पृथिवीकायविषयं सूत्रमाह—

कतिविधा णं भंते! पुढवी पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा पुढवी पण्णत्ता, तंजहा—सण्हापुढवी सुद्धपुढवी वालुयापुढवी मणोसिलापु० सक्करापु० खरपुढवी ॥ सण्हापुढवीणं भंते! केव-तियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्कोसेणं एगं वाससहस्सं । सुद्धपुढ-वीए पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० बारस वाससहस्साइं । वालुयापुढवीपुच्छा, गो-यमा! जह० अंतोमु० उक्को० चोद्दस वाससहस्साइं । मणोसिलापुढवीणं पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० सोलस वाससहस्साइं । सक्करापुढवीए पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० अट्ठारस वाससहस्साइं । खरपुढविपुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० बावीस वाससह-स्साइं ॥ नेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं

उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती, एयं सव्वं भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धदेवत्ति ॥ जीवे णं भंते! जीवेत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! सव्वद्धं, पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! सव्वद्धं, एवं जाव तसकाइए ॥ (सू० १०१)। पडुप्पन्नपुढविकाइया णं भंते! केवतिकालस्स णिल्लेवा सिता?, गोयमा! जहण्णपदे असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं उक्कोसपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, जहन्नपदातो उक्कोसपए असंखेज्जगुणा, एवं जाव पडुप्पन्नवाउक्काइया ॥ पडुप्पन्नवणप्फइकाइयाणं भंते! केवतिकालस्स निल्लेवा सिता?, गोयमा! पडुप्पन्नवण० जहण्णपदे अपदा उक्कोसपदे अपदा, पडुप्पन्नवणप्फतिकाइयाणं णत्थि निल्लेवणा ॥ पडुप्पन्नतसकाइयाणं पुच्छा, जहण्णपदे सागरोवमसतपुहुत्तस्स उक्कोसपदे सागरोवमसतपुहुत्तस्स, जहण्णपदा उक्कोसपदे विसेसाहिया ॥ (सू० १०२)

'कइविहा ण'मित्यादि, कतिविधा णमिति पूर्ववत्, भदन्त! पृथिवी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'श्लक्ष्णपृथिवी' मृद्वी चूर्णितलोष्टकल्पा, 'शुद्धपृथिवी' पर्वतादिमध्ये, मनःशिला—लोकप्रतीता, वालुका—सिकतारूपा, शर्करा—मुरुण्डपृथिवी, 'खरापृथिवी' पाषाणादिरूपा ॥ अधुना एतासामेव स्थितिनिरूपणार्थमाह—'सण्हपुढवीकाइयाण'मित्यादि, श्लक्ष्णपृथिवीकायिकानां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकं वर्षसहस्रं । एवमनेनाभिलापेन शेषाणामपि पृथिवीनामनया गाथया उत्कृष्टमनुगन्तव्यं, तामेव गाथामाह—'सण्हा य'इत्यादि, (सण्हा य सुद्धवालुअ मणोसिला

सक्करा य खरपुढवी । इगबारचोद्दससोलढारबावीससमसहसा ॥ १ ॥) श्लक्ष्णपृथिव्या एकं वर्षसहस्रमुत्कर्षतः स्थितिः, शुद्धपृथिव्या द्वादश वर्षसहस्राणि, वालुकापृथिव्याश्चतुर्दश सहस्राणि, मनःशिलापृथिव्याः षोडश वर्षसहस्राणि, शर्करापृथिव्या अष्टादश वर्षसहस्राणि, खरपृथिव्या द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, सर्वासामपि चामीषां पृथिवीनां जघन्येन स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं वक्तव्या ॥ सम्प्रति स्थितिनिरूपणाप्रस्तावान्नैरयिकादीनां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण स्थितिं निरूपयितुकाम आह—'नेरइयाणं भंते!' इत्यादि, नैरयिकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, इत्येवं प्रज्ञापनागतस्थितिपदानुसारेण चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद्वक्तव्यं यावत्सर्वार्थसिद्धविमानदेवानां स्थितिनिरूपणा, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते ॥ तदेवं भवस्थितिनिरूपणा कृता, सम्प्रति कायस्थितिनिरूपणार्थमाह—'जीवे णं भंते!' इत्यादि, अथ कायस्थितिरिति कः शब्दार्थः?, उच्यते, कायो नाम जीवस्य विवक्षितः सामान्यरूपो विशेषरूपो वा पर्यायविशेषस्तस्मिन् स्थितिः कायस्थितिः, किमुक्तं भवति?—यस्य वस्तुनो येन पर्यायेण—जीवत्वलक्षणेन पृथिवीकायादित्वलक्षणेन वाऽऽदिश्यते व्यवच्छेदेन यद्भवनं सा कायस्थितिः, तत्र जीव इति "जीव प्राणधारणे" जीवति—प्राणान् धारयतीति जीवः, प्राणाश्च द्विधा—द्रव्यप्राणा भावप्राणाश्च, तत्र द्रव्यप्राणा आयुःप्रभृतयः, उक्तञ्च—"पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः । प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥" भावप्राणा ज्ञानादयः यैर्मुक्तोऽपि जीवतीति व्यपदिश्यते, उक्तञ्च—"ज्ञानादयस्तु भावप्राणा मुक्तोऽपि जीवति स तैर्हि"ति, इह च विशेषानुपादानादुभयेषामपि ग्रहणं णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! जीव इति—जीवनपर्यायविशिष्टः कालतः—कालमधिकृत्य कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—सर्वाद्धां, संसार्यवस्थायां द्रव्यभावप्राणानधिकृत्य मुक्त्यवस्थायां भावप्राणानधिकृत्य सर्वत्रापि जीवनस्य विद्यमानत्वात्, अथवा जीव इति न एकः

प्रतिनियतो जीवो विवक्ष्यते किन्तु जीवसामान्यं, ततः प्राणधारणलक्षणजीवनाभ्युपगमेऽपि न कश्चिद्दोषः, तथाहि—'**जीवे णं भंते!**' इत्यादि, जीवो णमिति पूर्ववद् भदन्त! जीव इति—जीवन्निति प्राणान् धारयन्नित्यर्थः कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! सर्वाद्धां, जीवसामान्यस्यानाद्यनन्तत्वात्, न चैतद् व्याख्यानं स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं **मूलटीकायां**—"**जीवे णं भंते** इत्यादि, एषा ओघकायस्थितिः सामान्यजीवापेक्षिणीति सर्वाद्धया निर्वचनम्"। एवं च पृथिवीकायादिष्वप्यदोषः, एतत्सामान्यस्य सर्वदैव भावादिति। एवं गतीन्द्रियकायादिद्वारैर्यथा **प्रज्ञापनायामष्टादशे** कायस्थितिनामके पदे कायस्थितिरुक्ता तथाऽत्र सर्वं निरवशेषं वक्तव्यं यथा उपरि तत्पदगतं न किमपि तिष्ठति, गतीन्द्रियकायादिद्वारसङ्ग्राहके चेमे गाथे—"गइ इंदिए य काए जोगे वेए कसाय लेसा य। सम्मत्तनाणदंसणसंजयउवओगआहारे॥ १॥ भासगपरित्तपज्जत्तसुहुम सण्णी भवऽत्थि चरिमे य। एएसिं तु पयाणं कायठिई होइ नायव्वा॥ २॥" सूत्रपाठस्तु लेशतो दर्श्यते—"नेरइया णं भंते! णेरइयत्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। तिरिक्खजोणिए णं भंते! तिरिक्खजोणियत्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणमणंतं कालं अणंता उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अणंता लोगा असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इत्यादि॥ सम्प्रति सामान्यपृथिवीकायादिगतकायस्थितिनिरूपणार्थमाह—'**पुढविक्काइए णं भंते!**' इत्यादि, पृथिवीकायिको भदन्त!, सामान्यरूपोऽत एव जातावेकवचनं न व्यक्त्येकत्वे, पृथिवीकाय इति कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! सर्वाद्धां, पृथिवीकायसामान्यस्य सर्वदैव भावात्। एवमप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायसूत्राण्यपि भावनीयानि॥ सम्प्रति विवक्षिते काले जघन्यपदे उत्कृष्टपदे वा कियन्तोऽभिनवा उत्पद्यमानाः पृथिवीकायिकादयः? इत्येतन्निरूपणार्थमाह

—'पडुप्पन्नपुढविक्काइया णं भंते! केवइकालस्स निल्लेवा सिया' इत्यादि, प्रत्युत्पन्नपृथिवीकायिकाः—तत्कालमुत्पद्यमानाः पृथिवीकायिका भदन्त! 'केवइकालस्स' त्ति तृतीयार्थे षष्ठी कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, प्रतिसमयमेकैकापहारेणापह्रियमाणाः कियता कालेन सर्वे एव निष्ठामुपयान्तीति भावः, भगवानाह—गौतम! जघन्यपदे यदा सर्वस्तोका भवन्ति तदेत्यर्थः, असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्प्पिणीभिरुत्कृष्टपदेऽपि यदा सर्वबहवो भवन्ति तदाऽपीति भावः असङ्ख्येयाभिरुत्सार्पिण्यवसार्प्पिणीभिर्नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदिनोऽसङ्ख्येयगुणाः। एवमप्तेजोवायुसूत्राण्यपि भावनीयानि ॥ वनस्पतिसूत्रमाह—'पडुप्पण्णे'त्यादि, प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिका भदन्त! कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, भगवानाह—गौतम! प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिका जघन्यपदेऽपदा—इयता कालेनापह्रियन्ते इत्येतत्पदविरहिता अनन्तानन्तत्वात्, उत्कृष्टपदेऽप्यपदा, अनन्तानन्ततया निर्लेपनाऽसम्भवात्, तथा चाह—'पडुप्पन्नवणस्सइकाइयाणं नत्थि निल्लेवणा' इति सुगमं, नवरमनन्तानन्तत्वादिति हेतुपदं स्वयमभ्यूह्यम् ॥ 'पडुप्पण्णतसकाइया ण'मित्यादि, प्रत्युत्पन्नत्रसकायिका भदन्त! कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, भगवानाह—गौतम! जघन्यपदे सागरोपमशतपृथक्त्वस्य—तृतीयार्थे षष्ठी प्राकृतत्वात् सागरोपमशतपृथक्त्वेन, उत्कृष्टपदेऽपि सागरोपमशतपृथक्त्वेन नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसेयं। इदं च सर्वमुच्यमानं विशुद्धलेश्यसत्त्वमभि प्राप्तं यथाऽवस्थिततया सम्यगवभासते नान्यथेत्यविशुद्धविशुद्धलेश्यविषयं किञ्चिद्विवक्षुराह—

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहएणं अप्पाणएणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अण-

गारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहयासमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहतासमोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, हंता जाणति पासति जहा अविसुद्धलेस्सेणं आलावगा एवं विसुद्धलेस्सेणवि छ आलावगा भाणितव्वा, जाव विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहतासमोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, हंता जाणति पासति ॥ (सू०१०३)

'अविसुद्धलेस्से ण'मित्यादि, 'अविसुद्धलेश्यः' कृष्णादिलेश्यो भदन्त! 'अनगारः' न विद्यते अगारं—गृहं यस्यासौ अनगारः—साधुः 'असमवहतः' वेदनादिसमुद्घातरहितः 'समवहतः' वेदनादिसमुद्घाते गतः। एवमिमे द्वे सूत्रे असमवहतसमवहताभ्यामालभ्यामविशुद्धलेश्यपरविषये प्रतिपादिते एवं समवहतासमवहताभ्यामालभ्यां विशुद्धलेश्यपरविषये द्वे सूत्रे भावयितव्ये। तथाऽन्ये अविसुद्धलेश्यविशुद्धलेश्यपरविषये द्वे सूत्रे समवहतासमवहतेनात्मनेति पदेन, समवहतासमवहतो नाम वेदनादिसमुद्घातक्रियाविष्टो न तु परिपूर्णं समवहतो नाप्यसमवहतः सर्वथा। तदेवमविशुद्धलेश्ये ज्ञातरि साधौ षट् सूत्राणि प्रवृत्तानि, एवमेव विशुद्धलेश्येऽपि

साधौ ज्ञातरि षट् सूत्राणि भावनीयानि, नवरं सर्वत्र जानाति पश्यतीति वक्तव्यं, विशुद्धलेश्याकतया यथाऽवस्थितज्ञानदर्शनभावात्, आह च मूलटीकाकारः—"शोभनमशोभनं वा वस्तु यथावद्विशुद्धलेश्यो जानाती"ति, समुद्घातोऽपि च तस्याप्रतिबन्धक एव, न च तस्य समुद्घातोऽत्यन्ताशोभनो भवति, उक्तं च मूलटीकायाम्—"समुद्घातोऽपि तस्याप्रतिबन्धक एवे"त्यादीति ॥ तदेवं यतोऽविशुद्धलेश्यो न जानाति विशुद्धलेश्यो जानाति ततः सम्यग्मिथ्याक्रिययोरेकदा निषेधमभिधित्सुराह—

अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति एवं भासेन्ति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेति, तंजहा—सम्मत्ताकिरियं च मिच्छत्ताकिरियं च, जं समयं संमत्तकिरियं पकरेति तं समयं मिच्छत्ताकिरियं पकरेति, जं समयं मिच्छत्ताकिरियं पकरेइ तं समयं संमत्तकिरियं पकरेइ, समत्ताकिरियापकरणताए मिच्छत्तकिरियं पकरेति मिच्छत्तकिरियापकरणताए संमत्ताकिरियं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरितातो पकरेति, तंजहा—संमत्तकिरियं च मिच्छत्ताकिरियं च, से कहमेतं भंते! एवं?, गोयमा! जन्नं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेंति, तहेव जाव सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्ताकिरियं च, जे ते एवमाहंसु तं णं मिच्छा, अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेति, तंजहा—सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्ताकिरियं वा, जं समयं संमत्तकिरियं

पकरेति णो तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति, तं चेव जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति नो तं समयं संमत्तकिरियं पकरेति, संमत्तकिरियापकरणयाए नो मिच्छत्तकिरियं पकरेति मिच्छत्तकिरियापकरणयाए णो संमत्तकिरियं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेति, तंजहा—सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा ॥ (सू० १०४)। से तं तिरिक्खजोणियउद्देसओ बीओ समत्तो ॥

'अन्नउत्थिया णं भंते!' इत्यादि, 'अन्ययूथिकाः' अन्यतीर्थिका भदन्त! चरकादय एवमाचक्षते सामान्येन 'एवं भाषन्ते' स्वशिष्यान् श्रवणं प्रत्यभिमुखानवबुध्य विस्तरेण व्यक्तं कथयन्ति, एवं 'प्रज्ञापयन्ति' प्रकर्षेण ज्ञापयन्ति यथा स्वात्मनि व्यवस्थितं ज्ञानं तथा परेष्वप्यापादयन्तीति, एवं 'प्ररूपयन्ति' तत्त्वचिन्तायामसंदिग्धमेतदिति निरूपयन्ति, इह खल्वेको जीव एकेन समयेन युगपद्द्वे क्रिये प्रकरोति, तद्यथा—'सम्यक्त्वक्रियां च' सुन्दराध्यवसायात्मिकां 'मिथ्यात्वक्रिया च' असुन्दराध्यवसायात्मिका, 'जं समय'मिति प्राकृतत्वात्सप्तम्यर्थे द्वितीया यस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति 'तं समय'मिति तस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति, यस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति तस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, अन्योऽन्यसंवलितोभयनियमप्रदर्शनार्थमाह—सम्यक्त्वक्रियाप्रकरणेन मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति मिथ्यात्वक्रियाप्रकरणेन सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, तदुभयकरणस्वभावस्य तत्तत्क्रियाकरणात्सर्वात्मना प्रवृत्तेः, अन्यथा क्रियाऽयोगादिति, 'एवं खल्वि'त्यादि निगमनं प्रतीतार्थं, 'से कहमेयं भंते!' इत्यादि, तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्?, तदेवं गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—गौतम! यत् णमिति वाक्यालङ्कारे 'अन्ययूथिकाः' अन्यतीर्थिका एवमाचक्षते

इत्यादि प्राग्वत् यावत्तत् मिथ्या ते एवमाख्यातवन्तः, अहं पुनर्गौतम! एवमाचक्षे एवं भाषे एवं प्रज्ञापयामि एवं प्ररूपयामि, इह खलु एको जीव एकेन समयेनैकां क्रियां प्रकरोति, तद्यथा—सम्यक्त्वक्रियां वा मिथ्यात्वक्रियां वा, अत एव यस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति न तस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति यस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति न तस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, परस्परवैविक्त्यनियमप्रदर्शनार्थमाह—सम्यक्त्वक्रियाप्रकरणेन न मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति मिथ्यात्वक्रियाप्रकरणेन न सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, सम्यक्त्वक्रियामिथ्यात्वक्रिययोः परस्परपरिहारावस्थानात्मकतया जीवस्य तदुभयकरणस्वभावत्वायोगात्, अन्यथा सर्वथा मोक्षाभावप्रसक्तेः, कदाचिदपि मिथ्यात्वानिवर्त्तनात् ॥ अस्यां तृतीयप्रतिपत्तौ तिर्यग्योन्यधिकारे द्वितीयोदेशकः समाप्तः ॥

व्याख्यातस्तिर्यग्योनिजाधिकारः, सम्प्रति मनुष्याधिकारव्याख्यावसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

से किं तं मणुस्सा?, मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य ॥ (सू० १०५) । से किं तं संमुच्छिममणुस्सा?, २ एगागारा पण्णत्ता ॥ कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोयमा! अंतोमणुस्सखेत्ते जहा पण्णवणाए जाव सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा ॥ (सू० १०६)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते मनुष्याः?, सूरिराह—मनुष्या द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संमूर्च्छिममनुष्याश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याश्च, चशब्दौ द्वयानामपि मनुष्यत्वजातितुल्यतासूचकौ ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते संमूर्च्छिममनुष्याः?, सूरिराह—संमूर्च्छिममनुष्याः 'एकाकाराः' एकस्वरूपाः प्रज्ञप्ताः । अथ क तेषां सम्भवः? इति जिज्ञासिपुर्गौतमः पृच्छति—'**कहि णं भंते!**'

इत्यादि, क्व भदन्त! संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छन्ति?, भगवानाह—अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे इत्यादि सूत्रं प्राग्वद्भावनीयं यावत् अंतोमुहुत्तद्धा-
उया चेव कालं पकरेंति, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा' ॥ सम्प्रति गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा ॥ (सू० १०७) से किं तं अंतरदीवगा?, २ अट्ठावीसतिविधा पण्णत्ता, तंजहा—एगुरूया आभासिता वेसाणिया णांगोली हयकण्णगा० आयंसमुहा० आसमुहा० आसकण्णा० उक्कामुहा० घणदंता जाव सुद्धदंता ॥ (सू० १०८)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याः?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कर्मभूमका
अकर्म्मभूमका आन्तरद्वीपकाः, तत्र 'अस्त्यनानुपूर्व्यपी'ति न्यायप्रदर्शनार्थमान्तरद्वीपकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि,
अथ के ते आन्तरद्वीपकाः?, लवणसमुद्रमध्ये अन्तरे अन्तरे द्वीपा अन्तरद्वीपा अन्तरद्वीपेषु भवा आन्तरद्वीपकाः, 'राष्ट्रेभ्यः' इति
वुञ्, सूरिराह—आन्तरद्वीपका अष्टाविंशतिविधाः प्रज्ञप्ताः, तानेव तद्यथेत्यादिना नामग्राहमुपदर्शयति—एकोरुकाः १ आभाषिकाः २
वैषाणिकाः ३ नाङ्गोलिकाः ४ हयकर्णाः ५ गजकर्णाः ६ गोकर्णाः ७ शष्कुलीकर्णाः ८ आदर्शमुखाः ९ मेण्ढमुखाः १० अयोमुखाः ११
गोमुखाः १२ अश्वमुखाः १३ हस्तिमुखाः १४ सिंहमुखाः १५ व्याघ्रमुखाः १६ अश्वकर्णाः १७ सिंहकर्णाः १८ अकर्णाः १९
कर्णप्रावरणाः २० उल्कामुखाः २१ मेघमुखाः २२ विद्युद्दन्ताः २३ विद्युज्जिह्वाः २४ घनदन्ताः २५ लष्टदन्ताः २६ गूढदन्ताः २७

शुद्धदन्ताः २८, इह एकोरुकादिनामानो द्वीपाः परं 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इति न्यायान्मनुष्या अप्येकोरुकादय उक्ता यथा पञ्चालदेशनिवासिनः पुरुषाः पञ्चाला इति ॥ तथा चैकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपं पिपृच्छिषुराह—

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं एगोरूमणुस्साणं एगोरूदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जबुंदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं णव एकूणपण्णजोयणसए किंचि विसेसेण परिक्खेवेणं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं च वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। सा णं पउमवरवेदिया अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं एगूरुयदीवं समंता परिक्खेवेणं पण्णत्ता। तीसे णं पउमवरवेदियाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया निम्मा एवं वेतियावण्णओ जहा रायपसेणईए तहा भाणियव्वो ॥ (सू०१०९)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानां इह एकोरुकादयो मनुष्याः शिखरिण्यपि पर्वते विद्यन्ते ते च मेरोरुत्तरदिग्वर्त्तिन इति तद्व्यवच्छेदार्थं दाक्षिणात्यानामित्युक्तं, एकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपर्वतस्यान्यत्रासम्भवात् अस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे इति प्रतिपत्तव्यं, 'मन्दरपर्वतस्य' मेरोर्दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवद्वर्षधरपर्वतस्य, क्षुल्लग्रहणं महाहिमवद्वर्षधरपर्वतस्य व्यवच्छेदार्थं, पूर्वस्मात् पूर्वरूपाच्चरमान्ताद् उत्तरपूर्वेण—उत्तरपूर्वस्यां दिशि लवण-

समुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानामेकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, स च त्रीणि योजनशतान्यायामविष्कम्भेण समाहारो द्वन्द्वः आयामेन विष्कम्भेन चेत्यर्थः, नव 'एकोनपञ्चाशानि' एकोनपञ्चाशदधिकानि योजनशतानि ९४९ परिक्षेपेण, परिमाणगणितभावना—"विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ" इति करणवशात्स्वयं कर्त्तव्या सुगमत्वात् ॥

सा णं पउमवरवेतिया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता । से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं वेतियासमेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे, एवं जहा रायपसेणइयवणसंडवण्णओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तणाण य वण्णगंधफासो सद्दो तणाणं वावीओ उप्पायपव्वया पुढविसिलापट्टगा य भाणितव्वा जाव तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति ॥ (सू० ११०)

'से ण'मित्यादि, स एकोरुकनामा द्वीप एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन परिक्षिप्तः, तत्र पद्मवरवेदिकावर्णको वनषण्डवर्णकश्च वक्ष्यमाणजम्बूद्वीपजगत्युपरिपद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णकवद् भावनीयः, स च तावद् यावच्चरमं 'आसयंती'ति पदम् ॥

एगोरूयदीवस्स णं दीवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेति वा, एवं सयणिज्जे भाणितव्वे जाव पुढविसिलापट्टगंसि तत्थ णं बहवे एगुरूयदीवया

मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति जाव विहरंति, एगुरूयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे उद्दालका कोद्दालका कतमाला णयमाला णट्टमाला सिंगमाला संखमाला दंतमाला सेलमालगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव बीयमंतो पत्तेहि य पुप्फेहि य अच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अतीव २ उवसोभेमाणा उवसोहेमाणा चिट्ठंति, एक्कोरूयदीवे णं दीवे रुक्खा बहवे हेरुयालवणा भेरुयालवणा मेरुयालवणा सेरुयालवणा सालवणा सरलवणा सत्तवण्णवणा पूतफलिवणा खज्जूरिवणा णालिएरिवणा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति, एगुरूदीवे णं तत्थ २ बहवे तिलया लवया नग्गोधा जाव रायरुक्खा णंदिरुक्खा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति, एगुरूयदीवे णं तत्थ बहूओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमिताओ एवं लयावण्णओ जहा उववाइए जाव पडिरूवाओ, एकोरूयदीवे णं तत्थ २ बहवे सेरियागुम्मा जाव महाजातिगुम्मा ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमंति विधूयग्गसाहा जेण वायविधूयग्गसाला एगुरूयदीवस्स बहूसमरमणिज्जभूमिभागं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति, एकोरूयदीवे णं तत्थ २ बहूओ वणरातीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणरातीतो किण्हातो किण्होभासाओ जाव रम्माओ महामेहणिगुरुंबभूताओ जाव महतीं गंधद्धणिं मुयंतीओ पासादीताओ ४। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे मत्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणा-

उसो ! जहा से चंदप्पभमणिसिलागवरसीधुपवरवारुणिसुजातफलपत्तपुप्फचोयणिज्जा संसारबहुदव्वजुत्तसंभारकालसंधयासवा महुमेरगरिट्ठाभदुद्धजातीपसन्नमेल्लगसताउ खज्जूरमुद्दियासारकाविसायणसुपक्कखोयरसवरसुरावण्णरसगंधफरिसजुत्तबलवीरियपरिणामा मज्जविहित्थबहुप्पगारा तदेवं ते मत्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेदा फलेहिं पुण्णा वीसंदंति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति १। एक्कोरुए दीवे तत्थ २ बहवो भिंगंगया णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से बारगघडकरगकलसकक्करिपायंकंचणिउदंकवद्धणिसुपविठ्ठरपारीचसकभिंगारकरोडिसरगथरगपत्तीथालणत्थगववलियअवपदगवारकविचित्तवट्टकमणिवट्टकसुत्तिचारुपिणयाकंचणमणिरयणभत्तिविचित्ता भायणविधीए बहुप्पगारा तहेव ते भिंगंगयावि दुमगणा अणेगबहुगविविहवीससाए परिणताए भाजणविधीए उववेया फलेहिं पुन्नाविव विसट्टंति कुसविकुस० जाव चिट्ठंति २। एगोरुगदीवे णं दीवे तत्थ २ बहवे तुडियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से आलिंगमुयंगपणवपडहदद्दरगकरडिडिंडिमभंभाहोरंभकण्णियारखरमुहिमुगुंदसंखियपरिलीवव्वगपरिवाइणिवंसावेणुवीणासुघोसविवंचिमहतिकच्छभिरगसगातलतालकंसतालसुसंपउत्ता आतोज्जविधीणिउणगंधव्वसमयकुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणसुद्धा तहेव ते तुडियंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविधवीससापरि-

णामाए ततवितत घणसुसिराए चउव्विहाए आतोज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टन्ति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ३। एगोरुयदी० तत्थ २ बहवे दीवसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से संझाविरागसमए नवणिहिपतिणो दीविया चक्कवालविंदे पभूयवट्टिपलित्ताणेहिं धणिउज्जालियतिमिरमद्दए कणगणिगरकुसुमितपालियातयवणप्पगासो कंचणमणिरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहिं दीवियाहिं सहसा पज्जालिऊसवियणिद्धतेयदिप्पंतविमलगहगणसमप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरिउल्लोयचिल्लियाहिं जावुज्जलपहसियाभिरामाहिं सोभेमाणा तहेव ते दीवसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणामाए उज्जोयविधीए उववेदा फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ४। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे जोतिसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से अचिरुग्गयसरयसूरमंडलपडंतउक्कासहस्सदिप्पंतविज्जुज्जालहुयवहनिद्धूमजलियनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जकिंसुयासोयजावासुयणकुसुमविमउलियपुंजमणिरयणकिरणजच्चहिंगुलुयणिगररूवाइरेगरूवा तहेव ते जोतिसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए उज्जोयविहीए उववेदा सुहलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा कूडाय इव ठाणठिया अन्नमन्नसमोगाढाहिं लेस्साहिं साए पभाए सपदेसे सव्वओ समंता ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंति कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति

५। एगुरुयदीवे तत्थ २ बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले भासंतमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए विरल्लि-विचित्तमल्लसिरिदाममल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइमेण मल्लेण छेयसिप्पियं विभारतिएण सव्वतो चेव समणुबद्धे पविरललवंतविप्पइट्ठेहिं पंचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोभ-माणेहिं सोभमाणे वणमालतग्गए चेव दिप्पमाणे तहेव ते चित्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुवि-विहवीससापरिणयाए मल्लविहीए उववेया कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ६। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे चित्तरसा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से सुगंधवरकलमसालिवि-सिट्ठणिरुवहतदुद्धरद्धे सारयघयगुडखंडमहुमेलिए अतिरसे परमण्णे होज्ज उत्तमवण्णगंधमंते रण्णो जहा वा चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं सूतपुरिसेहिं सज्जिएहिं वाउकप्पसेअसित्ते इव ओ-दणे कलमसालिणिज्जत्तिएवि एक्के सव्वप्फमिउवसयसगसित्थे अणेगसालणगसंजुत्ते अहवा पडिपुण्णदव्वुवक्खडेसु सक्कए वण्णगंधरसफरिसजुत्तबलविरियपरिणामे इंदियबलपुट्ठिवद्धणे खु-प्पिवासमहणे पहाणे गुलकढियखंडमच्छंडियउवणीए पमोयगे सण्हसमियगब्भे हवेज्ज परमइट्ठंग-संजुत्ते तहेव ते चित्तरसावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए भोजणविहीए उववेदा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ७। एगुरूए दीवे णं तत्थ २ बहवे मणियंगा नाम दुमगणा प-

णत्ता समणाउसो!, जहा से हारद्धहारवट्टणगमउडकुंडलवासुत्तगहेमजालमणिजालकणगजालगसुत्तगउचिइयकडगाखुड्डियएकावलिकंठसुत्तमंगरिमउरत्थगेवेज्जसोणिसुत्तगचूलामणिकणगतिलगफुल्लसिद्धत्थयकण्णवालिससिसूरउसभचक्कगतलभंगतुडियहत्थिमालगवलक्खदीणारमालिता चंदसूरमालिता हरिसयकेयूरवलयपालंबअंगुलेज्जगकंचीमेहलाकलावपयरगपायजालघंटियखिंखिणिरयणोरुजालत्थिगियवरणेउरचलणमालिया कणगणिगरमालिया कंचणमणिरयणभत्तिचित्ता भूसणविधी बहुप्पगारा तहेव ते मणियंगावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणताए भूसणविहीए उववेया कुसवि० जाव चिट्ठंति ८। एगुरूयए दीवे तत्थ २ बहवे गेहागारा नाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पागारट्टालगचरियदारगोपुरपासायाकासतलमंडवएगसालविसालगतिसालगचउरंसचउसालगब्भघरमोहणघरवलभिघरचित्तसालमालयभत्तिघरवट्टतंसचतुरंसणंदियावत्तसंठियायतपंडुरतलमुंडमालहम्मियं अहव णं धवलहरअद्धमागहविब्भमसेलद्धसेलसंठियकूडागारड्ढसुविहिकोट्ठगअणेगघरसरणलेणआवणविडंगजालचंदणिज्जूहअपवरकदोवालिचंदसालियरूवविभत्तिकलिता भवणविही बहुविकप्पा तहेव ते गेहागाराविदुमगणा अणेगबहुविविधवीससापरिणयाए सुहारुहणे सुहोत्ताराए सुहनिक्खमणप्पवेसाए दद्दरसोपाणपंतिकलिताए पइरिक्काए सुहविहाराए मणोऽणुकूलाए भवणविहीए उववेया कुसवि० जाव

चिट्ठंति ९। एगोरुयदीवे तत्थ २ बहवे अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से अणेगसो मंतणुतं कंबलदुगुल्लकोसेज्जकालमिगपट्टचीणंसुयवरणातवारवणिगयतुआभरणचित्तसहिणगकल्लाणगभिंगिणीलकज्जलबहुवण्णरत्तपीतसुक्किलमक्खयमिगलोमहेमप्फरुण्णगअवसरत्तगसिंधुओसभदामिलवंगकलिंगनेलिणतंतुमयभत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पकारा हवेज्ज वरपट्टणुग्गता वण्णरागकलिता तहेव ते अणियणावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणताए वत्थविधीए उववेया कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति १०। एगोरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ते णं मणुया अणुवमतरसोमचारुरूवा भोगुत्तमगयलक्खणा भोगसस्सिरीया सुजायसव्वंगसुंदरंगा सुपतिट्ठियकुम्मचारुचलणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला नगनगरसागरमगरचक्कंकवरंकलक्खणंकियचलणा अणुपुव्वसुसाहतंगुलीया उण्णयतणुतंबणिद्धणखा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणीकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गणिमग्गगूढजाणू गतससणसुजातसण्णिभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासितगती सुजातवरतुरगगुज्झदेसा आइण्णहतोव णिरुवलेवा पमुइयवरतुरियसीहअतिरेगवट्टियकडी साहयसोणिंदमुसलदप्पणणिगरितवरकणगच्छक(रु)सरिसवरवइरपलितमज्झा उज्जुयसमसहितसुजातजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुकुमालमउयरमणीज्जरोमराती गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुरर-

विकिरणतरुणबोधितअकोसायंतपउमगंभीरवियडणाभी झसविहगसुजातपीणकुच्छी झसो-
दरा सुइकरणा पम्हवियडणाभा सण्णयपासा संगतपासा सुंदरपासा सुजातपासा मितमाइय-
पीणरतियपासा अकरुंडुयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी पसत्थवत्तीसलक्खणधरा
कणगसिलातलुज्जलपसत्थसमयलोवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छी सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफ-
लिहवट्टियभुया भुयगीसरविपुलभोगआयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू जूयसन्निभपीणरतियपीवर-
पउट्ठसंठियसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसुनिगूढपव्वसंधी रत्ततलोवइतमउयमंसलपसत्थलक्ख-
णसुजायअच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगुलीया तंबतलिणसुचिरुइरणिद्धणक्खा
चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोअत्थियपाणिलेहा चंदसूरसं-
खचक्कदिसासोअत्थियपाणिलेहा अणेगवरलक्खणुत्तमपसत्थसुचिरातियपाणिलेहा वरमहिसवरा-
हसीहसद्दूलउसभणागवरपडिपुन्नविउलउन्नतमइंदखंधा चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा अव-
ट्ठितसुविभत्तसुजातचित्तमंसूमंसलसंठियपसत्थसद्दूलविपुलहणुयाओ तवितासिलप्पवालबिंबफ-
लसन्निभाहरोट्ठा पंडुरससिसगलविमलनिम्मलसंखगोखीरफेणदगरयमुणालिया धवलदंतसेढी
अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुजातदंता एगदंतसेढिव्व अणेगदंता हुतवहनिद्धंतधो-
ततत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा गरुलाययउज्जुतुंगणासा अवदालियपोंडरीयणयणा कोकासितध-

वलपत्तलच्छा आणामियचावरुइलकिण्हपूराइयसंठियसंगतआयतसुजाततणुकसिणनिद्धभुमया अल्लीणप्पमाणजुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमंसलकवोलदेसभागा अचिरुग्गयबालचंदसंठियपसत्थविच्छिन्नसमणिडाला उडुवतिपडिपुण्णसोमवदणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियसिस्से दाडिमपुप्फपगासतवणिज्जसरिसनिम्मलसुजायकेसंतकेसभूमी सामलिबोंडघणणिचियछोडियमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणसुगंधसुंदरभुयमोयगभिंगिणीलकज्जलपहट्ठभमरगणणिद्धणिकुरुंबनिचियकुंचियचियपदाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजणगुणोववेया सुजायसुविभत्तसुरूवगा पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, ते णं मणुया हंसस्सरा कोंचस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसा छायाउज्जोतियंगमंगा वज्जरिसभनारायसंघयणा समचउरंससंठाणसंठिया सिणिद्धछवी णिरायंका उत्तमपसत्थअइसेसनिरुवमतणू जल्लमलकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरा निरुवमलेवा अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोतपरिणामा सउणिव्व पोसपिट्ठंतरोरुपरिणता विग्गहियउन्नयकुच्छी पउमुप्पलसरिसगंधणिस्सासुरभिवदणा अट्ठधणुसयं ऊसिया, तेसिं मणुयाणं चउसट्ठि पिट्ठिकरंडगा पण्णत्ता समणाउसो!, ते णं मणुया पगतिभद्दगा पगतिविणीतगा पगतिउवसंता पगतिपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीता अप्पिच्छा असंनिहिसं-

घया अचंडा विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छियकामगामिणो य ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। तेसि णं भंते! मणुयाणं केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति?, गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति, एगोरुयमणुईणं भंते! केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अच्चंतविसप्पमाणपउमसूमालकुम्मसंठितविसिट्ठचलणाओ उज्जुमिओ पीवरनिरंतरपुट्ठसाहितंगुलीता उण्णयरतियनलिणंव सुइणिद्धणखा रोमरहियवट्टलट्ठसंठियअजहण्णपसत्थलक्खणअकोप्पजंघजुयला सुणिम्मियसुगूढजाणुमंडलसुबद्धसंधी कयलिक्खंभातिरेगसंठियणिव्वणसुकुमालमउयकोमलअविरलसमसहितसुजातवट्टपीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीचीपट्टसंठियपसत्थविच्छिन्नपिहुलसोणी वदणायामप्पमाणदुगुणितविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारणीतो वज्जविराइयपसत्थलक्खणणिरोदरा तिवलिवलीयतणुणमियमज्झियातो उज्जुयसमसहितजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुविभत्तसुजातकंतसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराई गंगावत्तपदाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोधितअकोसायंतपउमवणगंभीरवियडणाभी अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छी सण्णयपासा संगयपासा सुजायपासा मितमातियपीणरइयपासा अकरंडुयकणगरुयगनिम्मलसुजायणिरुवहयगातलट्ठी कंचणकलससमपमाणसमसहितसुजातलट्ठचूचुयआमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुण्णयरतियसंठियपयोधराओ भुयंगणु-

पुव्वतणुयगोपुच्छवट्टसमसहियणमियआएज्जललियवाहाओ तंबणहा मंसलग्गहत्था पीवरकोमलवरंगुलीओ णिद्धपाणिलेहा रविससिसंखचक्कसोत्थियसुविभत्तसुविरतियपाणिलेहा पीणुण्णयकक्खवत्थिदेसा पडिपुण्णगलकवोला चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा मंसलसंठियपसत्थहणुया दाडिमपुप्फप्पगासपीवरकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा दधिदगरयचंदकुंदवासंतिमउलअच्छिद्दविमलदसणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहा कणय(व)रमुउलअकुडिलअब्भुग्गतउज्जुतुंगणासा सारदणवकमलकुमुदकुवलयविमुक्कदलणिगरसरिसलक्खणअंकियकंतणयणा पत्तलचवलायंततंबलोयणाओ आणामितचावरुइलकिण्हब्भराइसंठियसंगतआययसुजातकसिणणिद्धभमुया अल्लीणपमाणजुत्तसवणा पीणमट्ठरमणिज्जगंडलेहा चउरंसपसत्थसमणिडाला कोमुतिरयणिकरविमलपडिपुन्नसोमवयणा छत्तुन्नयउत्तिमंगा कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरया छत्तज्झयजुगथूभदामिणिकमंडलुकलसवाविसोत्थियपडागजवमच्छकुम्मरहवरमगरसुकथालअंकुसअट्ठावयवीइसुपइट्ठकमयूरसिरिदामाभिसेयतोरणमेइणिउदधिवरभवणगिरिवरआयंसललियगतउसभसीहचमरउत्तमपसत्थबत्तीसलक्खणधरातो हंससरिसगतीतो कोतिलमधुरगिरसुस्सराओ कंता सव्वस्स अणुनतातो ववगतवलिपलिया चंगदुव्वण्णवाहीदोभग्गसोगमुक्काओ उच्चत्तेण य नराण थोवूणमूसियाओ सभावसिंगाराचारचारुवेसा संगतगतहसितभणियचेट्ठियविला-

ससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसला सुंदरथणजहणवदणकरचलणणयणमाला वण्णलावण्णजोवणविलासकलिया नंदणवणविवरचारिणीउव्व अच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जा पासाईतातो दरिसणिज्जातो अभिरूवाओ पडिरूवाओ। तासि णं भंते! मणुईणं केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति?, गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति। ते णं भंते! मणुया किमाहारमाहारेंति?, गोयमा! पुढविपुप्फफलाहारा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। तीसे णं भंते! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते?, गोयमा! से जहाणामए गुलेति वा खंडेति वा सक्कराति वा मच्छंडियाति वा भिसकंदेति वा पप्पडमोयएति वा पुप्फउत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा अकोसितातिति वा विजताति वा महाविजयाइ वा आयंसोवसाति वा अणोवसाति वा चाउरक्के गोखीरे चउठाणपरिणए गुडखंडमच्छंडिउवणीए मंदग्गिकडीए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं, भवेतारूवे सिता?, नो इणट्ठे समट्ठे, तीसे णं पुढवीए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव मणामतराए चेव आसाए णं पण्णत्ते, तेसि णं भंते! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते?, गोयमा! से जहानामए चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे पवरभोयणे सतसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणं उववेते गंधेणं उववेते रसेणं उववेते फासेणं उववेते आसाइणिज्जे वीसाइणिज्जे दीवणिज्जे बिंहणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे सव्विंदियगातपल्हायणिज्जे, भवेतारूवे सिता?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आस्साए णं

पण्णत्ते । ते णं भंते! मणुया तमाहारमाहारित्ता कहिं वसहिं उवेंति?, गोयमा! रुक्खगेहालता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । ते णं भंते! रुक्खा किंसंठिया पण्णत्ता?, गोयमा! कूडागारसंठिता पेच्छाघरसंठिता सत्तागारसंठिया झयसंठिया थूभसंठिया तोरणसंठिया गोपुरचेतियपा(या)लगसंठिया अट्टालगसंठिया पासादसंठिया हम्मतलसंठिया गवक्खसंठिया वालग्गपोत्तियसंठिता वलभीसंठिता अण्णे तत्थ बहवे वरभवणसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिता सुहसीयलच्छाया णं ते दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगोरूयदीवे दीवे गेहाणि वा गेहावणाणि वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, रुक्खगेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे २ गामाति वा णगराति वा जाव सन्निवेसाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, जहिच्छितकामगामिणो ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे असीति वा मसीइ वा कसीइ वा पणीति वा वणिज्जाति वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयअसिमसिकिसिपणियवाणिज्जा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे हिरण्णेति वा सुवन्नेति वा कंसेति वा दूसेति वा मणीति वा मुत्तिएति वा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जेति वा?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं तिव्वे ममत्तभावे समुप्पज्जति । अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे रायाति वा जुवरायाति वा ईसरेति

वा तलवरेइ वा माडंबियाति वा कोडुंबियाति वा इब्भाति वा सेट्ठीति वा सेणावतीति वा सत्थवाहाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयइड्ढीसक्कारा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे २ दासाति वा पेसाइ वा सिस्साति वा भयगाति वा भाइल्लगाइ वा कम्मगरपुरिसाति वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतआभिओगिता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे माताति वा पियाति वा भायाति वा भइणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाइ वा सुण्हाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं णं मणुयाणं तिव्वे पेमबंधणे समुप्पज्जति, पयणुपेज्जबंधणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे अरीति वा वेरिएति वा घातकाति वा वहकाति वा पडिणीताति वा पच्चामित्ताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतवेराणुबंधा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरूए दीवे मित्ताति वा वतंसाति वा घडिताति वा सहीति वा सुहियाति वा महाभागाति वा संगतियाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतपेम्मा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरूयदीवे आवाहाति वा वीवाहाति वा जण्णाति वा सद्धाति वा थालिपाकाति वा चेलोवणतणाति वा सीमंतुण्णयणाइ वा पिति(मत)पिंडनिवेदणाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतआवाहविवाहजण्णभद्दथालिपागचोलोवणतणसीमंतुण्णयणमतपिंडनिवेदणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता सम-

णाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे २ इंदमहाति वा खंदमहाति वा रुद्दमहाति वा सिवमहाति वा वेसमणमहाइ वा मुगुंदमहाति वा णागमहाति वा जक्खमहाति वा भूतमहाति वा कूवमहाति वा तलायणदिमहाति वा दहमहाति वा पव्वयमहाति वा रुक्खरोवणमहाति वा चेइयमहाइ वा थूभमहाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतमहमहिमा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे णडपेच्छाति वा णट्टपेच्छाति वा मल्लपेच्छाति वा मुट्ठियपेच्छाइ वा विडंबगपेच्छाइ वा कहगपेच्छाति वा पवगपेच्छाति वा अक्खायगपेच्छाति वा लासगपेच्छाति वा लंखपे० मंखपे० तूणइल्लपे० तुंबवीणपे० कावणपे० मागहपे० जल्लपे०?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतकोउहल्ला णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे सगडाति वा रहाति वा जाणाति वा जुग्गाति वा गिल्लीति वा थिल्लीति वा पिपिल्लीइ वा पवहणाणि वा सिवियाति वा संदमाणियाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, पादचारविहारिणो णं ते मणुस्सगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे आसाति वा हत्थीति वा उट्टाति वा गोणाति वा महिसाति वा खराति वा घोडाति वा अजाति वा एलाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । अत्थि णं भंते! एगूरुयगदीवे दीवे सीहाति वा वग्घाति वा विगाति वा दीवियाइ वा अच्छाति वा परच्छाति वा परस्सराति वा

तरच्छाति वा बिडालाइ वा सुणगाति वा कोलसुणगाति वा कोकंतियाति वा ससगाति वा चित्तलाति वा चिल्ललगाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पबाहं वा उप्पायंति वा छविच्छेदं वा करेंति, पगतिभद्दका णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे सालीति वा वीहीति गोधूमाति वा जवाति वा तिलाति वा इक्खूति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति। अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे गत्ताइ वा दरीति वा घंसाति वा भिगूति वा उवाएति वा विसमेति वा विज्जलेति वा धूलीति वा रेणूति वा पंकेइ वा चलणीति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, एगूरुयदीवे णं दीवे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे खाणूति वा कंटएति वा हीरएति वा सक्कराति वा तणकयवराति वा पत्तकयवराइ वा असुतीति वा पूतियाति वा दुब्भिगंधाइ वा अचोक्खाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयखाणुकंटकहीरसक्करतणकयवरपत्तकयवरअसुतिपूतियदुब्भिगंधमचोक्खपरिवज्जिए णं एगुरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे दंसाति वा मसगाति वा पिसुयाति वा जूताति वा लिक्खाति वा ढंकुणाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतदंसमसगापिसुतजूतालिक्खढंकुणपरिवज्जिए णं एगुरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे अहीइ वा

अयगराति वा महोरगाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं ते अन्नमन्नस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आयाहं वा पबाहं वा छविच्छेयं वा करेंति, पगइभद्दगा णं ते वालगगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे गहदंडाति वा गहमुसलाति वा गहगज्जिताति वा गहजुद्धाति वा गहसंघाडगाति वा गहअवसव्वाति वा अब्भाति वा अब्भरुक्खाति वा संझाति वा गंधव्वनगराति वा गज्जिताति वा विज्जुताति वा उक्कापाताति वा दिसादाहाति वा णिग्घाताति वा पंसुविट्ठीति वा जुवगाति वा जक्खालित्ताति वा धूमिताति वा महिताति वा रउग्घाताति वा चंदोवरागाति वा सूरोवरागाति वा चंदपरिवेसाइ वा सूरपरिवेसाति वा पडिचंदाति वा पडिसूराति वा इंदधणूति वा उदगमच्छाति वा अमोहाइ वा कविहसियाइ वा पाईणवायाइ वा पडीणवायाइ वा जाव सुद्धवाताति वा गामदाहाति वा नगरदाहाति वा जाव सण्णिवेसदाहाति वा पाणक्खतजणक्खयकुलक्खयधणक्खयवसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे डिंबाति वा डमराति वा कलहाति वा बोलाति वा खाराति वा वेराति वा विरुद्धरज्जाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतडिंबडमरकलहबोलखारवेरविरुद्धरज्जविवज्जिता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे महाजुद्धाति वा महासंगामाति वा महासत्थनिवयणाति वा महापुरिसवाणाति वा महारुधिरवाणाति वा नागवाणाति वा खेण-

वाणाइ वा तामसवाणाइ वा कुम्भूतियाइ वा कुलरोगाति वा गामरोगाति वा णगररोगाति वा मंडलरोगाति वा सिरोवेदणाति वा अच्छिवेदणाति वा कण्णवेदणाति वा णक्कवेदणाइ वा दंतवेदणाइ वा नखवेदणाइ वा कासाति वा सासाति वा जराति वा दाहाति वा कच्छूति वा खसराति-वा कुट्ठाति वा कुडाति वा दगराति वा अरिसाति वा अजीरगाति वा भगंदराइ वा इंदग्गहाति वा खंदग्गहाति वा कुमारग्गहाति वा णागग्गहाति वा जक्खग्गहाति वा भूतग्गहाति वा उव्वेयग्गहाति वा धणुग्गहाति वा एगाहियग्गहाति वा बेयाहियगहिताति वा तेयाहियगहियाइ वा चाउत्थगाहियाति वा हिययसूलाति वा मत्थगसूलाति वा पाससूलाइ वा कुच्छिसूलाइ वा जोणिसूलाइ वा गाममारीति वा जाव सन्निवेसमारीति वा पाणक्खय जाव वसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतरोगायंका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे अतियासाति वा मंदवासाति वा सुवुट्ठीइ वा मंदवुट्ठीति वा उदवाहाति वा पवाहाति वा दगुब्भेयाइ वा दगुप्पीलाइ वा गामवाहाति वा जाव सन्निवेसवाहाति वा पाणक्खय० जाव वसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतदगोवद्दवा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे अयागराति वा तम्बागराइ वा सीसागराति वा सुवण्णागराति वा रतणागराति वा वइरागराइ वा वसुहाराति वा हिरण्णवासाति वा सुवण्ण-

वासाति वा रयणवासाति वा वइरवासाति वा आभरणवासाति वा पत्तवासाति वा पुप्फवासाति वा फलवासाति वा बीयवासा० मल्लवासा० गंधवासा० वण्णवासा० चुण्णवासा० खीरवुट्ठीति वा रयणवुट्ठीति वा हिरण्णवुट्ठीति वा सुवण्ण० तहेव जाव चुण्णवुट्ठीति वा सुकालाति वा दुकालाति वा सुभिक्खाति वा दुभिक्खाति वा अप्पग्घाति वा महग्घाति वा कयाइ वा महाविक्कयाइ वा सण्णिहीइ वा सचयाइ वा निधीइ वा निहाणाति वा चिरपोराणाति वा पहीणसामियाति वा पहीणसेउयाइ वा पहीणगोत्तागाराइं वा जाइं इमाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसन्निवेसेसु सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउमुहमहापहपहेसु णगरणिद्धमणसुसाणगिरिकंदरसन्तिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति, नो तिणट्ठे समट्ठे । एगुरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा! जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं असंखेज्जतिभागेण ऊणगं उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं । ते णं भंते! मणुया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति ?, गोयमा! ते णं मणुया छम्मासावसेसाउया मिहुणताइं पसवंति अउणासीइं राइंदियाइं मिहुणाइं सारक्खंति संगोविंति य, सारक्खित्ता २ उस्ससित्ता निस्ससित्ता कासित्ता छीतित्ता अक्किट्ठा अव्वहिता अपरियाविया [पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं परियाविय] सुहंसुहेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु

देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति, देवलोयपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे दीवे चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वतस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं तिन्नि जोयण० सेसं जहा एगुरूयाणं णिरवसेसं सव्वं ॥ कहि णं भंते!! दाहिणिल्लाणं णंगोलिमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसताइं सेसं जहा एगुरुयमणुस्साणं ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयण० सेसं जहा एगुरुयाणं ॥ (सू० १११)

'एगोरुयदीवस्स णं भंते!' इत्यादि, एकोरुकद्वीपस्य णमिति पूर्ववत् भदन्त! 'कीदृशः' क इव दृश्यः 'आकारभावप्रत्यवतारः' भूम्यादिस्वरूपसम्भवः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! एकोरुकद्वीपे 'बहुसमरमणीयः' प्रभूतसमः सन् रम्यो भूमिभागः प्रज्ञप्तः। 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादिरुत्तरकुरुगमस्तावदनुसर्त्तव्यो यावदनुसज्जनासूत्रं, नवरमत्र नानात्वमिदं—मनुष्या अष्टौ धनुःशतान्युच्छ्रिता वक्तव्याश्चतुःषष्टिः पृष्ठकरण्डकाः—पृष्ठवंशाः, बृहत्प्रमाणानां हि ते बहवो भवन्ति, एकोनाशीतिं च रात्रिन्दिवानि स्वापत्यान्यनुपालयन्ति, स्थितिस्तेषां जघन्येन देशोनः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, एतदेव व्याचष्टे—पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः, उत्कर्षतः

परिपूर्णः पल्योपमासङ्ख्येयभागः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानामाभाषिकमनुष्याणामाभाषिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पूर्वस्माच्चरमान्तात् 'दक्षिणपूर्वेण' दक्षिणपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानामाभाषिकमनुष्याणामाभाषिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषवक्तव्यता एकोरुकवद्वक्तव्या यावत्स्थितिसूत्रम् ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानां नाङ्गोलिकमनुष्याणां नाङ्गोलिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मंदरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पाश्चात्याच्चरमान्ताद् 'दक्षिणपश्चिमेन' दक्षिणपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानां नाङ्गोलिकमनुष्याणां नाङ्गोलिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषं यथैकोरुकाणां तथा वक्तव्यं यावत्स्थितिसूत्रम् ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! वैशालिकमनुष्याणां वैशालिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पाश्चात्याच्चरमान्ताद् 'उत्तरपश्चिमेन' उत्तरपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि वैशालिकमनुष्याणां वैशालिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषमेकोरुकवद् वक्तव्यं यावत्स्थितिसूत्रम् ॥

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! एगुरूयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, चत्तारि जोयणसयाइं

आयामविक्खंभेणं बारस जोयणसया पन्नट्ठी किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेतियाए अवसेसं जहा एगुरूयाणं। कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं गजकण्णमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! आभासियदीवस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुदं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं। एवं गोकण्णमणुस्साणं पुच्छा। वेसाणितदीवस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुदं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं। सक्कुलिकण्णाणं पुच्छा, गोयमा! णंगोलियदीवस्स उत्तरपच्चत्थिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुदं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं॥ आतंसमुहाणं पुच्छा, हतकण्णयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो पंच जोयणसताइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आयंसमुहमणुस्साणं आयंसमुहदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, आसमुहाईणं छ सया, आसकन्नाईणं सत्त, उक्कामुहाईणं अट्ठ, घणदंताइणं जाव नव जोयणसयाइं,—एगूरुयपरिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपन्नाइं। बारसपन्नट्ठाइं हयकण्णाईणं परिक्खेवो ॥१॥ आयंसमुहाईणं पन्नरसेकासीए जोयणसते किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं, एवं एतेणं कमेणं उवउज्जिऊण णेतव्वा चत्तारि चत्तारि एगपमाणा, णाणत्तं ओगाहे, विक्खंभे परिक्खेवे पढमबीतततियचउक्काणं उग्गहो विक्खंभो परिक्खेवो भणितो, चउत्थचउक्के छजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं अट्ठारसत्ताणउते जोयणसते विक्खंभेणं। पंचम-

चउक्के सत्त जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं बावीसं तेरसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं। छट्ठचउक्के अट्ठजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं पणुवीसं गुणतीसजोयणसए परिक्खेवेणं। सत्तमचउक्के नव-जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणसहस्साइं अट्ठ पणयाले जोयणसए परिक्खेवेणं। जस्स य जो विक्खंभो उग्गहो तस्स तत्तिओ चेव । पढमाइयाण परिरतो जाण सेसाण अहिओ उ ॥ १ ॥ सेसा जहा एगुरूयदीवस्स जाव सुद्धदंतदीवे देवलोकपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं एगुरूयमणुस्साणं एगुरूयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंवूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासधरपव्वयस्स उत्तर-पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुदं तिण्णि जोयणसताइं ओगाहित्ता एवं जहा दाहिणिल्लाण तहा उत्तरिल्लाण भाणितव्वं, णवरं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स विदिसासु, एवं जाव सुद्धदंतदीवेत्ति जाव सेत्तं अंतरदीवका ॥ (सू० ११२)। से किं तं अकम्मभूमगमणुस्सा?, २ तीसविधा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं हेमवएहिं, एवं जहा पण्णवणापदे जाव पंचहिं उत्तरकुरूहिं, सेत्तं अकम्मभूमगा। से किं तं कम्मभूमगा?, २ पण्णरसविधा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवएहिं पंचहिं महाविदेहेहिं, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आयरिया मिलेच्छा, एवं जहा पण्णवणापदे जाव सेत्तं आयरिया, सेत्तं गब्भवक्कंतिया, सेत्तं मणुस्सा॥ (सू० ११३)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! हयकर्णमनुष्याणां हयकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! एकोरुकद्वीपस्य पूर्वस्माच्चरमान्ताद् उत्तरपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्रायां उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्तादपि चतुर्योजनशतान्तरे दाक्षिणात्यानां हयकर्णमनुष्याणां हयकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, स च चत्वारि योजनशतान्यायामविष्कम्भेन द्वादश पञ्चषष्ठानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, शेषं यथैकोरुकमनुष्याणां। एवमाभाषिकद्वीपस्य पूर्वस्माच्चरमान्ताद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि चत्वारि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्रायां उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे गजकर्णमनुष्याणां गजकर्णो द्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्। नाङ्गोलिकद्वीपस्य पश्चिमाच्चरमान्ताद्दक्षिणपश्चिमेन चत्वारि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्रायां उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे गोकर्णमनुष्याणां गोकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्। वैशालिकद्वीपस्य पश्चिमाच्चरमान्ताद् उत्तरपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रमवगाह्य चत्वारि योजनशतानि अत्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्रायां उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे दाक्षिणात्यानां शष्कुलीकर्णमनुष्याणां शष्कुलीकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्, पद्मवरवेदिकावनषण्डमनुष्यादिस्वरूपं च समस्तमेकोरुकद्वीपवत्। एवमेतेनाभिलापेनामीषां हयकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु पञ्च योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य पञ्चयोजनशतायामविष्कम्भा एकाशीत्यधिकपञ्चदशयोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनषण्डमण्डितबाह्यप्रदेशा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात्पञ्चयोजनशतप्रमाणान्तरा आदर्शमुखमेण्ढमुखायोमुखगोमुखनामानश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—हयकर्णस्य परत आदर्शमुखो गजकर्णस्य परतो मेण्ढमुखो गोकर्णस्य परतोऽयोमुखः शष्कुलीकर्णस्य परतो गोमुखः।

एतेषामप्यादर्शमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो भूयोऽपि यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं लवणसमुद्रं षट् षड् योजनशतान्यवगाह्य
षड्योजनशतायामविष्कम्भाः सप्तनवत्यधिकाष्टादशयोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनषण्डमण्डितपरिसरा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात् षड्यो-
जनशतप्रमाणान्तरा अश्वमुखहस्तिमुखसिंहमुखव्याघ्रमुखनामानश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—आदर्शमुखस्य परतोऽश्वमुखः, मेण्ढमु-
खस्य परतो हस्तिमुखः, अयोमुखस्य परतः सिंहमुखः, गोमुखस्य परतो व्याघ्रमुखः। एतेषामश्वमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो य-
थाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं सप्त सप्त योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य सप्तयोजनशतायामविष्कम्भास्त्रयोदशाधिकद्वाविंशतियोज-
नशतपरिरयाः पद्मवरवेदिकावनषण्डसमवगूढाः जम्बूद्वीपवेदिकान्तात्सप्तयोजनशतप्रमाणान्तरा अश्वकर्णहरिकर्णाकर्णकर्णप्रावरणनामा-
नश्चत्वारो द्वीपा बोध्याः, तद्यथा—अश्वमुखस्य परतोऽश्वकर्णः हस्तिमुखस्य परतो हरिकर्णः सिंहमुखस्य परतोऽकर्णः व्याघ्रमुखस्य परतः
कर्णप्रावरणः, तत एतेषामप्यश्वकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकमष्टौ अष्टौ योजनशतानि लवण-
समुद्रमवगाह्याष्टयोजनशतायामविष्कम्भा एकोनत्रिंशदधिकपञ्चविंशतियोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितपरिसरा जम्बू-
द्वीपवेदिकान्तादष्टयोजनशतप्रमाणान्तरा उल्कामुखमेघमुखविद्युन्मुखविद्युद्दन्ताभिधानाश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—अश्वकर्णस्य
परत उल्कामुखः हरिकर्णस्य परतो मेघमुखः अकर्णस्य परतो विद्युन्मुखः कर्णप्रावरणस्य परतो विद्युद्दन्तः, एतेषामप्युल्कामुखादीनां
चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं नव नव योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य नवनवयोजनशतायामविष्कम्भाः
पञ्चचत्वारिंशदधिकाष्टाविंशतियोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनखण्डसमवगूढा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात् नवयोजनशतप्रमाणान्तरा
घनदन्तलष्टदन्तगूढदन्तशुद्धदन्तनामानश्चत्वारो द्वीपाः, तद्यथा—उल्कामुखस्य परतो घनदन्तः मेघमुखस्य परतो लष्टदन्तः विद्युन्मु-

स्तस्य परतो गूढदन्तः विशुद्धदन्तस्य परतः शुद्धदन्तः। एतेषामेव द्वीपानामवगाहायामविष्कम्भपरिरयपरिमाणसङ्ग्रहगाथाषट्कमाह—"पढमंमि तिन्नि उ सया सेसाण सउत्तरा नव उ जाव। ओगाहं विक्खंभं दीवाणं परिरयं वोच्छं॥१॥ पढमचउक्कपरिरया बीयचउक्कस्स परिरओ अहिओ। सोलेहिं तिहि उ जोयणसएहिं एमेव सेसाणं॥२॥ एगोरुयपरिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपण्णाइं। बारस पण्णट्ठाइं हयकण्णाणं परिक्खेवो॥ ३ ॥ पणरस एक्कासीया आयंसमुहाण परिरओ होइ। अट्ठार सत्तनउया आसमुहाणं परिक्खेवो॥४॥ बावीसं तेराइं परिक्खेवो होइ आसकन्नाणं। पणुवीस अउणतीसा उक्कामुहपरिरओ होइ॥५॥ दो चेव सहस्साइं अट्ठेव सया हवंति पणयाला। घणदंतदीवाणं विसेसमहिओ परिक्खेवो॥६॥" व्याख्या—प्रथमे द्वीपचतुष्के चिन्त्यमाने त्रीणि योजनशतान्यवगाहनां—लवणसमुद्रावगाहं विष्कम्भं च, विष्कम्भग्रहणादायामोऽपि गृह्यते तुल्यपरिमाणत्वात्, जानीहि इति क्रियाशेषः, शेषाणां द्वीपचतुष्कानां शतोत्तराणि त्रीणि त्रीणि शतानि अवगाहनाविष्कम्भं तावज्जानीयाद् यावन्नव शतानि, तद्यथा—द्वितीयचतुष्के चत्वारि शतानि, तृतीये पञ्च शतानि, चतुर्थे षट् शतानि, पञ्चमे सप्त शतानि, षष्ठेऽष्टौ शतानि, सप्तमे नव शतानि, अत ऊर्ध्वं द्वीपानामेकोरुकप्रभृतीनां 'परिरयं' परिरयप्रमाणं वक्ष्ये। प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—'पढमचउक्के'त्यादि, 'प्रथमचतुष्के परिरयात्' प्रथमद्वीपचतुष्के परिरयपरिमाणात् द्वितीयचतुष्कस्य—द्वितीयद्वीपचतुष्टयस्य परिरयः—परिरयपरिमाणमधिकः षोडशैः षोडशोत्तरैस्त्रिभिर्योजनशतैः, 'एवमेव' अनेनैव प्रकारेण शेषाणां 'द्वीपानां' द्वीपचतुष्कानां परिरयपरिमाणमधिकं पूर्वपूर्वचतुष्कपरिरयपरिमाणादवसातव्यम्, एतदेव चैतेन दर्शयति—'एकोरुये'त्यादि 'एकोरुकपरिक्षेपे' एकोरुकोपलक्षितप्रथमद्वीपचतुष्कपरिक्षेपे नव शतानि एकोनपञ्चाशानि—एकोनपञ्चाशदधिकानि। ततस्त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'हयकण्णाण'मिति वचनात् हयकर्णप्रमुखाणां द्वितीयानां चतुर्णां

द्वीपानां परिक्षेपो भवति, स च द्वादश योजनशतानि पञ्चषष्टानि—पञ्चषष्ट्यधिकानि । तत्रापि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आयंसमुहाणं'ति आदर्शमुखप्रमुखाणां तृतीयानां चतुर्णां द्वीपानां परिरयपरिमाणं भवति, तच्च पञ्चदश योजनशतान्येकाशीत्यधिकानि । ततो भूयोऽपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आसमुहाणं'ति अश्वमुखप्रभृतीनां चतुर्थानां चतुर्णां द्वीपानां परिक्षेपः, तद्यथा—अष्टादश योजनशतानि सप्तनवतानि—सप्तनवत्यधिकानि । तेष्वपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आसकण्णाणं'ति अश्वकर्णप्रमुखाणां पञ्चानां चतुर्णां द्वीपानां परिक्षेपो भवति, तद्यथा—द्वाविंशतियोजनशतानि त्रयोदशानि—त्रयोदशाधिकानि । ततो भूयोऽपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'उल्कामुखपरिरयः' उल्कामुखषष्ठद्वीपचतुष्कपरिरयपरिमाणं भवति, तद्यथा—पञ्चविंशतियोजनशतानि एकोनत्रिंशानि—एकोनत्रिंशदधिकानि । ततः पुनरपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'घनदन्तद्वीपस्य' (पानां) घनदन्तप्रमुखसप्तमद्वीपचतुष्कस्य परिक्षेपः, तद्यथा—द्वे सहस्रे अष्टौ शतानि पञ्चचत्वारिंशानि—पञ्चचत्वारिंशदधिकानि 'विसेसमाहिओ' इति किञ्चिद्विशेषाधिकः अधिकृतः परिक्षेपः, पञ्चचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषाधिकानीति भावार्थः, इदं च पदमन्तेऽभिहितत्वात्सर्वत्राप्यभिसम्बन्धनीयं, तेन सर्वत्रापि किञ्चिद्विशेषाधिकमुक्तरूपं परिरयपरिमाणमवसातव्यं । तदेवमेते हिमवति पर्वते चतसृषु विदिक्षु व्यवस्थिताः सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतिः, एवं हिमवत्तुल्यवर्णप्रमाणपद्मह्रदप्रमाणायामविष्कम्भावगाहपुण्डरीकह्रदोपशोभिते शिखरिण्यपि पर्वते लवणोदार्णवजलसंस्पर्शादारभ्य यथोक्तप्रमाणान्तराश्चतसृषु विदिक्षु एकोरुकादिनामानोऽक्षूणापान्तरालायामविष्कम्भा अष्टाविंशतिसङ्ख्या द्वीपा वेदितव्याः, तथा चाह—"कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?, गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ

लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता तत्थ णं उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते" इत्यादि सर्वं तदेव, नवरमुत्तरेण विभाषा कर्त्तव्या, सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः, उपसंहारमाह—'सेत्तमंतरदीवगा'ते एतेऽन्तरद्वीपकाः । अकर्म्मभूमकाः कर्म्मभूमकाश्च यथा प्रज्ञापनायां प्रथमे प्रज्ञापनाख्ये पदे तथैव वक्तव्या यावत् 'सेत्तं चरित्तारिया सेत्तं मणुस्सा' इति पदम्, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यत इति, उपसंहारमाह—'सेत्तं मणुस्सा' त एते मनुष्याः ॥ तदेवमुक्ता मनुष्याः, सम्प्रति देवानभिधित्सुराह—

से किं तं देवा ?, देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया (सू० ११४) से किं तं भवणवासी?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा–असुरकुमारा जहा पण्णवणापदे देवाणं भेओ तहा भाणितव्वो जाव अणुत्तरोववाइया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा–विजयवेजयंत जाव सव्वट्ठसिद्धगा, सेत्तं अणुत्तरोववातिया ॥ (सू० ११५) कहि णं भंते! भवणवासिदेवाणं भवणा पन्नत्ता ?, कहि णं भंते! भवणवासी देवा परिवसंति ?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं जहा पण्णवणाए जाव भवणवासाइता, त(ए)त्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरि भवणावाससयसहस्सा भवंतित्तिमक्खाता, तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति–असुरा नाग सुवन्ना य जहा पण्णवणाए जाव विहरंति ॥ (सू० ११६) कहि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा प०?, पुच्छा, एवं जहा पण्णवणाठाणपदे

जाव विहरंति ॥ कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं असुरकुमारदेवाणं भवणा पुच्छा, एवं जहा ठाण- पदे जाव चमरे, तत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति जाव विहरति ॥ (सू० ११७)

'से किं त' मित्यादि, अथ के ते देवाः ?, सूरिराह—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो वानमन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाः, अमीषां च शब्दानां व्युत्पत्तिर्यथा प्रज्ञापनाटीकायां तथा वेदितव्या ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते भवनवासिनः ?, सूरिराह—भवनवासिनो दशविधाः प्रज्ञप्ताः, एवं देवानां प्रज्ञापनागतप्रथमप्रज्ञापनाख्यपद इव तावद्भेदो वक्तव्यो यावत्सर्वार्थदेवा इति ॥ सम्प्रति भवनवासिनां देवानां भवनवसनप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते !' इत्यादि, क भदन्त ! भवनवासिनां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि ?, क भदन्त ! भवनवासिनो देवाः परिवसन्ति ?, भगवानाह—गौतम ! 'इमीसे ण'मित्यादि, 'अस्याः' प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया यत्र वयमास्महे रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायाः' अशीत्युत्तरम्—अशीतिसहस्राधिकं योजनशतसहस्रं बाहल्यं—पिण्डभावो यस्याः सा तथा, तस्या उपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधस्तादेकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा मध्ये 'अट्ठसत्तरे' अष्टसप्ततिसहस्राधिके योजनशतसहस्रे, 'अत्र' एतस्मिन् स्थाने भवनवासिनां देवानां सप्त भवनकोटयो द्विसप्ततिर्भवनावासशतसहस्राणि भवन्तीति आख्यातानि मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, तत्र सप्तकोट्यादिभावनैवं—चतुःषष्टिः शतसहस्राणि भवनानामसुरकुमाराणां चतुरशीतिः शतसहस्राणि नागकुमाराणां द्विसप्ततिः शतसहस्राणि सुवर्णकुमाराणां षण्णवतिः शतसहस्राणि वायुकुमाराणां, द्वीपकुमारादीनां षण्णां प्रत्येकं षट्सप्ततिः शतसहस्राणि भवनानां, ततः सर्वसङ्ख्यया यथोक्तं भवनसङ्ख्यानं भवति । 'ते णं भवणा' इत्यादि, तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, णमिति वाक्यालङ्कारे भवनानि बहिः 'वृत्तानि' वृत्ताकाराणि अन्तः

समचतुरस्राणि अधस्तलभागेषु पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितानि, **'भवणवण्णओ भाणियव्वो जहा ठाणपदे जाव पडिरूवा'** इति, उक्तप्रकारेण भवनवर्णको भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां द्वितीये स्थानाख्ये पदे, स च तावद् यावत् 'पडिरूवा' इति पदं, स चैवम्—"उक्किण्णंतरविउलगंभीरखायपरिखा पागारट्टालयकवाडतोरणपडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया अजोज्झा सयाजया सयागुत्ता अडयालकोट्टरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरअमरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगन्धवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडियसद्दसंपणदिया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा" इति, अस्य व्याख्या—उत्कीर्णमिव उत्कीर्णं अतीव व्यक्तमिति भावः, उत्कीर्णमन्तरं यासां खातपरिखानां ता उत्कीर्णान्तराः किमुक्तं भवति?—खातानां परिखाणां च स्पष्टवैविक्त्योन्मीलनार्थमपान्तराले महती पाली समस्तीति, खातानि च परिखाश्च खातपरिखाः उत्कीर्णान्तरा विपुला—विस्तीर्णा गम्भीरा—अलब्धमध्यभागाः खातपरिखा येषां भवनानां परितस्तानि उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखानि, खातपरिखाणां चायं प्रतिविशेषः—परिखा उपरि विशालाऽधः सङ्कुचिता, खातं तूभयत्रापि सममिति, **'पागारट्टालककवाडपडिदुवारदेसभागा'** इति प्रतिभवनं प्राकारेषु अट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वाराणि—अट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वाररूपा देशभागा—देशविशेषा येषु तानि प्राकाराट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, तत्राट्टालकाः—प्राकारस्योपरि भृत्याश्रयविशेषाः कपाटानि—प्रतोलीद्वारसत्कानि, एतेन प्रतोल्यः

सर्वत्र सूचिता अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि—प्रतीतानि, तानि च प्रतोलीद्वारेषु, प्रतिद्वाराणि—मूलद्वारापान्तरालवर्तीनि लघुद्वाराणि । तथा 'जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया' इति यन्त्राणि—नानाप्रकाराणि शतघ्न्यो—महायष्टयो महाशिला वा याः पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि

३ प्रतिपत्तौ देवाधिकारः उद्देशः १ सू० ११७

सर्वत्र सूचिता अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि—प्रतीतानि, तानि च प्रतोलीद्वारेषु, प्रतिद्वाराणि—मूलद्वारापान्तरालवर्त्तीनि लघुद्वाराणि । तथा 'जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया' इति यन्त्राणि—नानाप्रकाराणि शतघ्न्यो—महायष्ट्यो महाशिला वा याः पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि घ्नन्ति मुशलानि—प्रतीतानि मुषण्ढयः—शस्त्रविशेषास्तैः परिवारितानि—समन्ततो वेष्टितानि अत एवायोध्यानि—परैर्योद्धुमशक्यानि अयोध्यत्वादेव 'सदाजयानि' सदा—सर्वकालं जयो येषु तानि सदाजयानि सर्वकालं जयवन्तीति भावः, तथा सदा—सर्वकालं गुप्तानि प्रहरणैः पुरुषैश्च योद्धृभिः सर्वतः—समन्ततो निरन्तरं परिवारिततया परेषामसहमानानां मनागपि प्रवेशासम्भवात् 'अडयालकोट्ठरइया' इति अष्टाचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तिकलिताः कोष्ठका—अपवरका रचिताः स्वयमेव रचनां प्राप्ता येषु तान्यष्टाचत्वारिंशत्कोष्ठकरचितानि, सुखादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथाऽष्टाचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तयः कृता वनमाला येषु तानि अष्टचत्वारिंशत्कृतवनमालानि, अन्ये त्वभिदधति—अडयालशब्दो देशीवचनात् प्रशंसावाची, ततोऽयमर्थः—'प्रशस्तकोष्ठकरचितानि प्रशस्तकृतवनमालानी'ति तथा 'क्षेमाणि' परकृतोपद्रवरहितानि, 'शिवानि' सदा मङ्गलोपेतानि, तथा किङ्करा:—किङ्करभूता येऽमरास्तैर्दण्डैः कृत्वा उपरक्षितानि—सर्वतः समन्ततो रक्षितानि किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि, 'लाउल्लोइयमहिया' इति लाइयं नाम यद्भूमेर्गोमयादिना उपलेपनम् 'उल्लोइयं' कुड्यानां मालस्य सेटिकादिभिः संमृष्टीकरणं लाइयोल्लोइयाभ्यां महितानि—पूजितानि लाइयोल्लोइयमहितानि, तथा गोशीर्षेण—गोशीर्षनामकेन चन्दनेन सरसरक्तचन्दनेन च दर्दरेण—बहलेन चपेटाप्रकारेण वा दत्ताः पञ्चाङ्गुलयस्तला—हस्तका येषु तानि गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि, तथा उपचिता—निवेशिताः चन्दनकलशा—मङ्गल्यकलशा येषु तानि उपचितचन्दनकलशानि, 'चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा'

इति चन्दनघटैः—चन्दनकलशैः सुकृतानि शोभितानीति तात्पर्यार्थः यानि तोरणानि तानि चन्दनघटसुकृतानि तोरणानि प्रतिद्वारदेशभागं—द्वारदेशभागे येषु तानि चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, तथा **'आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा'** इति आ—अवाङ् अधोभूमौ सक्त—आसक्तो भूमौ लग्न इत्यर्थः ऊर्द्धं सक्त उत्सक्तः उल्लोचतले उपरि संबद्ध इत्यर्थः विपुलो—विस्तीर्णो वृत्तो—वर्त्तुलः **'वग्घारिय'** इति प्रलम्बितो माल्यदामकलापः—पुष्पमालासमूहो येषु तानि आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्तप्रलम्बितमाल्यदामकलापानि, तथा पञ्चवर्णेन सुरभिणा—सुरभिगन्धेन मुक्तेन—क्षिप्तेन पुष्पपुञ्जलक्षणेनोपचारेण—पूजया कलितानि पञ्चवर्णसुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि, तथा कालागुरुः—प्रसिद्धः प्रवरः—प्रधानः कुन्दुरुष्कः—चीडा तुरुष्कं—सिल्हकं कालागुरुश्च प्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्के च कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्काणि तेषां धूपस्य यो मघमघायमानो गन्ध उद्धूत—इतस्ततो विप्रसृतस्तेनाभिरामाणि—रमणीयानि कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपमघमघायमानगन्धोद्धुताभिरामाणि, तथा शोभनो गन्धो येषां ते सुगन्धाः ते च ते वरगन्धाश्च—वासाः सुगन्धवरगन्धास्तेषां गन्धः स एष्वस्तीति सुगन्धवरगन्धगन्धिकानि **'अतोऽनेकस्वरा'**दितीकप्रत्ययः, अत एव गन्धवर्त्तिभूतानि, सौरभ्यातिशयाद् गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पानीति भावः, तथाऽप्सरोगणानां सङ्घः—समुदायस्तेन सम्यग्—रमणीयतया विकीर्णानि—व्याप्तानि अप्सरोगणसङ्घविकीर्णानि, तथा दिव्यानामातोद्यानां—वेणुवीणामृदङ्गानां ये शब्दास्तैः संप्रणदितानि—सम्यक्श्रोत्रमनोहारितया प्रकर्षेण सर्वकालं नदितानि—शब्दवन्ति दिव्यत्रुटितशब्दसंप्रणदितानि सर्वरत्नमयानि—सर्वात्मना सामस्त्येन रत्नमयानि न त्वेकदेशेन सर्वरत्नमयानि—समस्तरत्नमयानि अच्छानि—आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छानि श्लक्ष्णानि—श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिष्पन्नानि श्लक्ष्णदलनिष्पन्नपटवत् लण्हानि—मसृणानि घुण्टितपटवत् **'घट्ठा'** इति घृष्टानीव घृष्टानि खरशानया पाषाणप्रतिमावत्, **'मट्ठा'**

इति मृष्टानीव मृष्टानि सुकुमारशानया पाषाणप्रतिमावदेव, अत एव नीरजांसि स्वाभाविकरजोरहितत्वात् **'निर्मलानि'** आगन्तुकमलासम्भवात् **'निष्पङ्कानि'** कलङ्कविकलानि कर्दमरहितानि वा **'निक्कंकडच्छाया'** इति निष्कङ्कटा—निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेति भावार्थः छाया—दीप्तिर्येषां तानि निष्कङ्कटच्छायानि **'सप्पभाणि'** स्वरूपतः प्रभावन्ति **'समरीचीनि'** बहिर्विनिर्गतकिरणजालानि **'सोद्द्योतानि'** बहिर्व्यवस्थितवस्तुस्तोमप्रकाशकराणि **'प्रासादीयानि'** प्रसादाय—मनःप्रसत्तये हितानि मनःप्रसत्तिकारीणीति भावः, तथा **'दर्शनीयानि'** दर्शनयोग्यानि यानि पश्यतश्चक्षुषी न श्रमं गच्छत इति भावः, **'अभिरूवा'** इति अभि—सर्वेषां द्रष्टृणां मनःप्रसादानुकूलतयाऽभिमुखं रूपं येषां तानि अभिरूपाणि—अत्यन्तकमनीयानीत्यर्थः अत एव **'पडिरूवा'** इति प्रतिविशिष्टं रूपं येषां तानि प्रतिरूपाणि, अथवा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं येषां तानि प्रतिरूपाणि ॥ तदेवं भवनस्वरूपमुक्तमिदानीं यत्पृष्टं 'क भदन्त ! भवनवासिनो देवाः परिवसन्ती'ति तत्रोत्तरमाह—**'तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति असुरा नागा भेदो भाणियव्वो जाव विहरंति एवं जा ठाणपदे वत्तव्वया सा भाणियव्वा जाव चमरेणं असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ'** इति, 'तत्र' तेष्वनन्तरोदितस्वरूपेषु भवनेषु बहवो भवनवासिनो देवाः परिवसन्ति, तानेव जातिभेदत आह—**'असुरा नागा'** इत्यादि यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठः—"असुरा नाग सुवण्णा विज्जू अग्गी य दीव उदही य दिसिपवणथणियनामा दसहा एए भवणवासी ॥ १ ॥ चूडामणिमउडरयणा १ भूसणनागफण २ गरुल ३ वइर ४ पुण्णकलसअंकउप्फेस ५ सीह ६ हयवर ७ गय ८ मगरंक- ९ वरवद्धमाण १० निजुत्तचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढीया महज्जुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया अंगयकुंडलमट्ठगंडतलकण्णा पीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमालामउली (मउडा) कल्लाणगपवरवत्थप-

रिद्धिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणवरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पहाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा, ते णं तत्थ साणं २ भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं २ अग्गमहिसीणं साणं २ अणीयाणं साणं साणं अणियाहिवईणं साणं २ आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽऽहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति" अस्य व्याख्या—'असुराः' असुरकुमाराः, एवं नागकुमाराः सुवर्णकुमारा विद्युत्कुमारा अग्निकुमारा द्वीपकुमारा उदधिकुमारा दिक्कुमाराः पवनकुमाराः स्तनितकुमाराः, 'दशधा' दशप्रकाराः 'एते' अनन्तरोदिता असुरकुमारादयो भवनवासिनो यथाक्रमं चूडामणिमुकुटरत्नभूषणनियुक्तनागस्फटादिविचित्रचिह्नगताश्च, तथाहि—असुरकुमारा भवनवासिनश्चूडामणिमुकुटरत्नाः, चूडामणिर्नाम मुकुटे रत्नं चिह्नभूतं येषां ते तथा, नागकुमारा भूषणनियुक्तनागस्फटारूपचिह्नधराः, सुवर्णकुमाराः भूषणनियुक्तगरुडरूपचिह्नधराः, विद्युत्कुमाराः भूषणनियुक्तवज्ररूपचिह्नधराः, वज्रं नाम शक्रस्यायुधं, अग्निकुमारा भूषणनियुक्तपूर्णकलशरूपचिह्नधराः, द्वीपकुमारा भूषणनियुक्तसिंहरूपचिह्नधराः, उदधिकुमारा भूषणनियुक्तहयवररूपचिह्नधारिणः, दिक्कुमारा भूषणनियुक्तगजरूपचिह्नधारिणः, वायुकुमारा भूषणनियुक्तमकररूपचिह्नधराः, स्तनितकुमारा भूषणनियुक्तवर्द्धमानकरूपचिह्नधारिणः, भूषणमत्र मुकुटो द्रष्टव्योऽन्यत्र 'मउडवरवद्धमाणनिजुत्तचित्तचिंधगया' इति पाठदर्शनाद्, वर्द्धमानकं—शरावसंपुटं, पुनः सर्वे कथम्भूताः? इत्याह—'सुरूपाः' शोभनं रूपं येषां ते तथा, अत्यन्तकमनीय-

रूपा इत्यर्थः, 'महिड्ढिया महज्जुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा' इति प्राग्वत्, 'हारविराइयवच्छा' इति हारैर्विराजितं वक्षो येषां ते हारविराजितवक्षसः, 'कडगतुडियथंभियभुया' इति कटकानि—कलाचिकाभरणानि त्रुटितानि—बाहुरक्षकास्तैः स्तम्भिताविव स्तम्भितौ भुजौ येषां ते कटकत्रुटितस्तम्भितभुजाः, तथाऽङ्गदानि—बाहुशीर्षाभरणविशेषरूपाणि कुण्डले—कर्णाभरणविशेषरूपे, तथा मृष्टौ—मृष्टीकृतौ गण्डौ—कपोलौ यैस्तानि मृष्टगण्डानि कर्णपीठानि—आभरणविशेषरूपाणि धारयन्तीत्येवंशीला अङ्गदकुण्डलमृष्टगण्डकर्णपीठधारिणः, तथा विचित्राणि— नानारूपाणि हस्ताभरणानि येषां ते विचित्रहस्ताभरणाः, तथा 'विचित्तमालामउलिमउडा' इति, विचित्रा माला—कुसुमस्रग् मौलौ—मस्तके मुकुटं च येषां ते विचित्रमालामौलिमुकुटाः, तथा कल्याणकं—कल्याणकारि प्रवरं वस्त्रं परिहितं यैस्ते कल्याणकवस्त्रपरिहिताः, सुखादिदर्शनान्निष्ठान्तस्यात्र पाक्षिकः परनिपातः, तथा कल्याणकं—कल्याणकारि यत् प्रवरं माल्यं—पुष्पदाम यच्चानुलेपनं तद्धरन्तीति कल्याणकप्रवरमाल्यानुलेपनधराः, तथा भास्वरा—देदीप्यमाना बोन्दिः—शरीरं येषां ते भास्वरबोन्दयः, तथा प्रलम्बत इति प्रलम्बा या वनमाला तां धरन्तीति प्रलम्बवनमालाधराः, दिव्येन 'वर्णेन' कृष्णादिना 'दिव्येन गन्धेन' सुरभिणा 'दिव्येन स्पर्शेन' मृदुस्निग्धादिरूपेण दिव्येन शक्तिविशेषमपेक्ष्य संहननेनेव संहननेन न तु साक्षात्संहननेन, देवानां संहननासम्भवात्, संहननं हि अस्थिरचनात्मकं, न च देवानामस्थीनि सन्ति, तथा चोक्तं प्रागेव—"देवा असंघयणी तेसिं नेव सिरा" इत्यादि, 'दिव्येन संस्थानेन' समचतुरस्ररूपेण भवधारणीयशरीरस्य, तेषामन्यसंस्थानासम्भवात्, 'दिव्यया ऋद्ध्या' परिवारादिकया 'दिव्यया द्युत्या' इष्टार्थसंप्रयोगलक्षणया, 'द्यु अभिगमने' इतिवचनात् 'दिव्यया प्रभया' भवनावासगतया 'दिव्यया छायया' समुदायशोभया 'दिव्येनार्चिषा' स्वशरीरगतरत्नादितेजोज्वालया 'दिव्येन तेजसा' शरीरप्रभवेन 'दिव्यया

लेश्यया' देहवर्णसुन्दरतया दश दिशः 'उद्द्योतयन्तः' प्रकाशयन्तः 'पभासेमाणा' इति शोभयन्तस्ते भवनवासिनो देवा णमिति वाक्यालङ्कारे 'तत्र' स्वस्थाने 'साणं साणं'ति स्वेषां स्वेषामात्मीयात्मीयानां भवनावासशतसहस्राणां स्वेषां स्वेषां सामानिकसहस्राणां स्वेषां त्रायस्त्रिंशकानां स्वेषां स्वेषां लोकपालानां स्वासां स्वासाम् 'अग्रमहिषीणा' पट्टराज्ञीनां स्वेषां स्वेषामनीकानां स्वेषां स्वेषामनीकाधिपतीनां स्वेषां स्वेषामात्मरक्षदेवसहस्राणाम्, अन्येषां च बहूनां स्वस्वभवनावासनगरीवास्तव्यानां भवनवासिनां देवानां देवीनां च 'आहेवच्च'मित्यादि, अधिपतेः कर्म्म आधिपत्यं रक्षेत्यर्थः, सा च रक्षा सामान्येनापि (आ)रक्षकेणेव क्रियते तत आह—पुरस्य पतिः पुरपतिस्तस्य कर्म्म पौरपत्यं, सर्वेषामात्मीयानामग्रेसरत्वमिति भावः, तच्चाग्रेसरत्वं नायकत्वमन्तरेणापि नायकनियुक्ततथाविधगृहचिन्तकसामान्यपुरुषस्येव भवति ततो नायकत्वप्रतिपत्त्यर्थमाह—'स्वामित्वं' स्वमस्यास्तीति स्वामी तद्भावो नायकत्वमित्यर्थः, तदपि च नायकत्वं कथञ्चित्पोषकत्वमन्तरेणापि भवति यथा हरिणयूथाधिपतेर्हरिणस्य, तत आह—'भर्तृत्वं' पोषकत्वमत एव महत्तरकत्वं, तदपि महत्तरकत्वं कस्यचिदाज्ञाविकलस्यापि संभवति यथा कस्यचिद्वणिजः स्वदासदासीवर्गं प्रति, तत आह—'आणाईसरसेणावच्चं' आज्ञया ईश्वर आज्ञेश्वरः सेनायाः पतिः सेनापतिः आज्ञेश्वरश्चासौ सेनापतिश्च आज्ञेश्वरसेनापतिस्तस्य कर्म्म आज्ञेश्वरसेनापत्यं स्वस्वसैन्यं प्रत्यद्भुतमाज्ञाप्राधान्यमिति भावः कारयन्तोऽन्यैर्नियुक्तकैः पुरुषैः पालयन्तः स्वयमेव, महता रवेणेति योगः, 'आहय' इति आख्यानकप्रतिबद्धानि यदिवा 'अहतानि' अव्याहतानि नित्यानुबन्धीनीति भावः ये नाट्यगीते नाट्यं—नृत्यं गीतं—गानं यानि च वादितानि तन्त्रीतलतालत्रुटितानि तन्त्री—वीणा तलौ—हस्ततलौ तालः—कंसिका त्रुटितानि—वादित्राणि, तथा यश्च घनमृदङ्गः पटुना पुरुषेण प्रवादितः, तत्र घनमृदङ्गो नाम घनसमानध्वनिर्यो मृदङ्गः, तत एतेषां द्वन्द्वस्तेषां रवेण 'दिव्यान्' दिवि भवान् प्रधानानिति भावः, भो-

गाढं भोगाः—शब्दादयो भोगभोगास्तान् भुञ्जमानाः 'विहरन्ति' आसते ॥ "कहि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पन्नत्ता?, कहि णं भंते! असुरकुमारा देवा परिवसंति?, एवं जा ठाणपए वत्तव्वया सा भाणियव्वा जाव चमरे एत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति जाव विहरति" क भदन्त! असुरकुमाराणां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि?, तथा क भदन्त! असुरकुमारा देवाः परिवसन्ति?, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण या स्थानपदे वक्तव्यता सा भणितव्या यावच्चमरः असुरकुमारेन्द्रः असुरकुमारराजा परिवसति यावद्विहरतीति, सा चैवम्—"गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हिट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोसट्ठी भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किन्नंतरविउलगम्भीरखायपरिहा जाव पडिरूवा, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, एत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति काला लोहियक्खबिंबोट्ठा धवलपुप्फदंता असियकेसा वामेयकुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता ईसिसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया पढमं वयं च समइक्कंता बिइयं च असंपत्ता भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा तलभंगयतुडियवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढिया महज्जुइया महाजसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, चमरबलिणो य एत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा नीलगुलियगवलपगासा वियसियसयवत्तनिम्मलईसिसियरत्ततंबनयणा गरुलाययउज्जुतुंगनासा उवचियसिलप्पवाल-



॥ श्री कल्पसूत्र (हिन्दी भावार्थ) संपूर्ण ॥